चिन्तामणि : कवि और आचार्य

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

की

डी० फिल्० (हिन्दी) के लिए प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्ता

विद्याधर मिश्र

एम० ए० (हिन्दी)

निर्देशक

डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह

प्राध्यापक : हिन्दी विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

महाशिवरात्रि, सम्वत् २०३३ बुधवार, १६ फरवरी, १९७७

विषय - सूची

xxxxxxxxxxx

खण्ड 1

चिन्तामणि का जीवन वृत्त तथा व्यक्तित्व :-

खण्ड 2

चिन्तामणि का कृतित्व :-

चिन्तामणि की जीवन दृष्टि एवं विचार धारा :-

खण्ड 3

खण्ड 4

खण्ड 5

उपसंहार

चिन्तामणि की उपलब्धियाँ :–

परिशिष्ट (क)

परिशिष्ट (ख)

× मन की बात ×

मानव के अन्तर्मन में आंदोलित होने वाले भावों का रुपायन हिन्दी साहित्य के रीति काल में कला के रूप में प्रतिष्ठित हुआ । भावों की सरसता, कल्पना की ऊँचाई, वास्तविक सौन्दर्य की अनुभूति एवं काव्य शास्त्र का विविधांग विवेचन इस काल के आचार्य कवियों में भरा पड़ा है ।

आचार्य चिन्तामणि हिन्दी रीति साहित्य के प्रथम आचार्य एवं संस्कृत साहित्य के प्रकांड पंडित थे इसमें कोई सन्देह नहीं । इसे हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि इतने प्रमुख आचार्य कवि की उपेक्षा हुई है । उनकी रचनाएँ पुस्तकालयों में पुरानी पोथी के रूप में बंधी पड़ी हैं ।

विषय की प्रेरणा का भी अपना इतिहास है । जब मैं स्नातकोत्तर विद्यालय ज्ञानपुर (वाराणसी) से एम0 ए0 कर रहा था उन्हीं दिनों हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पूज्य पाद डा0 शिवादत्त द्विवेदी जी के निकट सम्पर्क का सुअवसर मिला । एक दिन कक्षा में रीति काल की अप्रकाशित कृतियों और कृतिकारों के पन्नें से बोलते हुए उन्होंने कहा कि "रीति काव्य क्या है, मिट्टी के नीचे अतीत की अतल गहराई में दबे पड़े प्राचीन संगमरमर के नगर हैं जिनके ऊपर आज मिट्टी की मोटी परतें, ढीह और भींटे हैं जिनके जीवन्त विचार, ज्ञान कला और साहित्य अपनी अभिव्यक्ति पाने के लिए छट पटा रहे हैं । उनके उत्खनन से, पुरातत्त्व संबन्धी अनेक मणियों का उध्दघाटन होगा और इतिहास के पुराने पन्ने पर नया प्रकाश पड़ेगा ।

अनुसंधित्सु के रूप में जब मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय पहुँचा तो 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं सूर के कृष्णा का तुलनात्मक विवेचन' पर शोध कार्य करने का आश्वासन मिला परन्तु किन्हीं कारणों से विषय हाथ न लग सका । पुनः मुझे 'यशवन्त सिंह कवि और आचार्य' विषय पर शोध कार्य करने के लिये दिया गया यह भी विषय हाथ से जाता रहा । निराश मन निजत्व में सिमट कर बराबर यही सोचता रहा कि शायद मैं छोटी संस्था से आया हूँ और विश्व विद्यालय की ऊँची चहारदिवारी के चौराहे पर दिग्भ्रमित राही की तरह भटक रहा हूँ । इस प्रकार विषय की स्वीकृति के लिए 18 महीने विषय के इर्दगिर्द

घूमता रहा । इन्हीं दिनों सौभाग्य से श्रध्देय डा0 योगेन्द्र प्रताप सिंह जी से सम्पर्क का अवसर मिला । शोध के विषय की अभिरुचि पूछने पर मेरे अन्तर्मन में रह-रह कर पूज्य पाद डा0 शिवादत्त द्विवेदी का कक्षाई व्याख्यान कुरेदता रहा '... ..... उनके उत्खनन से पुरात्त्व संबन्धी अनेक मणियों का उद्घाटन होगा '। मैंने श्रध्देय डा0 सिंह से रीतिकाल के पहले मणि (चिंतामणि) पर शोध कार्य के लिए निवेदन किया । उन्होंने विषय की गरिमा को समझा और अपने निर्देशन में शोध छात्र के रूप में स्वीकार किया जिसके परिणाम स्वरुप शोध को विषय का रूप दे सका ।

यहाँ शोध की उपलब्धियों का विनम्र निवेदन से परिचय देना भी असंगत न होगा । आशा है कि विद्वज्जन इसे प्रस्तुत लेखक की आत्मश्लाघा अथवा आत्म प्रशस्ति के रूप में नहीं वरन् आत्म निवेदन के रूप में ही स्वीकारेंगे।

प्रत्येक प्रकरण में किसी न किसी मौलिक स्थापना का प्रयास किया गया है । अनपेक्षित विस्तार से बचने के लिए लम्बी भूमिका देने का प्रयत्न नहीं किया गया है । साथ ही साथ इस बात की भी चेष्टा की गई है कि शास्त्रीय चिंतन का ही स्वर अधिक मुखरित हो ।

प्रथम प्रकरण में आचार्य चिंतामणि के जीवन वृत्त के सन्दर्भ में अब तक प्रकाशित, अप्रकाशित तथा कतिपय नवीन सामग्री का संचयन कर उनके जीवन वृत्त को क्रम बध्द रूप में विवेचित किया गया है । जन्म भूमि, निवास स्थान, वंश परम्परादि के साथ ही चिंतामणि, भूषण, मतिराम और नीलकंठ के सहोदर भ्रातृत्व को सिध्द करने के लिए कुछ मौलिक स्थापनायें भी की गयी हैं ।

दूसरे प्रकरण में कवि के कृतित्व के कई ऐसे आधारों को भी अध्ययन का विषय बनाया गया है जो तत्कालीन काव्य रचना प्रक्रिया के मूल भूत उत्प्रेरक तत्त्व थे । चिंतामणि के ग्रन्थों की प्रामाणिकता का भी प्रश्न उठाया गया है तथा कुछ के आगे प्रश्न वाचक चिह्न (?) रस विलास की प्रामाणिकता को सिध्द करने के लिए फारसी के ग्रन्थ तारीखे मुहम्मदी की सामग्री का उपयोग सम्भवतः सर्व प्रथम प्रस्तुत प्रबन्ध में किया गया है । इसके साथ-साथ कवि के मनोवैज्ञानिक विकास के आधार पर उनकी कृतियों का काल निर्धारण भी हुआ है ।

तीसरे प्रकरण में चिंतामणि की जीवन दृष्टि, विचार धारा एवं दर्शन के त्रिकोण को ही आधार मान कर विवेचना की गई है ।

चौथे प्रकरण में चिंतामणि का एक मात्र प्राप्त काव्य ग्रन्थ कृष्ण चरित्र का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इस ग्रन्थ से अब तक हिन्दी साहित्य संसार अपरिचित रहा है । कथ्य का विस्तार जान बूझ कर विस्तृत किया गया है । साथ ही साथ कवि की अन्तः प्रेरणा के मूल विन्दुओं का रेखांकन भी हुआ है । प्रकरण के अन्त में चरित्र काव्य के निकष तत्त्वों पर आधृत विवेचन के द्वारा कृष्ण चरित्र को एक चरित काव्य घोषित किया गया है । यह प्रयास इस कार्य में अपनी अभिनवता भासित करेगा ऐसा विश्वास है ।

आचार्यत्व :-

प्रस्तुत प्रखंड में आचार्य चिंतामणि की आचार्य प्रतिभा का समीक्षात्मक मूल्यांकन संस्कृत काव्य शास्त्र के निकष तत्त्वों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। काव्य शास्त्र के विविधांगों जैसे - काव्य चिन्तन, गुण, अलंकार, दोष, ध्वनि, शब्द शक्ति, नायक - नायिका भेद, रस तथा पिंगल आदि के विषय में आचार्य चिंतामणि के क्या विचार थे उनमें उनकी मौलिकता, नवीनता, विशेषता, शोध - सम्पादन दृष्टि तथा उनके विचार संस्कृत और हिन्दी के काव्य शास्त्रियों से कहाँ तक मेल खाते हैं इन सब तथ्यों की समीक्षात्मक समीक्षा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

काव्य चिन्तन :-

प्रस्तुत प्रकरण में काव्य प्रयोजन, काव्य पुरुष, रीति वृत्ति शय्या, पाक एवं काव्य सम्पदा का विवेचन किया गया है । विश्वनाथ ने "रीतयोऽवयव संस्थान विशेषवत्" कह कर जिस 'पद - संघटना रीतिः' का उल्लेख किया है वह काव्य पुरुष के रूपक में अधिक संगत है लेकिन चिंतामणि ने अपनी सधी समीक्षा के द्वारा रीति और वृत्ति में भेदक रेखा खींचने में सफलता पाई है । चिंतामणि का काव्य सामग्री संचयन निश्चय ही महत्त्वपूर्ण और प्रशंसनीय है । रूपक के निर्वाह में चिन्तामणि को कठिनाई विश्व विद्यानाथ के अनुकरण के कारण हुई है ।

गुण प्रकरण :-

इस प्रकरण में गुण के स्वरूप एवं उनके वर्गीकरण की चर्चा की गई है । प्रस्तुत लेखक ने संस्कृत में वर्णित गुणों एवं उनके अन्तर्भाव तथा प्रभाव की समीक्षा

के साथ-साथ निजी स्थापनाओं से विषय विवेचन को स्पष्ट करने का प्रयास किया है । उदारता में अर्थ चारुत्व और अभिव्यक्ति में सालंकारता का निरुपण किया गया है । ओज के वैचित्र्य में अलंकार का सन्निवेश करके कवि ने उल्लेखनीय प्रयास किया है ।

अलंकार :-

प्रस्तुत प्रकरण में आचार्य चिंतामणि के अलंकारो का वर्गीकरण प्रस्तुत है । आचार्य चिन्तामणि द्वारा प्रयुक्त छन्दों के स्रोतों का संधान विवेच्य है । उल्लेख्य है कि इस प्रकरण में आचार्य चिंतामणि ने कहाँ तक संस्कृत-लक्षणों का शुध्द एवं सफल अनुवाद किया है, अथवा अनुवाद या छायानुवाद किया है। उससे कहाँ तक मौलिकता या विशेषता प्रगट हुई है । क्या संक्षिप्तता अथवा लाघव की प्रवृत्ति के कारण लक्षण अस्पष्ट, दोष पूर्ण अथवा अधूरे तो नहीं हो गये हैं इत्यादि सन्दर्भों में चिंतामणि के अलंकारों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

दोष प्रकरण :-

इस प्रकरण में दोष के स्वरुप एवं उनके वर्गीकरण तथा दोष परिहार की चर्चा प्रस्तुत की गई है चिंतामणि ने अपने लक्षणों के प्रस्तुतीकरण में किन-किन संस्कृत कवियों का प्रभाव ग्रहण किया है इसे भी दर्शाया है ।

ध्वनि एवं शब्द शक्ति प्रकरण :-

इस प्रकरण में ध्वनि के स्वरुप, ध्वनि के भेद का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया गया है । ध्वनि के भेद को स्पष्ट करने के लिए वंश वृक्ष भी दिया गया है। जहाँ तक चिंतामणिकी मौलिकता का प्रश्न है मम्मट के 51 भेदों के स्थान पर केवल 44 भेदों की चर्चा की गई है किन्तु अन्तर केवल भेदों के विस्तार का है । स्वनिर्मित उदाहरण तथा साथ में जो गद्यात्मक वृत्तियाँ दी गई हैं उनसे उनका आचार्य कर्म और भी उपादेय बन गया है ।

नायक-नायिका भेद :-

इस प्रकरण में रस विलास, श्रृंगार मंजरी एवं कवि कुल कल्प तरु ग्रन्थों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है सुविधा के लिए परिशिष्ट में तीनों ग्रन्थों का अलग-अलग वर्गीकरण भी दिया गया है । लक्षणों के प्रभाव की प्रामाणिकता

के लिए संस्कृत के मूल ग्रन्थों का उल्लेख विवेच्य है । ध्यातव्य है कि पूरे प्रकरण को कवि कुल कल्प तरु को ही आधार मानकर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

रस प्रकरण :-

इस प्रकरण में रस संबन्धी सामान्य कृतियों के संक्षिप्त परिचय के बाद, रस निष्पत्ति, साधारणीकरण, भाव विभाव अनुभाव, नायिकाओं के सत्वज अलंकार एवं रसों के परिपाक का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । उल्लेख्य है कि संस्कृत काव्य की शास्त्रीय ग्रन्थों से तुलनात्मक समीक्षा भी प्रस्तुत की गई गई है । साथ ही साथ आचार्य चिन्तामणि ने किन-किन स्थानों पर काव्य शास्त्रीय परम्परा से हट कर भी स्थापना की है और किन-किन स्थानों से सार संकलन कर कुशल शोधार्थी की भूमिका निभाई है तथा मौलिकता उजागर की है तथा किन-किन स्थानों पर अपनी स्वतंत्र प्रतिभा का परिचय दिया है इसका सर्तकता से उल्लेख किया गया है ।

पिंगल प्रकरण :-

प्रस्तुत प्रकरण में छन्द स्वरुप निर्धारण के पश्चात् वर्णिक और मात्रिक छन्दों के भेदोपभेद की परिचर्चा प्रस्तुत की गई है । उल्लेख्य है कि लक्षणोदाहरण के क्रम में आचार्य चिन्तामणि के प्रभाव विन्दुओं का भी रेखांकन किया गया है । अध्ययन को प्रभावी बनाने के लिए कवि की प्रेरणा एवं आधारभूत ग्रन्थों का भी उल्लेख है । साथ ही छन्द प्रस्तार के कतिपय छन्द चित्र भी दिये गये हैं ।

पाठ ~~निरीक्षण~~ निर्धारण :-

कतिपय पाण्डुलिपियों के जर्जर हो जाने के कारण एवं स्थान-स्थान पर कीट दष्ट हो जाने से अपेक्षित पाठ ही प्रस्तावित किये गये हैं । यह कार्य प्रस्तुत शोध की महती उपलब्धि है जिससे पाठ निर्णय की अभिनव एवं उपयोगी पद्धति का समारम्भ सम्भाव्य है ।

चिंतामणि की मौलिक उपलब्धियाँ एवं सीमायें :-

प्रस्तुत प्रकरण में आचार्य चिंतामणि की मौलिक उद्भावनाओं का रेखांकन किया गया है कवित्व एवं आचार्यत्व की संगम भूमि पर अधिष्ठित कवि की प्रतिभा

उपादेय होगी ऐसा विश्वास है ।

परिशिष्ट (क) में अध्ययन की सुविधा के लिए कतिपय वंश वृक्ष, छन्द चित्र एवं शाहजहाँ कालीन भारत का मानचित्र भी दिया गया है । शोध प्रबन्ध को इस प्रत्याशा के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है कि इसके द्वारा शास्त्रीय चिंतन के क्षेत्र में तथा सामान्यतः काव्यानन्द के मूल्यांकन में एक अभिनव प्रयास सफल होगा । शोध कार्य सामग्री के संकलन में जो खट्टी मीठी अनुभूतियाँ हुईं वे आज भी कसक रही हैं भले ही आज कार्य सम्पन्न हो गया है । परन्तु अपने भोगे हुए अतीत को जब पीछे मुड़कर देखता हूँ तो आत्मा विगलित हो जाती है ।

सामग्री संकलन के लिए मुझे काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, सम्पूर्णानन्द विश्व विद्यालय, लखनऊ विश्व विद्यालय, एशियाटिक पुस्तकालय कलकत्ता, जमनियाँ, उत्तर प्रदेशीय प्राच्य इतिहास परिषद, लखनऊ, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण दिल्ली, दिल्ली विश्व विद्यालय दिल्ली, राजकीय पुस्तकालय दतिया, अनूप संस्कृत पुस्तकालय संस्कृत पुस्तकालय जयपुर एवं रज़ा पुस्तकालय रामपुर की सारस्वती यात्रा बिना आर्थिक सहायता के कैसे सम्भव हुई कह नहीं सकता ।

हस्तलिखित ग्रन्थों के अध्ययन एवं प्रतिलिपि प्राप्ति के क्रम में श्री अगर चन्द नाहटा, कैप्टन शूर वीर सिंह, डा० महेन्द्र कुमार, डा० किशोरी लाल गुप्त, प० विश्व नाथ प्रसाद मिश्र, डा० भगीरथ मिश्र, साहित्यान्वेषक श्री उदय शंकर दुबे 'शील' का हृदय से ऋण स्वीकार करता हूँ जिनकी सहज अनुकम्पा से हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त हुए । राजकीय रज़ा पुस्तकालय, रामपुर के निर्देशक श्री इम्तियाज अली अर्शी से जो सहयोग प्राप्त हुआ उसके लिए मैं उनका अहसानमंद हूँ । इसी क्रम में श्री इन्दुधर द्विवेदी (भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण दिल्ली) ने कृष्ण चरित्र की प्रतिलिपि कराने में जिस लगन एवं सुरुचि से डा० महेन्द्र कुमार से परिचय करा कर टंकित प्रति भेजी उसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ ।

मैं उन सभी विद्वानों का ऋण स्वीकार करता हूँ जिनसे अथवा जिनके ग्रन्थों से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में दिशा निर्देश मिला है और मैंने लाभ उठाया है विशेषतः मैं डा० सत्य कुमार चन्देल का ऋणी हूँ क्योंकि उनका चिंतामणि विषयक शोध मेरे पथ निर्धारण में पहला साथी है । यद्यपि मेरे शोध की दिशा और शैली उनसे सर्वथा भिन्न है तथापि उनको अग्रज होने का गौरव प्राप्त है इसे हृदय से

स्वीकार करता हूँ ।

इसी क्रम में नायक नायिका भेद के विद्वान लेखक डा० छैल विहारीगुप्त राकेश गुप्त का स्टडीज इन नायक नायिका भेद उक्त प्रसंग लिखने में प्रकाश - स्तम्भ रहा है । इसी प्रकार आचार्यत्व की अवधारणा में डा० विजय पाल सिंह का ग्रन्थ केशव का आचार्यत्व उपयोगी और मार्ग दर्शक रहा है । डा० सत्यदेव चौधरी का हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य ग्रन्थ पग-पग पर यात्रा का सहयोगी रहा मैं इन सब का कृतज्ञ हूँ ।

शोध प्रबन्ध के सूत्रधार एवं कुशल निर्देशक गुरुवर डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह का मैं चिर ऋणी हूँ क्योंकि मुझे न केवल उनकी प्रेरणा और प्रतिभा से पथ प्रदर्शन मिला हैं अपितु उनके वात्सल्य का अधिकारी बन गया हूँ । साहित्य के क्षेत्र में, विकास की दिशा में उनेका स्नेह सम्बल बना रहेगा ऐसा विश्वास है।

अपने विश्व विद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० रघुवंश के प्रति श्रध्दानत हूँ, हिन्दी विभाग के ही डा० मोहन अवस्थी एवं डा० राजेन्द्र वर्मा के स्नेहिल प्रोत्साहन एवं पथ प्रदर्शन को मैं साभार स्वीकर करता हूँ । विश्व विद्यालय के हिन्दी परिवार का मैं अंग बन सका इसका श्रेय उन प्राध्यापकों को है जिनका द्वार मेरे लिए सदा उन्मुक्त रहा है मैं उन सब का 'रिनियाँ' रहूँ इसी में सुख है ।

अपने परम्परागत गुरु डा० कन्हैया शंकर उपाध्याय (प्राध्यापक, इलाहाबाद वि० वि०) का ऋणी हूँ जिनकी प्रेरणा सम्बल के रूप में कार्य करती रही।

शोध प्रबन्ध की कर्म भूमि रामपुर ही रही इस दिशा में मैं अपने गुरुवर डा० शिवादत्त द्विवेदी, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर विद्यालय, रामपुर का आजीवन ऋणी हूँ जिन्होंने ज्ञान के क्षेत्र में बढ़ते रहने की प्रेरणा एवं संघर्ष से जूझकर कुछ अर्जित करने की दिशा दी । ग्रन्थ स्वामियों के निराशाजनक पत्र से ऊबकर जब मैं शोध कार्य के प्रथम चरण में ही विराम लेने का संकल्प लिया था तो उनका पुनः पुनः प्रेरणा पत्र "प्रारम्यचोत्तमजना न परित्यजन्ति" मिला जिससे प्रोत्साहित होकर मैंने उनके ही सनिध्य में शोध कार्य पूर्ण करने की इच्छा से रामपुर जा पहुँचा लगभग एक सत्र रामपुर में व्यतीत हुआ । इस प्रवास में श्रध्देय डा० शिवादत्त द्विवेदी जी ने हर विन्दुओं पर समस्याओं को सुलझाने और शोध को रुप देने में सहयोग दिया उनके परिवार का

सदस्य बन कर मैंने जो लाभ उठाया वह मेरी एक अमूल्य धरोहर है मुझे यह स्वीकार करने में प्रसन्नता हो रही है कि यदि पग-पग पर मुझे उनका प्रोत्साहन न मिलता तो सम्भवतः आज भी विषय का यह रूप न बन पाता । 'ममतामयी माता श्रीमती चन्द्रमुखी द्विवेदी की वात्सल्य पूरित प्रेरणा जीवन भर सजो रखने की वस्तु है परिस्थितियों से आहत गतिरोध के क्षणों में इन दम्पति का जो स्नेह रहा है उन्हें व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं और व्यक्त करके उन्हें हल्का भी नहीं करना चाहता । प्रियवर चन्द्रधर द्विवेदी एवं गंगाधर द्विवेदी का भाउक हृदय मेरे प्रति असीम स्नेह से भरा रहा मैं अग्रज के अधिकार से इन दोनों भाइयों के मंगलमय भविष्य की कामना करता हूँ ।

चिंतामणि की पिंगल विषयक अंग को सगड़ सुलझाने में डा० चन्द्र प्रकाश सक्सेना कुमुद से पर्याप्त सहायता मिली एतदर्थ उनका चिर आभारी हूँ । डा०छोटे लाल शर्मा 'नागेन्द्र'कासंवेदनशील हृदय एवं प्रेरणा प्रद उत्साह अविस्मरणीय है ।

अपने मित्रों का आभार स्वीकार करू अथवा धन्यवाद दूँ यह निश्चय करना कठिन हो रहा है किन्तु इस अवसर पर उनका निश्छल हृदय से स्मरण अपना कत्तर्व्य मानता हूँ । सर्वश्री मन मोहन शुक्ल, बाबुल नाथ, सूर्य प्रकाश अग्निहोत्री एवं कृष्णानन्द पाण्डे की प्रेरणायें अविस्मरणीय हैं । पाण्डुलिपि को टंकित करने में कहानीकार महेश राही की अंगुलियों ने बहुत श्रम उठाया इसके लिये वे बधाई के पात्र हैं । टंकित प्रति को शुध्द करने में परिवेश के सम्पादक कुमार सम्भव तथा मेरी मित्र मंडली ने पर्याप्त श्रम किया है यदि वे औपचारिकता को बुरा न माने तो उन्हें बहुत-बहुत धन्यवाद ।

अन्त में भगवान साम्ब सदाशिव के चरणों में प्रस्तुत कृति प्रस्तुत करते हुए प्रणाम निवेदन करता हूँ ।

महाशिव रात्री
संवत् 2033

विद्याधर मिश्र

संकेत-सूची

का० प्र० — काव्य प्रकाश : मम्मट

प्र० रु० भू० — प्रताप रुद्र यशोभूषण : विद्यानाथ

सा० द० — साहित्य दर्पण : विश्वनाथ

द० रू० — दश रूपक : धनंजय

र० म० — रस मंजरी : भानुदत्त

क० कु० त० — कवि कुल कल्प तरु : चिन्तामणि

चि० पि० — चिन्तामणि कृत पिंगल

शृं० म० — शृंगार मंजरी

=000=

खण्ड १

१ : चिन्तामणि का व्यक्तित्व

जीवन वृत्त तथा व्यक्तित्व

हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्य काल के प्रकाश-स्तम्भ के रूप में आचार्य चिंतामणि का एक महत्वपूर्ण स्थान है । आचार्य मम्मट के आदर्श को लेकर चलने वाले प्रथम आचार्य कहाने के कारण चिन्तामणि एक शास्त्र कवि एवं प्रवर्तक आचार्य के रूप में स्वीकार किये जाते हैं । स्वच्छ चिंतन एवं निर्व्याज अभिव्यक्ति के मणि कांचन संयोग के फलस्वरूप इनका आचार्यत्व परवर्ती आचार्यों के लिए पथ प्रदर्शक एवं प्रेरणा स्रोत रहा है ।

भारतीय जीवन दृष्टि मुख्यतः अन्तर्मुखी एवं आत्मपरक है इसलिए कुछ अपवादों को छोड़कर कवियों और साहित्यकारों ने आत्मविज्ञापन से बचने का प्रयत्न किया है । यही कारण है कि प्रायः मनीषियों और महापुरुषों को अपने संबन्ध में कुछ भी लिखने में संकोच हुआ है ऐसी स्थिति में उनकी शालीनता और बहिरंग निरपेक्ष दृष्टि के कारण हम उनके जन्म आदि के प्रामाणिक इतिहास से अपरिचित रह गए हैं और इतिहास के बिखरे सूत्रों को संजोकर भी उनके जीवन पट को बुनने में असमर्थ ही रहे हैं ।

आचार्य चिन्तामणि ने भी अपने जन्म कुल गोत्र कुटुम्ब आदि के विषय में कुछ भी न लिख कर हमें अतीत की अतल गहराइयों में गोता लगाने के लिए छोड़ दिया है । कवि की रचनाओं में कुछ आश्रयदाताओं के उल्लेख के अतिरिक्त अन्तः साक्ष्य के रूप में प्रायः कुछ भी उपलब्ध नहीं है अतः बहिःसाक्ष्य एवं जनश्रुतियों का आश्रय लेकर इनके जीवन-वृत्त की एक सम्भावना मूलक पुनर्रचना प्रस्तुत करने की चेष्टा की जा रही है ।

जन्म :-

सुनिश्चित एवं प्रामाणिक सामग्री के अभाव में चिंतामणि के जन्म के संबन्ध में विद्वानों ने अनेक प्रकार की मान्यताएँ स्थापित की हैं -

क - ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने इनका समय सं0 1729 वि0 स्वीकार किया है जिसे भ्रमवश जन्म काल मान लिया गया है ।

ख - मिश्र बन्धुओं ने इनका जन्म सं0 1666 स्वीकार कर लिया है ।

ग — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मिश्र बन्धुओं के आधार पर बिना किसी विवेचन के सं0 1666 स्वीकार कर लिया है और यही प्रायः सर्व मान्य हो गया है ।

घ — डा0 सत्यदेव चौधरी ने अपने शोध प्रबन्ध 'हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य' में परम्परा प्राप्त सं0 1666 का ही उल्लेख किया है किन्तु 'हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास' षष्ठ भाग में सं0 1690 - 95 मानने का आग्रह किया है ।

ङ — डा0 सत्य कुमार चन्देल ने अपने अप्रकाशित शोध प्रबन्ध में सं0 1660 सिध्द किया है ।[1]

इस प्रकार चिंतामणि के जन्म काल के संबन्ध में मुख्यतः सं0 1666, सं0 1690, 1695 तथा सं0 1729 ये तीन विचारणीय हैं ।

सं0 1666 के संबन्ध में मिश्र बन्धुओं का कहना है कि 'नागरी प्रचारिणी सभा' दारा होने वाली हस्तलिखित पुस्तकों की खोज में सं0 1698 का रचा हुआ जयशंकर कृत 'अमरेश विलास' नाम का ग्रन्थ प्राप्त हुआ । किंवदन्ति यह कहती थी कि जयशंकर भूषण के सब से छोटे भाई थे अतएव पहले के विचार को छोड़कर हमने भूषण का जन्म सं0लगभग सं0 1692 के स्थान पर लगभग 1670 मान लिया और चार-चार वर्षों का अन्तर मानकर चिन्तामणि, मतिराम तथा जटशंकर के क्रमशः सं0 1666, सं0 1674 और 1678 अनुमान किए । अन्य विचारों से भूषण का जन्म सं0 1692 के लगभग बैठता था सो इसे पीछे हटाने में हमने जहाँ तक कम हो सका उतना ही हटाया । इसीलिये जटशंकर का रचना काल 20 ही वर्ष की अवस्था में मानकर उनका जन्म सं0 1678 कहा और उनसे तीनों बड़े भाइयों का एक दूसरे चार-चार वर्ष और पीछे हटा दिया ।[2]

स्पष्ट है कि सं0 1666 का निर्धारण आनुमानिक है जिसे 'अमरेश विलास' के आधार पर जोड़ घटा लिया है चूँकि चिंतामणि के एवं उनके अन्य भाइयों के

1: चिंतामणि और उनका काव्य — डा0 सत्य कुमार चन्देल

2: महाकवि भूषण और मतिराम समय और संबन्ध — लेखक मिश्र बन्धु — माधुरी पत्रिका फरवरी - जुलाई 1924 पृष्ठ 437

आश्रय दाताओं और ग्रन्थों के काल से इस काल का तालमेल बैठ जाता है अतः इस अनुमान के सत्य के निकटतम होने की सम्भावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अतएव आचार्य राम चन्द्र शुक्ल[1] डा० भगीरथ मिश्र[2] प्रभृति विद्वानों ने बिना किसी विवाद के सं० 1666 को ही प्रमाणिक मान लिया है ।

2: सं० 1690 - 95 को स्वीकार करने वाले विद्वान हैं -

डा० सत्य देव चौधरी :-

डा० चौधरी ने अपने शोध प्रबन्ध 'हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य' में तो परम्परा से प्राप्त सं० 1666 वि० को ही स्वीकार किया है[3] किन्तु कालान्तर में हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास के अन्तर्गत इनका जन्म सं० 1690 और सं० 1695 के बीच स्वीकार किया है । इनका तर्क है कि 'कवि कुल कल्प तरु' का रचना काल सं० 1725 के आस पास होगा । 'शाहजहाँ का शासन काल सं० 1684 से 1715 है अतः उनसे पुरस्कार प्राप्ति के समय तक चिंतामणि का इस ग्रन्थ का निर्माण नहीं हुआ होगा यदि शुक्ल जी के अनुसार इनका जन्म सं० 1666 के लगभग माना जाय तो इस ग्रन्थ के निर्माण के समय इनकी आयु लगभग 60 वर्ष रही होगी पर हमारे विचार में कवि कुल कल्प तरु जैसे शास्त्रीय तथा शृंगार रस पूर्ण उदाहरण से युक्त ग्रन्थ के निर्माण के समय ग्रन्थकार की आयु 30-35 वर्ष होनी चाहिए । इस दृष्टि से इनका जन्म सं० 1690-95 मानना चाहिए'।

जहाँ तक कवि कुल कल्प तरु के निर्माण काल का प्रश्न है उसके संदर्भ में डा० चौधरी से सहमत होना सम्भव है और उचित भी किन्तु जहाँ तक चिंतामणि के जन्म सम्वत् का प्रश्न है इस संदर्भ में उनका तर्क एकदम लचर है। कवि कुल कल्प तरु के शृंगार रस पूर्ण उदाहरणों को देखकर डा० चौधरी ने चिंतामणि की उस तरुण अवस्था की रचना स्वीकार किया है किन्तु हमारे विचार में कवि कुल कल्प तरु जैसे प्रांजल शास्त्रीय ग्रन्थ का निर्माण कवि की परिपक्क अवस्था का ही संकेत देता है ।

1: हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं० 2014 - पृष्ठ 224
2: हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास - पृष्ठ 61
3: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - पृष्ठ 33 डा० सत्य देव चौधरी
4: हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - सं० डा० नगेन्द्र - द्वितीय संस्करण 2030 पृ० 238

अतः लगभग 60 वर्ष की उम्र में इस ग्रन्थ का लिखा जाना नितान्त उचित है। हमारी तो यह धारणा है कि उक्त ग्रन्थ कवि की जीवन साधना का अन्तिम फल है। जहाँ तक उदाहरणों का प्रश्न है उसमें उन्होंने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों से अधिकांश उदाहरण ग्रहण किए हैं। श्रृंगारमंजरी, कृष्ण चरित्र, रस विलास, भाषा-पिंगल आदि के शताधिक छन्द कल्प तरु में देखे जा सकते हैं। कौन जानता है कि काव्य प्रकाश, काव्य विवेक, रामायण, रस मंजरी, कवित्त विचार आदि के कितने छन्द कवि कुल कल्प तरु में सम्मिलित हों। अतः श्रृंगार रस पूर्ण उदाहरणों की रचना युवावस्था में हुई हो और उनका उपयोग परिणत वय में किया गया हो यह असम्भव नहीं है। एक बात और भी है कि हम किसी भी कवि को अनिवार्यतः वृद्धावस्था के निकट आने पर विरक्त ही क्यों मान लें ? कृष्ण चरित्र इस बात का साक्षी है कि कवि वैष्णव भक्त है और माधुर्य भाव की भक्ति का अनुगामी है कोई अनौचित्य नहीं दिखाई देता अतः उन सं0 1690-95 के स्थान पर सं0 1666 वि0 स्वीकार करना अधिक संगत जान पड़ता है।

डा0 सत्य कुमार चन्देल ने 'रस विलास' को उनकी प्रथम कृति माना है और उसका रचना काल 1692-93 के बीच ठहराया है उन्होंने भी ऐसे प्रौढ़ ग्रन्थ की रचना के लिए कम से कम 30-35 वर्ष की अवस्था की अनिवार्यता का उल्लेख किया है जिसके आधार पर चिन्तामणि का जन्म 1660 के आस पास माना है[1] यह आस पास सं0 1666 भी हो सकता है।

3: सं0 1729 :-

ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने चरित्र खण्ड में चिन्तामणि के नाम के आगे 1729 लिख दिया है[2]। इसे भ्रमवश विद्वानों ने जन्म सम्वत् का उल्लेख मान लिया है। डा0 सत्य देव चौधरी का कथन है कि शिव सिंह सेंगर ने इनका जन्म सं0

1: चिन्तामणि और उनका काव्य – डा0 सत्य कुमार चन्देल – द्वितीय अध्याय पृ0 28

2: शिव सिंह सरोज – सम्पादक डा0 किशोरी लाल गुप्त – प्रथम सं0 1790 पृ0 692

1729 पाया है पर यह समय यथार्थ प्रतीत नहीं होता क्योंकि सं0 1723 में तो शाहजहाँ की मृत्यु हो चुकी थी ।[1] हमारा विचार है कि 1729 जन्म सं0 न होकर उनकी उपस्थिति का सूचक है क्योंकि यदि हम 1725 तक कवि कुल कल्प तरु का निर्माण काल मानते हैं तो सं0 1729 तक कवि का वर्तमान होना सहज सम्भावित है किन्तु डा0 चन्देल जी का यह कथन अपनी विसंगतियों के कारण एक प्रलाप बन कर रह गया है कि 'ठाकुर शिव सिंह सेंगर' ने चिन्तामणि रचित रुद्र शाह सोलंकी विषयक छन्द उध्दृत कर अप्रत्यक्ष रूप से इन्हें इनका आश्रित कवि मानते हुए यद्यपि इनका जन्म सं0 1729 वि0 निश्चित कर दिया है फिर भी विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता ।[2]

अतः सं0 1729 को केवल भ्रमवश ही जन्म सं0 मान लिया गया है और सेंगर जी के नाम से उसे जोड़ दिया गया है उक्त सं0 को जन्म सं0 मानना किसी दृष्टि से उचित नहीं है ।

ऐसी दशा में किसी अकाट्य प्रमाण के न होते हुए भी अनेक दृष्टि से विचार करने पर तथा चिन्तामणि के भाइयों के भी जीवन वृत्त को ध्यान में रखते हुए मिश्र बन्धुओं द्वारा स्वीकृत एवं परम्परा से अनुमोदित सं0 1666 के लगभग चिन्तामणि का जन्म स्वीकार किया जाना चाहिए ।

1: हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास – सम्पादक डा0 नगेन्द्र – द्वितीय संस्करण 2030 पृ0 238

2: चिन्तामणि और उनका काव्य – डा0 सत्य कुमार चन्देल – पृष्ठ 26,27

चिन्तामणि की जन्म भूमि और निवास स्थान :-

आरम्भ में शिव सिंह सेंगर[1] के वाक्य पर चिन्तामणि की जन्मभूमि को सभी लोग एक मत होकर त्रिविक्रमपुर तिकवाँपुर मानते रहे । इन्हीं के आधार पर भूषण, मतिराम और नीलकंठ की चिन्तामणि से भातृता भी स्वीकार कर दी गई थी अतः जब भूषण ने अपने संबन्ध में त्रिविक्रमपुर में निवास करने का उल्लेख किया तो चिन्तामणि का भी तिकवाँपुर का निवासी होना स्वतः समर्थित हो गया ।[2]

संयोग से माधुरी पत्रिका में गाक्षिक बन्धुओं का 'महाकवि भूषण और मतिराम समय और संबन्ध'[3] शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ जिसमें परोक्ष ज्ञान[4] के आधार पर लिखा गया कि "चिन्तामणि कवित्त विचार का कर्त्ता कोड़ा जहानाबाद का रहने वाला था । इसके भाई भूषण और मतिराम थे जो अच्छे शायर थे[5]।" तभी से विद्वानों ने चिंतामणि की जन्म भूमि कोड़ा जहानाबाद जिला फतेहपुर को स्वीकार करना आरम्भ किया ।

डा० सत्य कुमार चन्देल ने कोड़ा जहानाबाद जाकर छान बीन की उन्हें " कुछ वयोवृध्द व्यक्तियों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि चिन्तामणि नाम के कवि यहाँ बहुत समय पूर्व हुए थे और उनका मकान कोड़ा में था किन्तु अब उस स्थान को

1: शिव सिंह सरोज — पृ० 692 सम्पादक डा० किशोरी लाल गुप्त

2: दिज कनौज कुल कस्यपी रतिनाथ को कुमार
   वसत त्रिविक्रमपुर सदा जमुना कंठ सुढार
   — भूषण विश्व नाथ प्रसाद मिश्र

3: माधुरी पत्रिका - सन् 1924 - फरवरी - जुलाई पृष्ठ 437

4: राजस्थान के प्रसिध्द इतिहासकार मुंशी देवी प्रसाद के एक पत्र के आधार पर जिसमें सर्व आजाद का कुछ पंक्तियों का अनुवाद भेजा गया था ।

5: तजकिरए सर्व आजाद हिन्द — कुतुबखाना, हैदराबाद

लोगों ने कृषि भूमि बना लिया है वस्तुतः इस स्थान (कोड़ा के प्राचीन मकान आदि) को देखने पर सहज ही विश्वास हो जाता है कि यहाँ पर भी राजसी ठाट-बाट के लोग रहा करते थे। उपर्युक्त प्राप्त तथ्य लोगों को अपने पूर्वजों से परम्परागत रूप में प्राप्त हुए हैं।[1]

डा० चन्देल को एक अन्य तथ्य प्राप्त हुआ कि "फतेहपुर जिले के वर्तमान बिन्दकी तहसील के मजिस्ट्रेट गंगा प्रसाद जी के पूर्वजों ने चिन्तामणि को कोई ग्राम पुरस्कार में दिया था"।[2]

अतः मूल निवास स्थान कोड़ा जहानाबाद होना चाहिए क्यों कि "कानपुर फतेहपुर जिले तो अंग्रेजी हुकूमत की देन हैं मुगल सरकार में यह क्षेत्र कोड़ा जहानाबाद नाम से प्रसिध्द था इसी क्षेत्र में तिकवाँपुर पड़ता था।"[3] डा० गुप्त के उपर्युक्त कथन के बाद जन्मभूमि की चर्चा फिर तिकवाँपुर से आकर जुड़ जाती है क्योंकि तिकवाँपुर कोड़ा जहानाबाद के क्षेत्र में पड़ता है।

डा० महेन्द्र कुमार ने मतिराम के जीवन वृत्त का संधान करते हुए उनका जन्म स्थान बनपुर निश्चित किया।[4] मतिराम और चिन्तामणि की भ्रातृता के कारण चिन्तामणि का भी संबन्ध 'बनपुर' से भी जुड़ जाता है। उनका कथन है कि "मुझे खोज में बनपुर नाम का एक छोटा सा गाँव मिला है जो अब भी जिला फतेहपुर की सीमा में अवस्थित है। रीति काल के तीन प्रसिध्द कवि दूलह, कालीदास त्रिवेदी और कवीन्द्र तो यहाँ के रहने वाले थे ही, मतिराम को भी यहाँ के लोग अपने यहाँ का कवि मानते हुए अत्यन्त गौरव के साथ कहा करते हैं –

1: चिन्तामणि और उनका काव्य – डा० सत्य कुमार चन्देल – पृष्ठ 32

2: वही पृष्ठ 32

3: भूषण, मतिराम तथा उनके अन्य भाई – डा० किशोरी लाल गुप्त-पृष्ठ 178

4: तिर पाठी बनपुर बसें - - - ।

मतिराम कवि और आचार्य - डा० महेन्द्र कुमार - पृ० 23

ऊँच गाँव अरवई बसे, और बसे तर गाँव ।
बीच नवगवाँ हम बसें जो कवि मुरो का गाँव ।।[1]

'वंश भास्कर' में सूर्य मल्ल ने बुन्देलों की भूमि में चिन्तामणि, भूषण और मतिराम के निवास की चर्चा की है यद्यपि काल के संबन्ध में सूर्य मल्ल निश्चित नहीं हैं ।[2]

इस प्रकार चिन्तामणि की जन्म भूमि अथवा निवास स्थान विषयक चर्चा का समाहार तिकवाँपुर, कोड़ा जहानाबाद तथा बनपुर को केन्द्र बनाकर किया जाना चाहिए । वस्तुतः यह प्रश्न इतना जटिल नहीं है कि इसका समाधान सम्भव न हो । भौगौलिक दृष्टि से कोड़ा जहानाबाद यद्यपि फतेहपुर जिले में है और तिकवाँपुर तथा बनपुर कानपुर में, किन्तु इन स्थानों की परस्पर दूरी बहुत अधिक नहीं है । डा0 भगीरथ मिश्र के अनुसार तिकवाँपुर के दक्षिणी किनारे पर बहता हुआ एक यमुना में जाकर एक गिरने वाला नाला है । उसके दूसरी पार 'रनवन' देवी का मन्दिर है ।[3] 'रन वन' देवी का मन्दिर कानपुर में है कहते हैं कि वनपुर में जंगलों के बीच - बीच में कुछ अहीरों के घर थे । इसी हमीरपुर के राजा हमीरदेव ने उजड़वा दिया था । हमीरपुर जमुना के उस पार स्थित है । कहा जाता है कि हमीरदेव वनपुर के जंगल में शिकार खेलने आये थे तो देखा कि गाँव में एक अहीर शराब के नशे में धुत पड़ा था राजा ने उससे जंगल से बाहर जाने का रास्ता पूछा तो उसने पैर से संकेत कर दिया जिससे क्रोधित होकर राजा हमीर देव ने उस गाँव में आग लगवा दी ।"

उपर्युक्त जनश्रुति में इतना सत्यांश तो है कि राजा हमीर ने वनपुर गाँव उजड़वा दिया था ।

1: क — मतिराम कवि और आचार्य — डा0 महेन्द्र कुमार : पृष्ठ 29 - 30
ख — डा0 महेन्द्र को 'वनपुर निवासी' पं0 सिध्दनाथ दीक्षित से प्राप्त छन्द ।

2: इनहीं दिनन कछु पहिले वा इतर
बुन्देलन भूमे व्रजभाषा कवि विप्र तीन
जेठौ भात भूषन अरु मध्य मतिराम तीजो
चिंतामनि विदित भए कविता प्रवीन
— माधुरी (वर्ष 2 खण्ड 2 सं0 6) पृ0 736

3: शृंगार मंजरी — भूमिका पृष्ठ 14 — डा0 भगीरथ मिश्र

हम तो ऐसा मानते हैं कि चिन्तामणि का जन्म तिकवाँपुर में ही हुआ था। जहाँ तक 'वनपुर' का संबन्ध है उस विषय में इतना ही कहना है कि ब्राह्मणों में अब भी किसी ग्राम विशेष के आधार पर अपने कुल की चर्चा करने का क्रम है अतः चिन्तामणि के पूर्वज 'वनपुर' के त्रिपाठी रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं। वन शुइगाँ गा रन वन देवी की पूजा के लिए चिन्तामणि के पिता का नित्य वनपुर जाना भी सिध्द करता है कि उक्त देवी उनकी कुल देवी थीं जिनके आशीर्वाद से चिन्तामणि आदि चार पुत्रों की उत्पत्ति हुई। यह किंवदन्ती तिकवाँपुर में प्रसिध्द है और सेंगर जी ने भी अंकित किया है।[2] मतिराम के वंशधरअब भी तिकवाँपुर में रहते हैं।[3]

अब तिकवाँपुर से संबध्द एक प्रश्न रह जाता है वह यह है कि मतिराम के पन्ती[4] विक्रम सतसई के टीकाकार विहारी लाल के कथनानुसार राजा हमीर ने भूषण, मतिराम और चिंतामणि को त्रिविक्रमपुर में सम्मानित किया और इन्होंने अपने अपने भवन बनाये अतः डा० कृष्ण दिवाकर का विचार है कि इनका निवास स्थान कहीं अन्यत्र था और यह लोग अपने-अपने घर बनाकर यहाँ बस गये।[5] इस संदर्भ में यह उल्लेख अप्रासांगिक न होगा कि जब हमीर देव ने त्रिविक्रमपुर को मध्य देश के मणि के रूप में विकसित किया तो इन कवियों के आवास की सुन्दर व्यवस्था कर दी हो तो इसमें क्या आश्चर्य है? इससे यह सिध्द नहीं होता कि यह लोग कहीं वाहर से आकर बसे थे क्या वहीं के निवासी राज्याश्रय पाकर अपने भवन का निर्माण नहीं कर सकते, वस्तुतः विहारी लाल की पंक्तियाँ का ठीक अर्थ नहीं किया जा सकता है। इन पंक्तियों का स्पष्ट अर्थ है कि यमुना के तट पर वीर हमीर का बसाया

1: श्रृंगार मंजरी — भूमिका — पृष्ठ 14,15 — सम्पादक डा० भगीरथ मिश्र

2: शिव सिंह सरोज — पृष्ठ — डा० किशोरी लाल गुप्त

3: श्रृंगार मंजरी — सम्पादक डा० भगीरथ मिश्र — भूमिका पृष्ठ 15

4: पूर्वी जिलों में वाराणसी के पश्चिमी भाग इलाहाबाद तथा कानपुर क्षेत्र में पन्ती का प्रयोग प्रपौत्र अर्थ में होता है।

5: वसत त्रिविक्रमपुर नगर कालिन्दी के तीर।
विरच्यो भूप हमीर ज्यों मध्य देश के हीर॥
भूषन चिंतामनि तहाँ कवि भूषण मतिराम।
नृप हमीर सन मानतें कीनों निज निज धाम॥
— रस चन्द्रिका — पृष्ठ 28 — विहारी लाल

हुआ मध्य देश के मणि अथवा सार तत्व के रूप में त्रिविक्रमपुर नगर बसा हुआ है । वहाँ भूषण, चिन्तामणि एवं मतिराम ने नृप हमीर से सम्मानित होकर धन प्रतिष्ठा प्राप्त करके अपने-अपने निवास स्थान बना लिए । इन पंक्तियों में बिहारी लाल ने ऐसा कोई शब्द नहीं दिया जिससे इन कवियों का बाहर से आना सिध्द हो ।[1] जब नगर को नये ढंग से बसाया जा रहा हो और वहाँ का शासक सम्मान दे रहा हो तो क्या स्थानीय लोग अपने लिए नया आवास गृह नहीं बना सकते अथवा पुराने भवन का नव निर्माण नहीं कर सकते ? यदि ये लोग कहीं से आकर बसे होते तो बिहारी लाल उनका भी उल्लेख उसी प्रकार कर सकते थे जिस प्रकार अपने विक्रम की सभा में आने का उल्लेख किया है कि अनेक प्रकार से सम्मान देकर राजा स्वयं जाकर ले आए और इसलिए बिहारी लाल विक्रम की सभा में आये ।

अतः प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक उन विद्वानों के मत से मत मिलाने में अपने को असमर्थ पाता है जिन्होंने दूसरे स्थान से तिकवाँपुर में लाकर बसाये जाने की बात की है ।[2]

अब एक महत्वपूर्ण प्रसंग है मीर गुलाम अली बिलग्रामी के 'सर्वे आजाद' का तज़्किरा जिसमें कोड़ा जहानाबाद का रहने वाला बताया गया है इस विषय में डा0 किशोरी लाल गुप्त का संकेत यह है कि कोड़ा जहानाबाद की स्थिति जिले की स्थिति है अतः मीर गुलाम अली ने गाँव के नाम का उल्लेख न करके उस क्षेत्र के प्रधान स्थान का नाम दिया है ।

1: विविध भाँति सनमान करि ल्याए चित मँहिपाल
आए विक्रम की सभा सुकवि बिहारी लाल
रस चन्द्रिका – 32 : बिहारी लाल

2: क – मतिराम ग्रन्थावली – सम्पादक पं0 कृष्ण बिहारी लाल – पृष्ठ 121
ख – महाकवि मतिराम – डा0 त्रिभुवन सिंह (सं0 2015) पृष्ठ 114
ग – मतिराम कवि और आचार्य – डा0 महेन्द्र पृष्ठ 29
घ – चिन्तामणि और उनका काव्य – डा0 सत्य कुमार चन्देल : पृष्ठ 32

डा० चन्देल ने उनको कोड़ा जहानाबाद का निवासी सिध्द किया है इसमें भी उन्हीं के द्वारा परम्परागत रूप में प्राप्त मजिस्ट्रेट गंगा प्रसाद जी के पूर्वजों द्वारा चिंतामणि को पुरस्कार रूप में दिये जाने वाले ग्राम की बात विचारणीय है क्या आश्चर्य है कि वह गाँव कोड़ा ही रहा हो जो चिन्तामणि को पुरस्कार में प्राप्त हुआ हो और चिन्तामणि ने अपनी जन्म भूमि को छोड़ कर कोड़ा में आवास बना लिया हो और जब वे रहमतुल्ला से मिलने गये हों तो कोड़ा से ही गये हों और उसी को गुलाम अली ने लिखा हो क्या आज भी लोग गाँव से शहर में आकर नहीं बस जाते ? मध्यकाल में विद्वगोपजीवी अपने आश्रय दाताओं की इच्छा से अपने आवास बदलते ही रहे हैं ।

भूषण के संबन्ध में जनश्रुतियों से यह स्पष्ट है कि वे बहुत दिनों तक निकम्मे बैठे रहे । चिन्तामणि की कमाई से कुटुम्ब का भरण-पोषण होता था जिस समय चिन्तामणि दिल्ली दरबार में थे उस समय उन्होंने भी भूषण को कुछ ताने दिये थे । चिन्तामणि की पत्नि का भूषण को नमक के लिए ताने देना तो प्रसिध्द ही है ।[2] अतः इन जनश्रुतियों से इतना मान लेना अ अप्रासंगिक न होगा कि चिंतामणि और उनकी पत्नि की दूसरे भाइयों से नहीं पटती थी इसलिए एक स्थान पर रहकर कलह करने की अपेक्षा चिंतामणि का आवास बदल लेना और सपरिवार कोड़ा जहानाबाद में जा बसना संगत प्रतीत होता है ।

अतः निष्कर्ष रूप में हम कहते हैं कि वनपुर चिंतामणि की पूर्वज भूमि थी । तिकवाँपुर जन्म भूमि और कोड़ा जहानाबाद परवर्ती काल[3] में निवास भूमि । इस प्रकार सारी जन श्रुतियों की भी संगति भी बैठ जाती है और किसी ऐतिहासिक तथ्य में भी कोई जोड़ तोड़ नहीं करना पड़ता ।

1: देखिए – भूषण, मतिराम तथा उनके अन्य भाई – पृष्ठ 178,179
– डा० किशोरी लाल गुप्त

2: भूषण का जीवन एवं कृतित्व – पृष्ठ 18 – हरिश्चन्द्र दीक्षित

3: मीर गुलाम अली के तजकरे में चिंतामणि को कवित्त विचार का कर्त्ता लिखा गया है जिससे उनकी प्रौढ़ अवस्था सिध्द होती है ।

चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और नीलकंठ का सहोदर भ्रातृत्व :–

श्री शिव सिंह सेंगर द्वारा उल्लिखित जनश्रुति के अनुसार 'वन की भुइयाँ देवी' की कृपा से एक ही पिता के चार पुत्र हुए थे जिनके नाम क्रमशः चिंतामणि, भूषण, मतिराम, जटाशंकर या नीलकंठ थे ।[1] प्रायः इसी तथ्य को बहुमत से विद्वानों ने स्वीकार किया है किन्तु कुछ विद्वानों ने इनके सहोदर भाई होने में सन्देह प्रकट किया है । संदेह प्रकट करने वालों में पं० भगीरथ प्रसाद दीक्षित तथा डा० महेन्द्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । दीक्षित ने भूषण और चिंतामणि को सहोदर भाई के रूप में अस्वीकार करते हुए सेंगर जी की धारणा को भ्रान्ति-युक्त माना है किन्तु सेंगर जी के ही आधार पर लिखा है कि भूषण का जन्म शिव सिंह सरोज के अनुसार सं० 1738 है और मिश्र बन्धुओं के अनुसार चिन्तामणि का जन्म सं० 1666 में हुआ था । इस प्रकार दोनों भाइयों के जन्म काल में 70 वर्षों का अन्तर होता है जो सहोदर भाइयों में सम्भव नहीं है । किन्तु पं० माया शंकर याज्ञिक ने दो ऐसे आधार ग्रन्थों का उल्लेख किया है जो क्रमशः शिव सिंह सरोज से 43 वर्ष तथा 132 वर्ष पूर्व बने थे । पहला आधार है बूँदी निवासी श्री सूर्य मल्ल जी कृत 'वंश भाष्कर' तथा दूसरा है मीर गुलाम अली बिलग्रामी का ग्रन्थ तजकिर-ए-सर्व आजाद ।

सूर्यमल्ल ने वंश भाष्कर में लिखा है कि –

इनही दिनन कछु पहिले वा इतर
बुंदेलन भू मैं ब्रजभाषा कवि विप्र तीन
जठो भ्रात भूषन सू मध्य मतिराम तीजो
चिन्तामनि विदित भए ये कविता प्रवीन[3]

इस अंश में न केवल भूषण, मतिराम, और चिंतामणि के सहोदर भाई होने की बात कही गई है अपितु भूषण को बड़ा भाई मतिराम को मझला और

1: शिव सिंह सरोज – सम्पादक डा० किशोरी लाल गुप्त : पृष्ठ 692

2: माधुरी पत्रिका 9 जुलाई सन् 1924 पृष्ठ 736

3: माधुरी पत्रिका – याज्ञिकत्रय का लेख (2:2:6)

चिन्तामणि को छोटा भाई स्वीकार किया गया है । यह कहना कठिन है कि वंश भास्कर का यह उल्लेख किसी ठोस प्रमाण पर आधारित है अथवा जनश्रुति पर किन्तु इसे किंवदंती कहकर उपेक्षित नहीं किया जा सकता ।

तज्किर-ए के लेखक मीर गुलाम अली मीर जलील बिलग्रामी के भांजे थे। इन्हीं मीर जलील के एक दूसरे भांजे सय्यद गुलाम अली रसलीन थे । अतः मीर गुलाम अली और रसलीन दोनों परस्पर भाई थे । तज्किरा की रचना रसलीन की मृत्यु के तीन वर्ष बाद 1163 हिजरी अर्थात् सं0 1807 विक्रमी में हुई थी । मीर गुलाम अली के मामू जलील बिलग्रामी हिन्दी के सुकवि और रहमतुल्ला के मित्र थे जो उस समय मुगल सरकार की ओर से जाजमऊ और बैसवाड़े में नियुक्त थे । "रहमतुल्ला स्वयं हिन्दी काव्य के मर्मज्ञ थे और उन्होंने किसी समय चिंतामणि को पुरस्कृत किया था ।" इस सारी घटना का उल्लेख तज्किर-ए में हुआ है कि मतिराम और भूषण चिन्तामणि के भाई थे —"चिन्तामणि कवित्त विचार का कर्ता कोड़े जहानाबाद का रहने वाला था । इसके दो भाई भूषण और मतिराम थे जो अच्छे शायर थे । "इस सामग्री का पहली बार उपयोग याज्ञिक बन्धुओं ने 'मतिराम और भूषण' लेख में किया[2]। उन्होंने यह अंश राजपूताना के प्रसिध्द इतिहास मर्मज्ञ मुंशी देवी प्रसाद के एक पत्र से उध्दृत किया है[3] इसके अतिरिक्त मतिराम मतिराम ग्रन्थावली की भूमिका में पं0 कृष्ण बिहारी मिश्र ने भ्रातृत्व संबन्धी एक और प्रमाण दिया है । मतिराम के पन्ती(प्रपौत्र) बिहारी लाल ने चरखारी नरेश विक्रम साहि कृत विक्रम सतसई की टीका रस चन्द्रिका में जिसका रचना काल सं0 1872 है अपना वंश-परिचय इस प्रकार दिया है जिसमें कहा गया है कि —

> बसत त्रिविक्रमपुर नगर कालिंदी के तीर ।
> बिरच्यो भूप हमीर जनु मध्य देश को हीर ॥28
> भूषन चिंतामनि तहाँ कवि भूषन मतिराम ।
> नृप हमीर सनमानतें कीनो निजनिज धाम ॥29

1: तज्किर-ए-सर्व आजाद — मीर गुलाम अली प्रकाशन
2: माधुरी पत्रिका वर्ष 2 खण्ड 2 संख्या 6
3: देखिए — भूषण, मतिराम तथा उनके अन्य भाई — डा0 किशोरी लाल गुप्त

हैं पंती मतिराम के सुकवि बिहारी लाल ।
जगन्नाथ नाती विदित, शीतल सुत सुभ चाल ॥ 30
कश्यप वंश कनौजिया विदित त्रिपाठी गोत्त ।
कविराजन के वृन्द में कोविद सुमति उदोत ॥ 31
विविध भाँति सनमान करि लाय चित्त मतिपाल ।
आगे विक्रम की सभा सुकवि विहारी लाल ॥ 32

इसके अनुसार राजा हमीर ने यमुना के तट पर त्रिविक्रमपुर नामक इस नगर को बसाया था जो मध्यदेश का सर्व श्रेष्ठ नगर था । राजा हमीर ने भूषण, चिन्तामणि तथा मतिराम का सम्मान किया जिसके कारण इन्होंने अपने घर बनाये । स्पष्ट है कि तीनों ने पृथक - पृथक अपने घर बनाये । बिहारी लाल के संकेत से यद्यपि तीनों का सहोदरत्व स्पष्ट रूप से प्रमाणित नहीं होता फिर भी मतिराम के चिंतामणि और भूषण का उल्लेख किसी न किसी संबन्ध का निश्चित रूप से संकेत करता है ।

पं० शिव नाथ प्रसाद मिश्र ने पं० जवाहर लाल चतुर्वेदी मथुरा से प्राप्त एक बही (सं० 1869) के उल्लेख के आधार पर मतिराम और उनके पिता आदि का उल्लेख किया है। बिहारी लाल के चचेरे भाई शिव सहाय त्रिपाठी ने चौबे की बही में अपना वंश परिचय अपने हाथों लिखा है —

" शिव सहाय श्री भाई बिहारी लाल तथा शिव गुलाम तथा राम दीन बैजनाथ के बेटा दुइ, बिहारी लाल व शिव गुलाम । जगन्नाथ के नाती मतिराम के पंती रतिनाथ के परपन्ती । शिव सहाय के बेटा गया दत्त, रामदीन के बेटा दुइ प्रयाग दत्त व नन्द किशोर, बिहारी लाल के बेटा काशी दत्त, शिव गुलाम के बेटा शिव राजन । बिहारी गूदरपुर के सुखवास टिकवापुर पर वीरवल क अकबरपुर म० गूदरपुर पट्टी सुराजपुर । सं० 1869 भादों सु० 8 "[1]

1: भूषण द्वितीय संस्करण — पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र 82-83

इस लेख के आधार पर शिव सहाय की पूर्व वंश परम्परा यों बनती है :–
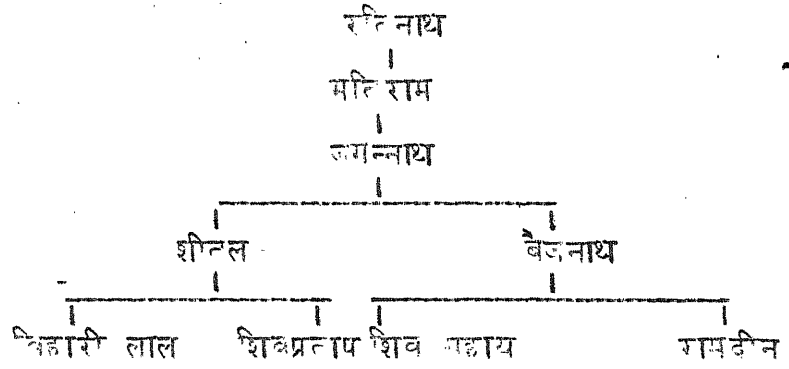
शिव सहाय के चचेरे भाई बिहारी लाल ने रस चन्द्रिका में जो अपनी वंश परम्परा (मतिराम, जगन्नाथ-शीतल-बिहारी लाल) दिया है वह शिव सहाय द्वारा दी गई मथुरा वाली बही इस वंश परिचय से पूर्णतया मिलती है । अन्तर यह है कि बिहारी लाल ने वंशावली अपने तक ही सीमित रखी और शिव सहाय ने पूरे कुटुम्ब का ध्यान दिया ।[1]

डा0 महेन्द्र कुमार ने अपने ग्रन्थ मतिराम कवि और आचार्य में मथुरा वाली बही के विवरण को अप्रामाणिक सिध्द करने के लिए राम दीन का एक खंडित छन्द उध्दृत किया है[2] उनके कथनानुसार यह छन्द उन्हें तिकवाँपुर निवासी पं0 शिव प्रसाद तिवारी के पौत्र चन्द्र बलि तिवारी से प्राप्त हुआ था इस पर टिप्पणी करते हुए डा0 किशोरी लाल गुप्त ने लिखा है कि " डा0 महेन्द्र कुमार कहते यह जा रहे हैं कि भूषण और मतिराम न तो एक गोत्र के थे और न सगे भाई ही थे पर उनके द्वारा उध्दृत कवित्त ही उनके प्रतिपादन का उपहास कर रहा है ।[3] × × × कवित्त के एक-एक चरण में एक-एक पीढ़ी का वर्णन

1: भूषण, द्वितीय संस्करण पृष्ठ 82-83 डा0 किशोरी लाल गुप्त द्वारा लिखित भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई पृष्ठ 186-87 पर उद्धृत ।

2: भूषन, सुकवि चिन्तामनि...
मतिराम हू को सनाती प्रगट...
परमारथ सौ लीन्हों नाती जगन्नाथ को...
जगत जस जागत है...
जगत जगत वेद विद्या प्रवीन है ।
शीतल औ बैजनाथ जाको तन मन धन
- - - - - - - - -देवता अधीन है ।
विदित बिहारी लाल कविवर विश्वनाथ
तिनको अनुज द्विज नाम रा दीन है ॥
मतिराम कवि और आचार्य – डा0 महेन्द्र पृष्ठ छन्द सार संग्रह पंचम प्रकाश पर उध्दृत 29 .

है इससे भी ज्ञात होता है कि ये तीनों एक ही पीढ़ी के थे, अतः भाई थे। यदि ये सगे भाई न होते तो जगन्नाथ के बाद के रूप में केवल मतिराम का उल्लेख हुआ होता। अतः इस सारी सामग्री की आलोचना करने से भूषण और मतिराम का भ्रातृत्व निर्विवाद और असंदिग्ध हो जाता है।"[1]

जहाँ तक जटाशंकर उपनाम नीलकंठ की भ्रातृता का प्रश्न है उस संबन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि परम्परा जटाशंकर उपनाम नीलकंठ को त्रिपाठी बन्धुओं में सम्मिलित करती आई है। कवित्त रत्नाकर के रचयिता मातादीन मिश्र[2] ने तथा शिव सिंह सेंगर जी ने इन्हें स्पष्ट रूप से सगा भाई माना है[3]। मिश्र बन्धुओं ने सर्व प्रथम प्रमाणों के अभाव में जटाशंकर के सगे भाई होने पर सन्देह व्यक्त किया है और यहीं से दो वर्ग हो गए हैं किन्तु जब तक कोई विरोधी प्रमाण उपस्थित नहीं होता तब तक इन्हें त्रिपाठी बन्धुओं की भ्रातृता से वंचित करना उचित नहीं प्रतीत होता। नीलकंठ का भूषण और मतिराम के समान ही बूँदी हाड़ा वंशज (छत्रसाल भाव सिंह आदि) से संबन्ध इस बात का संकेत देता है कि ये सहोदर भाई थे और क्रमशः किसी न किसी रूप में एक ही राजवंश से संबन्ध जुड़ते रहे। भूषण चिंतामणि और नीलकंठ का छत्रसाल से संबन्ध रहा है और मतिराम का छत्रसाल के पुत्र भाव सिंह से। भ्रातृता के संबन्ध में यह तथ्य उपेक्षणीय नहीं है।

पिता का नाम :-

परम्परा से चिन्तामणि के पिता का नाम रतिनाथ अथवा रत्नाकर स्वीकार किया गया है किन्तु डा0 महेन्द्र एवं डा0 सत्य कुमार चन्देल आदि ने भूषण एवं मतिराम के साथ चिन्तामणि की भ्रातृता को अस्वीकार करने के कारण

1: मतिराम कवि और आचार्य – डा0 महेन्द्र : पृष्ठ 27

2: भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई – डा0 किशोरी लाल गुप्त : पृष्ठ 89-90

3: वही/पृष्ठ - 692

रत्नाकर को भूषण का पिता मान कर उनके चिन्तामणि के पिता होने को अस्वीकार कर दिया है, किन्तु जैसा हम पहले स्थापित कर चुके हैं भूषण एवं मतिराम तथा नीलकंठ चिंतामणि के भाई थे अतः भूषण और मतिराम आदि के जो पिता हैं वे ही चिन्तामणि के भी पिता हैं। यह बात स्वतः सिध्द हो जाती है।

यहाँ विचारणीय यह है कि दो भिन्न-भिन्न दोहों में रत्नाकर और रतिनाथ ये दो नाम प्राप्त होते हैं। ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने रत्नाकर त्रिपाठी को इनका पिता सिध्द किया है[1]। इसके विपरीत पं० विश्वनाथ मिश्र ने इनका नाम रतिनाथ और उपनाम रत्नाकर निश्चित किया है क्यों कि चौबे वाली बही से प्राप्त सूचना के अनुसार जब मतिराम के पिता का नाम रतिनाथ है तो चिन्तामणि के पिता का भी नाम रतिनाथ ही होना चाहिए। ऐसी स्थिति में रत्नाकर नाम की संगति या तो उपनाम मान कर लगाई जा सकती है या लोक प्रचलित पं० विश्वनाथ मिश्र का विचार इस प्रकार है — "हस्तलेखों में पाठ भेद ही भिन्न-भिन्न हैं और यह भी सम्भावना नहीं है कि 'रतिनाथ' का स्थानापन्न 'रत्नाकर' पद हो सके या इसका विपर्यांश, अतः दोनों के सन्दर्भ यह कल्पना की जा सकती है कि एक नाम है और दूसरा उपनाम"[2]।

ऐसी स्थिति में डा० शिव सिंह सेंगर पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डा० किशोरी लाल गुप्त आदि विद्वानों के मत में मत मिलाते हुए यह कहा जा सकता है कि चिन्तामणि के पिता का नाम रतिनाथ था।

आस्पद एवं गौत्र :-

चिन्तामणि वर्ण से ब्राह्मण एवं त्रिपाठी हैं। इस विषय में सभी एक मत हैं, हाँ उनके गोत्र के संबन्ध में कुछ मत भेद प्राप्त होता है। मतिराम को भूषण का सहोदर भ्राता स्वीकार किया गया है। डा० महेन्द्र ने बड़े तर्क के साथ मतिराम को वत्स गोत्रिय सिध्द करने का प्रयास किया है[3]। हालांकि इन्होंने भूषण

1: शिव सिंह सरोज — सम्पादक डा० कृष्ण दिवाकर पृष्ठ 375

2: भूषण — आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : द्वितीय संस्करण : पृष्ठ 90

3: मतिराम कवि और आचार्य — डा० महेन्द्र : पृष्ठ 28

चिन्तामणि आदि से मतिराम की भ्रातृता नहीं स्वीकार की है किन्तु जिस 'पन्ती' शब्द के आधार पर उन्होंने बिहारी लाल को कश्यप गोत्रिय तथा मति राम को वत्स गोत्रिय सिध्द किया है उस 'पन्ती' का पुत्र का पौत्र अर्थ होता है ।

अतः हमारे विचार में चिंतामणि की भी काश्यप गोत्र ही स्वीकार किया जाना चाहिए । इससे पं0 विश्वनाथ मिश्र द्वारा उल्लिखित रत्नाकर या रतिनाथ (काश्यप गोत्र) की संगति बैठ जाती है ।

विद्या अध्ययन एवं गुरु :-

चिन्तामणि ने संस्कृत साहित्य में पर्याप्त अधिकार प्राप्त किया था और साहित्य शास्त्र के प्रायः सभी प्रसिध्द ग्रन्थों का अध्ययन किया था । यह बात इसलिए प्रमाणित होती है कि इन्होंने दशरूपक, काव्य प्रकाश, शृंगार मंजरी आदि अनेक ग्रन्थों का अपनी रचनाओं में उपयोग किया है । तजकिर-ए-सर्द आजाद के अनुसार -"चिन्तामणि संस्कृत में भी अपने जमाने के लोगों से आगे थे"[1] ।

इनके शिक्षा गुरु कौन थे इसका उल्लेख इनके ग्रन्थों में कहीं नहीं मिलता किन्तु इन्होंने विद्या अध्ययन सम्भवतः काशी जाकर किया होगा इस प्रकार का अनुमान इनके निम्नलिखित दोहे के आधार पर किया जा सकता है -

पुहुमी सी वारानसी ता में पंडित सार ।
बहुरि पंडितन में समुझि सार सुब्रहम विचार ॥[2]

स्पष्ट है कि पंडितों की नगरी काशी के प्रति कवि के मन में निष्ठा है और काशी में किसी ऐसे पंडित के आश्रय में विद्या अध्ययन कवि ने किया है जो ब्रम्ह ज्ञानी है किन्तु नाम का उल्लेख न होने से सब कुछ अधूरा और अपरिचित ही रह जाता है ।

1: मतिराम कवि और आचार्य -- डा0 महेन्द्र

2: क0क0त0 2/306

जीवनचर्याः –

चिन्तामणि के जीवनवृत्त के संबन्ध में किसी प्रकार की कोई सामग्री प्राप्त नहीं है अतः उनके जीवन के विषय में कुछ भी कहना कठिन है । हाँ, उनके ग्रन्थों के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि उनका जीवन रीतिकालीन जीवन परम्परा के अनुरूप ही रहा होगा ।

धार्मिक विश्वास एवं सिध्दान्त :–

चिन्तामणि के ग्रन्थों के स्वाध्याय के उपरान्त प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि चिन्तामणि एक प्रामाणिक सनातनी सद्‌ग्रहस्थ थे । इस उपकल्पना का आधार यह है कि चिन्तामणि के ग्रन्थों में निर्विरोध रूप से गणेश, शिव, शक्ति, विष्णु, राम, कृष्ण आदि का अत्यन्त सहशुद्दतापूर्ण एवं पूज्य भाव सम्पन्न वर्णन किया है । डा० सत्य कुमार चन्देल ने इन्हें वैष्णव माना है[1] और उसका आधार कृष्ण चरित्र को स्वीकार किया है किन्तु जिस निष्ठा से इन्होंने सभी देवी देवताओं का वर्णन किया है उससे समन्वय वादी सनातनी गृहस्थ मानना अधिक संगत होगा ।

विचार धारा :–

यद्यपि चिन्तामणि को रीतिकालीन पृष्ठि भूमि में जीवन व्यतीत करना पड़ा है तथापि उन्होंने एक सनातनी गृहस्थ सभी विचारों को प्रायः आत्मसात करने का प्रयत्न किया है यही कारण है कि इनकी रचनाओं में अहिंसा सत्य आदि धार्मिक तत्व संसार के प्रति नश्वरता आदि वैचारिक धाराओं और लोकाचारों का यथा स्थान समुचित निर्वाह दिखाई देता है यदि इनके कृष्ण चरित्र को देखकर इन्हें कृष्ण उपासक कहा जाये तो रामायण में वर्णित राम के आधार पर क्या राम उपासक नहीं कहा जा सकता ? इसी तरह कृष्ण चरित्र के आरम्भिक वक्ता-श्रोता शिव और मुनी लोग हैं तथा राधा कृष्ण की प्राप्ति के लिए शिव उपासना करती है ऐसी दशा में इन्हें शैव कहने में क्या आपत्ति होगी ?

इसलिए हम इस निष्कर्ष पर आये हैं कि चिन्तामणि को एक उदारतावादी एवं समन्वयवादी सद्‌गृहस्थ कहना अधिक युक्तिसंगत होगा जो पंच देव उपासक हैं । वैष्णव भक्ति का तो उस युग में प्रवाह था ही ।

1: चिन्तामणि और उनका काव्य – डा० सत्य कुमार चन्देल : पृष्ठ 35

खण्ड 2

1: चिन्तामणि का कृतित्व

कृतित्व
====

ग्रन्थों का सामान्य परिचय :-

चिन्तामणि ने कुल कितने ग्रन्थों की रचना की है इसे निश्चित और निर्विवाद रूप में कहना अत्यन्त कठिन है । उनके कवि कुल कल्प तरु में दो ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे श्रृंगार मंजरी[1] और पिंगल[2] नामक ग्रन्थों की रचना चिन्तामणि के द्वारा हुई है ऐसा निर्णय हो जाता है । इसके अतिरिक्त कवित्त विचार को भी चिन्तामणि की रचना स्वीकार करना चाहिये क्योंकि उनके समसामयिक इतिहासकार मीर गुलामअली बिलग्रामी ने उसका उल्लेख किया है[3]। ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने चिन्तामणि कृत पाँच ग्रन्थालय में होना भी स्वीकार किया है उनमें पिंगल और कवि कुल कल्प तरु के अतिरिक्त काव्य प्रकाश, काव्य विवेक और रामायण का उल्लेख है । काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने अपने खोज रिपोर्ट में गीत गोविन्दसटीक और संगीत चिंतामणि नामक दो ग्रन्थों का उल्लेख किया है ।[4] वैसे सभा के पुस्तकालय की सूची में रामायण, बारह खड़ी चौंतीसी और कर्म विपाक ये चार ग्रन्थ बतलाये गये हैं । कृष्ण चरित्र एक विशाल काव्य ग्रन्थ पं0 देवी प्रसाद शुक्ल बजुआ नगर तहसील के पास विद्यमान था किन्तु उसे उनसे मांग कर डा0 कृष्ण दिवाकर (पूना) ले गये जिन्होंने अनेक प्रयत्न के बाद भी ग्रन्थ की हवा तक न लगने दी उसकी दूसरी प्रति कैप्टन शूर वीर सिंह (टेहरी) के पास से होती हुई डा0 महेन्द्र कुमार (दिल्ली) द्वारा मुझे प्राप्त हुई जिसकी टंकित प्रति मेरे पास है ।

1: प्रोषित भतृका को लक्षन तथा श्रृंगार मंजरी
क0क0त0 6/184

2: मेरे पिंगल ग्रन्थ ते समुझौ छन्द विचार
क0क0त0 1/6

3: तजकिर-ए-सर्व आजाद — लेखक मीर गुलाम अली बिलग्रामी

4: शिव सिंह सरोज — सम्पादक : डा0 किशोरी लाल गुप्त
संस्करण 1970 पृष्ठ 692

बीकानेर पुस्तकालय की सूची का निर्माण करते हुए श्री अगर चन्द नाहटाजी ने रस विलास ग्रन्थ का परिचय दिया है उक्त पुस्तक अत्यन्त अपठनीय लिपि में है । इसकी प्रति लेखक को श्री अगर चन्द नाहटा जी के सौजन्य से प्राप्त हुई ।

शृंगार मंजरी का सम्पादन डा0 भगीरथ मिश्र ने किया है और सुन्दर भूमिका आदि लिख कर उक्त ग्रन्थ को सर्व सुलभ बना दिया है । कवि कुल नामक सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ लीथो टाइप में मुंशी नवल किशोर प्रेस लखनऊ से सन् 1875 में प्रकाशित हुआ था जिसकी दो जर्जर प्रतियाँ काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित हैं । कवि कुल कल्प तरु और भाषा पिंगल (हस्तलिखित) की प्रतियाँ वहीं से उपलब्ध हुई हैं । रामाश्वमेध नामक एक हस्तलिखित ग्रन्थ जो कि चिन्तामणि रचित कहा जाता है काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में खंडित रूप में उपलब्ध है जिसका संचयन मैंने वहीं से किया है ।

इस प्रकार चिंतामणि कृत निम्नलिखित ग्रन्थ बताये जाते हैं :-

1: रस विलास

2: भाषा पिंगल

3: शृंगार मंजरी

4: कवि कुल कल्प तरु

5: कृष्ण चरित्र

6: कवित्त विचार

7: काव्य विवेक

8: काव्य प्रकाश

9: रामायण

10: रामाश्वमेध

11: गीत गोविन्द

12: बारह खड़ी

13: चौतीसी

इन ग्रन्थों में से कुछ ग्रन्थ या तो अनुपलब्ध हैं या अपूर्ण रूप में प्राप्त हैं और कुछ ग्रन्थों की प्रामाणिकता के विषय में प्रश्न वाचक चिन्ह लगे हुये हैं ।

शेष ग्रन्थ हमारे आलोच्य कवि की कृतियाँ हैं । सुविधा के लिए इन ग्रन्थों की परिचर्चा निम्नांकित रूप में प्रस्तुत की जा रही है –

1: चिंतामणि के पूर्ण ग्रन्थ
2: आंशिक खंडित ग्रन्थ
3: ग्रन्थों के आंशिक उपलब्ध छन्द
4: संदिग्ध ग्रन्थ

चिन्तामणि के पूर्ण ग्रन्थ :–
===============

भाषा पिंगल का वर्ण्य विषय :–

भाषा पिंगल छन्द-शास्त्र पर लिखा गया है । प्रस्तुत ग्रन्थ में कुल छन्दों की संख्या 394 हैं । प्रस्तुत ग्रन्थारम्भ गणेश पार्वती एवं शिव जी वंदना से होता है । तदनन्तर आश्रय दाताओं का प्रशस्तिगान किया जाता है । सातवें छन्द से यह संकेत मिलता है कि ग्रन्थ की रचना भोसला राजा शाह के आदेश से की गई है । इसके बाद कवि ने लघु और गुरु मात्राओं को स्पष्ट किया है भाषा प्रस्तार के वर्णन के उपरान्त कवि ने वर्णिक और मात्रिक छन्दों के लक्षणोदाहरण दिये हैं । छन्दों के नामकरण में कहीं-कहीं भिन्नता मिलती है और छन्द के अन्त में जो पुष्पिका मिलती है उससे स्पष्ट पता चलता है कि ग्रन्थ पूर्ण है ।

भाषा पिंगल की प्रामाणिकता :–

भाषा पिंगल ग्रन्थ चिन्तामणि की कृति है इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता के लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि कवि ने कवि कुल कल्प तरु में भाषा पिंगल का उल्लेख किया है "मेरे पिंगल ग्रन्थ में सपुभो छन्द विचार"[1] ग्रन्थ की पुष्पिका वैसी ही है जैसी कि चिन्तामणि के अन्य ग्रन्थों में मिलती है इसके अतिरिक्त भाषा शैली आदि दृष्टि से भी देखा जाय तो निःसन्देह यह ग्रन्थ चिन्तामणि का ही ठहरता है ।

भाषा पिंगल का रचना काल :–

यद्यपि यह ग्रन्थ छन्द विचार (छन्दोविचार) छन्दोविचार पिंगल, भाषा पिंगल आदि अनेक नामों से प्राप्त होता है किन्तु अन्तः साक्ष्य के आधार पर इसका

1: क0क0त0 1/7

वास्तविक नाम भाषा पिंगल ही है[1]। जहाँ तक छन्द विचार का प्रश्न है उसे ग्रन्थ का नाम न मान कर ग्रन्थ के वर्ण्य विषय का सूचक मानना चाहिये।

इस ग्रन्थ की रचना शाह मकरन्द (छत्रपति शिवा जी के पिता शाह जी) के प्रेरणा से हुई थी।

सूरज वंशी भूमिपा लसत साहि मकरन्दु।
महाराज दिग पाल जिमि समुद सुभ चन्दु ॥[2]

यहाँ 'माल समुद सुभ चन्द' का अर्थ भोलो जी के पुत्र शाहा जी करना होगा क्योंकि जैसे समुद्र का पुत्र चन्द्रमा है वैसे ही भोलो जी रूपी समुद्र के पुत्र शाहा जी रूपी चन्द्रमा हैं। इतना ही नहीं आगे के छन्दों में 'साहि महाराज' 'साहिवर नाह' जैसे उल्लेख भी कथन की पुष्टि करते हैं।

शिव सिंह सरोज ने लिखा है कि चिन्तामणि बहुत दिनों तक नागपुर के सूर्यवंशी भोसला राजा मकरन्द शाह के यहाँ रहे और उन्हीं के आज्ञानुसार इन्होंने पिंगल ग्रन्थ की रचना की।[3] किन्तु डा0 दिवाकर ने अच्छी छानबीन के बाद यह निश्चय किया कि पं0 भगीरथ दीक्षित की यह मान्यता असंगत है कि मकरन्दशाह नागपुर के भोसला थे। पं0 कृष्ण विहारी मिश्र जी ने नागपुर के भोसला की बात अस्वीकार करके भी 'साहिमकरन्द' का अर्थ शिवा जी के पितामह मालो जी को माना है[4] किन्तु कृष्ण दिवाकर जी ने सिध्द किया है कि मकरन्द वास्तव में एक पदवी थी इसीलिए भूषण ने मालो जी को 'माल मकरन्द' और शिवा जी को 'शिवसरजा मकरन्द' लिखा है[5] फिर शाहजी को शाहि क्यों न मान लिया जाय।

शाहा जी के आश्रित जयराम पिंड्ये ने राधामाधव विलास चम्पू में शाहा जी को शाहि मकरन्द लिखा है –

1: चिन्तामनि कवि को हुकुम कियो साहि मकरन्द।
करौ लच्छ लच्छन सहित भाषा पिंगल छन्द ।।
(हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा)

2: मेरे पिंगल ग्रन्थ ते समुझो छन्द विचार।
रीति सुभाषा कवित की बरनत बुध्दि अनुसार ॥क0क0त0।/6

3: शिव सिंह सरोज – सम्पादक डा0 किशोरी लाल गुप्त : संस्करण 1970 पृ0 692

4: मतिराम ग्रन्थावली – पं0 कृष्ण विहारी लाल मिश्र पृष्ठ 223

5: भूषण ग्रन्थावली – सम्पादक मिश्र बन्धु : पृष्ठ 2 एवं 49

देखियत नैननि मोह बैनि बोलतु है ।

सुनै साहि मकरन्द जन्त कल रन की ।।[1]

वेद कवि के (सन् 1650) के संगीत मकरन्द में श्री मकरन्द शाह और शाहि मकरन्द का उल्लेख है[2] भाषा पिंगल के अन्त में धनाक्षरी नामक छन्द के उदाहरण में –

साहू मकरन्द नन्द सरजा मिलन्द सो हैं[3]

डा0 कृष्ण दिवाकर जी के अनुसार बड़ौदा की प्रति में स्पष्ट रुप से 'माल मकरन्द नन्द सरजा मिलन्द है' ऐसा पाठ मिलता है । दोनों प्रकार से आश्रयदाता मालो जी के पुत्र शाहा जी हैं, यही मानना चाहिये।[4]

ऐसी दशा में शाहा जी की मृत्यु 23 जनवरी सन् 1664 में हुई थी।[5] अतः इस ग्रन्थ की रचना संवत 1770-71 के पूर्व हो जानी चाहिए । पं0भगीरथ प्रसाद दीक्षित ने नार नवल पदिमाला मे प्राप्त पिंगल की एक प्रति के आधार पर जिसमें –

"कहत अंक मनि दीप इवै जानि बराबर लेहु" पंक्ति प्राप्त होती है, रचना काल निकालने का प्रयास किया है और इसका काल सवंत् 1797 में माना है जब वे शाह मकरन्द को नागपुर के भोसला मानने के पक्ष में थे ।[6] जब उन्होंने शाहि मकरन्द को शिवा जी का पितामह (भूषण विमर्श द्वितीय वृत्ति सन् 150)तब

1: राधा माधव विलास चम्पू – जय राम पिड्गे

2: संगीत मकरन्द – दान वर्णन प्रकरण – लेखक – कृष्ण डा0 दिवाकर के द्वारा भोसला राज दरबार के हिन्दी कवि : पृष्ठ 38 पर उद्धृत

3: भाषा पिंगल – चिन्तामणि

4: चिन्तामणि कृत भाषा पिंगल : हस्तलिखित प्रति सरस्वती महल तंजौर नं01 0724 भोसला राज दरबार के हिन्दी कवि लेखक – डा0 कृष्ण दिवाकर: पृष्ठ 38 पर उध्दत ।

5: शिव कालीन पत्र सार संग्रह – खंड तीन, सम्पादक श0ना0जोशी -सन्1937पृष्ठ 184 डा0 कृष्ण दिवाकर के साक्ष्य पर भोसला राज दरबार के हिन्दी कवि पृष्ठ 34

6: माधुरी पत्रिका सन् 1926 पृष्ठ 360

उन्होंने संवत् 1779 मान लिया है । चिन्तामणि ने शाहा जी का जिस प्रकार उल्लेख किया है उससे स्पष्ट है कि रचना के समय कवि का आश्रयदाता जीवित था।[1] डा० कृष्ण दिवाकर ने संकेत कोष[2] के आधार पर "कहत कवि मनि अरु दीप द्वै जानि बराबर लेहु" का अर्थ कवि=1 मनि=7और दीप द्वै=14=1714 संवत् किया है और इनके तर्कों के आधार पर इस ग्रन्थ का निर्माण काल संवत् 1714 सिध्द करने का प्रयास किया है।[3] कहना न होगा जहाँ इस प्रकार का संख्याओं का सांकेतिक उल्लेख होता है वहाँ 'अंकानाम वामतो गतिः' का नियम भी स्वीकार किया जाता है ऐसी स्थिति में या तो सं० 1471 मानना पड़ेगा अथवा संख्या 2771 हो जायगी (दीप 7 और द्वै 2)

वस्तुस्थिति यह है कि इस ग्रन्थ से रचना काल निकालने का प्रयास शुध्द बौध्दिक व्यायाम है । चिन्तामणि यह कहना चाहते हैं कि – कवि चिन्तामणि और दीपक इन दोनों को समान ही समझना चाहिए । इनके गुणों का प्रकाश कवि पक्ष में काव्य शक्ति का प्रकाश दीपक पक्ष में बत्ती में पूरा प्रकाश कवि तब होता है जब पूरा स्नेह हो (कवि पक्ष में आश्रयदाता का पूर्ण प्रेम हो और दीपक पक्ष में पूरा तेल भरा हो ।[4]

अतः उक्त दोहे से रचना काल निकालने का प्रयास संगत नहीं प्रतीत होता, हाँ तंजौर के पुस्तकालय में डा० कृष्ण दिवाकर जी को यह दोहा प्राप्त हुआ–

संवत् सत्रहसै वरष बीते जब उनईस ।
पाँचे बदि बैसाख की रच्यौग्रन्थ अवनीस ॥[5]

1: पिंगल – चिंतामणि कृत छन्द : 6,7

2: संकेत कोष, श्री शा० हणमन्ते (प्रथम संस्करण) पृष्ठ 114

3: भोसला राज दरबार के हिन्दी कवि – लेखक: डा० कृष्ण दिवाकर, पृष्ठ 41

4: कहत कवि मनि अरु दीप द्वै जानि बराबर लेहु
गुन प्रकाश तब करत जब पावत पूरन नेहु

– भाषा पिंगल, चिन्तामणि कृत छन्द 8

5: चिन्तामणि कृत छन्द विचार, हस्तलिखित प्रति तंजौर टी० एम० एस० नं० डी – 5368

इससे स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ का समाप्ति काल सं0 1719 वैशाख वदी पंचमी स्थिर हो जाता है यह समय शाहा जी की मृत्यु से लगभग डेढ़, दो वर्ष है अतः इसे ही इस ग्रन्थ का रचना काल मान लेना चाहिए। डा0 कृष्ण दिवाकर जी के इस तर्क से सहमत नहीं हुआ जा सकता है कि सं0 1714 से आरम्भ करके सं0 1719 में ग्रन्थ की समाप्ति हुई। दरबार में बहुत दिन तक रहना और बात है किन्तु इस छोटे से ग्रन्थ की रचना में पाँच वर्ष लगा देना आचार्य चिन्तामणि की प्रतिभा के अनुरूप नहीं है। विशेषतः जब 'कह कवि मनि अरु दीप द्वै' से संवत् निकालने के प्रयास को ही अस्वीकार कर दिया गया है तब सं0 1714 से आरम्भ करने वाली बात स्वतः अप्रामाणिक हो जाती है। सं0 1719 में - "रच्यो ग्रन्थ' का संकेत रचना की समाप्ति का सूचक है। इसीलिए सं0 1719 से आगे इसके रचना काल को नहीं बढ़ाया जा सकता। पिंगल की रचना के पौर्वापर्य पर यदि विचार करें तो यह ग्रन्थ निश्चय ही कवि कुल कल्प तरु से पहले की रचना सिध्द होती है क्योंकि कवि कुल कल्प तरु की उपक्रमणिका में चिन्तामणि ने स्वयं लिखा है -

> मेरे पिंगल ग्रन्थ ते समुझौ छन्द विचार।
> होति भाषा कवित्त की बरनत बुध्दि अनुसार ॥[1]

इससे स्पष्ट है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना कवि कुल कल्प तरु से पूर्व हुई है इस ग्रन्थ की प्रशंसा और लोकप्रियता बहुत अधिक रही है। प्राकृत पैंगलम् के आधार पर लिखित इस ग्रन्थ में छन्दःशास्त्र का रहस्य समझने का सुन्दर प्रयास किया गया है।

शृंगार मंजरी :-

वर्ण्य विषय :-

शृंगार मंजरी नायक-नायिका भेद पर लिखा हुआ ग्रन्थ है। सर्व प्रथम 17 छन्दों में बड़े शाहि सन्त अकबर शाहि का वंश परिचय दिया गया है। इसके बाद नायिका के धर्म के अनुसार स्वकीया, परकिया, सामान्य और मुग्धा, मध्या प्रगल्भ भेद किए गए हैं। मुग्धा नायिका के ज्ञात यौवना, अज्ञात यौवना व नवोढ़ा

1: क0क0त0 1/6

और विश्रब्ध नवोढ़ा इन चार भेदों में वर्गीकृ है । मध्या के प्रच्छन्न और प्रकाश भेद करने के अनन्तर प्रगल्भा रीति प्रीति मति और रत्यानन्द परवशा भेद किये गए हैं । मान के अनुसार मध्या और प्रौढ़ा तीन-तीन भेद धीरा, अधीरा और धीरा धीरा किए गए हैं । परकीया के कन्या का और परोढ़ा के अनन्तर इनके भेदोपभेद का वर्णन प्रस्तुत किया है । सामान्या नायिका के तीन भेद हुए हैं — स्वतंत्रा, नियता और कल्पितानुरागा । इसके बाद अवस्था के अनुसार नायिकाओं के आठ भेद किये गये हैं — स्वाधीन पतिका, वासक सज्जा, विप्रलब्धोत्कंठिता, प्रोषित पतिका और अभिसारिका । तदनन्तर उत्तमादि भेद के अनुसार नायिकाओं के तीन भेद — उत्तमा, मध्यमा, और अधमा । नायिकाओं के वर्गीकरण के पश्चात् कवि नायिकाओं का वर्णन करता है उपालम्भ शिक्षा, हास-परिहास, विनोद वन विहार, जलकेलि, धूतकेलि, मद्यपान, चन्दकेलि, वसन्तकेलि आदि का वर्णन है । इसके पश्चात कवि दूतियों का वर्णन करता है । दूती के अन्तर्गत दासी, सखी, धात्री, शिल्पिनी, स्वयं दूतिका, जोगिनी, बाला, संबंधिनी, नटी शंकिता दूती आदि का वर्णन है । कवि ने नायिका के चार भेद अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट के वर्णन के बाद सात्विक भावों का वर्णन किया है । तदनन्तर वात्स्यायन के कामसूत्र के आधार पर पद्मिनी, हस्तिनी, हस्तिनी, चित्रिणी और शंखिनी भेद किये गए हैं । चिन्तामणि ने सन्त अकबरशाह कृत संस्कृत श्रृंगार मंजरी के लक्षणों का ही अनुवाद किया है । उदाहरण अपनी ओर से दिया है ।

उदाहरण कवित्व पूर्ण सरल एवं सटीक हैं । उदाहरणों में स्थान-स्थान पर संत अकबर शाहि का उल्लेख, जहाँ एक ओर ग्रन्थ की प्रामाणिकता का प्रमाण प्रस्तुत करता है वहाँ दूसरी ओर अपने आश्रयदाता के रूप और गुण आदि के प्रति कवि की वास्तविक अनुरक्ति का परिचायक है ।

श्रृंगार मंजरी की प्रामाणिकता :-

श्रृंगार मंजरी की प्रामाणिकता के लिए निः सन्देह कहा जा सकता है कि यह चिन्तामणि ही की कृति है । क्योंकि प्रमाण की पुष्टता के लिए कवि ने कवि कुल कल्प तरु के नायक-नायिका भेद के प्रकरण में लिखा है —"अथ प्रोषित भर्तिका को लक्षन यथा श्रृंगार मंजरी"[1]। श्रृंगार मंजरी और कवि कुल कल्प तरु के हूबहू 17 छन्द मिलते हैं । इससे ग्रन्थ की प्रामाणिकता के लिए और बल मिलता है । दोनों ग्रन्थों के कुछ समान छन्द निम्नलिखित हैं —

1: क0क0त0 6/184

रावरि जो नहिं लागुहैं नैन,
सो चैन कहा पिय सो मिलि भाखे ।
लाँह गई झिझकोरि भरै,
हठि के पकरैं द्रग नीरनि नाखै ।
धाँत नवोढ़ वधु बस कीगो को,
सो अपने मन में अभिलाषै ।
एक छिनौ भरि जो थिर कै,
जल बिन्द पुरैनि के पात पैं राखे ।
(शृंगार मंजरी छन्द संख्या 33)

रावरि जो नहि लागुहे नैन,
सुचैन कहा पिय सो मिलि भाखै ।
बांह गई झिझकोरि भरै,
पकरै करसो द्रग नीरनि नाखै ।
एक छिनौ धरिकै थिर ज्यों,
जल बिन्दु पुरैनि के पात पे राखै ।
गौन नवोढ़ा वधू वश कै के कौ,
सो अपने मन में अभिलाखै ।
(कवि कुल कल्प तरु – 5/90)

दोनों ग्रन्थों में रत्यानन्द परवशा का समान उदाहरण –
प्रीतम को रति रंग पगैं,
उमगो रस की बरषा उनई है ।
ऐसे भुजा भरि रही जनु,
दै तनु की करि एक लई है ।
सुन्दरि मोहन के मुख सौं,
मुख लाइ अनन्द में लीन भई है ।
ऊँचे उरोज लगाइ हियें मनो,
अंगन बीच बिलाइ गई है
(शृंगार मंजरी छन्द संख्या 51)

प्रीतम को रस रंग पगै,
उमगौ रस की बरषा ऊनई है ।
ऐसे भुजा भरि रही,
जनु दै तनकी करि एक लइ है ।
सुन्दरि मोहन के मुख सों,
मुख लाइ अनन्द में लीन भई है ।
ऊँचे उरोज लगाई हिये,
जनु अंगन बीच बिलाइ गइ है ।
(कवि कुल कला तरु 6/107)

शृंगार मंजरी के मध्या धीरा और कवि कुल कल्प तरु के मध्या खंडिता के उदाहरणों की समानता :–

कुंकुम लेप सों कीन्हों सबै तनु लाल हो दीपति पुँज उज्जारे
दुःख हरे सम गो चकईन के फूले ते लोचन कील विचारे
बाहिर आगे ते नारिन की शुली नीविन के हो बधावा बिकारे
आजु प्रभात दिखाई दई तुम लीलिए मित्र प्रनाम हमारे
(शृंगार मंजरी छन्द संख्या 56)

कुंकुम लेप सों कीन्हों सबै तनु लाल हो दीपति पुँज उज्जारे ।
दुख हरे तम गी चकईन के फूले ते लोचन कौल विचारे ॥
बाहिर आइते नारिन की खुली नीवन के ह्वै बंधाबन हारे ।
आइ प्रभात दिखाई दई तुम लीजिये मित्र ते प्रान हमारे ॥
(कवि कुल कल्प तरु 6/175)

इसी प्रकार इसके अतिरिक्त निम्नलिखित छन्द कवि कुल कल्प तरु और शृंगार मंजरी में समान रूप से मिलते हैं –

शृंगार मंजरी	कवि कुल कल्प तरु
58	6/73
331	6/217
187	6/162
189	6/165
212	6/170
257	6/176
260	6/180
287	6/191
302	6/201
310	6/206
311	6/207
328	6/213
331	6/217

कवि कुल कल्प तरु और शृंगार मंजरी के छन्दों की समानता के अतिरिक्त भाषा, शैली एवं शिल्पगत साम्य दिखायी पड़ती है अतः निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि शृंगार मंजरी आचार्य चिन्तामणि की रचना है ।

शृंगार मंजरी :–

डा0 भगीरथ मिश्र ने हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास लिखते समय सर्वप्रथम इण्डिया पुस्तकालय में शृंगार मंजरी की हस्तलिखित प्रति देखी और उसे प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया । अकबर शाहि कृत मूल तेलगू ग्रन्थ की संस्कृत छाया शृंगार मंजरी का ब्रजभाषा रूपान्तर चिन्तामणि ने किया है । तुलनात्मक परीक्षण से स्पष्ट है कि ब्रजभाषा में अनुवाद करते समय चिन्तामणि ने शृंगार मंजरी के लक्षण और उनके व्याख्यात्मक चर्चा भाग को तो ज्यों का त्यों ले लिया है किन्तु उदाहरण चिन्तामणि की मौलिक रचनाएँ हैं । इसीलिए संस्कृत शृंगार मंजरी से अंशतः प्रभावित होते हुए भी इस ग्रन्थ का कवि कर्म महत्वपूर्ण कहा जायेगा । इसकी चर्चा के मध्य भाग सत्रहवीं शताब्दी के ब्रजभाषा के नमूने प्रस्तुत करते हैं लक्षणों के निर्माण में भी चिन्तामणि ने पर्याप्त स्वच्छन्दता बरती है इसीलिए शृंगार मंजरी का भाषान्तर होते हुए भी चिन्तामणि की इसे मौलिक कृति कहना अनुचित न होगा ।

शृंगार मंजरी का रचना काल :–

कवि कुल कल्प तरु में दो ऐसे उल्लेख हैं जिनके आधार पर शृंगार मंजरी उससे पूर्ववर्ती रचना निर्धारित होती है । पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

> प्रोषित भर्तृका को लक्षण शृंगार मंजरी तथा
> रहे साहिब अपने ग्रन्थन माँह निर्नय कीन्हों कवि बुध्दि नाह
>
> (सं0 1648)

इसके अतिरिक्त चर्चा अंश में रसिक प्रिया (सं0 1648 और सुन्दर कवि में सुन्दर शृंगार का यथा स्थान उल्लेख मिलता है[1] ऐसी स्थिति में अन्ततः साक्ष्य के आधार पर इसकी रचना सं0 1688 के बाद ही हुई होगी ऐसा निश्चय है ।[2]

1: क0क0त0 5/184 तथा 5/186

2: हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास – डा0 भगीरथ मिश्र : पृष्ठ 72

डा० भगीरथ मिश्र ने उक्त ग्रन्थ का सम्पादन करते हुए भूमिका में रचना काल पर पर्याप्त विचार करके इसे सं० 1717 की कृति माना है ।[1] डा० सत्यदेव चौधरी ने सं० 1722 का उल्लेख किया है किन्तु इस अनुमान को पूर्ण प्रामाणिक और अन्तिम नहीं मान सकते क्योंकि सन्त अकबर शाह के परिचय के साथ ही इसमें मुगल शासक अबुल हसन का भी उल्लेख है । अबुल हसन कुतुब शाही के अन्तिम शासक थे । इनका शासन सं० 1724 से आरम्भ होता है और वे सं० 1744 में दौलताबाद में बन्दी बना लिये जाते हैं ।[2] डा० वी० राघवन ने शृंगार मंजरी की भूमिका में सन्त अकबर शाह का समय सं० 1700 से सं० 1732 तक स्वीकार किया है । सन्त अकबर शाह की मृत्यु सं० 1732 में हुई थी[3] अतः ऐसा समय जब सन्त अकबर शाह और अबुल हसन दोनों जीवित हों सं० 1724-31 होता है क्योंकि इसी समय अबुल हसन शासनारुढ़ हुआ था । अतः हिन्दी शृंगार मंजरी की रचना सं० 1724-31 के बीच हुई होगी । शाहा जी की मृत्यु सं० 1720-21 के बीच हुई थी अतः तदनन्तर ही ये हैदराबाद राज्यान्तर्गत गोल कुण्डा में बड़े साहिब सन्त अकबर शाह के आश्रय में गये होंगे । ऐसी दशा में यह युक्ति संगत प्रतीत होता है कि इसकी रचना अकबर शाहि की मृत्यु से पर्याप्त पहले अर्थात् सं० 1720 से सं० 1732 के बीच कल्पित की जाय ।

एक बात और उल्लेखनीय है कि डा० कृष्ण दिवाकर ने सं० 1725 (सन् 1668) सिध्द करते हुए यह तर्क दिया है कि यदि डा० भगीरथ मिश्र अथवा डा० सत्यदेव चौधरी द्वारा स्वीकृत सन् 1663 माना जाय तो उस समय शृंगार मंजरी के प्रणेता अकबर शाह की अवस्था क्रमशः 14 अथवा 17 वर्ष की हो जाती है शृंगार मंजरी जैसे नायिका भेद विषयक ग्रन्थ का निर्माण 14 वर्ष अथवा 17 वर्ष की अवस्था में सम्भव नहीं जान पड़ता[4] किन्तु जैसा डा० राघवन ने संस्कृत शृंगार मंजरी की भूमिका में लिखा[5] और जैसा डा० भगीरथ मिश्र ने हिन्दी साहित्य की भूमिका में स्वीकार किया कि यह ग्रन्थ अकबर शाह के आश्रय में लिखा है इसके रचयिता अकबर शाहि नहीं वरन् तेलगू-संस्कृत के कोई विद्वान है तथा उसका

1: हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास — डा० भगीरथ मिश्र
2: वही
3: शृंगार मंजरी की भूमिका सम्पादक डा०भगीरथ मिश्र : पृष्ठ 19
4: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य — डा०सत्यदेव चौधरी : पृष्ठ 36
5: कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इन्डिया — वोलजले हेग पृष्ठ 273,74,289-90

भाषान्तरकार कवि पुंगव चिन्तामणि है ।[1] ऐसी दशा में सन्त अकबर शाह की आयु और शृंगार मंजरी की रचना का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध समाप्त हो जाता है और इस ग्रन्थ की रचना सं0 1720-21 के बाद कभी भी मानी जा सकती है । अतः डा0 सत्यदेव चौधरी का संवत् 1720 के कुछ आगे बढ़कर ही इसकी रचना हुई होगी ऐसा अनुमान निराधार नहीं है डा0 कृष्ण दिवाकर ने सं0 1725 (सन् 1668) कहे जाने के कारण सन् 1666 को रचना काल माना है जो प्रायः अधिक युक्ति संगत होता है क्योंकि अबुल हसन सं0 1724 (सन् 1664) में शासनारूढ़ हुए थे । ग्रन्थ में उनका उल्लेख जिस प्रकार से किया गया है उससे उनका महत्व स्पष्ट है अतः सं0 1719 या सं0 1722 के बदले सं0 1725 मानना अधिक तर्क संगत है ।

कवि कुल कल्प तरु :-

वर्ण्य विषय :-

अब तक प्राप्त ग्रन्थों में यह ग्रन्थ सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है । इसमें कुल नौ प्रकरण हैं । प्रथम प्रकरण का प्रारम्भ मंगलाचरण से किया गया है इसके पश्चात् काव्य भेद, काव्य लक्षण, काव्य स्वरुप और गुण का वर्णन किया है । माधुर्य गुण को काव्य के मूल तत्व में स्वीकार किया गया है । उदारता में अर्थ चारुत्व और कान्ति में सालंकारता का निरूपण है । एक गुण का दूसरे गुण में अन्तर्भाव भी दिखाया गया है । प्रौढ़ के भेदोपभेद करने के पश्चात् गुणों के दस भेद कर सविस्तार वर्णन किया है ।

द्वितीय प्रकरण को दो भागों में विभक्त किया गया है । जिसमें प्रथम भाग में शब्दालंकारों एवं द्वितीय भाग में अर्थालंकारों का निरूपण किया गया है।

1: सन्त अकबर शाह कृत संस्कृत शृंगार मंजरी - सम्पादक डा0 वी0 राघवन पृ0 5
2: गोमला राज दरबार के हिन्दी कवि - डा0 कृष्ण दिवाकर, पृष्ठ 46
3: सन्त अकबर शाहि कृत शृंगार मंजरी सं0 डा0 वी0 राघवन भूमिका पृष्ठ 7

अलंकार प्रकरण में कवि ने काव्य प्रकाश, साहित्य दर्पण, कुवलयानन्द से सहायता ली है उल्लेखनीय यह है कि प्रताप रुद्र यशोभूषण (विद्यानाथ) का सम्भवतः रीतिकालीन ग्रन्थ में इनका पहला प्रयोग है । उत्प्रेक्षा के 27 भेदों की चर्चा इन्होंने विद्यानाथ के ही आधार पर की है । इस प्रकार यह प्रकरण शब्दालंकार एवं अर्थालंकार के लक्षणोदाहरण को लेकर 358 छन्दों में समाप्त हुआ है ।

चतुर्थ प्रकरण में काव्यगत दोषों का वर्णन किया गया है । इस प्रकार के अन्तर्गत शब्दगत दोष, अर्थगत दोष और रसगत दोषों के निरूपण के साथ दोष परिहार के उपायों का भी वर्णन किया गया है । रीतिकालीन वातावरण में ढले हुए इनके लक्षण एवं उदाहरण अत्यन्त सुन्दर और सशक्त हैं ।

पंचम प्रकरण दो भागों में विभक्त है । प्रथम भाग में शब्दार्थ निरूपण और द्वितीय भाग में ध्वनि निरूपण है । शब्द शक्ति विवेचन में चिन्तामणि ने मुख्यतः मम्मट से कहीं-कहीं साहित्य दर्पण से सहायता ली है ।

काव्य के तीन प्रकार — उत्तम, मध्यम और अधम का उल्लेख मिलता है । तदनन्तर उत्तम, मध्यम, अधम व्यंग्य की चर्चा की गई है । इसके बाद अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य, अर्थान्तर संक्रमित वाच्य तथा शब्द शक्ति वाच्य प्रौढ़ोक्ति सिध्द अलंकार ध्वनि का वर्णन किया गया है । अर्थ शक्त्युद्भव एवं अर्थलक्ष्यक्रम को 12 भेदों में विभक्त किया गया है ।

छठे प्रकरण में नायिका भेद का विस्तृत विवेचन किया गया है । सर्व प्रथम कवि ने जाति के अनुसार — दिव्या, अदिव्या, दिव्यादिव्या भेद किये । उल्लेखनीय है कि चिन्तामणि का यह विभाजन नख शिख वर्णन की दृष्टि से किया गया है देवांगनाओं की नख शिख शोभा वर्णित होती है जबकि मानवी की शिख-नख । भूमि पर अवतरित देव नारी के लिए दोनों से वर्णन किया जा सकता है । भारत के नाट्य शास्त्र में केवल दिव्या का उल्लेख किया गया है ।

पुनः नायक से संबन्ध के आधार पर नायिकाओं के तीन भेद किये गये हैं — स्वकीया, परकीया और सामान्या । चिन्तामणि ने सम्भवतः भानुमित्र की रस मंजरी से सहायता ली है । स्वकीया के मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा भेद किए गए हैं । मुग्धा के पुनः छः भेद अविदित,यौवना, अविदित कामा, विदित मनो-भवा, नवोढ़ा, विश्रब्ध नवोढ़ा और कोमल कोपा । तदनन्तर मध्या के चार भेद किए गए हैं —

आरुढ़ यौवना, आरुढ़ मदना, विचित्र सुरता और प्रगल्भ वचना । प्रौढ़ा के भी चिन्तामणि ने चार भेद किए – यौवन प्रगल्भा, मदनमत्ता, रतिप्रीतिमति और रत्यानन्द परवशा ।

मान के आधार पर नायिकाओं के स्वकीया, परकीया और सामान्या तीन धीरा, अधीरा और धीरा-धीरा बतलाए हैं । अवस्था के अनुसार नायिकाओं के आठ भेद – स्वाधीन पतिका, वासक सज्जा, विरहोत्कंठिता, विप्रलब्धा, खंडित प्रोषितभर्तृका तथा अभिसारिका के भेदों का भी विवेचन हुआ है ।

सप्तम प्रकरण के प्रारम्भ में नायक के धीरोदात्त, धीर ललित, धीर प्रशान्त एवं धीरोध्दत भेदों का वर्णन किया है तदनन्तर अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट, और शठ भेद निरूपित हैं ।

अष्ठम प्रकरण में विभाव, अनुभाव के भेदोपभेद का वर्णन है । नवम प्रकरण में शृंगार रस के निरूपण, विरह की दश दशाओं तथा वीर रस के भेदों के अतिरिक्त अन्य रसों के वर्णन के साथ ग्रन्थ की समाप्त कर दिया है ।

कवि कुल कल्प तरु की प्रामाणिकता :–

प्रस्तुत ग्रन्थ अनिवार्य रुप से सभी विद्वानों के द्वारा चिन्तामणि की प्रमाणिक कृति के रूप में स्वीकार कर लिया गया है । इस ग्रन्थ में चिन्तामणि के रस विलास, छन्द विचार, सुन्दर मंजरी, कृष्ण चरित्र और काव्य विवेक के छन्द प्राप्त होते हैं । शृंगार मंजरी और छन्द विचार को ही वहिरंग साक्ष्य के आधार पर भी चिन्तामणि की कृति स्वीकार किया गया है । ऐसी स्थिति में इसकी प्रामाणिकता पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है । आवश्यक सन्दर्भ उपर्युक्त ग्रन्थों की प्रामाणिकता के प्रसंग में दिये जा चुके हैं । अतः यहाँ उनकी पुनरावृत्ति अपेक्षित नहीं है ।

कवि कुल कल्प तरु का रचना काल :–

कवि कुल कल्प तरु का रचना काल आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार सं0 1707 है । डा0 भगीरथ मिश्र ने दतिया के राज्य पुस्तकालय में सुरक्षित

ग्रन्थ के हस्तलेख के आधार पर भी इसका रचना काल सं० 1707 ही दिया है।[1] डा० किशोरी लाल गुप्त का निर्णय है कि केवल इसी एक ग्रन्थ का रचना काल सं० 1717 ज्ञात है[2] किन्तु उन्होंने कवि कुल कल्प तरु में श्रृंगार मंजरी के उल्लेख के आधार पर यह निर्णय लिया है कि श्रृंगार मंजरी कवि कुल कला तरु (रचना काल सं० 1717) के पहले की रचना है क्योंकि उसका उल्लेख कवि कुल कल्प तरु में हुआ है। प्रोषित वर्त्तिका को लक्षण श्रृंगार मंजरी में था।[3] उक्त दोनों कथन स्वतः परस्पर विरुद्ध हैं क्योंकि जब स्वयं डा० मिश्र ने श्रृंगार मंजरी को सं० 1717 के आस-पास की रचना स्वीकार किया है फिर सं० 1707 की अवधारणा स्वयं समाप्त हो जाती है।

हमने श्रृंगार मंजरी का रचना काल अधिक से अधिक सं० 1720-21 के आस-पास स्वीकार किया है। डा० सत्य देव चौधरी ने सं० 1722 माना है।[4] अतः सं० 1722 के काल खण्ड को श्रृंगार मंजरी के लिए समर्पित कर देने के बाद ही इसकी रचना हुई होगी यह प्रायः निश्चित सा है। डा० सत्य कुमार चन्देल ने लिखा है कि यह सं० 1735-36 के आस-पास समाप्त हुआ होगा किन्तु हमारा ऐसा विश्वास है कि इस ग्रन्थ की रचना श्रृंगार मंजरी के बाद और कवि के जीवन के अन्तिम समय के आस-पास लगभग सं० 1721-28 के बीच हुई होगी क्योंकि यह ग्रन्थ इतना प्रौढ़ और परिपक्व है कि इसकी रचना जीवन व्यापी शास्त्रीय मनन चिन्तन का ही प्रतिफल हो सकती है।

दूसरा तर्क यह है कि कवि ने इस ग्रन्थ की रचना के बाद किसी ऐसे आश्रयदाता के यहाँ जाने का अवसर नहीं प्राप्त किया जिसे इस बहुमूल्य ग्रन्थ का समर्पण करके कवि पर्याप्त धन और सम्मान पा सकता। यह स्थिति वृद्धावस्था की ही हो सकती है सेंगर जी द्वारा सं० 1729 स्थिति काल मान लिये जाने पर सं० 1728 से आगे इसके रचना काल को नहीं ले जाया जा सकता।

1: भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई — डा० किशोरी लाल गुप्त पृ० 8
2: भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई — डा० किशोरी लाल गुप्त पृ० 8
3: क० क० त० 6/184
4: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य — डा० सत्य देव चौधरी पृष्ठ 36

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि कवि कुल कल्प तरु की रचना का समय सं0 1728 से पूर्व या उसके आस पास हो सकता है। ऐसी स्थिति में डा0 सत्यदेव चौधरी[1] और डा0 कृष्ण दिवाकर[2] द्वारा निर्धारित क्रमशः सं0 1725 और सं0 1727 की भी संगति बैठ जाती है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट (1923/80 बी) में रचनाकाल सं0 1751 दिया हुआ है —

संवत सत्रह सै जहाँ अपर इक्यावन बदि चैत
बुध दिन कवि कुल कल्प तरु चौथि रचित जग जैत

किन्तु इस दोहे में पाठ की गड़बड़ी है[3] तथा अन्य ग्रन्थों के काल से इसकी काल संगति नहीं बैठती। वैसे यदि सं0 1751 भी माने तो कवि की आयु उस समय लगभग 85 वर्ष की सिद्ध होती है। इससे हमारी उस उपकल्पना को बल ही मिलता है कि यह रचना चिन्तामणि की अन्तिम परिपक्व रचना है, तथापि सं0 1751 को सहसा स्वीकार कर लेना कठिन प्रतीत होता है।

चिन्तामणि के आंशिक खंडित ग्रन्थः—

रस विलास —

वर्ण्य विषय :—

प्रस्तुत ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में संगृहीत है। देशी कागज पर लिखा गया यह ग्रन्थ लिपिकारों की असावधानी के कारण पर्याप्त अशुद्ध है। प्रत्येक छन्द के अन्त में वैसी ही पुष्पिका प्राप्त होती है जैसी चिन्तामणि के अन्य ग्रन्थों में। अन्तिम परिच्छेद की पुष्पिका न प्राप्त होने से ग्रन्थ खंडित प्रतीत है।

1: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य — डा0 सत्यदेव चौधरी — पृष्ठ 36
2: भोंसला राजदरबार के हिन्दी कवि — डा0 कृष्ण दिवाकर — पृष्ठ 48
3: भूषण, मतिराम तथा उनके अन्य भाई — डा0 किशोरी लाल गुप्त - पृष्ठ 8

गृंथ में सम्पूर्ण छन्दों की संख्या 400 है जिनमें से 5 सोरठे, 7 हरिगीतिकायें, 8 छप्पय, 82 घनाक्षरियाँ, 119 सवैये तथा 189 दोहे समाहित हैं परिच्छेदों की संख्या 8 है । नायक-नायिका निरूपण में नायक के धीरललित, धीरशान्त, धीरोदात्त, धीरोद्धत्त इन चार भेदों के साथ शृंगारी नायक के अनुकूल दक्षिण, शठ और धृष्ट भेदों का भी वर्णन किया गया है । यहीं पति, उपपति के भेद करने के साथ ही साथ प्रोषित के प्रोषित उपपति एवं वैशिक प्रोषित ये दो उपभेद तथा नायक के सहायकों — पीठमर्द, विट, चेट, विदूषक का भी निरूपण किया गया है । तृतीय परिच्छेद में वात्स्यायन के काम सूत्र के अनुसार — स्वकीया, परकीया और सामान्या के ये तीन भेद किये गये हैं । यह परिच्छेद भरत के नाट्य शास्त्र एवं धनंजय के दशरूपक को आधार मान कर लिखा गया है ।

नायिकाओं के स्वरूप के स्पष्टीकरण के लिए कवित्व पूर्ण ढंग से उदाहरण भी दिये गए हैं । स्वकीया प्रेम के वर्णन में कवि का मन रम गया है । अवस्था के अनुसार नायिकाओं के सात भेद — स्वाधीन पतिका, वासकसज्जा, उत्का, खंडिता, कलहंतरिता, विप्रलब्धा एवं अभिसारिका किये गए हैं । इनके लक्षणों के निर्माण में कवि ने शृंगार तरंगिणी से पर्याप्त सहायता ली है ।

चतुर्थ परिच्छेद के अन्तर्गत उद्दीपन विभाव में रम्यदेश, वापी, तड़ाग, नगर, महल, शैल, वन, (वसन्तादि षडऋतु) आदि का वर्णन किया गया है । इसमें बारहमासा को भी स्थान मिला है । पंचम परिच्छेद में अनुभावों का तथा षष्ठ परिच्छेद में संचारी भावों का निरूपण दशरूपक एवं साहित्य दर्पण के आधार पर किया गया है । अष्टम परिच्छेद में सभी रसों के लक्षण प्रस्तुत करने के पश्चात् नख शिख वर्णन मिलता है । कवि ने ग्रन्थ का अन्त आश्रयदाताओं की विस्तृतविरुदावली के साथ किया है ।

रस विलास की प्रामाणिकता:—

आचार्य चिन्तामणि का रस विलास एक प्रामाणिक ग्रन्थ है क्योंकि परिच्छेदों के अन्त में दी गई पुष्पिका कवि के अन्य ग्रन्थों की पुष्पिकाओं से मिलती है । इसके अतिरिक्त कविकुल कल्प तरु और रस विलास के कई छन्द व पद एवं वाक्यांश भी मिलते हैं ।

समान छन्द —

रहत सदा थिति भाव में, प्रगट होत इहि भाँति ।

ज्यों कल्लोल समुद्र में यों संचारी जाति ।।

(रस विलास 7/1)

रहत सदा थिर भाव मैं प्रगट होत इहि भाँति ।

ज्यों कल्लोलन समुद्र मैं यों संचारी जाति ।।

कवि कुल कल्प तरू 8/9

सो निर्वेद ग्लानि संक, सम धीरज जड़ता हर्ष ।

दैन्य उग्र चिन्ता अरू त्रासौ इर्षा अपर अभर्ष ।।

(रस विलास 7/2)

सो निर्वेद विभ्रंम जहँ जड़ता धीरज हर्ष ।

दैन्य उग्रता चिन्तता साईखी है अभर्ष ।।

कवि कुल कल्प तरू 8/10

गरव सुमिरनौ मरन मदौ सुप्नौ निद्रा अरूबोध ।

व्रीड़ा अपस्मार सो हौ मति आलस गौ वोध ।।

(रस विलास 7/3)

गौरब सुमिरन मरन मद सुन्य नींद अरू बोध ।

व्रीड़ा पसमार मोहयत आलस वेगौ वोध ।।

(कवि कुल कल्प तरू 8/11)

त्यौं विर्क अब हित्थ अरू त्यौं उन्माद विषाद ।

उत्कंठा चापल्य त्रिंसत्रय संचारी ~~निदि~~ निवि

(रस विलास 7/4)

कहि वितर्क अबहित्तथ पुनि मिलि उन्माद विषाद ।

उत्कंठा अरू चपलता तीस कहे निवादि ।।

(कवि कुल कल्प तरू 8/12)

अन जानत हुए धौं जानत हैं यह जानि रेह मुँह नाइ लजानी

कोउ आपस में कछु बात कहै समुझै सब आपनि यै पै कहानी

मुसक्यात कछूक सखी जन तौ गड़िजात सकोचनि बात अयानी

स्याम तिहारे सनेह रहे सो मयंक मुखी यह संक डेरानी

रस विलास 7/10

जाने बिना हम जानत हैं यह जानि रहे मुँह नाइ लजानी
कोऊ कहूँ कछु बात कहै समुझै सब आपनि यै पै कहानी
केहू हसै जो सखी जन तो गड़िजात सकोचन बाल अपानी
स्याम तिहारे सनेह रहै मृग लोचनि सोच संकोच समानी

(कवि कुल कल्प तरू 8/23)

समान पद –

हरष और उतकरष ते आसव जोवन जात
उपजत है मद भाव तित कढ़ति अलस गत वात

(रस विलास 7/34)

धान विद्या रूमोद्भाव आसव जोवन जात
उपजत है मद भाव हित कढ़ति अलसगत वात

(कवि कुल कल्प तरू - 8/52)

मोह कहत हैं ताहि सो जहाँ सान मिटिजात
दुखद वै ा चिन्तामनि सो साँची कहियत वात

(रस विलास 7/46)

मोह कहत है ताहि को जहाँ सान मिटि जात
विमल दुःख चिंतानि ते जह अति विहवल गात

(कवि कुल कल्प तरू 8/65)

चिन्ता कहियत ध्यान तें सून हृदै जित होइ ।
आँसू स्वास संताप तित वरनत सक्कवि लोइ ।।

(रस विलास 7/28)

चिन्ता कहियत ध्यान है सून्यतादि जित होइ ।
आसू ये स्वासिता पतित वरनत है सव होइ ।।

(कवि कुल कल्प तरू 8/36)

वाक्यांश –

महा सत्व गम्भीर अति छमावन्त जो होइ ।
अवि कत्थन जो देखिए धीरोदात्त है सोइ ।।

(रस विलास 2/4)

महा सत्त गम्भीर अरु क्रिया सिध्द जो होइ ।
अवि कत्थन धीरादिमन यो उदात कहि सोइ ।।

(कवि कुल कल्प तरू 7/3)

उदाहरण में साम्य भावः–

अंग सुकुमार अति सुन्दर सुढार बने
ऊँचे कुच भार चारु लंकु लचकत है

(रस विलास 3/20 कवि कुल कल्प तरु - 6/98)

कालि जो जानियो सो करियो पिय आजु जो
बोलि हो तो उठि जै हो

(रस विलास 3/17)

जो कछु कीजिये सो कालिह करो पिय पाय
परो कछु आज करो जिन

(कवि कुल कल्प तरु 6/93)

उक्त समान छन्दों, समान पदों, वाक्यों, वाक्यांशों, उदाहरणों समान भाषा एवं शैली को देखने से स्पष्ट पता चलता है कि रस-विलास का रचयिता कवि कुल कल्प तरु कार चिन्तामणि ही थे।

रस विलास का रचना काल :–

कवि ने इस ग्रन्थ के रचना काल का कोई उल्लेख नहीं किया है, हाँ आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में रचे गये कई छन्द मिलते हैं –

शाहजहाँः–

शाह जहाँगीर जू साहि मनि साहि जहाँ।
जासों जंग जोरि कँह कौन ठहरात है।।
साहि जहाँ जू के हाथी अरिदल के प्रमाथी।
गिरिन के साथी सोरु पारत अलक में।।

दाराशिकोह :–

साहि जहाँ जू के नन्द दारा साहि चतुरंग।
सैन साजि जीतिवे को धरा पर धाए हैं।।
तारे तन सारे मुकुताहल पसारे मानो।
गज दारा साहि जू के कारे कारे कद।।

हृदय शाह :–

हृदयशाह नरिन्द दानि हिरदै अनन्द भरौ ।
वृन्दान में गरवी गयन्द वकसत हैं ।।
प्रेम साहि जू को नन्द महाराज हृदै साहि ।
मिरौ अग हारौ वीर संगर को आकरौ ।।

जैनदी मुहम्मद :–

जौरावर वीर वलि जैनदी मुहम्मद जू,
खैंचि के कमान सरसी समाहरयो ।
लोचन हैं लाल लाल जैनदी मुहम्मद जूए
अब कहऊ कहा कहा चीहि चीहि लीजिए

जाफर खान :–

करि किरबान कर नवाव जाफर खान[1]
कीन्हौं घमासान अरि सैना क्यों वचति है

प्रशस्ति विषयक उध्दरणों को देखते हुए यह पता चलता है कि रस विलास की रचना, शाहजहाँ, दाराशिकोह, हृदय शाह, जाफर खान, जैनदी मुहम्मद के समय में हुई थी । शाहजहाँ का शासन काल सं0 1684 वि0 से सं0 1714 वि0 तक माना जाता है[2] और दाराशिकोह की मृत्यु सं0 1716 में हुई थी ।[3] प्रेम शाह के पुत्र हृदय शाह सं0 1735 में परलोक सिधारे ।[4] ऐतिहासिक तथ्य के अनुसार शाहजहाँ ने जाफर खान की नियुक्ति कश्मीर और काबुल के शासक

1: रस विलास - हस्तलिखित प्रति – अनूप संस्कृत पुस्तकालय वीकानेर
2: कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इन्डिया भाग 4 (सन् 1957 का संस्करण पृष्ठ 618)
3: दारा शिकोह - डा0 कालिका रंजन कानूनगो (सन् 1958 का संस्करण पृ0 153)
4: औरंगजेब – जदुनाथ सरकार - भाग 3 (सन् 1916 का अंग्रेजी संस्करण – पृष्ठ 76)

के रूप में की थी और इनकी मृत्यु सं0 1717 वि0 में हुई थी ।[1] जैनदी मुहम्मद मनसबदार के पद पर सं0 1690 में नियुक्त हुआ था ।[2] उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ का रचना काल सं0 1690 से सं0 1714 वि0 के बीच ही ठहरता है । शाहजहाँ के दरबारी कवियों में चिन्तामणि का नाम आता है[3] किन्तु चिन्तामणि शाहजहाँ के दरबार में कब से कब तक रहे इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता । ठोस प्रमाण के अभाव में यह कहना कठिन है कि इस विलास की रचना किस काल में हुई होगी किन्तु जैसा पिंगल का रचना काल निर्णय कर आये हैं उससे स्पष्ट है कि सं0 1714 में चिन्तामणि शहाजी भोंसला के दरबार में थे । अतः सं0 1690 और सं0 1714 के बीच रचनाकाल स्थिर किया जाना चाहिए । गोरे लाल तिवारी के अनुसार सं0 1691 वि0 में शाहजहाँ ने हृदय शाह की सहायता के लिए पहाड़ा सिंह पर चढ़ाई की थी[4] और उसके बाद युद्ध की एक लम्बी परम्परा दिखाई देती है इसीलिए इस ग्रन्थ की रचना सं0 1690 और संवत् 1691 के आस पास हुई तो कोई आश्चर्य नहीं । डा0 कृष्ण दिवाकर ने सं0 1690 का ही अनुमान किया है ।[5]

कृष्ण चरित्र का वर्ण्य विषय :-

कृष्ण चरित्र बारह सर्गों में विभक्त एक सुन्दर प्रबन्ध काव्य है । इसकी रचना 758 छन्दों में हुई थी किन्तु कुछ पृष्ठों के नष्ट हो जाने से अब केवल 723 छन्द प्राप्त हैं । काव्य का वर्ण्य विषय कृष्ण का चरित्र है । वृज में निवास करते हुए श्री कृष्ण ने जो लीलायें की हैं उन्हें इस ग्रन्थ में कवि ने अपनी रुचि के अनुसार संक्षेप या विस्तार से प्रस्तुत किया है । श्रीमद् भागवत, स्कन्द पुराण, वृहम पुराण, वृहम वैवर्त एवं हरिवंश पुराण से भी यथा रुचि सामग्री का संचयन किया है ।

1: मआसिर उल उमरा – हिन्दी अनुवाद – जदुनाथ सरकार पृष्ठ 334
2: मुगल दरबार – प्रथम संस्करण भाग 3 पृष्ठ 344
3: कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इन्डिया भाग 4 पृष्ठ 211
4: बुन्देल खण्ड का इतिहास लेखक गोरे लाल तिवारी संवत् 1990 का संस्करण पृ0 109
5: भोंसला राज दरबार के हिन्दी कवि – लेखक डा0 कृष्ण दिवाकर पृष्ठ 56

ग्रन्थ का आरम्भ वस्तु निर्देशात्मक मंगला चरण से होता है । इसके अनन्तर कृष्ण का जन्म, वसुदेव का कृष्ण को गोकुल ले जाना और नवजात कन्या को मथुरा लाना, कन्या को पत्थर पर पटकने के लिए प्रस्तुत होना, आकाशवाणी द्वारा यह सूचना मिलना कि तेरा शत्रु सुरक्षित है, वसुदेव और देवकी का कारागार से मुक्त होना, पूतना के प्राण का पान करना आदि कथाओं का सविस्तार वर्णन है ।

द्वितीय सर्ग का आरम्भ कृष्ण के बाल सौन्दर्य, बाल लीला और वात्सल्य निरूपण से होता है, मिट्टी खाने की शिकायत करना, मुँह खोलकर दिखाते समय समस्त ब्रह्मांड का दिखाई देना, मक्खन चुराते समय रज्जु से बाँधना, राक्षसों का संहार करना आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है ।

तृतीय सर्ग में ब्रह्मा कृत कृष्ण के स्तुति का भागवत के आधार पर कृष्ण सौन्दर्य का वर्णन मिलता है । 47 छन्दों में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति का प्रतिपादन तथा कृष्ण की महिमा का भाव पूर्ण उल्लेख है । ब्रह्मा ने कृष्ण के ईश्वरत्व का उल्लेख किया है और अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगी है ।

चतुर्थ सर्ग में धेनुक बध की कथा है । पशु पालक कृष्ण का गोप और गोपिकाओं के साथ लीला करना, गोचारण के समय असुर का संहार करना, सौन्दर्य मुग्ध होकर गोपियों का कृष्ण पर अनुरक्त होना तथा मुरली की मधुर ध्वनि के विस्तृत वर्णन के साथ समाप्ति कर दिया जाता है ।

पंचम सर्ग में काली-मर्दन की कथा है । बलराम का गोपों के साथ गायें चराने जाना, विषैले जल पीने के कारण सभी गोपों का निष्प्राण होना, कृष्ण की अमृत वर्षिणी दृष्टि से सभी का जी जाना, कृष्ण का कालीयदह में कूदकर कालिय नाग को नाथना, बलराम द्वारा प्रलम्बासुर का बध करना, वन में आग लगने पर आग को पी जाना तथा गोवर्द्धन धारण आदि की कथाओं का वर्णन किया गया है ।

छठें सर्ग में चीर हरण, राधा कृष्ण की अनुरक्ति, कृष्ण द्वारा गायें चराना तथा कृष्ण की भक्ति के साथ समाप्ति कर दिया जाता है ।

सप्तम सर्ग में गोवर्द्धनोद्धारण की कथा है । इन्द्र के प्रकोप से ब्रज वासियों के हेतु गोवर्द्धन को कृष्ण द्वारा अँगुली पर उठाने जाने का विस्तृत विवेचन है । इसी स्थल पर कवि ने यशोदा की ममता एवं वात्सल्य से युक्त सहज भावनाओं का सफल चित्रण किया है ।

अष्टम सर्ग का प्रारम्भ राधा की जन्म कथा से होता है। राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन कवि ने रुचि लेकर किया है।

नवम सर्ग का आरम्भ वसन्त पंचमी के दिन राधा के यमुना स्नान के प्रस्थान से होता है। राधा और कृष्ण ने वसन्त पंचमी के दिन रसाल पुंज के नीचे बन विहार किया। राधा और कृष्ण के बीच प्रेमालाप के वर्णन के साथ समाप्त कर दिया गया है।

दशम सर्ग का आरम्भ वसन्त पंचमी की प्रथम निकुंज लीला के उपरान्त कृष्ण के वियोग से पीड़ित राधा की विरह व्यथा से होता है। किन्तु बाद में मिलनोपरान्त राधा और कृष्ण की विलास क्रीड़ाओं का खुल कर वर्णन इसी सर्ग में किया गया है।

एकादश सर्ग में अभिसार एवं राधा माधव विहार का वर्णन है। विहार में सुरति का भी चित्रांकन किया गया है।

द्वादश सर्ग में रतिश्रान्ता गोपिकाओं के रूप का वर्णन है। राधा और कृष्ण के अतिरिक्त अन्य गोपिकाओं के रमण के भी वर्णन मिलते हैं। कृष्ण की भक्ति के वर्णन के साथ सर्ग का अन्त कर दिया गया है।

कृष्ण चरित्र की प्रामाणिकता :-

प्रस्तुत ग्रन्थ का उल्लेख कवि ने अपने किसी भी ग्रन्थ में नहीं किया है। इतिहासकारों ने भी इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं किया है। अन्य ग्रन्थों की भाँति इसके भी कुछ छन्द कवि कुल कल्प तरु में मिलते है। उदाहरण स्वरूप कुछ छन्द नीचे दिये जा रहे हैं -

उमड़ि घुमड़ि घन अम्बर अडमवर के,
कहा लगि फूलै घन घोर घटा घिरि है।
चिंतामनि कहै चित चिन्ता जानि कोऊ को
कहाँ लौ विचारौ कौं विचारो इन्द्र घिरि है।
एक ही कहा है कोटि धराधार धारै रहौं,
ज्योलौ कोटि विधि की उपति फिरि फिरि है।
यह जानि जानौ भारी परिमान गिरि है,
सो मेरै कर पर प्रमान है न गिरि है।
(कृष्ण चरित्र 7/19)

उपड़ि घुमड़ि अम्बर अडम्बर लौं,

कहँ लग फूलै घन घटा घेरि घिरि कै ।

चिंतामनि कहै चित चिंता जिनि करौ कोऊ,

कहां लौ विचारौ धौं विचारौ इन्द, चिरि कै ।

एक ही कहा है कोटि धराधर धरे रहौ,

जौं लौं कोटि विधि की उपज फिरि फिरि है ।

जानौं जनि बड़े परमान भारी गिरि है,

सो मेरे कर पर परमान है न गिरि है ।

(कवि कुल कल्प तरु 6/34)

श्री राधा के अंग रुचि त्यौं रुचिर वासु,

गुलाव के फूल रुचि सौरभनि सौं भिरी ।

चितहि चोरावत कोकिल कलवानी लगी,

कानन चितौन प्रेम मद की मनौं फिरी ।

चिन्तामनि सो ही रसाल मोरे कुंजन मिलि,

आलिन भुंडन सो ही मनो मुनिया छिरी ।

बालपन बीच लरिकाई आई सिसिर में,

माघ सुदी पंचमी में ज्यौं वसंत की सिरी ।

(कृष्ण चरित्र 9/1)

राधा जू के संग रुचि त्यौं रुचिर वासु,

गुलावन के रंग रुचि सोरभनि सौंभिरी ।

चितहि चुरावति सु कोकिल किवानी लगी,

कानन चितौनि प्रेम मद की मनौ भिरी ।

चिन्तामनि सोही है रसाल मोरे कुंजनि मैं,

आलिन के पुंजन सुमानौ मुनि आचिरी ।

वातन के वीच तरुनाई आई सिसिर मै,

माघ सुदी पंचमी मै ज्यौं वसन्त की सिरी ।

(कवि कुल कल्प तरु 6/80)

सांवरो सलोनो नित बड़ी आखियान कोजू,

होत आभरनु आइ जमुना के तीर को ।

चिन्तामनि कहै गारी दीजै तो हँसत ढीठ,

धसि निकरैया नीकी नारिन की भीर को ।

मैं तो आजु जानी अब लगु हौं न जानति,

हो करतु अनीति जैसी छोहरा अहीर को ।

पनिघट रोकत कन्हैया जाको नाइ दैया,

खोटो है निपट छोटो भैय वलबीर को ।

(कृष्ण चरित्र 5/21)

साँवरो सलोनो नित बड़ी अखियान कौ,

जुहोत आभरन आनि जमुना के तीर को ।

चिंतामनि कहै गारी दीजै तो हसत ढीठ,

धसि निकसेत पुनि नारिन की भीर को ।

मैं तो आजु जानी अवलौं न हौं न जानत ही,

करतु अनीति जैसी छोहरा अहीर को ।

पनिघट रोकत कन्हैया याको नाम दैया,

खोटो है निपट छोटो भैया वलबीर को ।

(कवि कुल कल्प तरु 1/288)

उक्त छन्दों की समानता से स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि कृष्ण चरित्र का रचयिता कवि कुल कल्प तरु कार है । ग्रन्थ में सर्ग के अन्त में दी गई पुष्पिका भी अन्य ग्रन्थों की पुष्पिकाओं से मेल खाती है । भाषा शैली आदि के दृष्टिकोण से भी देखा जाय तो यह ग्रन्थ चिन्तामणि का ही सिद्ध होता है ।

<u>कृष्ण चरित्र एवं रामायण :-</u>

चिन्तामणि के कृष्ण चरित्र में न तो किसी आश्रयदाता का उल्लेख है और न तो रचना काल का ही । अनुमानतः कवि ने इस ग्रन्थ की रचना स्वान्तः सुखाय की होगी । प्रमाणों के अभाव में रचना काल का सही निर्णय करना कठिन है ।

इस संबन्ध में हमारा विचार है कि चिन्तामणि भक्ति काल और रीति काल दोनों के सन्धि काल की उपज हैं । दरवारी वातावरण निश्चय ही रंगीन और विलासी हो गया था किन्तु वैयक्तिक आचार-विचारों, धार्मिक निष्ठाओं और भक्ति आदि के लिए कवि स्वतंत्र थें । तजकिर-ए-सर्व आजाद में इस बात का उल्

उल्लेख है कि कवि किसी पर्व पर सपरिवार गंगा स्नान करने गया था ।[1] अतः चिन्तामणि का वैयक्तिक जीवन में उदार वैष्णव होना प्रायः निश्चित सा प्रतीत होता है ।

अपनी कवि कर्म की सफलता के लिए चिंतामणि ने सगुण भक्ति की दोनों शाखाओं (राम भक्ति और कृष्ण भक्ति) में समान रूप से रचना करने का प्रयास किया । जिस प्रकार तुलसी ने राम की कथा लिखी और उसके बाद चिंतामणि के पूर्ववर्ती केशव ने रामचन्द्रिका की रचना की उसी तरह उन्होंने रामायण की रचना की होगी ।

रामायण अब सर्वथा अप्राप्त है अतः उसके काल के सम्बन्ध में कुछ भी कहना कठिन है । केवल शिव सिंह सरोज में दो छन्द उपलब्ध हैं जो निम्नांकित हैं –

जाके हेत जोगी जोग जुगुति अनेक करें ।
जाकी महिमा न मन वचन के पथ की ।।
औरन की कहा जाहि हेरि हर हारे जाहि ।
जानिबे की कहा विधि हू की बुधि नथकी ।।
ताहि लै खेलावे गोद अवध नरेश नारी ।
अवधि कहा है ताके आनद अकथ की ।।
जाके माया गुनन भुलाये सब जग ताहि ।
पलना में ललना झुलावे दसरथ की ।।

हंस के छौना स्वच्छ सोहित बिछौना बीच
होत गति मोतिन की जोति जोन्ह जामिनी
सत्य कैसी ताग सीता पूरन सुहाग भरी
चली जय माल लै मराल मन्द गामिनी
कोई उरवसी कोई मूरति प्रतच्छ लसी
चिंतामनि देखि हँसी संकर की भामिनी
मानो सर्द चन्द्र चन्द मध्य अरविन्द
अरविन्द मध्य विदम विदारी कढ़ी दामिनी[2]

1: तजकिरए-सर्व आजाद – मीर गुलाम अली विलग्रामी : प्रकाशन मुफीदे आम आगरा सन् 1296 हिजरी पृष्ठ 13, 14

2: शिव सिंह सरोज – सम्पादक डा० किशोरी लाल गुप्त – 158

राम कथा सम्बन्धी कुछ छन्द कवि कुल कल्प तरु में भी मिलते हैं आश्चर्य नहीं कि वे रामायण के ही छन्द हों। इतना होते हुए भी रामायण के विषय में तो अधिक कुछ कहना सम्भव नहीं कृष्ण चरित्र काल का निर्णय अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। जहाँ तक कृष्ण चरित्र का संबन्ध है प्रधान रूप से श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्ध का अनुवाद है। साथ ही ब्रह्मवैवर्त और हरिवंश पुराण से भी सामग्री ली गई है। कवि की रागानुगा भक्ति ने माधुर्योपासना की दृष्टि से राधा के प्रसंग को भी पूर्ण अवकाश दिया है तथा राधा माधव के गान्धर्व विवाह एवं विलास लीला का निश्छल वर्णन प्रस्तुत किया है। डा० सत्य कुमार चन्देल ने दो उपकल्पनायें की हैं – पहली यह कि कृष्ण चरित्र की रचना पहले ही की जा चुकी थी और बाद में कवि कुल कल्प तरु लिखते समय चिन्तामणि ने यथा स्थान उसके उद्धरणों का उपयोग कर लिया। दूसरी यह कि प्रासंगिक उदरणों के निर्माण के व्याज से जब राधा कृष्ण विषयक अनेक छन्द बनाये गये तो कवि ने सोचा कि क्यों न इन छन्दों को प्रासंगिकता से जोड़ कर एक चरित्र काव्य लिख दिया जाय।[1] जो हो इन दोनों विकल्पों में से पहले विकल्प को ही स्वीकार कर लेने में कोई अनौचित्य नहीं दिखाई पड़ता। यही तर्क रामायण के संबन्ध में भी दिया जा सकता है किन्तु कवि कुल कल्प तरु में प्राप्त लगभग 40 छन्दों यह सिद्ध करते हैं कि रामायण की रचना भी कवि कुल कल्प तरु से पूर्व हुई होगी।

ग्रन्थों के आंशिक उपलब्ध छन्द :–

कवित्त विचार :–

चिन्तामणि का यह ग्रन्थ खण्डित रूप में प्राप्त हुआ है। इसमें साहित्य के विविधांगों का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ के 57 पन्ने हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर 56 पंक्तियाँ हैं पन्ने 9" लम्बे तथा 6" चौड़े हैं।

1: चिन्तामणि और उनका काव्य – डा० सत्य कुमार चन्देल – पृष्ठ 83

इसमें निम्नलिखित विषयों का वर्णन मिलता है :-

गणपति वन्दना, कविता लक्षण, गुणवर्णन, शब्दालंकार, अर्थालंकार, कविता दोष विचार शब्द शक्ति, विभाव, अनुभाव और सँचारी भाव, नख शिख नायिका भेद अष्टम परिच्छेद में विभाव नव में अनुभाव दशम में विरह की दस अवस्थाओं का वर्णन है ।[1] खोज रिपोर्ट में इनके उध्दृत अंश निम्न ये हैं[2]

श्री गणेशायनमः

पूजौंगी आकै कै गणाधिप जीवन पति,
गौरी के चरन चारु सिर पर धरि हौं ।
सत कविता के जे हैं सत कविता के मग,
ईस के प्रसाद एक हू तो पूरो परि हौं ।
'चिन्तामणि' चिन्तामणि काम लरु काम धेनु,
कृपा जिनकी है तातें सब फल फरिहौ ।
हरदी सुमति सिध्द दूनो दै समन सौ कहौ,
नीके रुचि रोचन कै सकल काज करि हौ ।

दोहा

चिंति फल निज भगति को ताही फल में देत ।
मनु सुख आदिहि बस कै निज वरनन सजि लेत ।।

अन्त -

कैसे मिलिये प्रिय जनै क्यों बस होइ बनाइ ।
यहि विधि चिन्ता वरनिये सब कवि जनन सुनाइ ।।
क्यों निरखे मृग लोचनी, क्यों बोले सुकुमार ।
यों सोचत निस द्यौस हरि मोचत लोचन वारि ।।
लखत सुधा सी तब लगी अब जारति क्यो आनि ।
विषै विसासिन की गई, वह मुरि कै मुसक्यानि ।।

1: भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई लेखक डा0 किशोरी लाल गुप्त
2: खोज रिपोर्ट - 1920-21 नागरी प्रचारिणी सभा काशी
3: डा0 सत्य कुमार चन्देल कृत चिन्तामणि और उनका काव्य पृ0 107

कवित्त विचार का रचना काल :-

तजकिर-ए-सर्व आजाद के अनुसार जब दीवान रहमतुल्ला ने चिंतामणि को 'खिलत' और 'इनाम' से सम्मानित किया तो उन्होंने रहमतुल्ला की प्रसंसा में भूलना छन्द के वजन पर एक कवित्त विचार नामी किताव उक्त ग्रन्थ के अनुसार "यह कवित्त विचार नामी किताव में सुल्तान जैनुद्दीन मुहम्मद विन शाह सुजा की तारीफे कवित्त के बाद लिखा हुआ है"।

हम पहले कह आये हैं कि जिस समय चिंतामणि रहमतुल्ला के दरवार में आए उसके बहुत पहले यह ग्रन्थ उनकी प्रतिष्ठा का साधन बना गया था। लोग इस ग्रन्थ की रचनाओं को कंठस्थ करने लगे थे।

शाहजहाँ के आश्रय में रहते हुए इन्होंने उनके पुत्र शाहशुजा और शाहशुजा के पुत्र जैनुद्दीन मुहम्मद से भरपूर धन और सम्मान प्राप्त किया था। अतः यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ की रचना शाहजहाँ के शासन के उत्तरार्द्ध में और शाहशुजा (पुत्र शाहजहाँ) तथा सुल्तान जैनुद्दीन मुहम्मद पुत्र शाहशुजा की मृत्यु से पहले अवश्य हो गयी थी। तारीखे मुहम्मदी[1] के अनुसार रमजान हिजरी सन् 1070 में शाहशुजा और जैनुद्दीन दोनों मारे गये। यह समय संवत् 1717 का है। ऐसे राज्य विप्लव के समय किसी प्रकार के साहित्य निर्माण का प्रश्न नहीं उठता। सन् 1649 (संवत 1706) में शाहजहाँ के हाथ कंधार निकल गया हमारा अनुमान है कि उसी के आगे पीछे अर्थात् सं० 1700 से 1705 के बीच कवित्त विचार की रचना हुई होगी।

डा० कृष्ण दिवकार ने कवित्त बिचार का रचना काल सन् 1650 के आस-पास माना है। कवीन्द्राचार्य सरस्वती के कवीन्द्र चन्द्रिका इस अभिनन्दन ग्रन्थ में तत्कालीन श्रेष्ठ तथा दिग्गज पंडितों में चिन्तामणि की गणना थी।[2] कवीन्द्र चन्द्रिका भी सन् 1650 के आस-पास की रचना है इससे भी हमारा अनुमान पुष्ट होता है और संवत् 1700 के आस-पास रचना सिध्द करने में सहयोग मिलता है।

डा० सत्य कुमार चन्देल ने लिखा है कि "छन्द विचार की रचना के बाद ही चिन्तामणि के मन में इसी टक्कर का कवित्त विचार लिखने का विचार

टिप्पणियाँ अगले पृष्ठ पर देखें

उत्पन्न हुआ होगा और इसी के फलस्वरूप उन्होंने संवत् 1716-18 के आस-पास इस ग्रन्थ को समाप्त किया होगा[3] किन्तु यह उनका शुद्ध काल्पनिक निर्णय है। तजकिर-ए-सर्व आजाद का आधार न मिलने के कारण ही इस प्रकार की भ्रान्त कल्पना की गई है।

अतः कवित्त विचार का रचना काल विक्रम संवत् की 18वीं शताब्दी का प्रथम दशक ही स्वीकार किया जाना चाहिए और जैसा कि हम सिद्ध कर आये हैं उसके अनुसार यह रचना छन्द विचार से पहले की है।

काव्य विवेक :-

यह ग्रन्थ शिव सिंह सेंगर के पास था। खोज में अन्यत्र कहीं इसकी प्रतिलिपि नहीं मिलती। श्री शिव सिंह सेंगर जी ने केवल चार छन्द शिव सिंह सरोज में दिये हैं -

इक आजु मैं कुन्दन बेलि लखी मन मन्दिर को सुचि वृन्द भरैं।
कुरविन्दु के पल्लव इन्दु तहाँ अरविन्दन ते मकरन्द भरैं।
उन वुन्दन ते मुकतागन है फल सुन्दर दै पर आनि परैं।
लखि यों करुना द्युति चन्द कला नद नंद सिलाद्रव रूप धरैं।[4]

1: हस्तलिखित ग्रंथ (फारसी) रज़ा स्टेट पुस्तकालय, रामपुर

2: नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष 47 अंक तीन 3-4 कार्तिक - माघ सं0 1999 पृ0 27।

3: चिन्तामणि और उनका काव्य - डा0 सत्यकुमार चन्देल पृष्ठ 107

4: भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई - डा0 किशोरी लाल गुप्त - पृष्ठ 92-94

चिन्तामनि कच कुच भार लंक लचकति ।
सोहै तन तनक वनक छवि खान की ।।
चपल विलास मद आलस वलित नैन ।
ललित विलोकनि लसनि मृदु बान की ।।
नाक मुकुताहल अधर रंग संग लीन्हीं ।
रुचि संध्याराग नखतन के प्रभान की ।।
वदन कमल पर अलि ज्यों अलक लोल ।
अमल कपोलन झलक मुसकान कान की ।।

(3)

सूधी चितौनी चित्तै न सकै, औ सकै न तिरछी चितौनी चितै ।
गुड़ियान को खेलिवो फीको लगै अरु काम कला को विलास कितै ।।
लरिकापन जोबन सन्धि भई दुहुं बैस को भाव मिलै न हितै ।
बिबि चुम्बक बीच को लोहो भयो मन, जाइ सकै न इतै न उतै ।।
राति रहे 'मनि लाल' कहूं रमि, ह्यां दुख बाल वियोग लहे हैं ।
आये धरै अरुनोदय होत सरोषतिया इमि बैन कहे हैं ।।
लाल भये दृग कोरन आनि कै यों असुवा नव बूंद रहे हैं ।
चोचन चापि मनों सिथिलै बिबि खंजन दाड़िम बीच गहे हैं ।।

भाषा एवं शैली की दृष्टि से देखा जाय तो काव्य विवेक चिन्तामणि की रचना ठहरती है । काव्य में विवेक के दो छन्द कवि कुल कल्प तरु में मिलते हैं इन छन्दों की समानता से यह प्रमाणिक हो जाता है कि काव्य विवेक प्रसिद्ध चिन्तामणि की ही रचना है ।

काव्य प्रकाश :-

शिव सिंह सेंगर ने जिन पांच ग्रन्थों का अपने पुस्तकालय में होने का उल्लेख किया है उनमें से एक काव्य प्रकाश भी है परन्तु ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने शिव सिंह सरोज में कोई भी छन्द उदाहरण के रूप में नहीं प्रस्तुत किया है । यह ग्रन्थ खोज में नहीं मिला है । ग्रन्थ के नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि चिन्तामणि ने मम्मट कृत काव्य प्रकाश का हिन्दी रूपान्तर किया होगा । सामग्री के अभाव में इस संबन्ध में कहना कठिन प्रतीत है ।

1: क0क0त0 1/21 2: क0क0त0 1/25

चिन्तामणि के संदिग्ध ग्रन्थ :-

चिन्तामणि के नाम से रामाश्वमेध, कर्म विपाक, बारह खड़ी तथा चौंतीसी ये चार ग्रन्थ बतलाये जाते हैं किन्तु आलोचकों ने इन चारों ग्रन्थों को आलोच्य चिंतामणि त्रिपाठी की रचना नहीं माना है । इन उपर्युक्त ग्रन्थों पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर संक्षिप्त परिचर्चा प्रस्तुत है ।

रामाश्वमेध ,-

प्रस्तुत ग्रन्थ की एक खंडित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा के याज्ञिक संग्रहालय में देखने को मिली । इस ग्रन्थ के केवल 5 पत्रक (3 से 7तक) ही उपलब्ध हुए हैं । उपलब्ध अंश का आरम्भ इस प्रकार है -

सै वीर परिवारा
मन वच क्रम नृप आदर करहीं
अस्त्र सस्त्र धर सूर सुफिरही
लरै धनै ते सिंह न साथा
गजन संग वे भिरै सुगाथा

आश्रय दाता की चर्चा में पहाड़ सिंह का उल्लेख इस प्रकार है -

पहार सिंह रवसून कौ दीनो राज बनाइ
आप वृह्म रति हुय सदा करै राज सुख पाइ
सिंह पहार सुनाम महाराज सोहै अधिक काम रूप
छविधाम गुननि धान हरि भक्ति जो

× × ×

पहार सिंह नर नाथ चिंतामणि सौ अस कहिय
करौ राम गुन गाथ भाषा मै हय मेध की ।

अन्त के साढ़े तीन दोहों में कवि ने अपने वंश का वर्णन इस प्रकार किया है -

लसत त्रिपाठी कस्यपी नाम गनेस सुनाम ।
रहे मनोहा वास ते विधा जुत तप धाम ।।71।।
तिनके सेना राम हुव जिहि कौ सुत भगवन्त ।
भास करन तेहि के भये विधागुन वलवन्त ।।72।।

के सुब राम सुता सुत ताके राम दयाल ।
हरी राम ताके भयौ नीकम जाकौ वाल ।।73।।
नीकम कौ सुत सुभ भयौ गंगा राम सुनाम रहै[1]।

इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय यह है कि कवि के जीवन वृत्त एवं वंश आदि पर प्रकाश पड़ते पड़ते रह गया है । इस ग्रन्थ की उपलब्ध सामग्री को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इसका रचयिता निश्चय ही एक समर्थ कवि था । उपलब्ध थोड़े से ही अंश में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग इस बात का साक्षी है कि इसका रचयिता केशव दास की रामचन्द्रिका के समान एक श्रेष्ठ ग्रन्थ की रचना करना चाहता था जैसा नाम से स्पष्ट है । ग्रन्थ का वर्ण्य विषय सम्भवतः उत्तर राम चरित से प्रभावित रहा होगा किन्तु रामाश्वमेध के रचयिता चिन्तामणि हमारे आलोच्य चिंतामणि हैं या दूसरे परवर्ती अन्य कवि इस सम्बन्ध में कोई निभ्रन्ति निर्णय देना कठिन है ।

जहाँ तक आश्रयदाता का प्रश्न है वुन्देलखण्ड के इतिहास में जिस पहाड़ सिंह की चर्चा है उनका किछोर से कोई संबन्ध नहीं है और किछोर के पहाड़सिंह के संबन्ध में डा0 सत्य कुमार चन्देल ने शोध करके बताया कि वे चिन्तामणि के बे बहुत बाद सं0 1875 के आस पास थे । स्पष्ट है कि ये चिन्तामणि के सम-सामयिक किसी स्थिति में नहीं हो सकते । अतः रामाश्वमेध को प्रसिध्द चिन्तामणि की कृति नहीं माना जा सकता ।

एक बात विचारणीय है कि डा0 चन्दैल के अनुसार किछोर में हमीर न-नृप का बनवाया हुआ किला आज भी खंडहर के रूप में विद्यमान है[4]।स्मरणीय है कि यह हमीर नृप वही हैं जिन्होने तिकवाँपुर में चिन्तामणि के सभी भाइयों को सम्मान पूर्वक बसाया था हो सकता है कि उस समय नृप हमीर के वंशधर

1: रामाश्वमेध - हस्तलिखित काशी नागरी प्रचारिणी सभा

2: वही

3: वुन्देल खंड का इतिहास - गोरे लाल - पृष्ठ 109

4: चिन्तामणि और उनका काव्य - डा0 सत्य कुमार चन्देल पृष्ठ 53

संबन्धी या निकटतम मित्र के रूप में कोई पहाड़सिंह रहे हों और उनके आश्रय में आलोच्य चिन्तामणि ने ही इस ग्रन्थ की रचना की हो किन्तु इतिहास के ठोस प्रमाण के अभाव में कुछ भी कहते नहीं बनता ।

अतः इसे एक सन्दिग्ध रचना मान कर छोड़ देना चाहते हैं ।

कर्म विपाक :-

कर्म विपाक गरुड़ पुराण का हिन्दी रूपान्तर है । इसके रचना काल के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है । इसमें काव्य सौन्दर्य के लिए कोई अवकाश ही नहीं है । इसकी भाषा अवधी मिश्रित व्रज भाषा है जो रामाश्वमेध से मिलती जुलती है । निश्चित प्रमाण के अभाव में इस ग्रन्थ को किसी अन्य कवि की रचना घोषित कर दिया गया है । खोज रिपोर्ट में भी इसे किसी परवर्ती चिंतामणि की कृति माना गया है । निश्चित आधार पर के अभाव में इसकी अप्रामाणिकता को स्वीकार करना ही पड़ता है नमूने के तौर पर ग्रन्थ की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :-

कर्मन की गति कठिन मुनीसा, सो हम सन कहिये सब ईसा
भूसुर सात्विक सुरपुरवासी, कर्मन पायो तनु मनु जासी
जैसे कर्म जोन गति होइ, हम सो कहिये सो निकसाई
जाते हमहू कर्म न जाने, कहिये आपनु धन्य करिमाने
सौनिक कहा सुनो नर नाथा, कर्मन की सब कह्यो सुगाथा
धन्य धन्य रघुवर के भाई, परकें काज पूछ असआई
× × ×
काटे कीट सुदेह तह चाटे चटक बनाइ ।
ऊपर आने रुधिर के बायस चोच न खाइ ।।[1]

1: कर्म विपाक हस्त लिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा

बारह खड़ी और चौतीसी :-

दोनों ग्न्थों की पुष्पिकाओं में चिन्तामणि नाम का प्रयोग हुआ है चौतीसी के अन्त में जो पुष्पिका दी गई है वह इस प्रकार है "इति श्री चौतीसी सैपूरन समापता साउन सुदी एकदशी को संवत 1847 पोथी लाल मनियार सिंह की" इसके आधार पर डा0 चन्देल ने कहा है कि इनका रचयिता चिंतामणि उपनाम धारी लाल मनियार सिंह हैं और चूंकि ~~ह~~ चिन्तामणि का रचना काल सं0 1693 से 1740 तक है और उनके 100 वर्ष बाद की यह रचना है इसलिये यह ~~आल्य~~ आलोच्य चिंतामणि की यह रचना नहीं है[1] यहा एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि पुष्पिका को देखते हुए लाल मनियार सिंह पुस्तक के स्वामी प्रतीत होते हैं रचयिता नहीं और इसलिये इसमें दिया हुआ काल सं0 1847 रचना काल है या लिपि काल यह भी सन्देहास्पद हो जाता है बारह खड़ी और चौतीसी दोनों लगभग एक ही ग्न्थ हैं। बारह खड़ी चौतीसी का एक संशोधित रूप है तुलना की दृष्टि से कुछ पंक्तिया निम्नांकित हैं -

कमल नयन कछुक काल मधुपुरी न जाय
अपनो कर वैठारिये चरन कमल की छाय
कमल नयन कछु कहत ते काल मधुपुरी जान
नन्द नवल व्रज राज बिनु क्यो करि रखो प्रान

(बारह खड़ी)

खरी खरी विलखत रही नन्द राय दरवार ।
हियरो फटे है सखी विछुरत नन्द कुमार ।।
घरी घरी विलखत फिरै नन्द महर दरबार ।
हियो न फट्यो है सखी विछुरत नन्द कुमार ।।

)चौतीसी)

अतः इन दोनों ग्न्थों का रचयिता भी अनिश्चित रह जाता है और इसे एक संदिग्ध ग्न्थ की कोटि में रखना पड़ता है ।

इस प्रकार उपर्युक्त चारों ग्न्थों के संबन्ध में अब भी प्रामाणिकता अप्रामाणिकता का निर्णय सन्देहास्पद स्थिति में है यद्यपि इन ग्न्थों को

1: हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा

अप्रामाणिक मानकर भी हमारे आलोच्य कवि की महिमा में कोई अन्तर नहीं पड़ता। जब तक सुनिश्चित प्रमाणों के द्वारा इसे चिन्तामणि त्रिपाठी की रचना सिद्ध कर देना सम्भव नहीं हो पाता तब तक हम भी परम्परानुसार इन्हें अप्रामाणिक मानने के लिये बाध्य हैं।

आश्रय दाता :–

वीर गाथा काल की चारणी परम्परा की घनघोर प्रतिक्रिया के फलस्वरूप भक्ति काल के कवियों ने केवल प्रभु का आश्रय लिया था। संसार के प्राकृत मनुष्यों की प्रशस्तियां करके वे अपनी सरस्वती को कलंकित नहीं करना चाहते थे,[1] क्योंकि वे दूसरों का भरोसा करने वालों को हेय दृष्टि से देखते थे[2] और इसीलिए आश्रय दाताओं के प्रति उपेक्षा, घृणा एवं वितृष्णा का भाव रखते थे[3] किन्तु जो लोग आध्यात्मिक भाव भूमि में संचरण करने वाले नहीं थे और जिनका कवि कर्म सारस्वत साधना के साथ साथ जीविका का भी साधन था उनका आश्रयदाताओं की प्रशस्तियां लिखना और उनके आश्रय में रहकर उनकी रुचि के अनुकूल अकाव्य-रचना द्वारा उन्हें प्रसन्न करना अभीष्ठ था।

आचार्य चिन्तामणि रीतिकालीन उन गिने चुने कवियों में से हैं जिन्हें बड़े से बड़े बादशाहों और रजवाड़ों से लेकर सामन्तों, दीवानों, मनसबदारों तक का स्नेह और संरक्षण प्राप्त था। उन्होंने अपने ("रस विलास" ग्रन्थ में अनेक आश्रयदाताओं की प्रशस्तियां की हैं जिनमें उनके दान और पराक्रम का सशक्त एवं अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है। उक्त ग्रन्थ में शाहजहां, दाराशिकोह,

---

1: कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना
सिर धुनि गिरा लगति पछिताना
– राम चरित मानस – बालकांड

2: भरोसो जाहि और को सो करै – विनय पत्रिका

3: सन्तन सो कहा सीकरी सो काम
आवत जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरि नाम
जिनको मुख देखो दुख लागत
तिनको करिबो पर्यो सलाम

हृदय शाह, जाफर खान एवं जैनदी मुहम्मद इन पाँच व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है । सर्वप्रथम शाहजहाँ की चर्चा प्रस्तुत है ।

बोलजले हेग के अनुसार शाहजहाँ का शासन काल सं0 1684 वि0 से 1714 वि0 तक रहा है ।[1] इतिहासकार बोलजले हेग ने शाहजहाँ के दरबारी कवियों में चिन्तामणि का उल्लेख अवश्य किया है किन्तु इस बात का कोई संकेत नहीं दिया है कि शाहजहाँ के आश्रय में चिंतामणि कब से कब तक विद्यमान थे । शाहजहाँ का शासन काल कला और संस्कृति की दृष्टि से उत्कर्ष का युग रहा है । शाहजहाँ ने कवियों और कलाकारों को इतना धन और सम्मान प्रदान किया था कि पंडित राज जगन्नाथ को यह कहने में संकोच नहीं हुआ कि मेरे मनोरथ को पूर्ण करने में या तो दिल्लीश्वर समर्थ हैं या जगदीश्वर इसके राजाओं का दिया हुआ धान साग या नमक मात्र के लिए हो सकता है ।[2]

अतः शाहजहाँ के आश्रय में कुछ काल तक निवास करना और 'रसविलास' की अ उपक्रमणिका में शाहजहाँ की प्रशस्ति लिखना उचित ही प्रतीत होता है । इनकी प्रशस्ति में कहे गये छन्द इस प्रकार हैं :—

शाहजहाँ —

शाहि जहागीर जू के साहिमनि साहिजहाँ ।
जीसों जंग जारि कहँ कौन ठहरात है ।।
झंडनि के झंडा नभ गंगा भकझोरि अति ।
जाके दल चले होत पूलै यों अघात है ।।
चिन्तामनि भारी धूरि धारनि के मतै धरा-
धर धूरि है कै चलै अम्बर उड़ात है ।।
अरिनि की आब ताब नसति सिताब तेज ।
गरये गनीम गर काव है जात है ।।

× · × ×

1: कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया — सन् 1957 पृष्ठ 618

2: दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा मनोरथान् पूरयितुंसमर्थः
अन्यैस्तुभूपालवरैप्रदत्तैशाकामवाराल्लव जायवाराथात् । (पंडितराज जगन्नाथ)

साहि जहाँ जू के हाथी अरिदल के प्रमाथी ।
गिरिनि के साथी सोरू पारत अकलक में ।।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में शाहजहाँ के सैन्यबल शक्ति एवं दानशीलता का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन निश्चय ही कवि की कृतज्ञता को साधित करता है ।

दाराशिकोह :-

शाहजहाँ का शासन काल सं0 1714 वि0 में समाप्त हो गया । तदनन्तर उनका पुत्र दाराशिकोह उत्तराधिकार के लिए पारस्परिक संघर्ष में सं0 1716 वि0 दिवंगत हो गया ।[2] अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि चिन्तामणि शाहजहाँ के दरबार में रहते हुए उनके पुत्र दाराशिकोह से अत्यन्त प्रभावित हुए थे और दाराशिकोह ने भी चिन्तामणि को पर्याप्त दान और सम्मान दिया था । इसीलिए केवल डेढ़-दो वर्षों तक उत्तराधिकार के लिए संघर्ष करने वाले दाराशिकोह में कवि को वीरता, साहस, सामर्थ्य और गुणों का समुह दिखाई पड़ता है । वे लाखों का दान कर सकते हैं और लोगों की रक्षा में भी निपुण हैं कवि की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

दोऊ दर जुरे हुते चिंतामनि उध्दत है ।
जुध्द भयो जानिये मही नभ कत है ।।
हनी दारा शाहि मिआरि चतुरंग चमू ।
चहले ज्यों चंचल तुरंग चमकत है ।।
× × ×
जग के मंडन प्रवल दल खण्डन ।
विपत्ति के विहंडन प्रचंड तेज देखिए ।।

1: रस विलास, 8/22,23
2: एन एडवांस हिस्ट्री आफ इण्डिया - आर0सी0 मजुमदार पृष्ठ 109

साहस कैं सागर नरिन्द नौल नागर ।
समत्थ गुन आगर उजागर जे लेखिए ।।
चिंतामनि सुन्दर सपूत सिध्द मन्दिर ।
भयो पुहमी पुरन्दर प्रबल पूरे पेषिए ।1।

जाफरखान :-

इतिहास प्रमाणित करता है कि शाहजहाँ ने जाफरखान को काश्मीर और काबुल के शासक के रूप में नियुक्त किया था जिसकी मृत्यु सं0 1717 में हुई थी । जाफरखान एक प्रसिध्द वीर और पराक्रमी पुरुष था । उसे शाहजहाँ के दरबार का एक सम्मानित व्यक्ति देखकर चिंतामणि ने भी उसके भी पराक्रम और वीरता का वर्णन किया है -

करि किरबान कर नबाव जाफर खान
कीन्हों घमासान अरिसेना क्यों बचति है
ऐसो को जालिम वीर महान जो जाफर खान सो जंग जुरे
जाफर खान नबाव कसो खग्ग गहि रणभग्ग[2]

जैनदी मुहम्मद :-

शाहजहाँ ने सं0 1690 वि0 में जैनदी मुहम्मद को मनसबदार के पद पर नियुक्त किया था और इसीलिए चिंतामणि ने भी उसकी प्रशस्ति में कुछ पंक्तियाँ लिखीं -

जोरावर बीरबलि जैनदी मुहम्मद जू
खैंचि कै कमान सरसी सभाहरयो
लोचन है लाल जैनदी मुहम्मद जू
अब कहौ कहा चीहि चीहि लीजिए ।[3]

1: रस विलास : चिन्तामिणि कृत ।

2: वही

3: वही

हृदयशाह :–

महाराज प्रेम शाह के पुत्र हृदय शाह के विषय में अधिक कुछ ज्ञात नहीं है । बुन्देलखण्ड के विषय में अधिक कुछ इतिहास में केवल इतना ही उल्लेख मिलता है कि सं0 169। वि0 में शाहजहाँ ने हृदयशाह की सहायता के लिए पहाड़ सिंह पर चढ़ाई की थी अतः स्पष्ट है कि हृदयशाह शाहजहाँ के दरबारी एवं प्रेम पात्र थे । हृदयशाह की प्रसंशा में चिंतामणि की उक्ति उनकी वीरता से ही प्रभावित रही है । कवि की पक्तियाँ इस प्रकार हैं –

हिरदै नरिन्द दानि हिरदै अनन्द भरौ
वृदनि में गरबी गयंद बकसत है
प्रेमसाहि जू के नंद महाराजा हृदै साहि
भिरौ अगहारौ वीर संगर को अकरौ

ऊपर जिन पाँच आश्रयदाताओं की चर्चा रस विलास के आधार पर की गई है उस संबन्ध में प्रस्तुत पक्तियों के लेखक की धारणा है कि चिंतामणि वास्तव में केवल शाहजहाँ के दरबारी एवं आश्रित कवि थे शेष चार शाहजहाँ के ही पुत्र, सेवक तथा आश्रित थे । दाराशिकोह को भी स्थिर भाव से गद्‌दी पर बैठने का अवसर नहीं मिला था ।

अतः हमारा विश्वास है कि ये लोग जहाँ एक ओर शाहजहाँ के आश्रित थे वहीं चिन्तामणि के अत्यन्त प्रशंसक । रस विलास में जिस अधिकार के साथ चिन्तामणि ने अपने आश्रयदाता के समानान्तर इन चारों की प्रशस्तिया लिखीं हैं वे इस बात को प्रमाणित करती हैं कि ये चारों शाहजहा के अतिशय कृपापात्र थे अन्यथा किसी भी राजा की महत्वाकांक्षा अपने समानान्तर प्रशंसा को सहन नहीं कर सकती और न मुगल शासन का दरबारी कवि एक ही ग्रन्थ में इस प्रकार की प्रशस्तियों का उल्लेख कर सकता है ।

अतः आश्रयदाता तो केवल शाहजहाँ थे । हाँ, चिंतामणि के कद्रदानों में दाराशिकोह आदि शेष चार व्यक्तियों का महत्वपूर्ण स्थान मानना चाहिए ।

बड़े साहिब सन्त अकबर शाह सन्त हजरत वन्दे नवाज गेजू दराज के वंशधार थे जिनका दक्षिण भारत में मुहम्मद साहब के समान सम्मान था । इन्हीं के वंश में सन्त साहिराज उत्पन्न हुए थे जो कुतुब साही बादशाह अबल हसन के गुरु और सन्त अकबर शाह के पिता थे । चिन्तामणि की प्रशस्ति के अनुसार ये बड़े तेजस्वी, वैभव सम्पन्न, दानी, कवियों और पंडितों के आश्रयदाता, बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे । उनका दान, सौन्दर्य, वैदुष्य सब कुछ अपूर्व था । चिन्तामणि ने सम्भवतः संवत् 1730-31 के आस-पास इनके आश्रय में शृंगारमंजरी का वृजभाषा रूपान्तर किया ।

शाहा जी भोसले की मृत्यु के बाद सुदूर दक्षिण हैदराबाद में चिन्तामणि आश्रयदाता की खोज में कैसे होंगे यह एक विचारणीय प्रश्न है, किन्तु सम्भवतः इसका कारण यह है कि गोलकुण्डा में सांस्कृतिक वातावरण सहिष्णु एवं सुरुचि सम्पन्न था । डा0 भगीरथ मिश्र ने इतिहास ग्रन्थों के आधार पर अबुल हसन (सं0 1644 से 1704) के विषय में लिखा है कि "अबुल हसन बड़ा उदार और धार्मिक प्रकृति का व्यक्ति था । अबुल अथवा ताना साहब के हिन्दु मंत्री थे और हिन्दू संस्कृति का वातावरण था । उसके मुस्लिम दरबारी भी उनके हिन्दुओं के उत्सवों में भाग लेते थे ।[1]

अतः सन्त अकबरशाह के दरबार में भी सहिष्णुता प्रधान धार्मिक वातावरण रहा होगा इसमें सन्देह नहीं । चिन्तामणि ने इसीलिए बड़े साहिब सन्त अकबर शाह का आश्रय लिया था ।

विद्वानों का एक वर्ग मानता है कि बड़े साहिब अकबर शाह ने तेलगू भाषा में शृंगार मंजरी की रचना की थी और उनके आश्रित किसी कवि ने उसका संस्कृत रूपान्तर किया था किन्तु डा0 भगीरथ मिश्र और डा0 राघवन् ने अनेक प्रमाणों से यह सिध्द कर दिया है[2] कि मूल शृंगार मंजरी सन्त अकबर शाह

1: हिन्दी शृंगार मंजरी – सम्पादक डा0 भगीरथ मिश्र पृष्ठ 8

2: हिन्दी शृंगार मंजरी – सम्पादक डा0 भगीरथ मिश्र तथा संस्कृत शृंगार मंजरी भूमिका डा0 राघवन् पृष्ठ 7

की रचना नहीं है अपितु उनके आश्रित किसी कवि ने उसकी रचना करके सन्त अकबर शाह के नाम से उसे प्रसिद्ध कर दिया है। " अस्तु, हमारा तात्पर्य है कि गुण ग्राही सन्त ने शृंगार मंजरी जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ को पहले व्यापक प्रचार देने के लिए संस्कृत भाषा में उसका रूपान्तर कराया और जब उन्हें चिन्तामणि जैसा समर्थ कवि प्राप्त हो गया तो उन्होंने उसका व्रजभाषा रूपान्तर कराया। यह तथ्य उनकी गुणग्राहिता के साथ साथ उनकी दूरदर्शिता को और विशाल हृदयता को भी प्रगट करता है क्योंकि उस समय व्रजभाषा सम्पूर्ण भारतवर्ष की भाषा अथवा राष्ट्रभाषा का महत्व प्राप्त कर रही थी। इसीलिए व्रजभाषा में अनुवाद का विशेष महत्व था। यह भी हो सकता है कि उनकी दृष्टि में दक्षिण भारत की एक क्षेत्रीय भाषा के ज्ञान को सम्पूर्ण भारत के विद्वानों तक विशेषतः उत्तर भारत के विद्वानों तक पहुंचने का सत् संकल्प रहा हो।

कारण जो भी रहा हो चिन्तामणि का जो सम्मान सन्त अकबरशाह के यहाँ हुआ था वैसा सम्भवतः और कहीं नहीं हुआ इसीलिये चिन्तामणि उनकी प्रशस्ति करते नहीं अघाते। [1] आदि से अन्त तक जैसी प्रशस्ति उन्होंने अकबरशाह की की है वैसी अपने किसी आश्रयदाता की नहीं की है क्योंकि सन्त अकबरशाह का जीवन काल बहुत थोड़ा था इसलिए उनके अन्तिम दिनों में ये गोलकुण्डा पहुंचे होंगे और उन्हीं दिनों हिन्दी शृंगार मंजरी की रचना की होगी।

रुद्रशाह सोलंकी :-

ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने अपने ग्रन्थ शिव सिंह सरोज में एक छन्द उद्धृत किया है। उसी छन्द के आधार पर उनका कहना है कि कवि कुल कल्प तरु चित्रकूटाधिपति राजा रुद्रशाह सोलंकी के आश्रय में लिखा गया था —

साहेब सुलंकी सिरताज बाबू रुद्र शाह।
तोसो नर रचत बचत खल कत हैं।।

1: शिव सिंह सरोज - पृष्ठ 89

काढी करवाल ठाढी कटत दुवन दल ।
श्रोणित समुद छीर पर छलकत है ।।
चिंतामनि भनत भगत भूतगन मांस ।
मेदगूद गीदर और गीध गलकत हैं ।।
फरे करि कुम्भन सो मोती दमकत
मानो कारे लाल बादर में तारे भलकत हैं ।।

परन्तु यह छन्द नवल किशोर प्रैस लखनऊ (सन् 1875) के संस्करण में नहीं है । डा0 भगीरथ मिश्र का कहना है कि "यह रुद्रशाह सोलंकी वही थे जिनके संबन्ध में भूषण ने लिखा है कि उन्होंने इन्हें भूषण की उपाधि दी थी । यह रुद्र शाह चित्रकूट के राजा थे ।[1] मिश्र बन्धुओं के अनुसार "राजा रुद्रशाह सोलंकी ने 'कवि भूषण' की उपाधि का सन् 1666 (सं0 1723) के लगभग दी थी "।[2]

शृंगार मंजरी का रुपान्तर-समय सन् 1668 (सं0 1725) के आस पास ठहराता है । उपर्युक्त तथ्यों को देखकर ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि चिन्तामणि रुद्रशाह सोलंकी के आश्रय में गये होंगे । यदि यह सत्य है कि चिन्तामणि रुद्र शाह सोलंकी के आश्रय मे गए थे तो यह भी सत्य है कि किसी न किसी रूप में अपने भाई कवि मुरलीधर उपनाम 'भूषण' के माध्यम से ही चिन्तामणि रुद्रशाह के सम्पर्क में आए होंगे चाहे अपने भाई से चित्रकूटाधिपति की गुणग्राहिता का परिचय पाकर गए हों या सन्त अकबर शाह के यहां लौटते समय अपने छोटे भाई से मिलने के लिए चित्रकूट गए हों और रुद्रशाह की गुणग्राहिता से प्रभावित होकर वहां कुछ दिन तक ठहर गये हों । किसी प्रकार के साक्ष्य के अभाव में निश्चयात्मक कहना कुछ भी सम्भव नहीं है तथापि रुद्रशाह के आश्रय में चिन्तामणि ने कुछ काल व्यतीत किये हों और किसी ग्रंथ की रचना की हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है । सोलंकी की गुण ग्राहिता तो प्रसिध्द है ही ।

1: हिन्दी रीति साहित्य – डा0 भगीरथ मिश्र पृष्ठ 77 द्वितीय संस्करण
2: भूषण ग्रन्थावली – सम्पादक मिश्रबन्धु स0 2015 पृष्ठ 7

तज किर-ए-सर्व आजाद के विवरण से पता लगता है कि दीवान रहमत-उल्ला सैयद खैरउल्ला के पुत्र तथा सैयद भीका के पौत्र थे। ये बिलग्राम के रहने वाले थे। इनके दादा सैयद भीका नबाव एहतशाम खाँ, नबाव मोहतसिम खाँ आलमगीरी और नबाव मुर्तजा खाँ आलमगीरी के सरकारों में सम्मलित थे।

दीवान रहमतुल्ला अपने दादा के यहाँ रहते थे और उनके सहायक के रूप में काम करते थे। जब दादा सैयद भीका बूढ़े हो गये तब दीवान ने इ इन्हें घर बैठा दिया और स्वयं उनकी तरह काम करने लगे। सैयद रहमतुल्ला की हुकूमत में जाजमऊ और बैसबाड़े आते थे। ये बड़े ही विश्वास पात्र एवं सच्चे आदमी थे। वीरता और साहस इनके विशेष गुण थे। वीरता अतः इनके आस-पास के लोग इनको बहुत मानने लगे थे। इसके अतिरिक्त ये खैर अन्देश खाँ आलमगीरी और अब्दुल समद खाँ वगैरह के इलाकों का भी इन्तजाम किया करते थे।

दादा के मरने के बाद इन्होंने दक्षिण में जाकर औरंगजेब की सेवा की औरंगजेब ने रहमतुल्ला की आनुवंशिक वीरता को सुनकर रहमतुल्ला को दो सती मनसब और शादीपुर के इलाके में जागीर दी। रहमतुल्ला इस जागीर को पाकर वतन आ गये और सलेमपुर में रहने लगे। इनकी मृत्यु तेरह रबी उल आखिर सन् 1118 हिजरी को हो गयी।[1]

कहा जाता है कि जाजमऊ की हुकूमत के जमाने में एक भाट जो चिन्तामणि, हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, का शिष्य था सैयद रहमतुल्ला की हिन्दी कविता में कमाल का किस्सा सुनकर उनके पास आया। उसने एक दिन दीवान के आगे चिन्तामणि का एक दोहा पढ़ा जिसमें उसके अनुसार अनन्वय अलंकार बांधा गया था। यह दोहा चिन्तामणि के कवित्त-विचार नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ का था। दोहा इस प्रकार है -

---

1: तारीखे मुहम्मदी - फारसी हस्तलिखित प्रति रज़ा स्टेट पुस्तकालय रामपुर - पुस्तकालय निर्देशक श्री इमितियाज अली अरसी के सौजन्य से।

हियो हरत उरकत अति चिन्तामनि चित चैन ।

वा मृग नैनी के लखे वाही के से नैन ।।

कला पारखी रहमतुल्ला ने इस दोहे में मृगनयनी शब्द को अनन्वय अलंकार के विपरीत पाया क्योंकि अनन्वय अलंकार में उपमान और उपमेय दोनों एक होते हैं मृगनयनी में जब नेत्रों की उपमा मृग से दे दी गई तो फिर "वाही के से नैन" कहने से अनन्वय अलंकार सिध्द नहीं हो सकता ।

जब वह भाँट चिन्तामणि के पास आया और उसने रहमतुल्ला की इस आपत्ति को दुहराया तो चिन्तामणि ने इस भूल को स्वीकार करते हुए दोहे के उत्तराध्दर्ग को यों परिवर्तित कर दिया —

" वा सुन्दरि के मै लखे वाही कैसे नैन "

किन्तु इस घटना ने चिंतामणि के मन में दीवान रहमतुल्ला से मिलने की उत्कंठा पैदा करदी । एक समय गंगा स्नान के लिए चिंतामणि अपने परिवार के साथ जाजमऊ पहुंचे और दीवान से मुलाकात की । दीवान ने उनका यथा योग्य सत्कार किया । चिन्तामणि बहुत दिनों तक दीवान के पास रहे और दोनों का समय बड़े आनन्द से व्यतीत हुआ क्यों कि दोनों की रुचि एक जैसी थी ।

कालान्तर में दीवान ने चिन्तामणि के यहां नक्दी और भारी सुनहरा लिवास भेजा । चिन्तामणि ने कहलवाया कि मैं चाहता हू कि मैं नियमानुसार इस लिबास को आपके दरबार में आकर पहनूं । दीवान ने निवेदन किया कि यह आपके योग्य नहीं है इसलिए इसे मेरी अनुपस्थिति में पहन लीजिए किन्तु अन्त में चिन्तामणि दीवान के दरबार में आए और भरी सभा में कवित्त पाठ किया । उसमें दीवान की बहादुरी का भूलना छन्द में सशक्त वर्णन है —

1: पाठान्तर — नूरे कलीम पृष्ठ 14 भाग 2 - जलपाइ निज लेखक नूरुल हसन खा भोपाली प्रकाशन सन् 1913 हैदराबाद

2: सर्वआजाद पृष्ठ 366 चल पाइ तजि - लेखक मीर गुलाम अली आजद विलग्रामी प्रकाशन मुदवा मुफिदे आम आगरा सन 1296 हिजरी तजकिर-ए-सर्व आजाद का फारसी से हिन्दी रूपान्तर करने में रज़ा स्टेट पुस्तकालय के निदेशक श्री इमतियाज अली अरसी के सौजन्य से ।

गरब गहि सिंह ज्यों सबल गज गाज, मन पर गज बाज दल साज धायौ
बजत एक जमक धन धनक दुन्दुभी की तुरंग खुर धमक भूतल हिलायो
वैर तिय कहिय हिय कंप डर जोर संसय को सोर चहुँ ओर छायौ
कहौ चल पाइ निज (तजि) वह सन्नाह यह रहमतुल्ला सरनाह आयौ

उपर्युक्त कवित्त शाह शुजा के पुत्र सुल्तान जैनुद्दीन प्रशंसा परक कवित्त के बाद लिखा हुआ है। रहमतुल्ला न केवल गुणग्राहक एवं कवियों के आश्रयदाता थे अपितु स्वयं भी एक श्रेष्ठ कवि थे । उन्होंने पूरन रस नाम से एक पुस्तक लिखी है जिसके कुछ दोहे उद्धृत किये जाते हैं —

सोहत बेनी पीठ पर भीनी पट की भाय
लोटत नागिन कमल दल अंग पराग लगाय
मांग सुहाग भरी अली विवि पाटी छवि छाय
स्याम मनो धन श्याम में चपला लेख लखाय[1]

इससे स्पष्ट है कि सैयद रहमतुल्ला चिन्तामणि के सच्चे प्रशंसक और गुणग्राही थे । कहना न होगा कि चिंतामणि में अपने जीवन में ऐसे जाने कितने गुणग्राहकों से सम्मान प्राप्त किया होगा किन्तु इतिहास ऐसे सन्दर्भों में प्रायः मौन रहता है । जो भी हो चिन्तामणि अपने समय के एक सम्मानित कवि थे जिन्हें अनेक आश्रयदाताओं ने सम्मान दिया था ।

शाहशुजाः—

तजकिर-ए-सर्व आजद में केवल एक वाक्य प्राप्त होता है जिसमें लिखा है कि "चिन्तामणि शाहशुजा की सरकार में इज्जत के साथ बसर करते थे ।[2] हम देख चुके हैं कि सुल्तान जैनउद्दीन मुहम्मद की प्रशंसा चिन्तामणि ने की है ऐसी दशा में उसके पिता शाहशुजा के जमाने से ही चिन्तामणि उनके दरबार में थे और धन मान प्राप्त करते रहे । यह स्वतः सिध्द हो जाता है । इतिहास बताता है कि शाहजहां के पुत्रों में शाहशुजा सबसे अधिक कला प्रिय और विलासी था अतः शाहजहां के दरबारी कवियों एवं कलाकारों को सादर आश्रय देना उसके लिए उचित ही प्रतीत होता है ।

शाह मकरन्द (शाहजी):-

हम छन्द विचार (भाषा पिंगल) के रचनाकाल का निर्णय करते हुए विस्तारपूर्वक यह सिद्ध कर चुके हैं कि चिन्तामणि भाषा पिंगल की रचना के प्रेरक आश्रयदाता छत्रपति शिवाजी के पिता शाहजी थे प्रशस्ति विषयक छन्दों को देखने से पता चलता है कि आचार्य चिन्तामणि को इनके दरबार में पर्याप्त समय सम्मान प्राप्त था[1]। इनका समय सं0 1659-1721 विक्रमी है।[2] अतः कम से कम सं0 1720 तक चिन्तामणि ने इनके आश्रय में निवास किया होगा।

1: देखियत नैननि सोयि बैन बोलतु है
सुनो साहि मकरन्द जंत कल रन की
(राधा माधव विलास चम्पू पृष्ठ 256)
माल मकरन्द नन्द सरजा विलन्द सोहै।
आलम सराहै याको ओज औ उदारतौ ।।
आसापति लोग तहां दिग्गजनिहू के नाह।
साहि वरनाह तौ दिग्गज दै डारतै ।।
(भाषा पिंगल हस्तलिखित प्रति ओरियंटल बड़ौदा सी0 45-95)
नरवर मकरन्द शाह गुन्जन मधुर मंगल मंत्र पाठ पूर्वम्- संगीत मकरन्द ह0लि0 सरस्वती महल तंजौर
चिन्तामनि कवि को हुकुम कियौ साहि मकरन्द।
करौ लच्छ लछन सहित भाषा पिंगल छन्द ।।
साहिनृपत के हुकुम ते मो मति को परगास।
नैननु कौ रवि के उवैं अन्धाकार को नास ।।
(चिन्तामणि कृत हस्तलिखित काशी नागरी प्रचारिणी छन्द 8

2: तजकिर-ए-सर्वआजद — मीर गुलाम अली - कुतुबखाना हैदराबाद

3: शिवाजी दी ग्रेट प्रथम भाग — बाल कृष्ण शर्मा सन् 1932 का संस्करण पृष्ठ 55

2: चिन्तामणि की जीवन दृष्टि एवं विचार धारा

***

अनुभव की कसौटी पर कसे हुए अनुभव वे सुवर्ण हैं जिनकी कांति और खरापन कभी कम नहीं होता । जीवन के ये अनुभव जहाँ व्यक्ति, वस्तु और परिस्थिति के प्रति कवि के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं, वहीं पाठक के लिए संसार सागर में प्रकाश स्तम्भ का काम करते हैं ।

चिन्तामणि का काल शृंगार का काल था और चिन्तामणि कवि उसमें अवगाहन करने में परम प्रवीण था किन्तु उसी के साथ परिस्थितियों के थपेड़े के माध्यम से वे जीवन तट पर जो रेखायें अंकित कर गये हैं उन्हें भी कवि ने यथा स्थान वाणी दी है ।

प्रस्तुत प्रसंग में कुछ ऐसी पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही है जिनसे कवि की जीवन दृष्टि का आभास मिल सकता है । कवि की दृष्टि में विद्या का मूल्य सब से बड़ा है उसका अनुभव है —

> विद्याते उपजै बिसै बिनै जगत बस होत ।
> जगत भये बस धन मिलै धन ते धरम उदोत ।।[1]

यह हुई विद्या से धन और धर्म की प्राप्ति की बात किन्तु सच तो यह है कि विद्या ही धन है और विद्या से उत्पन्न कीर्ति ही आभूषण है और सद्विद्याध्ययन से उत्पन्न सुमति ही वास्तविक लोचन हैं तभी तो कवि कहता है —

> भूषन कीरति नहिं रतन धन विद्या नहिं वित्त ।
> लोचन सुमति न नैन जुग समुझत सज्जन चित्त ।।[2]

1: क0क0त0 3/ 194

तुलनीय — विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्

पात्रत्वात् धनमाप्नोति धनात् धर्मं ततः सुखम् सुभाषित

2: क0क0त0 3/265

जहाँ तक सांसारिकता का प्रश्न है कवि का विश्वास है कि संसार में स्वस्थ सुखी और सम्पन्न यौवन ही काम्य है ।

× × जोवन ते तन की निकाई अधिकाई है[1]

तथा धाम वाम जित वाम जो रुपवन्त बहु रुप ।[2]
सहित विलास विलास जो मनमथ वान अनूप ।।

और इसी तरह सौन्दर्य के साथ ही रुचि का योग होता है –

रीझनि खीझनि बूझि बिनु बूझहु लेत रिझाइ ।
नीके कौ नीकौ लगै सब विधि सबै सुभाइ ।।[3]

किन्तु वास्तव में यह लोक परक दृष्टि कवि के संस्कारों में बध्दमूल नहीं है । रचनाओं में शास्त्रीयता के आग्रह से उदाहरणों के समायोजन के लिए उसमें भेले ही घोर शृंगारमयी उक्तियाँ लिखी हों तथापि एक सच्चे पंडित की भाँति उसकी बुध्दि निश्चयात्मक रुप से जानती है कि पांडित्य का सारतत्व केवल परमात्म तत्त्व का चिंतन है और यह परमात्मतत्व सत्संगति के बिना सरलता से प्राप्त नहीं होता । जीवन में सबसे उत्तम काम भगवच्चरण में अनुराग है और उसी की कीर्ति इस संसार में शेष रहती है जो भगवद् भक्त हैं । कुछ पंक्तियाँ देखिए –

(क) पहुमी सी वारानसी तामे पंडित सार ।
बहुरि पंडितन में समुझि सार सु ब्रहम विचार ।।[4]

(ख) चोखी चरचा ज्ञान की आछी मन की जीति ।
संगति सज्जन की भली नीकी हरि की प्रीति ।।[5]

(ग) करि लीजै उत्तम क्रिया हरिपद प्रीति विशेष ।
रहत सदा उत्तम पुरुष या जग की रति शेष ।।[6]

1: क०क०त० 3/265
2: वही 3/15
3: वही 3/251
4: क०क०त० 3/306
5: वही 1/69
6: वही 1/71

जहाँ तक साधु पुरुषों का प्रश्न है कवि की निर्भ्रान्त धारणा है कि –

वचन तुलित मन मन तुलित सकल विराजत काल
काज तुलित निर्मल सुजस सतत साधु सिरताज[1]

सचमुच जो मन वाणी और कर्म में एक ही भावना रखते हैं वही सज्जनों के सिर मौर हैं । ऐसे सत्पुरुषों की सगति और सेवा से ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है इसीलिए वे निष्ठापूर्वक कहते हैं –

जे जन साधत साधु जन वचन सुधा को पान ।
जनम मरन भय रहित ते पावत कल्यान ।।[2]

अतएव सज्जन पुरुष की सेवा और परमात्मा का ध्यान केवल यही दो कार्य चिंतामणि की दृष्टि में जीवन के लक्ष्य हैं । तभी तो वे कहते हैं –

कहा सेइये पुरुष को सब दिन सज्जन संग ।
कहा धेइये कहत मनि व्यापक ब्रहम असंग ।।[3]

जिस प्रकार रहीम ने कहा था –

'समय दशा कुल देखि करि लोग करत सनमान'

उसी प्रकार चिन्तामणि का भी विश्वास है कि मनुष्य के प्रति प्रेम भी लोग तभी करते हैं जब उसकी दशा अच्छी होती है –

दसा जगै जबलौं नहीं होत न आदर गेह ।
दसा जगे जा दीप मैं सबै करत हैं नेह ।।[4]

किन्तु सच्चे मित्र और अकारण कृपा करने वाले सन्त पुरुष निःस्वार्थ भाव से जगत का उपकार करते हैं तुलसी का अनुभव था –

हेतु रहित जग जपु उपकारी ।
तुम तुम्हार सेवक असुरारी ।।[5]

और चिंतामणि का निरीक्षण है कि –

बड़े प्रवीन सुबुध्दि हैं सदा अकारथ मित्र ।
कहा और संसार में ऐसो विमल चरित्र ।।[6]

1: क0क0त0 3/24
2: वही 3/143
3: क0क0त0 3/264
4: वही 3/231

यह तो हुई सत्संगति की बात पर संसार के मतलबी यारों से बचे बिना सत्संग और सुमार्ग पर चलना क्या सरल है ? अतः चिन्तामणि शिक्षा देते हैं कि –

औरन के अपकार तें खल सों कहूँ मिलाप ।
तुमहिं सिखावन करहु जनि किए परम सन्ताप ।।[1]

ये विश्वासघातक खल हमारे जीवन को दुखी बनाने में ही प्रसन्न होते हैं । यों तो ये बड़े ही आवरण के साथ अपने दम्भ को छिपाना चाहते हैं जैसे बगुला ध्यानी बना बैठा रहता है किन्तु शिकार करते समय उसका भंडा फूटता है वैसे ही एक न एक दिन दुष्टों की दुष्टता भी प्रकट होकर के रहती है ।

कहूँ दंभ दंभीन को छप्यौ न रहत निदान ।
मच्छ मारत ही होतु है प्रगट बकन को ध्यान ।।[2]

दुष्टों की प्रियतमा है निन्दा । जब संसार में निन्दा प्रगट हुई तो उसका स्वागत खलों ने किया –

प्रगट भई संसार में निन्दावाही जोग ।
ताके आदर करन को प्रगट भए खल लोग ।।[3]

ऐसी दशा में खलों की निन्दा भी क्यों की जाय। इसलिए इस प्रसंग को यहीं छोड़िये और अपने में सद्गुण लाने का प्रयास कीजिए क्योंकि बिना गुणों के व्यक्ति का जीवन प्रकाशित नहीं होता –

उपर्युक्त अनुभव खण्डों में अभिव्यक्त जीवन दृष्टि इस बात का प्रमाण है कि चिन्तामणि का जीवन एक शुध्द सदाचारी पंडित का जीवन रहा ठकुर सुहाती के लिए उसने लौकिक श्रृंगार की रचनाएँ भले ही की हों अन्यथा राधाकृष्ण के माधुर्य भाव में ही श्रृंगार के दर्शन प्राप्त होते हैं । रागानुराग माधुर्य भाव की भक्ति के उत्थान के युग में हमारा कवि भी वैष्णव निष्ठा के साथ कृष्ण प्रेम में और राधिका नेह में डूबा है किन्तु उसका विवेकी मन संसार की नश्वरता विलास

1: क0क0त0 4/57
2: वही 3/192
3: वही 3/178

की अस्थिरता और जीवन की सार्थकता को अच्छी तरह जानता पहचानता रहा है इसीलिए उसने निर्विघ्ण भाव से कहा कि —

> मिहिर मरीचन में मृग जल कैसो भ्रम सुखन मै तोयके तरंगन को ढंगु है ।
> छोड़ि सदा शुध्द ज्ञान आनन्द परम पद और कछु कछू विसराम को न अँगु है।।
> चिंतामनि कहै कहौ कौन सौ सनेह कीजै सब ही सो घाट वाट हाट कैसो सँगु है।
> नीको है तौ कहा परनाम सब फीको होत तन धन जोवन कुसुम कैसो रँगु है ।।[1]

अतः स्पष्ट है कि चिन्तामणि की जीवन दृष्टि आध्यात्मिक है । वे संसार की वास्तविकता को अच्छी प्रकार जानते हैं कि यह अत्यन्त नश्वर और भ्रमपूर्ण है उसमें सारतत्व भगवद्भजन है। इसलिए यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि चिन्तामणि का व्यक्तित्व संतुलित तथा चिन्तनशील रहा है और उनका जीवनानुभव व्यापक तथा वास्तविक रहा है ।

ख — चिन्तामणि का दार्शिनिक चिन्तन :—

परमात्मा :—

चिन्तामणि भगवान के साकार रुप के उपासक हैं यद्यपि ये जानते हैं कि जो परमात्मा संसार की सृष्टि, स्थिति आदि का कारण है वही भक्तों पर कृपा करने के लिए अवतरित हुआ है —

> सुर जन मुनि जल जलज जो जन्तुन में अवतार ।
> सति प्रति पालक खल दवन हेत लियो अवतार ।।
> को समुझे भगवन्त तब, लीला ललित विलास ।
> कित केते कब यों किये माया केलि प्रकास ।।[2]

यह तो ब्रजवासियों का सौभाग्य है कि स्वयं परमात्मा कल्प वृक्ष बनकर ब्रजमंडल में अवतरित हुआ है —

> इन ब्रजवासिन में जगत और सभाग न जानि ।
> कलपद्रुम जिनको भयो आपु आतमा आनि ।।[3]

1: क0क0त0 8/17

2: कृष्ण चरित्र 3/25,26

3: कृष्ण चरित्र 3/38

अतः सत्य, ज्ञान और अनन्त पुराण पुरूष परमात्मा ही ललित लीला विलास के लिये अवतार धारण करता है ऐसा सिध्दान्त चिंतामणि को स्वीकार है।

जीव :-

जीव परमात्मा का ही अंश है । जीव नार है और परमात्मा उसका अयन । इसीलिये उसे नारायण कहते हैं -

जीव समूह जो नार सो रन तिहारो नाथ ।
अन्तर जामी ईस तन नारायण तब साथ ।।[1]

जीव ससीम है, आत्मा अल्पज्ञ तथा ब्रहम सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान है।

माया :-

भगवान की माया विद्या और अविद्या भेद से दो प्रकार की है । विद्यामाया के रुप में तो राधा एवं समस्त गोपिकाओं का उल्लेख किया गया है जिनके साथ भगवान रास विहार करते हैं किन्तु अविद्या माया के सहारे अनात्मा को प्रकाशित करते हैं -

मुनि जन न्न मन वचन विधि सेवित चरन सतृश्न
विमल वृष्णि कुल कमल रवि जप जय जय जय श्रीकृश्न[2]

यह माया यद्यपि सत्य नहीं है तथापि जब तक परमात्मा को तत्वतः नहीं जान लिया जाता तब तक माया से मुक्ति सम्भव नहीं है, हाँ जान लेने के बाद माया उसी तरह मिट जाती है जैसे रस्सी में साँप का भय -

आपु विना जाने जगत, आपु लखे मिटि जाय ।
रज्जु विना जाने सखु जाने रज्जु विलाय ।।[3]

इस प्रकार इन्होंने माया को अनात्म तत्त्व एवं भ्रम का रुप बतलाया है।

चिन्तामणि की भक्ति :-

चिंतामणि द्वारा प्रतिपादित भक्ति के सैध्दान्तिक पक्ष का विवेचन करने से पूर्व यह उल्लेखनीय है कि चिंतामणि ने किसी ऐसे ग्रन्थ की रचना नही की जिसमें उनके द्वारा प्रतिपादित भक्ति के सिध्दान्त का व्यवस्थित विवेचन हो । कृष्ण चरित्र में इस प्रसंग की जो रचनायें प्राप्त होती हैं वे श्रीमद् भागवत का अनुवाद हैं । उनमें प्रतिपादित सिध्दान्त वास्तव में भागवतकार के ही सिध्दान्त हैं । तथापि

चिन्तामणि ने जिस रुचि और तत्परता से विस्तारपूर्वक भक्ति तत्त्व की चर्चा की है उससे उनकी मान्यता पर अनायास ही प्रकाश पड़ जाता है। अतः उनकी भक्ति विषयक रचनाओं के आधार पर भक्ति के सैध्दान्तिक पक्ष को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

भक्ति का स्वरुप :-

चिंतामणि की दृष्टि में भगवत भक्ति अनन्य अनुराग स्वरुपा है। सच्ची भक्ति संसार के समस्त संबन्धों का परित्याग करके भगवान के चरणों में शरण लेने में ही है।

पति सुत माई भाइ पितु सकल कुटुम्ब समाज।
तजि आयीं संग्रहब क्यों वे हमको ब्रज राज।।
कहत तुम्हें असरन सरन दीन बन्धु सब कोइ।
दासी भई अनन्य गति अब न अन्य गति होइ।।[1]

यह अनन्य भक्ति तभी सार्थक होती है जब भगवान के चरणों में निश्चल अनुराग हो -

जोति पगन श्री कृष्ण की भक्ति अनन्य निहारि।
हमहू निश्चल भगति करि मन में धरे सम्हारि।।[2]

यह आस्था ब्रहमा कृत स्तुति में तथा यज्ञ करने वाले ब्राहमणों के पश्चाताप में यदि दास्य भाव रुप में प्रगट है तो गोपांगनाओं के प्रेम में माधुर्य भाव में अभिव्यक्त है। अतः चिन्तामणि के भक्ति के स्वरुप पर विचार करते हुए यह स्वीकार करना पड़ता है कि ईश्वर के प्रति परम अनुराग, अनन्य निष्ठा और लीला के अनुशीलन में ही भक्ति भावना का स्वरुप स्पष्ट हुआ है क्योंकि ऐसी प्रेमा भक्ति के लिए किसी भी अन्य साधन की आवश्यकता नहीं है। जप, तप, नियम, व्रत सब की तुलना में भगवत चरणानुराग श्रेष्ठ है -

नति जन के दुख संस्कृत, न गुरु सखि व्रत नेम।
हमहू निश्चल भक्ति करि दृढ़ हरि आपन प्रेम।।[3]

1: कृष्ण चरित्र 6/56,57
2: वही 6/71
3: कृष्ण चरित्र 6/68

अनन्य संबन्ध का अर्थ है संसार के सारे संबन्धों का परित्याग करके भगवान के चरणों में अनुराग किन्तु यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति समस्त संसार को भगवान के चरणों में सौंप दे –

जानत जग सर्वज्ञ तुम आज्ञा दीजै मोंहि ।
तू सब जग को नाथ सब जगत समर्प्यो मोहि ।।[1]

प्रेम भक्ति और शृंगार भावना :–

कृष्ण भक्त कवियों की माधुर्य मूलक प्रेम भक्ति की शृंगार परकता अथवा यों कहें कि निरावृत्त शृंगार भावना को देख कर बहुत से लोगों ने उसमें वासनात्मकता देखने का प्रयास किया है किन्तु वैष्णव भक्त ईश्वर विषयक रति को काम नहीं मानता वरन् उसे भाड़ में भुने हुए उस बीज की तरह मानता है जो पुनः नहीं जमाया जा सकता है –

परि यह मोपर काम जो बहुरि काम को नाहि ।
भू पर भरि जित बीज ज्यों फिरि न जमाये जाहि ।।[2]

अतः श्री कृष्ण के साथ गोपियों के अभिसार, रास, आलिंगन, परिरम्भण आदि का जो उल्लेख किया गया है, वह सब कुंठित काम का ऐसा उदात्ती रुप है, जिसमें लौकिक वासना का संस्पर्श नहीं ।

भगवद्‌भक्ति के पल्लवित होने के मूलतः चार विन्दु हैं – नाम, रुप, लीला और धाम । अतः भक्त जन मुख से निरन्तर भगवत नाम का उच्चारण करते हैं, नेत्रों से भगवान का रुप निहारते हैं, चरणों से भगवान के धाम में (वृन्दावन आदि) में विरचरण करते हैं तथा भगवान की लीलानुचिन्तन में निमग्न रहते हैं ।

चिंतामणि ने भी भगवन्नाम आदि के महात्म्य का उल्लेख बड़ी श्रध्दा से किया है जिस प्रकार तुलसी ने –

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राग[3]

1: कृष्ण चरित्र 3/44
2: वही 6/24
3: राम चरित मानस, उत्तर खण्ड 130ख

की बात कही है वैसे ही चिन्तामणि ने भी श्री राम के नाम के आधार पर सदा आराम से रहने की बात कही है —

लोभी जन धन लाभ अरु, पिय जन संग सकाम ।
साधु कगल श्री राम के नाम रहत सदा आराम ।।[1]

क्योंकि भगवान का नाम अनेक प्रकार के संकटों को दूर करके अनन्त पुण्य और अमाप सम्पत्ति प्रदान करता है —

उदय रवि करत तम रासि संहरत,
मन ध्यान के धरत तम रासि फाटै ।
परम कृपाल प्रभु पलक पाइन परत,
प्रीति करि पुन के पुंज पाटै ।
नाम के जाप सो अमाप संपत्ति कौ,
प्रबल प्रताप की ठाट ठाटै ।
विघन अति सघन अघविकट निपट,
संकट कटक प्रगट काटै ।[2]

इतना ही नहीं भगवन्नाम संकीर्तन, असाधु पुरूषों को सद्गति प्रदान करने वाला और परम कल्याणकारी है —

देत असाधुन साधु गति, यों हरिनाम निवाहि ।
मनो कियो उन कीरतन पाप अभावे चाहि ।।[3]

रुप :—

भगवान का रुप संसार के समस्त रूपों से श्रेष्ठ है । इतना ही नहीं वह वचन अगोचर परमानन्द प्रदान करने वाला अगाध सौन्दर्य है । संसार के समस्त सौन्दर्य को तिरस्कृत करने वाला है उनकी रुप माधुरी का दर्शन ही नेत्रों की सफलता है और जीवन का सारतत्त्व —

"नैननु को फलु जीवन सारु
विलोकिये नन्द कुमार की मूरति"[4]

1: क0क0त0 3/184
2: वही 2/18
3: क0क0तू0 2/18
4: कृष्ण चरित्र 4/41

क्योंकि उस रुप को देखने के बाद सारा संसार तुच्छ लगता है और सुध बुध भूल कर बिना मोल बिक जाने को जी चाहता है –

> दामिनि सो घन से तन में,
>
> पट प्रेम सुधा सव को मन पागै ।
>
> मंजुल कानन में मुक्ता,
>
> सिर मौर किरीट धर्यौ बड़ भागै ।
>
> को विन मोल बिकात नहीं,
>
> मनिवा मुख पंकज में मनु लागै ।[1]

इसीलिये चिंतामणि ने कृष्ण चरित्र के अनेक सन्दर्भों में श्री कृष्ण की अनिन्द्य रुप माधुरी का उल्लेख किया है जिसकी चर्चा श्रृंगार रस के विवेचन में की जा चुकी है । इसीलिए चिंतामणि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि भगवान के रुप माधुरी के दर्शन से समस्त सांसारिक दुःख निवृत्त हो जाते हैं –

> श्री नारायण वदन विधु लखि दुख मिटत असेष ।
>
> जाते तनु सब तब परख दृग कुवलय अनमेष ।।[2]

<u>लीला :–</u>

भगवान की कथा श्रवण मंगल एवं भक्ति का दृढ़ आधार है । निरंतर भगवत चरित्र का अनुशीलन करने से भक्ति भावना प्रगाढ़ हो जाती है । इतना ही नहीं जो सन्तों के मुखारविन्द से भगवत कथा श्रवण करते हुए अपना सर्वश्य निछावर कर देते हैं वे अनायास ही भव सागर को पार कर जाते हैं –

> साधु मुखाने तव गान सुनि अरपि सकल फल सार ।
>
> उतरे भजन जिहाज चढ़ि वहु भव सागर पार ।।[3]

और साधु जनों के मुखारविन्द से भगवान की पुण्य गाथा का श्रवण करते हैं,भाव विभोर होकर चरण वन्दना करते हैं । वे उनके साथ भगवान स्वयं निवास करते हैं –

1: कृष्ण चरित्र 4/4।

2: क०क०त० 3/58

3: कृष्ण चरित्र 3/7

मंडि ज्ञान सम सुनत जे साधु मुखन तुव गाथ
प्रेम विवस पग परत तू नाथ सबनि के साथ[1]

<u>धाम :-</u>

धाम की दृष्टि में वृन्दावन की महिमा का ज्ञान भी कवियों ने अनेक प्रसंगों में किया है । चतुर्थ अध्याय में गोचारण लीला के प्रसंग में वृन्दावन की महिमा का गान दृष्टव्य है -

धन्या धरणि पग परसि तिय तृण गुलाम लता तरु लेखि
कर जय रस खग मृग नदी सदय विलोकनि पेखि
~~कर वृन्दावन मुदित मन~~
यों वृन्दावन मुदित मन कान्ह चरावत गाइ ।
राजत है गिरि सरित तट सुन्दर सील सुभाइ ।।[2]

ब्रहमा जी ने तो ब्रज भूमि में जन्म और ब्रजवासियों की चरणों की धूलि का स्पर्श प्राप्त करने को अनन्त पुण्य का फल माना है -

बड़ें भाग ते जग जनम ब्रज मंडल में होइ ।
हरि वल्लभ ब्रजवासि पग दूरि परस रस कोइ ।।[3]

इस प्रकार नाम, रुप, लीला और धाम चारों तत्त्वों की सविस्तार च चर्चा करके चिंतामणि ने भक्ति भावना के सभी स्तम्भों का महत्त्व प्रस्तुत किया है--

<u>भक्ति महिमा :-</u>

भगवान की भक्ति समस्त रागादि दोषों का निवारण करके जीव का कल्याण करती है -

तब लगिये रागादि ठग ग्रह काराग्रह आहि ।
मोह निगड जब लगे जनु कान्ह तिहारो नाहि ।।[4]

इसलिये उनका जीवन धन्य है जिनके मन में अनेक जन्मों के कृत सुकृत के फलस्वरुप भगवत चरणानुराग उत्पन्न हो जाता है -

बड़ौ कौन हू जनम मे यह मेरो प्रभु भाग ।
तौ दासन मिलि वढ़े जौ पग पूजन अनुराग ।।[5]

1: कृष्ण चरित्र 3/5
2: वही 4/8,10
3: वही 3/39
4: कृष्ण चरित्र 3/4।
5: वही 3/34

क्योंकि ऐसी परिस्थिति जिन लोगों को प्राप्त नहीं है उनका जीवन हर प्रकार से निरर्थक है और धिक्कार के योग्य है। तभी तो यज्ञ करने वाले ब्राह्मण अपनी पत्नियों के भगवत प्रेम की तुलना में अपनी भक्ति की हीनता की निन्दा करते हैं –

लखि परमातम कान्ह में तिय जन भगति अनन्त।
उन अपनी निन्दा करी भजे जो न भगवन्त।।
जनम हमारो त्रिविध धिक् धिक् व्रत तप धिक ज्ञान।
धिक् कुल धिक् सत करम हरि विमुख भये जो जाने[1]

सच्चा भक्त मनसा, वाचा, कर्मणा भगवान के चरणों में समर्पित रहता है और प्रारब्ध का भोग करते हुए भी भगत्कृपा की प्रतीक्षा करता है –

परिषत कृपा जु रावरी, करत प्रारब्ध भोग।
मन तन वचननि तुव पगनि नमति मुकुति पग जोग[2]

भक्ति और ज्ञान में अन्तर :–

जो लोग भगवान की भक्ति को छोड़ कर ज्ञान की साधना में लगते हैं वे वास्तव में निरर्थक रूप से धान की भूसी कूटने जैसा श्रम करते हैं जिसका फल श्रम के सिवाय कुछ नहीं –

छाड़ि भजन सब सिध्द पद करत ज्ञान को दौर
विन फल फंकर ध्यान ते कूटत सठ सिर मौर[3]

वास्तव में ज्ञान और भक्ति परस्पर विरोधी नहीं हैं। गुरु की कृपा से तत्त्व ज्ञान प्राप्त होने पर परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार होता है[4] औरतत्त्व ज्ञान की कृपा के लवलेश से ही सम्भव है –

जापै तो पग कमल रज लेस कृपा कन होइ।
सो समुझै तो तत्त्व कछु और न समझै कोइ[5]।।

1: कृष्ण चरित्र 6/65,66
2: वही 3/11
3: कृष्ण चरित्र 3/36
4: वही 3/29
5: वही 3/33

यहाँ बरबस तुलसी के "सो जानै जेहि देहु जनाई"[1] का स्मरण हो आता है । ऊपर जिन दो छन्दों का उल्लेख किया गया है उनमें हरि एवं गुरु की कृपा से ही तत्त्व साक्षात्कार की बात नहीं कही गई है । उसका यहाँ स्पष्ट प्रतिपादन है क्योंकि भगवद् कृपा प्राप्त करने के बाद भक्त के लिये कुछ कुछ कर्त्तव्य शेष नहीं रहता फिर तो स्वयं भगवान उसके भक्ति के मार्ग को प्रशस्त कर देते हैं –

जाकौ कृपा करै ताकौ संसारै छोड़ावै कहै,
चिंतामनि भाँति यह भली मन भाई है ।
पापी सुकृतीन सेगे एकै गति करै इन्हैं,
जानै को कहाँते भये कौन धौं बड़ाई है ।
माया मोहि सबहि कौ रीझै व्याध गनिका पै
कीरति सकल जग ऐसी कछू गाई है ।
रुप जाति गुन कहावै जगत पति
जगत की प्रभुता धौ कौन गुन पाई है ।[2]

अतः भक्ति केवल भगवत कृपैक साध्य है । यह सिध्दान्त प्रतिपादित हो जाता है और इसीलिये भगवत भक्त अपने आप को समर्पित कर देता है ।

शरणागति के तत्त्व :–

शरणागति के छः तत्त्वों की चर्चा मिलती है –

1: अनुकूलता का संकल्प
2: प्रतिकूलता का निषेध
3: रक्षा करेंगे ऐसा विश्वास
4: रक्षक स्वरुप का वर्णन
5: आत्म निक्षेप
6: दैन्य

1:
2: क0 क0 त0 3/219

कृष्ण चरित्र में इन सब का अनेक अवसरों पर उल्लेख मिलता है किन्तु विस्तार भय से यहाँ सारे सन्दर्भों का उल्लेख न करके एकाध सन्दर्भों की चर्चा प्रस्तुत है । शरणागत के समस्त अपराधों को क्षमा करके वह सच्चिनन्द स्वरूप परमात्मा कैसे उनके जीवन को कृतार्थ करता है इसका उल्लेख प्रस्तुत छन्द में देखिए :-

कहैं चिंतामनि सत्य विज्ञान आनन्द रुप,
सदा ही विसद सत्त्व मूरति विमल हौ ।
स्वाधीन माया निज इच्छा विरचित,
लीला विग्रह रचे खल निग्रह प्रबल हौ ।
साधुन को सदा प्रतिपालन करत तुम,
भगत कलप कर देत सब फल हौ ।
आयो हौ सरन मेरी छमौ अपराध,
तुम सरन आये ते दुख हरत सकल हौ ।[1]

रक्षकत्व की चर्चा के लिये सुदामा का उल्लेख पर्याप्त होगा -

साधु सुदामा को दई सम्पत्ति स्याम निवाहि ।
उन सेवा कीन्हीं भली मनौ इन्द्र सखि चाहि ।।[2]

कार्णण्य भाव के लिये तो भगवान राम के प्रति भक्त का यह आत्म निवेदन अत्यन्त सुन्दर और समर्थ दृष्टान्त है -

हौं तौ अनाथ तुम नाथन के नाथ हौंजू
दीन तुम दीन बन्धु नाम निजु कीनो है ।
हौं तौ हौ पतित तुम पतित पावन वेद,
पुरान बखानत कछू कहयौ ना नवीनो है ।
कव करी सेव हौ जौ कहा मेरी सेवा रीझै
आप ही तें आप रीकै चिंतामनि लीनो है ।
आवतु मे मेरी रक्षा करवे ही परी राम,
रावरे ही मोहि नितु नातौ जोरि दीनो है ।[3]

1: कृष्ण चरित्र 7/23
2: क0क0त0 3/59
3: क0क0त0 1/65

इस प्रकार हम देखते हैं कि चिंतामणि का भक्ति यिध्दान्त वस्तुतः भगवत प्रेम मूलक और भगवान के अनुग्रह पर है । यद्यपि इनकी रचनाओं में यथा स्थान दास्य भाव के पद मिलते हैं जिनमें भगवान की महिमा और अपनी लघिमा का स्पष्ट उल्लेख है तथापि तुलनात्मक दृष्टि से इनका पुष्टि मार्गानुयायी होना ही अधिक विश्वसनीय मालूम होता है ।

××000××

खण्ड 3

1 : चिन्तामणि का अभिव्यक्त पक्ष

: चिन्तामणि का अभिव्यक्ति पक्ष :

अभिव्यक्ति का अर्थ है अनुभूति का रुपायन । यह रुपायन मुख्यतः भाषा के माध्यम से सम्भव होता है किन्तु काव्य की भाषा को एक ओर कवि की कल्पना साँचे में ढालने का प्रयास करती है तो दूसरी ओर आलंकारिता उसे माधुर्य-मंडित बनाती है । इस प्रकार अभिव्यक्ति पक्ष में अन्तर्गत मूलतः बिम्ब विधान, कल्पना व्यापार, अलंकार योजना और भाषिक संरचना का विवेचन अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है । यद्यपि विद्वानों ने इनके अतिरिक्त भी कलात्मक सौन्दर्य के अन्य उपादान भी ढूढ़ निकाले हैं तथापि इन उपर्युक्त चार पक्षों के संश्लिष्ट विवेचन में ही उन सब का समावेश हो जाता है इसलिये सामासिक-शैली में इस अध्याय में इन्हीं चार पक्षों पर विचार प्रस्तुत किया जा रहा है ।

बिम्ब विधान :-

मानव चेतना में ऐसे असंख्य संवेदन विद्यमान रहते हैं जो अभिव्यक्ति का अवसर न पाकर अवचेतन या अचेतन के धरातल पर जा पहुँचते हैं किन्तु जब ये संचित संवेदन अनुभूति के स्वच्छन्द प्रवाह में इन्द्रिय ग्राह्य रुप धारण करते हैं तब इन्हें बिम्ब कहते हैं । इस प्रकार बिम्ब वे मानसी प्रतिमायें हैं जो विषयानुरुप और कालानुरुप होकर नवीन प्रतीतियों के रुप में अभिव्यक्ति पाती हैं।

डा0 नगेन्द्र का कथन है कि काव्य बिम्ब का तत्त्व है भाव । भाव के संस्पर्श के बिना काव्य बिम्ब का आस्तित्व सम्भव नहीं है । लिविस ने उसे अनिवार्य माना है और ठीक ही माना है[1] इससे स्पष्ट है कि जब रागात्मक चेतना मस्तिष्क पर अंकित भाव मूर्तियों को नूतन आकार प्रदान करती है तो काव्य-बिम्बों का उदय होता है ये " काव्य बिम्ब ऐसी मानस प्रतिमूर्तियाँ हैं जिनमें रुप, रंग, रेखा आदि इन्द्रिय गुण विद्यमान हैं किन्तु उनका सक्षात्कार केवल मानस धरातल पर होता है "।[2]

1: आस्था के चरण - डा0 नगेन्द्र पृष्ठ 135

2: अद्भुत रस एवं विस्मय तत्त्व - टंकित शोध प्रवन्ध - डा0 शिवादत्त द्विवेदी पृष्ठ 434

उद्भव के आधार पर बिम्ब दो प्रकार के हो सकते हैं एक स्मृति जन्य दूसरा स्वरचित । स्मृति-जन्य-बिम्ब वे मूर्तियाँ हैं जो चिरन्तर अनुभव के फल स्वरुप हमारे मानस पटल पर अंकित हैं और प्रसंगानुसार कल्पना उन्हें सम्मूर्तित करने का प्रयास करती है ।

दूसरी स्थिति में हमारी कल्पना किसी सन्दर्भ विशेष के अनुरुप नूतन बिम्बों की सृष्टि करती है । इसके द्वारा जीवन के सूक्ष्म अनुभव-चित्र एक समग्र एवं पूर्ण इन्द्रिय ग्राही भाव चित्र में परिणत हो जाते हैं । वास्तव में साहित्य के क्षेत्र में सर्व श्रेष्ठ बिम्ब विधान स्वरचित बिम्ब विधान ही है ।

बिम्ब के संबन्ध में एवं उसके वर्गीकरण के संबन्ध में बहुत कुछ कहना शेष है । अतः शास्त्रीय चर्चा के विस्तार में न पड़कर हम चिंतामणि के कुछ ऐसे बिम्बों को प्रस्तुत करना चाहेंगे जो भाव एवं अनुभाव के असंख्य बिम्बों को अपने आप में समेटे हुए हैं । यद्यपि रीतिकालीन परिवेश में बिम्बों को प्रायः इन्द्रिय ग्राहय रुप में ही प्रस्तुत किया गया है तथापि ऐसे मनोरम प्रसंगों की कमी नहीं है जहाँ भाव और ऐन्द्रिकता दोनों एक दूसरे से घुल मिल गये हैं । श्री कृष्ण रुप वर्णन का एक बिम्ब देखिये :-

नील पयोद घटान की पांति दिगन्तन कान्ति छटा परि पूरति ।
मोर किरीट मनौ मघवा धनु दामिनि सी प्रगटै पर सूरति ।।
मंद हँसी मुख चन्द सुधा वरसै मन मोर के बाढ़ै भट्ट रति ।
नैननु को फल जीवन सारु विलोकिये नन्द कुमार की मूरति ।।[1]

श्री कृष्ण के श्याम वर्ण को बादलों के समान मानकर उन्हें घनश्याम तो बहुतों ने कहा किन्तु उस श्यामता को वर्षा ऋतु के रुप में प्रस्तुत करके कवि ने जिन अनुभव खंडों को एक लक्षित बिम्ब का रुप दिया है वह उसकी कारयित्री कल्पना का पुष्ट प्रमाण है । क्षितिज से उठती हुई नील घन घटा जो दिगन्त को व्याप्त कर रही है श्री कृष्ण के अंग की कान्ति जैसी है, और उनके माथे पर मोर मुकुट मानों इन्द्र धनुष अथवा बिजली की भाँति चमक रहा है । मन्द मुस्कान के द्वारा मुख चन्द्रमा से मानों अमृत की वर्षा हो रही है और मन रुपी

1: कृष्ण चरित्र 4/40

मयूर आनन्द विभोर हो रहा है। इस प्रकार श्री कृष्ण का दर्शन आँखों की सफलता है और जीवन का सर्वस्व है। कहना न होगा वर्षा की पृष्ठ भूमि में श्री कृष्ण की शोभा का यह रुपांकन दृश्य-बिम्ब बन रहा है।

प्रियतम के प्रति प्रेम की भावना जब श्रध्दा के लोक में जा पहुँचती है तब रुप दर्शन की प्रक्रिया ही अतिथि बन जाती है। राधा और कृष्ण के मिलन के क्षणों में एक दूसरे की मूर्ति जो आखों में प्रति बिम्बित हुई उसके स्वागत का संश्लिष्ट बिम्ब देखिये :–

लोचन अतिथि भये मिथुन परस्पर,
चरन अरघ को प्रमोद जल दीनो है।
कियो मधुपरक मधुर मुसक्यानि दोनों
तारा मनिमय स्याम आसन नवीनो है।
ललित कर पलक परनि लाइ आपुन पौ,
कीनो सदा (दोउनको) सेवा को अधीनो है।
चिंतामनि हृदय मंदिर अभिलाख
कलप द्रुमनि मंडित कमलपास दीनो है।[1]

भारतीय संस्कृति के अनुरुप अतिथ्य का यह समायोजन दो प्रेमियों के प्रेम मिलन के क्षण में जितना स्वाभाविक है उतना ही संम्भावित है। यह वह भाव बिम्ब है जो प्रेम के औदात्य को शालीनता पूर्ण गरिमा प्रदान करता है।

इसी प्रकार मध्याधीरा के रोष कषायित आँखों में आँसुओं के बूँद को कवि ने खंजन के चोंच में अनार के बीज की उत्प्रेक्षा करके जो बिम्ब प्रस्तुत किया है वह न केवल आंखों भरे की चँचलता को व्यक्त कर रहा है वरन आँसू भरे नेत्रों की सटीक भांकी भी प्रस्तुत कर रहा है। आँखों की कोर में ठहरे हुए अश्रु विन्दु की स्थिर शोभा चोंच में अनार के बीज को पकड़ लेने से ही सार्थक हो सकती है।

1: कृष्ण चरित्र 9/17

रात्रि रहे मनि लाल कहूँ रमि, इहां दुख बाल वियोग लहे हैं
आये घरै अरुनोदय होत, सरोस तिया इमि बैन कहे हैं
लाल भये द्दग कोरिन आनि कै यों असुवानि के बुन्द रहे हैं
चोंचन चोप मनो सिथिले विच खंजन दाड़िन बीज गहे हैं[1]

प्रगल्भा प्रवत्स्यत् पतिका की आँखों के आँसू स्तनों पर इस प्रकार टूट-टूट कर गिर रहे हैं मानों भगवान शंकर की माला से पूजा हो रही है। यहाँ भी उन्नत स्तनों पर आखो से टपकते हुए अश्रु विन्दु को मोती से उपस्थित करना जहाँ एक ओर रंग साम्य रखते हैं वहीं व्यापार साम्य भी, क्योंकि टूटी हुई माला के मोती एक-एक गिरते चले जाते हैं। इष्ट सिध्दि के लिये स्तनों पर अश्रु धारा प्रिय को प्रस्थान से क्यों न रोक सकेगी ? वास्तव में यह बिम्ब जहाँ एक ओर प्रगल्भा नायिका की प्रगल्भता को सूचित करता है वहीं उसके उरोजों के उभार का बिम्ब भी आलोकित हो उठता है तभी तो आँख से गिरने वाले आँसू स्तनों पर टपक रहे हैं।

मंगल साज पयान को गेह ते प्यारे दियो पहिलो पग भू पर।
देखत लाल अलज्ज भयो निकटै मह आनन को जैसे कूपर ।।
ता सम व्याकुल सुन्दरि है आँसुवा परे टूटि उरोज दुँहू पर।
प्यौ अवरोध चढ़ावै मनो द्दग मोतिन माल महेश के ऊपर ।।[2]

कभी-कभी कवि कल्पना से ऐसे बिम्ब की भी समायोजना करते हैं जिनमें वक्ता का भाव तरल सौन्दर्य की भाँति झिलमिलाता हुआ बिम्ब के सौन्दर्य को अनन्त गुणित कर देता है। चिन्तामणि का एक अत्यन्त मनोरम भाव बिम्ब देखिए —

सूरज सन मुख जल बसत सहत सदा दुख कंज।
सुन्दरि पग सायुज्ज को करत मनहु तप कंज ।।[3]

1: क0क0त0 6/113

2: क0क0त0 6/20।

3: क0क0त0 3/73

यहाँ वक्ता नायक-नायिका के सौन्दर्य की प्रशंसा कर रहा है । उसका कहना है कि प्रिये यह कमल हठ योगी की भाँति सूर्योपासनाऔर जल निवास जैसे कष्ट-साध्य तप-प्रयोग, इसलिए कर रहा है कि तुम्हारे चरणों का सायुज्य प्राप्त कर सके (समता तो दुर्लभ ही है समीप तक पहुँचना भी तप का फल होगा) उल्लेख्य है कि जब कमल घोर तप करके भी केवल चरणों के समीप जा सकेगा तो नायिका के मुख सौन्दर्य के लिये संसार में दूसरा उपमान कहाँ मिलेगा ? किन्तु बिम्ब का संकेत यहीं समाप्त नहीं होता । इस प्रशंसा के पीछे सम्भवतः मानिनी के मान मोचन की शोभा भी झिलमिला रही है । जिस प्रकार कमल सूर्य के सम्मुख तप कर रहा है उसी प्रकार नायक विरह सूर्य के तप से उत्तप्त है और कमल की ही भाँति उसके नेत्र जल में निवास कर रहे हैं इस प्रकार सतत दुःख झेलने वाले नायक की व्यथा जान कर भी मानिनी क्या अपने चरणों के समीप तक न आने देगी ? इसी भाव को कवि की कल्पना ने अप्रस्तु विधान दारा असिध्दास्पद फलोत्प्रेक्षा के रुप में प्रस्तुत किया है वह अतिशय चमत्कार जनक है।

इस प्रकार के असंख्य इन्द्रिय विषयी एवं भाव बिम्ब चिंतामणि की कृतियों में अनायास ही प्राप्त होते हैं किन्तु हमने नमूने के तौर पर कुछ बिम्बों को प्रस्तुत करके इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि वे बिम्ब कवि मानस पर पड़ी हुई वस्तुओं, भावों, कार्य व्यापारों एवं परिस्थितियों की प्रति छवियाँ हैं जिन्हें कवि का व्यक्ति वैचित्र्य नवीन भँगिमा प्रदान करता है क्योंकि वस्तु व्यापार आदि का स्वरुप लग-भग स्थिर होता है । केवल ग्राहक की अपनी विशेष मनः स्थिति उसको विशिष्ट रुप में ग्रहण करती है ।

वास्तव में बिम्ब विधान की चर्चा कवि के ग्राहकत्व पक्ष की चर्चा है किन्तु अभिव्यक्ति पक्ष में उसका संग्रह इसलिये किया गया है कि गृहीत की ही अभिव्यक्ति सम्भव है । अतः अब अभिव्यक्ति - कल्पना - पर विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

कल्पना व्यापार :-

कल्पना कवि की मानसी क्रिया है जिसमें कवि की प्रतिभा का विशेष मूल्य होता है । कवि जब काव्य रचना में प्रवृत्त होता है तो कल्पना उसके

मनोजगत में पूर्व संचित अनुभव, संवेदन आदि का मंथन प्रारम्भ करती है और जो कुछ उसे नवनीत की भाँति सार तत्व के रुप में प्राप्त होता है उसके रुपायन के लिये अलंकृत भाषा को सौंप देती है । इसीलिए काव्य कृति की सहनीयता का माप दंड कल्पना की सहनीयता में ही प्राप्त हो सकता है क्योंकि कल्पना का धनी कवि सूक्ष्म रंगों एवं रेखाओं से पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर लेता है और बिखरे हुए खंडों को समेट कर समग्रता प्रदान करता है ।

कल्पना का व्यापार क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है । "जहाँ न जाय रवि वहाँ जाय कवि" की उक्ति इस बात का प्रमाण है कि कल्पना गोचर, अगोचर, स्थूल, सूक्ष्म, वाह्य, आन्तर आदि सभी स्तरों पर सक्रिय रहती है । इतना ही नहीं अभिव्यक्ति के उपादान चयन में भी कल्पना पूरी तरह सक्रिय होती है। इसीलिये शब्दों के चयन से लेकर उन्हें नूतन अर्थवत्ता प्रदान करने तक और अलंकारों की संश्लिष्ट योजना तक में कल्पना निरन्तर सक्रिय दृष्टिगत होती है । अतः कल्पना के संबन्ध में कुछ निवेदन करना मानो काव्य के सर्वांग पर विवेचन करना है किन्तु विवेचन की सुगता की दृष्टि से हम अभिव्यंग्य निष्ठ कल्पना पर ही विचार प्रस्तुत करना चाहेंगे ।

चिंतामणि की कल्पना शक्ति के प्रसार के लिये पर्याप्त अवकाश रहा । जहाँ वे एक ओर रीति काव्य के कठोर शास्त्रीय बन्धन में पड़कर अपनी कल्पना को सीमित संकुचित क्षेत्र में ही बाजीगीरी दिखाने के लिये वाध्य करते रहे हैं वहीं कृष्ण चरित्र जैसे काव्य में उनकी कल्पना को उन्मुक्त और उर्वर वातावरण मिला है ? फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उनका आचार्यत्व उनके कवित्व पर साद्यन्त छाया रहा है और इसलिये रीति ग्रन्थों के प्रभाव ने कल्पना शक्ति को नियंत्रित कर दिया है । ऐसी दशा में उनकी कारयित्री कल्पना की अपेक्षा पुनुरुत्पादक कल्पना अधिक सक्रिय रही है ।

जहाँ तक कल्पना के क्षेत्र का प्रश्न है चिंतामणि की रचनाओं में शृंगार भक्ति, नीति, और कर्म सौन्दर्य आदि जीवन के अनेक पक्षों को पर्याप्त अवसर मिला है । हम शृंगार को ही लें – शृंगार में नायक-नायिका भेद के अन्तर्गत

नायिकाओं के रूप सौन्दर्य की अभिव्यक्ति पर इन्होंने विशेष बल दिया है और प परम्परा से प्राप्त सौन्दर्यांकन को अपनी वैयक्तिक रुचि एवं अनुभूति से अधिक पैना बनाने का प्रयास किया है ।

क्रिया व्यापारों के चित्रण में कवि का वैदग्ध्य खुल कर खेलने का अवसर पा सका है । इसी प्रकार अनुभावों, संचारियों एवं संयोग वियोग की दशाओं के भावात्मक चित्रों में कल्पना व्यापार अत्यन्त आकर्षक बन सका है ।

रीतिकालीन परिवेश में शृंगार रस के आलम्बन के रूप में नायक-नायिकाओं के सौन्दर्य वर्णन के असंख्य प्रयोग मिलते हैं किन्तु उनमें प्रायः परम्परा प्रसिध्द और शास्त्रीय नियमों के घेरे में बंधे हुए पुराने प्रतिमानों के प्रयोग से कल्पना की परिधि सीमित हो गई है और पुनरुत्पादक कल्पना ही सक्रिय हो सकी है किन्तु कहीं-कहीं कवि की प्रतिभा लीक छोड़ कर नये प्रतिमानों की प्रातिभ सृष्टि करने में समर्थ हुई है, वहाँ कारयित्री कल्पना को उन्मुक्त अवसर मिला है । इसके साथ ही पुनरुत्पादक कल्पना में भी भंगिमा के द्वारा कारयित्री कल्पना का समन्वय कर दिया गया है । आचार्य चिंतामणि भी रीतिकाल के परिवेश से पूर्णतः संपृक्त हैं और इसलिए उनकी रचनाओं में भी परम्परा सिध्द प्रतिमानों का बहुल प्रयोग दृष्टिगत होता है किन्तु इतना होते हुए भी उनकी कारयित्री प्रतिभा का अपूर्व कौशल अनायास ही उपलब्ध हो जाता है । प्रातिभ रूप सृष्टि का एक ऐसा ही बिम्ब देखिए —

वदन मै विधु-कान्ति गोरी की न जानी जाति,
गोरे गात बोरी सारी केसरि के रंग की ।
चिंतामनि कहै चारु चन्द्रिका सी हासी लसै,
निसि नखतावाली मुकत पांति मंग की ।
मानौ ओस बुंद लाल बिम्ब पर विलसतु,
अधर की आभा मुकताहल के संग की ।
पग पर कोस रंग अंगन अनूप ओप,
अंगन में ठाढ़ी मानो अंगना अनंग की ।[1]

1: क0क0त0 6/70

इसमें तीन चरणों में क्रमशः शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन है । चम्पक वर्णी नायिका के शरीर पर केसरिया रंग की सारी एक दम घुल मिल गई है । इसी प्रकार मुस्कान और दातों की शोभा का वर्णन हास्य रस की धवलमा के लिए प्रयुक्त हुआ है । मुस्कुराहट के क्षणों में हंसी की चन्द्रिका से उपमा परम्परा सिध्द है किन्तु उसके बीच मोती से दातों को नखतावली कहना कवि की प्रौढ़ोक्ति है । इसी प्रकार अधरों की बिम्बा फल की उपमा चिर चर्चित है किन्तु दाँतों को बिम्बा फल पर पड़े ओस बिन्दु से उपमित करना निश्चय ही चिंतामणि की अपनी सूझ है । इतना ही नहीं प्रथम पंक्ति में तद्गुण अलंकार और द्वितीय तृतीय में उत्प्रेक्षा का योग कल्पना की कान्ति बढ़ाने में सहायक हुआ है । यहाँ पर पुनरूत्पादक और कारयित्री कल्पना की गंगा-जमुनी आभा है किन्तु अन्तिम पंक्ति में कवि ने नितान्त मौलिक कल्पना प्रस्तुत की है । नायिका के अंगों की अनुपम ज्योति ऐसी प्रतीत हो रही है मानों उसके अंग प्रत्यंग के माध्यम से अनंग की अंगना उतर आयी हो । जहाँ एक ओर नायिका की वाग्वैदग्ध्य से रति से उपमित किया गया है तो वहाँ दूसरी ओर उसे अनंग की अंगना कह कर दो विलक्षण संकेत दिये गये हैं । प्रथम तो यह कि यह नायिका वास्तव में अनंग की अंगना है । जिसे देखकर कामोद्दीपन नितांत स्वाभाविक है दूसरी ओर इस अनिन्द्य सुन्दरी का भोक्ता कोई काम देव जैसा ही हो सकता है कुल मिलाकर नायिका का सौन्दर्यातिशय व्यंग्य है किन्तु यह सब कुछ कवि की अपूर्व कारयित्री प्रतिभा से ही सम्भव हो सका है ।

इसी प्रकार वासन्ती शोभा में कृष्ण से मिलने के लिये सखियों के साथ प्रस्थान करती हुई राधा के सौन्दर्य को प्रकृति की पृष्ठ भूमि में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि राधा वसंत पंचमी हो गई है और वसन्त पंचमी राधा। कल्पना की उर्वर भूमिका में वासन्ती प्रकृति को राधा के अंग-प्रत्यंग के साथ समायोजित कर दिया गया है फिर वसन्त की उत्फुल्लता, कोयल की कूक, झूमती हवा और कुछ अलसाया भाव राधा के नवोद्भिन्न यौवना भाव से कितना मेल खाता है यह सहृदयों के लिये अपरचित नही है । वसन्त यदि काम सहचर है तो वसन्त की श्री सांक्षातमन्मथ की सहचरी होने के लिए प्रस्थित होती हुई क्यों नहीं वासन्ती वातावरण से ओत-प्रोत हो सकेगी ? कवि कल्पना की प्रौढ़ि

का यह मनोरम चित्र इस प्रकार है —

> राधा के अंग संग रुचि त्यौं रुचिर वासु,
> गुलावन के रंग रुचि सौरभनि सौं भिरी ।
> चितहि चुरावति सु कोकिल की वानी लगी,
> कानन चितौनि प्रेम मद की मनौ भिरी ।
> चिंतागनि सोही है रसाल मौर कुंजनि में,
> मलिन के पुंजन सुमानौ मुनिआ चिरी ।
> वालन के बीच तरुणाई आई सिसिर मै,
> माघ सुदी पंचमी में ज्यों वसन्त की सिरी ।[1]

एक और चित्र देखिये :—

> काहू को पूरब पुन्य लता सुतौ बेलि अपूरब तू उल ही है ।
> सोने सो जाको स्वरुप सवै कर पल्लव कांति कहा उमही है ।
> फूल हँसी फल हैं कुच जाहि के हाथ लगै सुकृती सो सही है ।
> आली कियो सुनिकैं बतियां मुसक्याइ लिया मुख नाइ रही है ।[2]

नायिका को जन्मांतरीय पुण्य से उद्भूत लता कहा गया और फिर इस कथन को सांगोपांग सिध्द करने के लिये हाथों को पल्लव फूल को हँसी और फल को स्तन बताया गया है । यदि इतना ही कहकर कवि समाप्त कर देता तो शायद कल्पना की अपेक्षा आलंकारिता को अधिक अवकाश मिलता किन्तु इस विदित यौवना नायिका से सखियों ने जब यह कहा कि यह कुच रुपी फल जिसके हाथ लगेगा वह निश्चितही अनन्त पुण्यशाली होगा तो नायिका ने जिस प्रकार मुस्कराते हुए मुख नीचा कर लिया उसी में कल्पना का सौन्दर्य छलक पड़ा क्योंकि एक ओर नायिका की लज्जा व्यंग्य है तो दूसरी ओर मुस्कराकर सिर झुकाना और सखियों के कथन का प्रतिवाद न करना उसकी पति कामना को झलका देता है । "मौनं स्वीकार लक्षणं" के आधार पर यह संकेत भी अप्रासंगिक नहीं है कि नायिका स्वयं भी विदित यौवना के साथ रुप गर्विता है । नायिका को पूरब पुण्य की लता कहना और सम्भावित नायक को सुकृती कहना योग्य से योग्य संगम का मधुर संकेत

1: क० क० त० 6/80 2: क० क० त० 6/85

को स्वीकृति क्यों न दें ?

एक और अछूती कल्पना का चित्र देखिये –

स्याम जू के सनेह की स्यामलता में रीझै,
स्यामलता में सब रीझि रह्यो जगु है ।
चिंतामनि कहे जू और वचन की दौर,
मन ऐसो कछू सुखमा को समूह अदगु है ।
पाटी दै सिंगार घन घटन के बीच,
मै मयूख सीस फूल बाल रवि लाल नगु है ।
सेंदुर सुभग तिय माँग राग भरे अति,
मानो पिय मनु के गमागम को मगु है ।[1]

राधा के नख-शिख वर्णन के प्रसंग का यह छन्द अत्यन्त मनोरम है । श्याम के स्नेह में डूबी हुई राधा के श्याम केस जहाँ राधा के मन में श्रीकृष्ण के अनुराग को प्रगट करते हैं वहीं बालों के माध्यम से उन्हें अपने सिर माथे चढ़ाने का अनायास संकेत दे देते हैं । चिन्तामणि इस सौन्दर्य कीअकथनीयता कासंकेत करते हुए उत्प्रेक्षा के माध्यम से एक अतिशय मनोरम कल्पना चित्र प्रस्तुत करते हैं दो भागों में बटी हुई केश राशि की पाटी मानों शृंगार रस के बादलों की घटा है और उसके बीच शीशफूल लाल नग के साथ ऐसा शोभित हो रहा है मानो सूर्य अपनी किरणों का प्रसार कर रहा हो और इस बीच में रागरंजित सिन्दूर ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे मानों प्रियतम के मन के आने जाने के लिये कोई मार्ग बनाया गया हो यहाँ परिणीता पतिव्रता के पवित्र सौन्दर्य की जो झांकी प्रस्तुत की गई है और सिन्दूर की रेखा को जिस पावड़े का स्थान दिया गया है उसमें जहाँ एक ओर सौन्दर्यातिशय व्यंग्य है वहाँ नायिका का शीश प्रियतम के चरणों में निछावर होने के लिये प्रस्तुत है यह भी अनायास ही ध्वनित हो जाता है । कवि की उर्वर कल्पना का इससे श्रेष्ठ उदाहरण मिलना प्रायः कम सम्भव है ।

1: क0क0त0 5/223

कवि का मन केवल नारी सौन्दर्य में ही रमा हो ऐसा नहीं वरन नर सौन्दर्य चित्रण में भी कवि की कल्पना निर्बाध रुप से सक्रिय रही है । श्री कृष्ण के रुप वर्णन में पुनुरुत्पादक और कारयित्री प्रतिभा के योगयोग का मनोरम चित्र देखिये –

माथे मोर पखें अंग पानिप तरंग,
　　ब्रज अंगना सनेह संग झलकत ताल में ।
मन को पकरि लेत कुन्डल मकर मनौं,
　　अमल कलिंदी जल देह छवि जाल में ।
चिंतामनि निकरव पखान मानो हेम रेख,
　　पीत पटु सोहै वपु दीपति विसाल में ।
स्यामल गुपाल तन विलसै मुकुत माल,
　　ओस विन्दु माल मानौं तरुन तमाल में ।[1]

यहाँ मोर मुकुट मंडित श्री कृष्ण के अंगों में कान्ति के जिस तरंग की कल्पना की गयी है उसमें ब्रजांगनाओं के स्नेह का संगु आभा को दिगुणित करने में समर्थ हुआ है । किसी के स्नेह की वर्षा से प्रेमी के सौन्दर्य में निखार आ जाना अस्वाभाविक नहीं है किन्तु कल्पना के चमत्कार ने जिस सौन्दर्य की धारा का समायोजन किया है उसमें मकराकृत कुन्डल को जमुना में स्थित मकर बनाकर मन को पकड़ लेने वाला सिध्द करके अपूर्व संगति बनाई है । पीताम्बर को कसौटी की स्वर्ण रेखा बनाना पुनरुत्पादक कल्पना है किन्तु गोपाल के शरीर पर मोतियों की माला को तरुण तमाल पर ओस विन्दु की झलक से उपमित करना मौलिक सूझ है ।

इसी प्रकार नवीन उपमानों की योजना में भी कवि की कल्पना की मनोरमा छटा देखने को मिलती है । श्री कृष्ण के माथे पर कुंकुम का तिलक और शालिग्राम शिला पर सुवर्ण की रेखा में न केवल वर्ण साम्य है अपितु श्री कृष्ण और सालिग्राम में ईश्वरत्व की दृष्टि से जो अभेद संबन्ध है वह कल्पना के सहारे दिव्यता को प्राप्त करता है । वैसे इस छन्द में सभी कल्पनायें एक से एक अपूर्व हैं और नूतन उद्भावनाओं की होड़ सी लगी हुई है –

1: कृष्ण चरित्र ।2/25

इन्दु पर नील धनु तापर ज्यौं इन्द्र धनु,
बदन चिकुर मोर मुकुट विचार मैं ।
नील मनि दरपन चन्द्रिका फलक छवि,
कोमल कपोलन की हांसी सुकुमार मैं ।
चिंतामनि कहै मानो बीजुरी बादर पीत,
अम्बर सोहत तनु सुखमा उदार मैं, ।
सालिग्राम सिला पर सुबरन रेख सम,
कान्ह जू के कंमकुमा को तिलक लिलार मैं ।[1]

उल्लेख्य है कि इस प्रकार के रूप- चित्रण में कारयित्री कल्पना के चमत्कार से ही उत्कर्ष का सहज समावेश हो पाता है किन्तु व्यापार के आंकलन में प्रसंग-योजना को निर्बाध अवसर प्राप्त होता है जो कल्पना के लिए उर्वर भूमिका प्रस्तुत करता है । इस प्रकार के व्यापार जिनमें नायक - नायिकाओं की चर्चायें चेष्टायें, हाव- अनुभाव और संयोग - वियोग संबन्धी अवस्थाओं की स्वाभाविक छटा होती है और उसमें कहीं चातुर्य और कहीं भोलापन कहीं चमत्कार और किहीं स्वभावोक्ति की योजना द्वारा कारयित्री प्रतिभा निखर उठती है । एक प्रसंग योजना देखिये –

ग्वारि सभा महि ठाढ़ी ही द्वार दिखाइ दई कहुँ आनि कन्हाई ।
रीझि रही रिझवारि विलोकि, भरे सब अंग अनूप निकाई ।।
नैन कटाक्ष परे हरि के मनि मीन मनोसर पांति चलाई ।
पेम दहारि में बूड़ो हियो जन के छलके अखियाँ भरि आई ।।

अनेक ग्वालिनों के बीच द्वार पर एक गोपी खड़ी है । श्री कृष्ण अचानक दिखाई पड़ गए । उस अनुपम सौन्दर्य को देखकर वह प्रेम विह्वल हो उठी और उस पर से श्री कृष्ण की तिरछी चितवन ने मानों उसके मन रूपी मीन को बेध दिया और फिर तो हृदय प्रेम के जलाशय में डूब गया और उससे जो जल छलका उससे आखें भर आयीं । गोपी की आँखों में प्रेमाश्रु के आविर्भाव की दृष्टि से जो कारण योजना की गई है वह मौलिकता के साथ अत्यन्त संगत भी है किन्तु आखें भर आने का एक दूसरा संकेत भी इसमें छिपा हुआ है वह है ग्वालिनों के बीच खड़ी होने के कारण श्री कृष्ण के से न मिलने की बेबसी । ऐसी स्थिति

1: कृष्ण चरित्र 5/28 2: कृष्ण चरित्र 4/57

में आँखों के भर आने में बेबसी को कारण मानना भी कम महत्त्व पूर्ण नहीं है। हृदय के डूबने में बेहोशी और आँखों के भर आने में अश्रु जैसे अनुभावों की योजना से कल्पना और अधिक उर्वर हो उठी है।

इसी प्रकार अन्य संभोग दुखिता नायिका के रोष कषायित नयनों में अश्रु बिन्दु की उपमा खंजन की चोंच में अनार के दाने से करने में जहाँ उपमान की मौलिक योजना है वहीं अश्रु बिन्दु से नेत्रों में रक्तिमा के प्रति संक्रान्त हो जाने से जो लाली आ गई है उसका भी सफल अभिव्यंजन हो रहा है। आँखों की कोर में आँसू के बूँद का टिका रहना भी बिम्बित हो रहा है और आगे बढ़ कर कहें तो खून के आँसू का संकेत भी पाया जा सकता है।

रति रहे मनि लाल कहूँ रमि इहां दुख बाल वियोग गहे हैं।
आगे घरे अरुनोदय होत सरोज तिया इमि बैन कहे हैं।।
लाल भये दृग कोरनि आनि कै यों असुवान के बुन्द रहे हैं।
चोचन चौंप मनों सिथिले विच खंजन दाड़िम बीज रहे हैं।।[1]

व्यापार की मनोरम योजना की दृष्टि से एक मध्या नायिका के मानसिक उलझन का एक चित्र देखिये। एक ओर प्रिय को देखने, मिलने और बातें करने को जी ललक रहा है और दूसरी ओर लज्जा बरबस रोक रही है। इस अन्तर्द्वन्द्व में फंसी कवि की कल्पना का निखार देखिये –

पेख्यौ चहै पिय को विन ओट बनै न कछु विन घूघट खोले।
भावै न संग छुट्यो पति को सकुचैन करै कछु काम कलोले।।
चाहति बात कहयौ न कहयौ पर जात रहयौ न रहै अन बोले।
झूलति है मन प्रान पियारी को लाज मनोज के बीच हिडोले।।[2]

आलस्य का एक दूसरा चित्र देखिये जिसमें रति श्रान्ता नायिका की शोभा का सुन्दर वर्णन है और कवि की दृष्टि अधखुली पलकों की शोभा पर टिकी हुई है। व्यापार और सौन्दर्य के सम्मलित कल्पना से यह चित्र मनोरम बन पड़ा है :–

1: क0क0त0 9/113

2: वही 6/96

टूटे हार मिटै है सिंगार सब अगनि पै
कोटिन सिंगारन की अंग झलकन की
चिंतामनि कहै अहो कापै कहि जात,
गोरे इन्दु सो वदन पर आभा अलकन की
गुरजनि लखि हैं अगौंछ ले सलोनी यह,
लागी पीकी ललित कपोल फलकन की ।
राति रति रंग पति संग लाज खुली कैसी,
खुली छवि आजु अधखुली पलकन की ।[1]

इस प्रकार के अगणित कल्पनाओं की दीप्ति चिन्तामणि की रचनाओं में देखी जा सकती है । परम्परा भुक्त उपमानों के आधार पर नवीन उपमान योजना और शास्त्रीयता के मार्यदा में भी मौलिक उद्भावना कवि की नवोन्मेष शालिनी कल्पना का ही परिणाम है । अतः यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है कि चिंतामणि कल्पना के धनी हैं और उनका कवि कर्म कल्पना की दृष्टि से अत्यन्त मौलिक एवं श्रेष्ठ है ।

अलंकार योजनाः—

कवि के मानस पटल पर संचित अनुभूति-संवेदन जब कल्पना की रंगीनी से रुप ग्रहण करने लगते हैं तो वे भाषा का आश्रय लेते हैं किन्तु भाषाभाव के अनुरुप बनने के लिए अलंकारों की टकसाल से होकर ही निकलती है तभी उसमें एक नई कान्ति का समावेश हो जाता है । इस दृष्टि से अलंकारों का विशेष महत्त्व है कि वे अभिव्यंग्य और अभिव्यंजन दोनों के उपकारक बनते हैं ।

चिंतामणि की अलंकार योजना का शास्त्रीय दृष्टि से क्रमबध्द मूल्यांकन उनके आचार्यपक्ष में किया जायगा । यहाँ केवल कुछ ऐसे मनोरम सन्दर्भो को प्रस्तुत करना है जहाँ अलंकार योजना से काव्य सौन्दर्य निखर उठा है ।

अर्थालंकारों में उत्प्रेक्षा अलंकार सम्भावनाओं का संसार है । इसलिये उत्प्रेक्षा में कल्पना को पूर्ण अवकाश प्राप्त होता है । जहाँ कवि की कल्पना

1: ~~कककरत्न~~ 6/7 ।

अनन्त आकाश में निर्बाध उड़ान भरना चाहती है वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग होता है । यों तो कल्पना के वैभव की चर्चा करते हुए जिन छन्दों को उद्धृत किया गया है उनमें भी आलंकारिक सौन्दर्य कम नहीं है तथापि कुछ और उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिनमें उत्प्रेक्षा की छटा दर्शनीय है ।

शृंगार रसानुप्रावित रुप वर्णन का एक सन्दर्भ देखिए — नायिका के अंगों की शोभा का चमत्कारपूर्ण वर्णन है । मुख चन्द्रमा के समान है । स्तन चक्रवाक पक्षी जैसे हैं और उनके बीच में रोमावलियाँ ऐसी प्रतीत हो रही हैं मानों दुखी चक्रवाक विरहाग्नि से पीड़ित होकर धूमिल आहें भर रहे हों —

मुख विधु लखि कुच कोक जुग यह विरहागि प्रकाश
रोमावलि जनु लई उनि दुखन सधूम उसास[1]

उक्तास्पदा स्वरुपोत्प्रेक्षा के इस उदाहरण में अलंकार निश्चय ही कल्पना प्रेरित बिम्ब की अभिव्यक्ति में सहायक है ।

रुप वर्णन की दृष्टि से उत्प्रेक्षा के एक दो और सुन्दर प्रसंग देखिये । बिखरे हुए बाल मुख मण्डल पर भौरों की तरह शोभित हो रहे हैं और उनीदे नैन अध मुंदे नील कमल से प्रतीत हो रहे हैं । यहाँ चातुर्य यह है कि प्रातः काल नील उत्पल को "अधखिला " कहना चाहिये किन्तु नायिका राधा के नेत्र रात्रि जागरण के कारण अध मुदे हो रहे हैं इसलिये यहाँ मुदे उत्पल कहना अधिक संगत है ।

सुन्दर करन छूट बांधति छबीली बाल,
मनो मधुकर कुल कलित कमल है ।
चिंतामनि नाल कुच रुचि निरखत निजु,
कलप लता के ऊँचे विलसत फल हैं ।

मुख इन्दु पर राजै अलक ललित,
अरविन्द पै मानों अलि आवत चंचल है ।
राधा जू के नैन ऐसे राजत उनीदे प्रात,
मानो अधमुदे नव नील उतपल है[2]।

1: क0क0त0 3/69
2: कृष्ण चरित्र 5/12

इसी प्रकार मोर मुकुट से शुशोभित कुटिल कुन्तलों से अलंकृत श्री कृष्ण के मुख की शोभा ऐसी प्रतीत हो रही है मानों चन्द्र मंडल के ऊपर इन्द्र धनुष से संयुक्त काले मेघ छा गये हैं। उल्लेखनीय है कि इन्द्र धनुष दिन में निकला करता है किन्तु यहाँ चन्द्रमा के साथ इन्द्र धनुष की चर्चा एक ऐसी विरुध्द धर्मा समायोजन है जिसमें असम्भव को दिखाने की क्षमता है। छन्द इस प्रकार है –

लोग निरन्तर जाहि बखानत हैं सिगरे निगमौ पचि हारे
स्याम को सोभन रुप कला कह पावत कोटि अनंग विचारे
आनन ऊपर मोर किरीट सुबार विराजत धूँघट वारे
इन्द्र के चाप समेट मनौ विधु मंडल ऊपर बादर कारे[1]

पर्यायोक्ति अलंकार में भंगिमा के साथ गम्य अर्थ की अभिव्यक्ति की जाती है। नायिका के नेत्र में लज्जा भी है जो सम्भवतः रतिश्रान्ता का बिम्ब प्रस्तुत कर रहे हैं। सीधी सी उक्ति है –

उर की अँगिया मलगीजी सारी अति चित चैन।
अलसौ हैं से ललित हैं आलु लजौ हैं नैन।।[2]

यहाँ नयनों की लज्जाशीलता और आलस्य का सम्मिलन अनायास ही उसके लालित्य को बढ़ा रहा है।

अर्थान्तरन्यास का यह उदाहरण भी कम महत्व पूर्ण नहीं है। कमलिनी का फूल भौंरों से भरा होता है। कवि की कल्पना एक नया चमत्कार प्रस्तुत करती है। पति मूर्ख हो तो स्त्री को खुली छूट मिल जाती है। फिर जब पति सूर है (सूर्य तथा अन्धा) कमलनी मधुपों (विलासियों) को मधु का दान क्यों न दें।

मूढ़न की मति मन्दता तियन साधु करि लेत।
लखत सूर पति कमलिनी मधुपन को मधु देत।।[3]

1: क०क०त० 7/36
2:
3: क०क०त० 3/250
4: वही 3/282

इसी प्रकार समाधि अलंकार की एक सुन्दर सन्दर्भ योजना देखिये । मानवती राधा को मनाने के लिये श्री कृष्ण उसके चरणों पर लोटना ही चाहते थे कि सहसा बादलों में बिजली कौंध गई जिसे देखकर राधा श्री कृष्ण से लिपट गई यहाँ तड़ित घनश्याम को देखकर तड़ित घनश्याम हो जाने में जो भाव गत सौन्दर्य है वही शब्दों में भी समा गया है ।

हरि चाहयौ पग परन कौ मानवती लखि वाम ।
भई तड़ित घनश्याम में निरखि तड़ित घनस्याम ।।[1]

सौन्दर्य वर्णन में चमत्कार विरुध्द धर्मी समायोजना से आता है जैसे किसी समर्थ राजा के राज्य में सहज बैरी भी अपनी शत्रुता भी भूल जाते हैं वैसे ही मैन महीपति के प्रभाव से निसर्ग वैरी परस्पर हिल मिल गए हैं । यही कारण है कि मुख रुपी पूर्ण चन्द्रमा से केश रुपी घना अन्धकार मिल रहा है और कर कमलों में नख रुपी चन्द्र आ बसे हैं । नख शिख वर्णन की वैदग्ध्य पूर्ण उक्ति इस प्रकार है –

यौं मनि मैन महीप प्रताप तिया तन वैर सुभाउ गिले हैं ।
आनन पूर निशा करके ढिग वार घनेतम आइ हिले हैं ।।
तै सुखमा को समूह कछू अंगुरी पखुरीन प्रकास खिले हैं ।
छोड़ि सदा को विरोध कहा कर कंजन पखुरीन सो नख चंद मिले हैं।।[2]

इस प्रकार अर्थालंकारों की समायोजना में चिंतामणि ने वाग्वैदग्ध का आश्रय लेकर अगणित अनमोल छन्द लिखे हैं किन्तु यहाँ संकेत मात्र देकर विराम लेना उचित प्रतीत हो रहा है क्योंकि आचार्य प्रकरण में प्रत्येक लक्षण की निकष परीक्षा करनी है ।

भाषिक सौन्दर्य :–

कविता भाषा के माध्यम से ही साकार होती है । अतः कवि के भावों की संवाहिका होने के कारण भाषा का महत्त्वपूर्ण योग है । कवि चिंतामणि

1: क०क०त० 3/282

2: वही 7/25।

की भाषा संस्कृत निष्ठ ब्रजभाषा है उसमें शब्दों की तोर मरोड़ कम है। कवि के व्यक्तित्व के अनुरुप भाषा भी गम्भीर और संयत है। किन्तु भावों के अनुसार भाषा भी यथा सम्भव ललित मधुर होती गई है।

अतः प्रासिक शद सौन्दर्य का एक शब्द चित्र देखिये जिसकी अनुगूँज में हृदय का सा आनन्द है। वर्ण मैत्री के योग से पादान्तरगत तुक की समायोजना जैसे मँडन, खंडन, विहंडन, सागर, नागर, आगर, उजागर आदि का अतिशय महत्त्व है।

जगत के मंडन प्रबल दल खंडन,
विपत्ति के बिहंडन प्रचंड तेज देखिये।
साहस के सागर नरिन्द नील नागर,
समत्थ गुन आगर उजागर जे लेखिये।
चिंतामनि सुन्दर सपूत सिध्दि मन्दिर,
भयो पुहुमी पुरन्दर प्रबल पूरे पेखिये।
दारा सहितच्छन सो देत दान लच्छन,
जगत के रच्छन विचच्छन विसेखिये।[1]

इसी प्रकार सानुप्रासिक वर्ण योजना का यह दूसरा छन्द भी प्रस्तुत है –

परम मधुर मूरति मधुर वदन मधुर मुसक्यान
नील नलिन लोचन नवल नील नलिन निभ गान।।[2]

श्री कृष्ण की रुप माधुरी की भाँति भाषा भी मानों माधुरी मंडित हो गई है म र तथा ल ला की अनेक बार आवृत्ति से वृत्यानुप्रास का अपूर्व सौन्दर्य निखर उठा है।

कहीं-कहीं कृत्रिम भाषा के द्वारा वीर आदि रसों को डिंगल भाषा के समानान्तर रुप देने का प्रयास किया गया है किन्तु यह चिंतामणि की स्वाभाविक भाषा का निदर्शन नहीं है।

1: रस विलास अष्टम परिच्छेद 429

2: कृष्ण चरित्र 6/46

भाषागत वैशिष्ट्य केवल शब्दों के चुनाव और उनके सजावट में नहीं है अपितु उनकी अर्थ गर्भिता में है जिसका मूल श्रेय लक्षणा और व्यंजना को है । चिंतामणि का इस प्रकार के रसात्मक प्रसंगों में भी भाषा प्रयोग में सफलता मिली है । इस प्रकरण के पूर्व उध्दृत छन्द इसके साक्षी हैं । इस प्रसंग में कवि को ऐसी सिध्दहस्तता प्राप्त है कि वह एक-एक शब्द के प्रयोग से चमत्कार उत्पन्न करने में समर्थ हुआ है । स्वतः सम्भवी वस्तु से स्वतः सम्भवी वस्तु के द्योतक का यह प्रसंग देखिये –

लोग जगत है काज पर धरत नाग को नेम ।
तू अब करि हरि 'साहजिक' दीन बन्धु से प्रेम ।।[1]

यहाँ 'साहजिक' शब्द विशेष महत्त्व रखता है लोग स्वार्थ से वशीभूत होकर नाग का नियम ग्रहण करते हैं किन्तु दीन बन्धु परमात्मा से प्रेम करना ही उत्तम है क्योंकि वह अकारण करुणा करने वाले हैं इसलिये वस्तु से वस्तु द्योतकत्व का मूल कारण है 'साहजिक' शब्द । क्योंकि साहजिक का अर्थ जन्म जात भी होता है और अकारण भी । इस प्रकार चिंतामणि की कला भाषा, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब आदि के समन्वय से अत्यन्त सुरम्य और समर्थ हो उठी है । चिंतामणि की कलात्मकता विशेषतः सादगी पर निर्भर है और भावों की दृष्टि से सफल भी है ।

××0××

1: क0क0त0 6/37

2: चिन्तामणि रस भाव योजना

======================

* चिन्तामणि की रस भाव योजना *

काव्य में का आनन्ददायक तत्व भाव है जो अपने उत्कर्ष में आस्वाद-नीय बनकर इसकी संज्ञा प्राप्त करता है । जब हम रस के सामान्य तत्वों पर विचार करते हैं तो प्रधान रूप से आलम्बन और आश्रय का महत्व दृष्टिगत होता है ।

जहाँ तक चिन्तामणि का प्रश्न है उनकी रस योजना के आलम्बन प्रायः दो प्रकार के दिखाई पड़ते हैं । एक सामान्य प्राणी जिसका जीवन लौकिकता से ओत-प्रोत है और दूसरे वे हैं जिनमें लौकिकता के साथ दिव्यता विद्यमान है । उदाहरणार्थ कहीं सामान्य लौकिक नायक- नायिका के प्रणय व्यापार की चर्चा से लौकिक श्रृंगार की निष्पत्ति दिखाई देती है तो कहीं राधा-कृष्ण का दाम्पत्य प्रणय अलौकिक धरातल का संस्पर्श करता है । इसी प्रकार वात्सल्य आदि के भी आलम्बन भेद देखे गये हैं । ऐसी स्थिति में चिन्तामणि के भाव तत्व की समा-लोचना से पूर्व यह उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है कि राधा-कृष्ण आदि के आलम्बनत्व के कारण इनका श्रृंगार बहुधा भक्ति श्रृंगार में परिणत हो गया है । इसी प्रकार वात्सल्य भक्ति वात्सल्य में ।

इस प्रकरण में रस भाव योजना पर विचार करते हुए इस बात का ध्यान रखा गया है कि श्रृंगार में भक्ति या भक्ति में श्रृंगार आदि का अन्तरावलम्बन न हो और यथासम्भव प्रस्तुत रसास्वाद का विवेचन सीमा में ही बंधा रहे किन्तु यदि विचार करके देखें तो श्रृंगार वात्सल्य और भक्ति तीनों भक्ति से अनुप्राणित दिखाई पड़ते हैं उनका मूल कारण यह है कि भक्ति में लौकिक अलौकिक जैसा भेद प्रायः लुप्त हो जाता है । अस्तु चिन्तामणि की भाव रस योजना की दृष्टि से क्रमशः श्रृंगार, भक्ति, वात्सल्य और वीर रसों का उल्लेख किया जा रहा है अन्य रसों का उल्लेख किया जा रहा है अन्य रसों के अधिक उदाहरण प्राप्त नहीं होते इस-लिए उन सबका उल्लेख आचार्य पक्ष में किया जायेगा ।

रस काव्य की आत्मा और आनन्द का मूल उत्स है । श्रृंगार रस तो सर्वात्माना आनन्द स्वरुप है । रीतिकालीन परिप्रेक्ष्य में रस या भाव के चित्रण को अधिक अवसर मिला है । इसका कारण यह है कि कवियों ने जीवन की रंगीनियों को निर्व्याज भाव से शब्द-शब्द -बध्द करने का प्रयास किया है ।

शृंगार रस :-

रीतिकाल का सर्वाधिक प्रिय और चर्चित रस शृंगार है । शृंगार में ही जीवन की वास्तविक और सहज आकांक्षाओं को उन्मुक्त रुप से अभिव्यक्ति मिली हैं । अतः यह कहा जा सकता है कि रीतिकालीन काव्य का उपवन शृंगार की रस-माधुरी से अभिसिंचित है ।

रीतिकाल का कवि नागर सभ्यता से प्रभावित है । उसका जीवन नैतिकता और आध्यात्मिकता से दूर विलासिता से अनुप्राणित रहा है इसीलिए उस युग का कवि नागर सभ्यता से पूर्णता प्रभावित है । सामंती जीवन में कला की उपासना अत्यन्त स्वाभाविक थी । लौकिकता एवं लौकिक सुखों के प्रति आकर्षण ने कवि को परिस्थितियों से संघर्ष करने की अपेक्षा समझौते के लिए प्रोत्साहित किया । दरबारी वातावरण से अभिभूत होने के कारण न उसकी कल्पना उन्मुक्त ~~होने के कारण~~ उड़ान भरने में समर्थ हुई और न वह सामान्य जन जीवन में घुलमिल सका ।

आश्रयदाता की रुचि के अनुरुप वह स्वयं ही सौन्दर्य-प्रिय रसिक और विलासी बन गया । उसकी कल्पना एक सीमित क्षेत्र में ही बाजीगरी दिखाने लगी और उसका प्रतिभा-प्रदर्शन श्रोताओं या पाठकों को विस्मय विमुग्ध करने में सार्थकता का अनुभव करने लगा ।

ऐतिहासिक दृष्टि से रीतिकालीन काव्य भक्तिकाल का उत्तराधिकारी है । अतएव जहाँ एक ओर भक्तिकालीन प्रेरणा भूमि ही रीतिकालीन काव्य की आधार भूमि है वहीं बहुल भोगेच्छा और पिपासा ने उसे मांसल बना दिया और दिव्यता, शुचिता और आध्यात्मिकता भौतिकता में परिणत हो गई ।

स्पष्ट शब्दों में सामन्ती वातावरण की विलासिता एवं कामशास्त्रीय शृंगारिकता ने इतना अभिभूत कर लिया कि राधा और कृष्ण पारमार्थिक धरातल से उतर कर सामान्य स्त्री-पुरुष या नायिका-नायक के रुप में अभिव्यक्त किये गये । इसलिए इन कवियों के वर्ण्य-विषय मुख्यतः रुप और यौवन के विलास-व्यापार बने ।

चिंतामणि के व्यक्तित्व की चर्चा के क्रम में हम कह आये हैं कि वे एक आस्तिक सद् गृहस्थ थे । इसलिए उनका संस्कारी व्यक्तित्व राधा-कृष्ण के प्रति

भक्ति भावना से ओत-प्रोत रहा है किन्तु उस समय के अभिजात वर्ग की विलासिता और रीतिबध्दता के आग्रह से उन्होंने श्रृंगार वर्णन में पूरी रुचि ली है । अन्तर केवल यह है कि जहाँ भक्तिकालीन श्रृंगार को ईश्वरार्पित करके उदात्त एवं पवित्र बनाया गया था वहाँ रीतिकाल में उसे सांसारिकता के रंग में रंग दिया गया । इसीलिए रीतिकाल में न तो भक्ति का भावावेश है और न ईश्वरार्पित आत्मा का प्रखर विश्वास । अस्तु, रीतिकालीन दृष्टि विलासमयी एवं रसिकला से पूर्णतः अभिभूत है ।

सुन्दरता काम भावना की आधार भूमि है । रमणी का आकर्षक रुप यदि पुरुष के मन में विक्षोभ उत्पन्न करता है तो पुरुष का ओजस्वी रुप नारी को विगलित कर देता है । इस प्रकार नारी और पुरुष दोनों में रुप का आकर्षण समान रुप से लक्षित होता है तथापि नारी का सौन्दर्य पुरुष को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित करता है । एक बात और ध्यान देने योग्य है कि तत्तकालीन नागर संस्कृति में नारी सांसारिक भोग का प्रतीक बन गई थी इसलिए नारी के प्रति पुरुष का आकर्षण अधिक तीव्र है । यही कारण है कि श्रृंगार रस के आलम्बन व आश्रय के रुप में नायक और नायिका के रुप वर्णन के प्रति आचार्य चिंतामणि का भी पर्याप्त झुकाव रहा है । अतः उनके श्रृंगार का विवेचन रुप वर्णन से ही आरम्भ किया जाता है ।

नायक रुप वर्णन :-

आलम्बन का रुप सौन्दर्य आश्रय के मन में रति भाव जागृत करने में समर्थ होता है इसीलिए रुप माधुरी के प्रति ब्रजांगनाओं में वैसा ही आकर्षण विद्यमान है जैसा चन्द्रमा के प्रति चकोर के मन में होता है -

कान्ह बदन विधु रुचि सुधा, चखिन चकोरनि प्याइ ।
यों वरनत ब्रज नागरी सब निज सखिन सुनाइ ।।[1]

वस्तुतः श्री कृष्ण का सौन्दर्य अपने अलंकृत रुप में इतना आकर्षक है कि

1: कृष्ण चरित्र 4/38

उस पर बिना मोल बिक जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं –

'को बिनु मोल विकात नहीं मनि या मुख पंकज के मन लागै'[1] ।

इसका प्रभाव यह है कि –

और सबै कछु तुच्छ लगै मनि रुप की रासि हिये अवरेखै ।
भागन सो उमगै सजनी मुख जीन्ह हँसी मुख चन्द के पेखै ।।
देह दसा सिगरी बिसरै जो तो गेह को आजु कहौ किन लेखै ।
कौन बकै लखि को न छकै यह नन्द के छोहरा की छवि देखै ।।[2]

इस रुप की झाँकी जिसे मिल जाती है उसे ही वास्तव में आँखें पाने का सच्चा फल प्राप्त होता है वही जीवन की सार्थकता का अनुभव करता हुआ कह उठता है –

नैनन को फलु जीवन सार विलोकिये नन्द कुमार की मूरति[3]

तो आइये नन्द कुमार के उस नटवर वेश का दर्शन करें जो ब्रजांगनाओं की आँखों में समाया हुआ है और जिसकी अभिरामता उनके मानस में घनीभूत हो रही है –

गोरज रंजित कुँतल बध्द मनोहर मोर किरीट विराजै
काननि में मनि मंडित कुंडल मंजु कपोलन मै छवि छाजै
मैन के बान से नैन चलैं सखि श्रौन सुधा मुरली धुनी बाजै
जोन्ह हँसी मुख चन्द गोविन्द की नैन चकोरन को सुख साजै[4]

मोर किरीट में चन्द्रिका पांति,
बनी मनि इन्द्र को चाप सो पेखौ ।
मंजुल मंद बयारि चलै,
पट पीत चलै चपला अवरेखौ ।

1: कृष्ण चरित्र 4/42
2: वही 4/41
3: कृष्ण चरित्र 4/40
4: वही 4/44

है यह जीवन दान अली,

बग पाँति अली मुकतावलि लेखों ।

नैननि को मन को अभिराम,

घनी घनस्याम की मूरति देखो ।[1]

इस प्रकार की नन्द नन्दन की रुप माधुरी के दर्शन मात्र से गोपांगनाओं मानों सुख के समुद्र में डूबने उतराने लगती हैं क्योंकि यह रुप ऐसा रिझावन हार है कि उनकी आँखों का रीझ जाना बड़ा स्वाभाविक है, अथवा मुख शोभा को देख कर ठगी रह जाना और मन मोहन के ऊपर तन मन वार देना कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

चिंतामणि ने रुप वर्णन में पर्याप्त रस लिया है । जहाँ अवसर मिला है श्री कृष्ण की रुप माधुरी का हृदयावर्जक चित्र खींचा है किन्तु कवि कुल कल्प तरु में श्री कृष्ण के नख-शिख वर्णन के क्रम में उनके अंगों की शोभा का अत्यन्त मनोरम उरेहण है । यद्यपि कवि की कल्पना श्री कृष्ण के सौन्दर्यांकंन में अपने को असमर्थ पाती हुई यह कहने के लिए विवश है कि श्री कृष्ण की रुप शोभा का वर्णन त्रिलोक में कोई नहीं कर सकता तथापि वह बारम्बार नवीन उपमानों की योजना करती चली जाती है । कवि प्रौढ़ोक्ति के आधार पर ये सौन्दर्यानुभूति के वर्णन चित्र इतने मनोरम बन पड़े कि पाठक भी कवि के साथ भाव विभोर होकर कृतकृत्यता का अनुभव करता है । आंगिक शोभा के एक दो चित्र देखिये -

कपोलों की शोभा का अंकन देखिये -

कान्ह के अंगन की छवि देखत नीको न अंग लगे आरसी को

ऐसी मनोहर मूरति मैं मन लागत है मनु धन्न जसी को

सोहे सुभाव कपोलनि मैं नद नंदन को मृदु मंद हंसी को

नील महा मनि आरसी माँह मनो भलके प्रति बिम्ब ससी को[2]

रुप वर्णन की इस परम्परा में एक एक अंग गुण, स्वभाव और क्रिया-व्यापार आदि के माध्यम से कवि ने ऐसे-ऐसे भावात्मक चित्र प्रस्तुत किये हैं जो भावुक हृदय के सर्वस्व बन गये हैं ।

1: कृष्ण चरित्र 4/45

2: क०क०त० 7/29

नायिका वर्णन :-

शृंगारी कवियों में नायिकाओं के अंग-प्रत्यंग के शोभा का वर्णन बहुत रस लेकर किया है । नख से शिख तक की रुप माधुरी का अलंकृत और मनोरम वर्णन अत्यन्त हृदयग्राही है । इस लघु खंड में दो एक अंश प्रस्तुत करना ही सम्भव है अतः नमूने-तौर पर नेत्र वर्णन का यह अंश देखिये -

महारथी कामदेव के मुख चन्द्र रुपी रथ में जुते हुए मीन अथवा सोने के पिंजड़े जैसी जरतारी सारी में छिपे हुए खंजन अथवा मुख के सुन्दरता रुपी सरोवर में उगे हुए नील कमल जैसे यह नयन , जो नैतिकता नहीं जानते और जो चित्त का चैन चुरा लेने वाले हैं, ऐसे अभिराम हैं कि उनका वर्णन करना भला कब सम्भव है -

अमल कपोल प्रति विंबन सहित मनि जटित ताटंक चारि चारु छवि धाम है ।
चिंतामनि बदन मयंक रथ रचि रुचि मीननहे मंजुल दै महारथी काम है ।
सारी जरतारी हेम पंजर में खंज मुख सुखमा सरोवर के सरसिज स्याम है ।
चाहे नैन नैन जाने जैसे चैन होव दैन कहाँ लौं कहोंगे जैसे नैन अभिराम है[1]।

इसी प्रकार स्तनों के वर्णन में कवि की कल्पना शक्ति प्रखर हो उठी है। जब ब्रह्मा ने यौवन को राज्य दे दिया तो उसने बचपन को देश निकाला देकर फिर से नया राज्य बसाए और रति और काम रुपी दो देवताओं के निवास के लिये स्तन के रुप में मानों सोने के दो मठ बना दिये -

बालापन की निकासी भई बल चाके अयान दै आदि भुठागे ।
जौवन को बिधराजु दियो उन आन किये सब काज सुठाये ।
चूचक में चकवै मनि छत्रन के कलसा करि का तनु ठाये ।
देवता द्वै रति मैन के दै कुच सोने के दै मठ मानों उठाये ।।[2]

रुप का उद्दीपनात्मक महत्त्व कम नहीं है । आलम्बन की सौन्दर्य माधुरी आश्रय के हृदय में रति भाव जगाने में पर्याप्त सहायक होती है । इतना

1: क0क0त0 6/229

2: वही 6/240

ही नहीं आलम्बन निष्ठ सौन्दर्य प्रसाधन भी उद्दीपन का काम करता है ।

रुप दर्शन से रतिभाव के उद्दीपन का यह चित्र देखिये –

फूले पुंडरीक नैन तारा मधुकर मुख पर,
वारि फेरि अति चन्द की निकाई है ।
मोर पच्छ मनिमय जटित मुकुट चाप,
चिंतामनि चारु पीत पट चँचलाई है ।
मोतिन की दाम बग पाँति अभिराम अंग,
अभिनव घन घटा अंग गहिराई है ।
लषत झलकि आई छवि की छलकि,
राधा प्रेम की ललकि अँखियन है दिखाई है ।[1]

यहाँ श्री कृष्ण के अंग सौन्दर्य को देखकर राधा की आँखों में प्रेम की ललक का उल्लेख राधा के मन में रति भाव की उद्दीप्ति की व्यंजना कर रहा है । अतः रुप का शृंगार रस की दृष्टि से उद्दीपनात्मक महत्त्व कम नहीं है ।

इसी प्रकार राधा के अलंकृत रुप को देखकर श्री कृष्ण के मन में प्रेम का उदय रुप-सज्जा के उद्दीपनत्व का साक्षी है । देखिए –

चिन्तामनि दिव्य अनुलेपन रच्यौ है राधा,
रतन अमोल हार कान्ह पहिराये हैं ।
सुन्दर के सकुच सुरंग अंग इंगितनि,
मन मनमोहन के मोद उमगाये हैं ।[2]

आलम्बन गत रुप और सौन्दर्य प्रसाधन के अतिरिक्त परिवेश भी उद्दीपक होता है जिसमें प्रकृति चित्रण मुख्य होता है । यह प्राकृतिक परिवेश अपनी एकान्तता और मादकता आदि के कारण संयोग में भी उद्दीपन का काम करता है किन्तु वियोग में प्राकृतिक उद्दीपन का काम महत्त्व बहुत अधिक बढ़ जाता है और संयोग जन्य अनुकूलता प्रतिकूलता में परिणत हो जाती है । विरहिणी राधा को वसन्त का सारा वातावरण दुःखदायी प्रतीत हो रहा है । छन्द इस

1: कृष्ण चरित्र 9/15 2: कृष्ण चरित्र 9/34

प्रकार है –

बोली यों विरह आगि कातर राधिका क्यों न,
होत ऐसे थल विरही जन विहाल हैं ।
दच्छिन अनल देह दहति निकारि चलौ,
आली पीत पराग ये फुलिंगन के जाल हैं ।
चिंतामनि कहै इयाँ ए कारे होत जरि जरि,
पिक कुल कोलाहल करत कराल है ।
सधूम सदन आगि तुलित ये मुकुलित,
प्रफुलित अलि कुल कलित रसाल है ।[1]

और विरह की तीव्रता में तो समस्त शीतल उपचार दाहक बन जाते हैं ।

शृंगार रस के अनुभाव चित्रण में भी चिंतामणि को पर्याप्त सफलता मिली है । राधा श्री कृष्ण के परस्पर दर्शन से जिन सात्विक भावों का उल्लेख कवि ने किया है वे वास्तव में बड़े ही स्वाभाविक हैं । लोचन चन्द्रिका के साथ वासन्ती प्रकृति की शोभा को देखने में निमग्न राधा में सहसा जिन सात्विक भावों का उदय हुआ उन्हें कवि ने इस प्रकार बिबध्द किया है –

लोचन झलयो प्रमोद जल कंप स्वेद,
पुलक अचल तनु ललित पसार्यो है ।
पीत रंग भयो मुख बैन निकरैन मैन,
इंगित निरखि कछु खेल यों उधार्यो है ।
देखत कन्हैया जू की वहै गति भई,
उन देवता सरुप धेय आपनो विचार्यों है ।
वचन अगोचर परम आनन्द नन्द नन्दन,
सो वृषभान नन्दिनी निहार्यो है ।[2]

इसी क्रम में कवि ने अन्यत्र भी अनुभावों की योजना की है । बानगी के लिये एक चित्र देखिये –

1: कृष्ण चरित्र 9/4

2: वही 9/12

लोचन प्रमोद घन सारं रज सोंछ,

पायो सीत बात तें पुलक कंप गात ते ।

थंम कुंज पहुँच प्रेसेद कन मोतिन में,

लथ विवरनता विनय अवदान ते ।

चिंतामनि कहे सतुक सुरंग जीति वाला,

करि मोहित मधुर मुख बात ते ।

सरस वचन रचना है उल्लसति,

सुललत पर देवता कृपा करा छपाते ।[1]

शृंगार के वाचिक अनुभाव की योजना में भी चिंतामणि ने सफल प्रयास किया है –

सुन्दरी विलोकि पट ओट मुसक्यानि सुधा,

सींचि करि नेह मनो बेलि उलहाई है ।

राधा मन मधुप के मत्त करिवे को,

वचनावलि मुकुन्द फूल पाँति उमगाई है ।[2]

शृंगार रस के अंगों के सांकेतिक उल्लेख के बाद शृंगार के संयोग और वियोग पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है । कवि कुल कल्प तरु आदि में तो इसके उदाहरण हैं ही, कृष्ण चरित्र में भी अनेक स्थलों पर कवि ने शास्त्रानुकूल संयोग शृंगार की सभी स्थितियों का उपनिबन्धन किया है । प्रिय से मिलनोत्कंठिता के क्रम में नायिका के अभिसारका अलंकरण-विधान बड़े बिस्तार से कृष्ण चरित्र में वर्णित है । शुक्लाभिसारिका राधा पहले अभिसार के निमित्त अपना शृंगार करती है और तदनन्तर अभिसार करके श्री कृष्ण से मिलती है । एक तो वह स्वयं गौरवर्ण की है, दूसरे उसके समस्त शृंगार-सम्भार करके श्री कृष्ण से मिलती है । धवल हैं: इसलिये वासन्ती चन्द्रिका की धवलिमा में खो जाना उसके लिए अत्यन्त सुलभ है –

अभिसारिका की साज-सज्जा का एक चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है –

1: कृष्ण चरित्र 19/26 तथा 9/28

2: वही 9/27

विसद पुहुप हीरा मुकुत विलसत कच उतमंग ।
जनु जमुना जल पूर पर झलकत गंग तरंग ।।
सित रुचि सारी असित कच सुभग प्रभा आभोग ।
मनौ चन्द्रिका तिमिर को लसत ललित संजोग ।।
मांग मुकुत टीका मुकुत नासा मुकुत सुढार ।
राधा मुख विधु बिम्ब को जनु उडगन परिवार ।।[1]

एक अभिसार का चित्र देखिए –

स्वेत पहुप गूँथि केस पक्ष मूँद करि, चन्दन की खौरि घन सार सारवन्त की
छीर फेन चीर मोती आभरन हरि हूजे, कमला कमल मुखी कमला के कान्त की
चिंतामनि मोहन के मोहिबे को छवि, धरि मैन तंत मंत मोहिनी अनन्त की
चन्द रचौ चन्द्रमुखी चन्द्रिका सो मिलि चलि आज पूरे चन्द की है चन्द्रिका वसन्त की[2]

अभिसार के वर्णन के बाद नर्म उपचार के वर्णन का एक उदाहरण देखिये–

पुलकित तन मुकुलित नयन सुमृदुल हसत मुख मैन ।
श्री राधा की रुचि हरिहि हिये परम सुख मैन ।।
कान्ह जितैया काम के मोहित कै मृदु वानि ।
कियौ मैन की महा निधि नीबी मैं करु आनि ।।
कुच कपोल नाभी त्रिवलि रोमावलि सुहराइ ।
नीवि ग्रन्थि खोली लला तिय करु करषि
खोली नीबी ग्रन्थि पिय भौहैं बंक चढ़ाइ ।
सजल दृगन मृग लोचनी चितई मृदु मुसुक्याइ
हरि उर रति रन कचनि हनि दै सहि नखरे खानि
चकी झकी अकबकी कल कुहकी कोकिल बान[2]

नर्म उपचार के चित्रण के बाद सुरत का एक चित्र देखिये –

अति मनोहर दंपति के आलिंगन पर,
वारियत त्रिभुवन सुखमा सुवेष है ।

1: कृष्ण चरित्र ।।/9-।।
2: वही ।।/60
3: कृष्ण चरित्र ।।/81-84

स्वप्न में श्री कृष्ण का दर्शन करके राधा को जो आनन्द प्राप्त हुआ था वह जागने पर विरह वेदना में परिणत हो गया और राधा अथाह वेदना सागर में डूब गई । इसका शब्द चित्र चिंतामणि ने इस प्रकार से खींचा है –

तहाँ स्याम सुन्दर खरे, खरे मनोहर गात ।
मैंन रूप रुचि हैम मनि, नैन नलिन नव पात ।।
सरद इन्दु सुन्दर बदन, सुषमा सिन्धु अपार ।
सपने में श्री राधिका, देखे नन्द कुमार ।।
श्री राधा को सुख निखि, प्रमुदित है मुसुक्याइ ।
प्रगटत दृगन अधीनता, हेरे करि ललचाइ ।।
निरखि दुहुन के दृगनि में, उमगे हास विलास ।
निकट मदन आन्यौ मिथुन, मुख चुम्बन की आस ।।
ताखन ही अँखियाँ खुली, विकल भई वह नारि ।
सपन रंक निधि वास मैं, वाको भयो मुरारि ।।[1]

इसी प्रकार मान के भी अनेक सुन्दर उदाहरण देखे जा सकते हैं । ईर्ष्या-मान एवं मानापनोदन का एक समन्वित चित्र देखिये –

मान कियो वृषभान लली, अनतै अवलोकत लाल लहे ।
उत आइ जुरी सखियाँ सिगरी, पिय आगे सखी एक बीज कहे ।।
दृग मूँदि रहे चितये जु पै मान, लला हँसिते दृग मूँदि रहे ।
मुसक्याइके राधिका आनन्द सो, भुज मालसो लाल लपेटि गहे ।।[2]

इसी प्रकार कृष्ण चरित्र में भी नायिका के मान का चित्रण किया गया है तथा कृष्ण द्वारा मान मोचन का लम्बा वर्णन मिलता है –

यह सुनि मौर स्याम भौंहें करि टेढ़ी ।
अरविन्द मुखी व्याज और कुंज मौन आई है ।।
जहाँ सुर तरु मूल मनि मै वेदिका में दिव्य ।
पालिका मैं सेज सुन्दरि बिछाई है ।।

1: कृष्ण चरित्र 8/27-31 तक

2: वही 9/63

पौढ़ि मृग नैनी उपधान गा कलोल करि ।

राधिका मधुर छवि उलहाई है ।।

यौं धौं उठि गई प्रान प्यारी चदि अंक हरि ।

इत प्यारि सखिन की संगिति फ्बई है ।।[1]

विरह की वास्तविक स्थिति प्रवास में दिखाई पड़ती है । प्रवास में जो वियोग होता है वह प्रवास की सम्पूर्ण अवधि तक व्यथित करता रहता है इस प्रकार की विप्रलम्भ दशा के अनेक चित्र कवि कुल कल्प तरु और शृंगार मंजरी में देखे जा सकते हैं । सांकेतिक रुप में प्रवत्स्यत पतिका एवं प्रवसत्पतिका की विरह वेदना के दो उदाहरण प्रस्तुत हैं –

लाल विदेश की साज सजी, सब सुन्दरि है हियरा अकुलानी ।

चाहै कहयौ अहौ प्यारे रहौ घरि, लाजनि ते न कढ़ी मुख वानी ।।

तौ लगि को असवार भयो, गुरकाज की यों गुरता अधिकानी ।

नैननि है जल पूरि बढ़यौ, मृगलोचनी, दुःख समुद्र समानी ।।[2]

× × ×

प्रीतम के परदेस के गौन की, बात परी जब तें तिय काननि ।

और की और भई तबते न, सराहौ सखी गन गान के ताननि ।।

भोजन भूख न भोजन भावत, पीवै न पानी न पेषति पाँननि ।

गेह वे लाल अजो न कढ़े री, बावरी बात मनोज के बाननि ।।[3]

चिंता मनि कहै कवि कैसे कह सकै कोऊ

अद्‌भुत कछु रुप रचना अलेख है ।

सुवरन लता है तमाल सुवरन संग,

घन श्याम संग घिर दामिनी विशेष है ।

राधा जू को देख देव वनिता बखानत है

हरि उर निकस परवान हेम रेख है ।[4]

1: कृष्ण चरित्र ।2/4।

2: वही ।1/94

3: कृष्ण चरित्र ।2/5

4: कृष्ण चरित्र ।2/5

सुन्दर करन छूट बाँधति छबीली बाल,

मनौ मधुकर कुल कलित कमल है ।

चिंतामनि नाल कुच रुचि निरखतु निजु,

कलप लता के ऊँचे विलासित फल है ।

मुख इन्दु पर राजे अलक ललित,

अरविन्द पे मानौ अलि आवल चंचल है ।

राधा जू के नैन ऐसे राजत उनींदे प्रात,

मानो अधमूँदे नवनील उतपल है ।[1]

करुण विप्रलम्भ के अधिक उदाहरण नहीं मिलते इस प्रकार चिंतामणि की रचनाओं में शृंगार के छन्द न केवल परिमाण में अधिक हैं अपितु कलात्मकता एवं भाव प्रवणता में भी अत्यन्त श्रेष्ठ है ।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है चिन्तामणि की संयत एवं भक्ति परक दृष्टि के कारण शृंगार वर्णन प्रायः मर्यादित रहा है दूसरी विशेषता यह है कि ऐसी मर्यादित रचनाओं में अइन्द्रिय वासनात्मकता के बदले रसात्मक अनुभूति का अधिक स्वस्थ उल्लेख हुआ है किन्तु कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ कवि की रचनायें अमर्यादित हो उठीं हैं और वासना का नग्न चित्र प्रस्तुत हो गया है देखिये –

दम्पति अनूप वैस सुरति अरम्भ समै ते दोउ रस रीति मैन सरसति है।
तरुन चढ़ाइ त्यौरी भूँठे भिभिक्कोर कंप मनि मन छतिया की छुवनि सुहतिहै।
बँहिया गहत पिय मान तिय प्यारी भारीकोपते निहारी टेढ़े नैन कीति है।
नहिया करति नीवी खेलति नवेली वाल रोवति रिसाति अरसति मुसक्याति है।[2]

किन्तु सौभाग्य है कि ऐसी रचनायें बहुत कम हैं फिर भी उस युग की बदलती मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है ।

चिन्तामणि की भक्ति भावना :–

श्रध्दा मिश्रित प्रेम का नाम भक्ति है । उपास्य की महिमा उपासक के

1: कृष्ण चरित्र । 2/5

2: शृंगार मंजरी 30। तथा 285

3: क0 क0 त0 9/33

मन में यदि एक ओर लघिमा के बोध द्वारा अपने आप को आराध्य के चरणों में समर्पित कर देने के लिए अनुप्रेरित कर देती है तो दूसरी ओर आराध्य के नाम, रुप, लीला और धाम के उत्कर्ष पूर्ण महत्त्व के अनुशासन का संकेत देती है । इसलिए भक्ति की एक कोटि दैन्य में अनुप्रविष्ट दिखाई पड़ती है तो दूसरी प्रेम तत्त्व में ओत-प्रोत ।

रसनीयता की दृष्टि से भक्ति को रस रुप स्वीकार करें अथवा केवल भाव रुप । इस विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है । आचार्य मम्मट के अनुसार देवादि विषयक रति मात्र भाव है ? तो रुप गोस्वामी आदि के अनुसार भक्ति केवल रस नहीं अपितु रस राज है । इतना होते हुए भी भक्त की आस्वाद्यता के विषय में कोई मत भेद नहीं है नाम चाहे भक्ति भावना हो चाहे भक्ति रस ।

जिस प्रकार भक्त कवियों ने भगवान के नाम, रुप, लीला और धाम आदि की दत्तचित्त होकर चर्चा की है उसी प्रकार एवं उसी परम्परा में आचार्य चिन्तामणि ने भी यथा शक्ति राम और कृष्ण की नाम, रुप, लीला और धाम का समर्थ उल्लेख किया है । चिंतामणि से पूर्व वैष्णम भक्ति राम और कृष्ण रुप दो आलम्बनों के आधार पर प्रायः निर्विरोध रुप से दो मार्गों में बढ़ती चली जा रही है थी । चिन्तामणि ने दोनों भक्ति मार्गों को निर्विशेष रुप से केवल स्वीकार ही नहीं किया वरन् लीला-तत्त्व-चिंतन के सहारे भक्ति-कथा को पूर्ण अवसर प्रदान किया । उनका रामायण राम-कथा का प्रतिनिधि ग्रन्थ है[1] तो कृष्ण चरित्र प्रेम और ब्रज माधुरी का संकेत देता है । किन्तु प्रस्तुत शोधार्थी को कवि कुल कल्प तरु में राम कथा सबन्धी 45-46 छन्द प्राप्त होते हैं जिन्हें क्रम बध्द कर देने से एक संक्षिप्त रामायण तैयार की जा सकती है, कृष्ण भक्ति तो सभी ग्रन्थ में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है ।

उल्लेख्य यह है कि इन्होंने राम कथा में यदि मर्यादा एवं लोक रक्षकत्व का निर्वाह करने का प्रयास किया है तो कृष्ण भक्ति में उन्मुक्त प्रेम भक्ति को वल्लभीय परिपाटी के अनुरुप ग्रहण किया है । इसके साथ ही शिव-पार्वती एवं गणेश आदि के स्तुति परक छन्द भी उपलब्ध होते हैं । जिससे यह स्थापना सरलता से हो जाती है कि चिन्तामणि एक सनातनी स्मार्त सद्गृहस्थ्य थे जिनका झुकाव वैष्णव भक्ति की ओर अधिक था ।

इस पृष्ठ भूमि में यह उल्लेख अप्रासंगिक नहीं है कि वे बहु देवोपापक हैं। शिव, गणेश, पार्वती आदि की स्तुति में उनका भक्ति भावना, भक्ति हृदय कितनी तन्मयता से प्रवृत्त हुआ है यह कुछ उदाहरणों दारा देखा जा सकता है। गणेश की स्तुति के कुछ छन्द देखिये। कवि कुल कल्प तरु के मंगलाचरण में गणेश की परम्परा प्रसिध्द महिमा और भक्तों को अभय दान देने वाले सामर्थ्य का उल्लेख किया गया है –

श्री गण नायक सुंड के अग्र गहयौ,
 सुर सिन्धु सरोज रहयौ फवि।
हाथनि अंकुश पास अभय वर,
 तुन्दिल अंगनि मैं उमगै छवि।
मानौं दयामय सत्त्व को अंकुर,
 दंत की दीपति यौं बरनै कवि।
कुंभ सिंदूर लसै मनि सुन्दर,
 मानौ उदय गिरि श्रृंगनि में रवि।
मेटे घनावलि सी विघनावलि,
 तीछन कानन पौन उदार सौं।
सेवक को नित देत अभय फल,
 लै करसौं कलपद्रुम डार सौं।
श्री गिरजा हरजू को दुलारो,
 यहै भजनीय जो चित्त विचार सौं।
लागि सदा मनि सिंधुर आनन,
 सुन्दर इन्दुर के असवार सौं।[2]

इसी प्रकार पिंगल गन्थ के उपक्रम में 'गजमुख जननी जनक के पगन नाइ निज सीस' के प्रतावना से आगे बढ़कर सरजा शाहि को आर्शीवाद देने के

1: खेज रिपोर्ट काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

2: क0क0त0 1/1, 2

लिये अर्द्धनारीश्वर रुप की वंदना करते हुए कवि ने कहा है कि –

> मुक्ति माल उत संग इतहि उत संग गगनि ।
> उतसित चन्दन आइ इतहि सित कर लिलाट मनि ।।
> उतहि माल मनि लाल इतहिं दृग अनल विराजत ।
> उत कपूर तन लेप भसम इत अति छवि छांजत ।।
> कहि चिंतामनि सम वेष धरि अति अनूप सोम साहित ।
> जय साजहु सरजा ससि को गिरजा हर अर धंगनित ।।[1]

इतना ही नहीं कवि कुल कल्प तरु में देव विषयक रति का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए अपने मन को पार्वती के चरणों में बांधने का संकल्प कवि की भक्ति भावना का प्रबल प्रमाण है क्योंकि सांसारिक ताप से मुक्ति केवल भवानी के चरणों में मिल सकती है –

> अरे क्यों अजहू नहि होत छर्यो जो पर्यो तिहु ताप के तापन में
> कुछ पंचन दोष कहा पर पंच जु के सुभापन मैं
> मनि होतु सदा शिव रुप तुही जो प्रकाश बड़ौ यों सुठापन मैं
> गहु बंधन जो मन ही को कियो मनै बंधि भवानी के पायन मैं[2]

> वसन दिशा है और वासन कपाल कर,
> विषौ खाइ रहै पै मन हाति हिय हानियै ।
> चिंतामनि कहै ऐसो रीति छोड़ इसकीन,
> कोऊ गौत मानै जाको सांची बात मलियै ।
> नांघत पहार पर गहत जती को वेष,
> सांप भूत संग पैन संका उर आनियै ।
> भसम लगावे रहै शूल धरे सदा,
> जाके गिरजाइ धनता की एही शूल जानियै।[3]

1: पिंगल हस्तलिखित निजी प्रति से । /2

2: क० क० त० 10/159

3: वही 2/28

भगवान शंकर नग्न रहते हैं, कपाल का खप्पर धारण करते हैं, विष खाते हैं, साँप, भूत वैताल साथ रखते हैं, इस प्रकार के शंकर की चर्चा भी कवि ने एक अन्य छन्द में की है अतः गणेश, शिव और पार्वती के प्रति चिंतामनि का शुध्द भक्ति भाव था इसमें दो मत नहीं हैं ।

भक्ति भावना को रस की कसौटी पर परखें तो उपर्युक्त छन्दों में गणेश, अर्ध्दनारीश्वर तथा पार्वती आलम्बन हैं भक्त आश्रय है दैन्य मति आदि स संचारी भाव हैं इस प्रकार भक्ति रस के निष्पत्ति की पूर्ण सामग्री विद्यमान है ।

राम और कृष्ण के भक्ति भावना विषयक अनेक छन्द उपलब्ध हैं । भगवान राम की जय जय कार करते हुए कवि ने राम के रूप और लीला का उल्लेख ही नहीं किया है प्रकारान्तर से कौशिल्या और दशरथ का भी उल्लेख किया है । छन्द इस प्रकार है –

मनु कुल मंदाकिनी जल कमल महाराज,
महा विमल प्रकासित विविध नय ।
इन्दिरा वन अरविन्द नैन इन्दु मुख इन्दीवर,
दल दाम सुन्दर सदा सदय ।
चिंतामनि मुनि मन मोर के नवीन घन,
सीता नैन मीन सुधा समद आनन्द मय ।
कौसल्या कल्प वेलि संभव सुमन राजा,
दशरथ दूध-निधि चंद रामचन्द जय[1]

यहाँ कवि ने चिन्तामनि श्री राम को 'मुनि मन मोर के नवीन घन' कह कर भक्तों के मन को उल्लास देने वाला बतलाया है जिसके कारण कवि अथवा मुनिगण आश्रय हैं अनन्त शोभा सम्पन्न राम आलम्बन हैं । राम का रूप उद्दीपन है । मोर के लिये नवीन घन कहने से हर्ष, औत्सुक्य आदि संचारी आक्षेप से प्राप्त किये जा सकते हैं । अतः यहाँ भी भक्ति भावना का स्फीत रूप दिखाई पड़ता है।

श्री कृष्ण की वन्दना के अनेक प्रसंग हैं । कृष्ण चरित्र के तृतीय सर्ग में ब्रहमा कृत स्तुति से कुछ अंश उद्वृत हैं[2] जिनमें श्री कृष्ण की रूप माधुरी का

1: क०क०त० 3/90 2: अगले पृष्ठ पद देखें

वर्णन करते हुए उनके चरणों में प्रणाम निवेदन किया गया है और अन्त में सतृष्ण भाव से जय-जयकार करते हुए ब्रहमा ने 'दीन दुःख उध्दरण भक्त वत्सल विड़्याकर' कह कर उनकी लोक-रक्षक लीला की ओर संकेत किया है । अतः यहाँ ब्रहमा आश्रय, नन्द नन्दन श्री कृष्ण आलम्बन उनकी रुप माधुरी एवं भक्त वत्सलता उद्दीपन, हर्ष, विबोध, मति आदि संचारी भाव हैं जिससे भक्ति रस का परिपोषण होता है ।

यद्यपि भक्ति भावना के अन्तर्गत भक्ति के तत्वों और भेदों की भी चर्चा की जा सकती है किन्तु हम पिछले अध्याय में जीवन दृष्टि के अन्तर्गत इन सब की चर्चा कर चुके हैं अतः यहाँ पिष्टपेषण से विराम लेते हैं ।

वीर रस योजना :-

रीति काल के समर्थ आचार्य चिंतामणि की वीर रसमयी रचनाओं का उल्लेख कुछ आश्चर्यजनक हो सकता है क्योंकि शृंगार रस में आकंठ निमग्न उस युग में वीर रस की धारा अत्यन्त विरल हो गई थी तथापि यदि हम इस तथ्य की ओर ध्यान दें कि चिंतामणि उस युग सन्धि में उत्पन्न हुए थे जहाँ वीर, भक्ति और शृंगार का संगम हुआ है तो हमें इनकी वीर रसमयी रचनाओं के प्रति आश्चर्य नहीं होता ।

2: सुन्दर घन तन पर तड़ित मधुबन माल बनाइ ।
गुंज पिच्छ भूषन परौं गोप तनय तो पाइ ।।
बेत सुभग कर कवल अरु लीन्हों वेनु विषान ।
नंद गोप नंदन परौं तो पग कृपा निधान ।।

× × ×

मुनि जन तन मन वचन विधि सेवित चरन सतृश्न ।
विमल वृष्णि कुल कमल रवि जय जय जय श्री कृश्न ।।
जय जय जय श्री कृष्ण साधु मुद समुद सुधाकर ।
दीन दुख उध्दरन भगत वत्सल विड़याकर ।।

कृष्ण चरित्र 2/2,3,44,45

यद्यपि चिंतामणि ने किसी वीर काव्य का स्वतंत्र रुप से निर्माण नहीं किया तथापि उनकी रचनाओं में आश्रयदाताओं की प्रशस्ति के रुप में वीर रसका सुन्दर परिपाक दिखाई पड़ता है जिससे सिध्द हो जाता है कि चिंतामणि की प्रतिभा वीर रस की कठिन भूमि में भी संचरण करने में पूर्ण समर्थ रही है । प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक का तो ऐसा भी विश्वास है कि सम्भावतः चिन्तामणि को वीर रस की प्रेरणा गुरु परम्परा या पितृ परम्परा से प्राप्त हुई होगी । इनके भाई भूषण तो वीर रस के महा कवि हैं ही मतिराम की भी वीर रसान्वित रचनाएँ तीनों भाइयों में व्याप्त पारिवारिक संस्कार का संकेत देती हैं ।

चिन्तामणि के आश्रयदाता हिन्दू भी थे और मुसलमान भी, वीर भी और विलासी भी, सम्राट भी थे और संत भी, इसीलिये आश्रय में यदि दाताओं की प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुकूल इन्होंने अपने काव्य की सर्जना की । शाहजहाँ आदि के आश्रय में यदि दृष्टि प्रधान रुप से श्रृंगार परक भी थी तो शाहाजी जैसे कुल क्रमागत वीर के शौर्य वर्णन में वीर रस की धारा प्रवाहित हुई । इनके उपलब्ध ग्रन्थों को देखते हुए केवल तीन ग्रन्थ ऐसे मिलते हैं जो आश्रयदाताओं के लिए लिखे गए हैं – रस विलास, श्रृंगार मंजरी और छन्द विचार । इनमें से रस विलास और छन्द विचार में प्रधानता वीर रस की है अन्य रसों का उल्लेख नाम मात्र को हुआ है । छन्द विचार में शाहजी भोसले का पराक्रम और शौर्य मानों आकार पा गया है । रस विलास में श्रृंगार और शौर्य का समान रुप से महत्त्व दिखाई पड़ता है । श्रृंगार मंजरी का मुख्य प्रतिपाद्य यद्यपि नायिका भेद है तथापि सन्त अकबर शाह की प्रशस्ति परक उक्तियों में दान पराक्रम आदि के द्वारा वीर रस का समुचित परिपाक हुआ है ।

डा0 टीकम सिंह तोमर ने हिन्दी वीर काव्य (सन् 1600-1800 ई0) में लिखा है कि – " प्रस्तावित अध्याय के अन्तर्गत उन सभी काव्यों कवियों को सम्मानित किया गया है जिन्होंने ऐतिहासिक घटना को लेकर अपने आश्रयदाताओं अथवा अपने पूर्वजों की प्रशंसा की है ।[1]

1: हिंदी वीर रस काव्य – डा0 टीकम सिंह तोमर प्रथम संस्करण पृष्ठ 9

इस दृष्टि से विचार करने पर आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में लिखा गया काव्य भी वीर काव्य ही ठहरता है। यह भी उल्लेख्य है कि चिन्तामणि के काव्य में दानवीर का और युध्द वीर का ही पक्ष प्रवल रहा है और वीरता के अन्य रुप प्रायः उपेक्षित रहे हैं।

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है जिसमें उत्कट आवेश और साहपूर्ण उमंग के दर्शन होते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार यही उत्साह अपने परिपाक की दशा में जिस रसात्मक आनन्द की सृष्टि करता है उसे वीर रस कहते हैं। इस उत्साह में कष्ट या हानि सहन करने की दृढ़ता के साथ-साथ कर्म में प्रवृत्त होने से आनन्द का योग रहता है। अतः साहस, त्याग और उमंग में तीनों ही तत्त्व वीर रस का पोषण करते हैं। जहाँ तक वीर रस के भेदों का प्रश्न है उसका स्थूल रुप से दान वीर, धर्मवीर, युध्द वीर और दया वीर नाम से चार भेद किये गये हैं किन्तु "सच तो यह है कि उत्साह के जितने भी भेद हो जायेंग अथवा अनुमान किये जा सकते है उतने ही वीर रस के भेद होंगे" अतः भेदोपभेद में न पड़ कर हम युध्द वीर से चर्चा प्रारम्भ करते हैं।

युध्दवीर :-

वीर रस की विशुध्द अवतारणा युध्द वीर में ही अधिक संगत दिखाई पड़ती है क्यों कि आलम्बन चाहे विजेतव्य हो अथवा असाधारण कर्म किन्तु आश्रय के उत्साह के विकास में पूर्ण सहायक होता है। चिंतामणि के काव्य में युध्दवीर के दर्शन दो प्रसंगों में होते हैं प्रथमतो अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में और दूसरे पौराणिक पात्रों के चरित्रों में। आश्रयदाता की प्रशस्ति में रचित इस छन्द में युध्द वीर का सौन्दर्य देखिये –

साहि नृप सैल जग कढ़त सजहि,
बढ़त लाव हय हत्थ नर दल अतूले।
जलद जिमि गज्जि वहु दुंद भी वज्जिया,
चटि अदरि आवतजि सहस कूले।
उम्मेघन धूरि दिसि विदिसि धुंधरिय,
सब भान असमान मै अैन भूले।
भूलना चढ़े से अचल भूलत सकल,
भूलना तुलित है धरनि भूलै।[2]

शाहजी का प्रकृष्ट शत्रु को परास्त करने के लिए चतुरंगिनी सेना सजा कर चलना एक ऐसा कर्म है जिसमें प्रवृत्त उत्साह रुप स्थायी भाव को प्रगट करता है । आलम्बन विजेतक शत्रु है परोक्ष रुप से शत्रु का बलशाली होना व्यंग्य है तभी तो अपार दलबल सज कर युध्द यात्रा की जा रही है अतः शत्रु का पराक्रम उद्दीपन है । प्रस्थान के सम्भार में हर्ष, गर्व, धृति आदि संचारी भाव व्यंग्य है । इस प्रकार वीर रस का पूर्व परिपाक दृष्टिगत होता है यदि कलात्मकता की दृष्टि से विचार करें तो सैन्य प्रस्थान से आकाश का धूल से भर जाना सूर्य का दिखाई न देना आदि अतिशयोक्तियों में मौलिकता की अपेक्षा परम्परा का अनुपालन है ।

वस्तुतः शाजी भोसले के गुण गौरव, व्यक्तित्व और पराक्रम आदि से कवि इतना अभिभूत है कि वह बार-बार उनके समर्थ व्यक्तित्व की महिमा का ओजस्वी गायन करता है कवि को उनके व्यक्तित्व में वीर रस के सभी प्रकार अनायास ही दिखाई पड़ते हैं तभी तो निम्नलिखित दो कवित्तों में उनकी प्रशंसा करता है –

कविनु कौ राजै भोज ओज कौ सरोज वन्धु,
दीनन को दया सिन्धु लाज सील कौ जिहाजु ।
कोटि काम सुन्दरु है महिमा पुरन्दरु है,
मन्दिर है वैरी बल वारिध मथन काजु ।
जंग मै जालिम अवलम्ब कुल आलम कौ,
वालम धरा कौ सब सूरन कौ सिर ताजु ।
विक्रम अपार सत सुजस कौ पारावारु,
भारी भार थमन समथ्थु साहि महा राजु ।
गाढ़े गाढ़े गढ़ गज धक्कन ढहावत,
न पावत प्रताप सम ताहि सम अक्कवै ।

पिछले पृष्ठ की टिप्पणियाृ –

1: चिन्तामणि भाग । – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

2: वीर काव्य - पंडित उदयनारायण तिवारी पृष्ठ 8

3: पिंगल - काशी नागरी प्रचारिणी सभा पृष्ठ 21/40

चिंतामनि भनत गनत घने गुन गन,
सारदा गणेश सेस चक्कत अधक्कवै ।
निरधि ज्यो महिमा गंभीर महा धीर वीर,
पावक प्रताप छीर छीरधि पक्कवै ।
थप्पन उथप्पन समत्थ पाति साहिन कौ,
साहि नर नाह चहूँ चक्कनि कौ चक्कवै ।[1]

यहाँ समर्थ उपमानों के द्वारा एक ओर आश्रयदाता की गुणावली का उल्लेख है तो दूसरी ओर उसके पराक्रम की गाथा का समर्थ अभिव्यंजन है । इसी प्रकार शाहजहाँ के हाथियों के वर्णन में भी उनके डील डौल, रंग बलिष्ठता आदि का जो उल्लेख है उससे आश्रयदाता के वैभव का तो परिचय मिलता है है उसके बल पराक्रम का भी उल्लेख हो जाता है ।

यद्यपि ये प्रसंग ऐसे हैं जिनमें वीर रस का परिपाक नहीं है फिर भी इससे आश्रयदाता की ओजस्विता, आश्रय में गुण कर्म के समन्वय के द्वारा उत्साह को अभिव्यक्त कर रहा है इससे एक वीर रुप अनायास ही मानस पटल पर उभर जाता है । इतना होते हुए भी इन युध्द वर्णनों में अतिशयोक्ति और आलंकारिकता की अधिकता है और राज प्रशस्तियों में केवल भाव का उदय मात्र होता है वीर रस का पूर्ण परिपाक नहीं । हाँ, खरदूषण के साथ होने वाले युध्द में भगवान राम की वीरता के वर्णन के क्रम में युध्द वीर का रुप बड़े कौशल से सँवारा गया है छन्द इस प्रकार है –

गए गिरि दरी बन लखन लै जानकिहि,
राम जू कवच निज अंग कीन्हों ।
दिव्य तूनीर सो सुभग अंग मौरु चिर,
रघुवीर कर चाप संग लीन्हों ।
कियो घन गरज घन धनुष टंकोर अरु,
ललित मुख हरष भुक्यो नवीनो ।

1: छन्द विचार - काशी नागरी प्रचारिणी पृष्ठ 2/4,5

आइ गरि व्योम मुनि सिध्द गन्धर्व जै,

बोलि रघुनाथ कौ विजै दीनों ।

तबै खर की पकरि श्राप आयो उतै,

जितै सर चाप धरि राम राजैं ।

संग लै सघन घन संघ सम रक्ष गन,

तिष्य तम शस्त्र बरखानि साजैं ।

परस तिरसूल तिष्य तम आस पास मुदगर विपुल,

असनि सम राम पर डारि गाजैं ।

समुद ज्यों आपमावेग साहि आपु घन,

वेग सहिं छविन रघुवीर राजै ।[1]

यहाँ राम आश्रय हैं और खर आलम्वन है । भगवान राम में युध्द के प्रति पूर्ण उत्साह है । ऋषि मुनियों की जै जै कार उनके वीरत्व ह को उद्दीप्त करता है । एक ओर मुख पर नवीन हर्ष की झलक है तो दूसरी ओर शत्रु की असंख्य सेना को झेलने के लिए एकाकी खड़े राम असंख्य शस्त्र वर्षा के बीच घृति स संचारी भाव का सुन्दर परिपाक है और इस प्रकार सांगोपांग सामग्री होने से वीर रस का परिपाक दिखाई पड़ता है ।

युध्द वीर के अनेक छन्दों में कवि का वर्णन उत्साह की अपेक्षा कहीं भय की सृष्टि करने लगता है तो कहीं वीभत्स की ।[2] किन्तु ऐसे प्रसंगों में कवि का उद्देश्य वीर रस का पोषण ही है । प्रधान रस वीर है और भय अथवा जुगुप्सा के भाव वीर का ही पोषण करते हैं ।

दानवीर :-

दान दाता को दान वीर उस समय कहते हैं जब दान देने के फलस्वरूप उसे कुछ कष्ट भी सहना पड़े तो भी उसके हृदय में मलिनता के बदले हर्ष,औत्सुक्य आदि भावों का उदय हो । चिन्तामणि के आश्रयदाता नरेन्द्र हृदय शाह ऐसे ही

1: क०क०त० 9/118,119

2: छन्द विचार 1/146 तथा रस विलास 8/33,8/29, 8/36

दानवीर हैं जो अत्यन्त आनन्द के साथ भगावह दीर्घकाय गजेन्द्रों को अत्यन्त आनन्द के साथ बक्शीश के रूप में दान दे डालते हैं। इससे आश्रय में जिस साहसपूर्ण उमंग का उदय होता है वह उत्साह को पूर्ण परिपोष प्रदान करता है। हर्ष, गर्व आदि संचारी भाव रस परिपोष में सहायक हैं।

इसी प्रकार शाहजहाँ के पुत्र दारा शिकोह के दान के वर्णन में कवि ने उसके असाधारणत्व की प्रतिष्ठा करके दान वीरता का रूप सँवारा है –

जगत के मंडन प्रबल दल खंडन विपक्ष,
के विहंडन प्रचंड तेज देखिए।
साहस के सागर नरिंद नौल नागर,
समत्थ गुन आगर उजागर जे लेखिए।
चिंतामनि सुन्दर सपूत सिध्द मंदिर मौ,
पहुमी पुरन्दर प्रबल पूर पेखिए।
दारा साहि तच्छन सो देत दान लच्छन सों,
जगत के रच्छन विचच्छन बिसेखिए।[1]

महावीर राम की दानवीरता भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि राम का त्याग विलक्षण है। वे रावण का बध करके भी राज्य को विभीषण को दे देते हैं यह त्याग उत्साह का पोषक है विवेक शील राम के विभीषण को राज्य देने के निर्णय से बानर, भालू और राक्षसों में जो उल्लास छा जाता है तथा जिस प्रकार के उत्सव आदि मनाये जाते हैं उससे एक ओर यदि राम की नीतिज्ञता का आभास मिलता है तो दूसरी ओर दानशीलता का अनुपम आदर्श दिखाई पड़ता है। भुजबल से अर्जित स्वर्णमयी लंका के वैभव को विभीषण को अनायास दे डालना वास्तव में राम जैसे दानवीर का ही काम है।

दयावीर :–

चिंतामणि के आश्रयदाताओं में किसी प्रकार की दयावीरता का उल्लेख नहीं किया है किन्तु सम्भाव है उनके सम्मुख ऐसा कोई अवसर उपस्थित न हुआ हो किन्तु भगवान राम और कृष्ण के व्यक्तित्व में कवि को अनायास ही दयावीरता का रूप देखने को मिल गया है।

१: रस विलास अष्टम परिच्छेद

रावण बध के उपरान्त जब इन्द्र ने राम की प्रसंसा करके वर माँगने के लिए कहा तो राम ने कहा कि संग्राम में मृत्यु को प्राप्त हुए कपि और रीछ जीवित हो जाँय। यह दया का भाव वस्तुतः राम में दयावीरत्व की प्रतिष्ठा करता है किन्तु चिंतामणि ने इस प्रसंग को जिस प्रकार प्रस्तुत किया है उसमें राम इस दया के बदले किसी प्रकार की हानि या कष्ट नहीं उठाते। अतः यहाँ दयावीर की पूर्ण निष्पत्ति नहीं दिखाई देती किन्तु कृष्ण चरित्र में काले नाग का दमन करते समय और गोवर्द्धन उठाते समय दयावीर का स्वरूप दृष्टिगत होता है। अपने प्राणों की बाजी लगाकर श्री कृष्ण जिस प्रकार गो, गोपी, गोपाल की रक्षा करते हैं उसमें मूल प्रेरक दया ही है जो उत्साह से युक्त होकर श्री कृष्ण को दयावीर बनाता है और चिंतामणि की उन रचनाओं में दयावीर रस का परिपाक करता है।

बानगी के लिए देखिये –

इन्द्र कह्यौ मन मोद धरि यों सुनिये श्री राम।
कौसल्या सुप्रजा भई पाइ पूत गुन धाम।।[1]
इन्द्र कह्यौ अब माँग वर यों बोले इत राम।
वैं जीवैं कपि रीछ जे मरे महा संग्राम।।
जे फल मूल अकास हूँ पावैं वानर वीर।
होंइ विमल वै सब नदी विलसें जिनके तीर।।
इन्द्र कह्यौ है है इहै राम तिहारे हेत।
सुने कहूँ संसार में जीवित काह परेत।।
है है सब जो चाहियतु यों कहि गयों अकास।
सब के देखत समर मै वर्ष्यौ अमृत प्रकास।।
पर्यौ न राकस लोथ पर कहुँ अमृत कौ विन्दु।
मोह गयौ मृत कपिन को उयो ज्ञान को विन्दु।।
उठे व्रननि विन कपि सबै जग ईश्वर भगवान।
दसरथ नन्दन राम जू करी अलौकिक ठान।।[1]

1: क०क०त० 9/122 – 128

कृष्ण के विषय में —

विह्वल है कालिय प्रबल पग घातन सों,
भरन सबै परन गुविंद मन में धरे ।
नाग नागनीन कर जोरि कै प्रशंसा करी,
ढरे तत्छन दीन बन्धु जू दया धरे ।
कालिय को कान्ह जू अभय दान दीनो कह्यौ ।।
ह्याँते जाहि सागर हवाँ ताको सुख है खरे ।।
उन आगे राखे मनि वसन कमल माल ।
लै कै कढ़े लाल ऐसे कौतुक कछू करे ।।
गैया सिसु छौना निजु छाती के तरे छवाइ ।
हरि पाइ ढिग आइ हीन महा काल कल ते ।।
धोखा वासी धीरे सीत वात घोर वरखानि ।
प्रवल विथानि पाइ इन्द्र महा खलते ।।
गोपी गोप गन सब पुकारे परन साइ ।
देखि वसु जल मैं बहत थल थल ते ।।
नाथ हो अनाथन के गोधनन साथ
राखि लीजै ब्रज नाथ हमै आपदा प्रबल ते ।।
बोले नन्दनन्दन पुरन्दर रिसान्यो बाको ।
वरजि कै कीनों गिरजा वेग जो नवीनो है ।
जाको जज्ञ कियों अब ताही सो बचावै तुम्हें,
हम तौ प्रबल महा देव भ्रत लीन्हो है ।
यह मैं उखारो (—)याको गरत मैं पैठो सब,
आछी छांह करें आछो अच्छै घर दीनो है ।
बालक ज्यों छिति तै छ्याक कर करै,
ऐसे उरवारिकै छितिधर कान्ह कर भीनो है ।
सामग्री सों भरे गाड़े पैठे गिरि गाड़े बीच,
गोपी गोपन सब गोधन समेत हैं ।
वरषत घन जल धारा जल धर चार्यौ ओर,
छोर मुकुत भालरि रुचि सेत है ।

कीनो भुज दंड स्याम मनिमय दंड छिति,

घर को वा छिति पर छत्र छवि देत है ।

लीनो सबु ब्रज जैसी विधि सो बचाइ निजु,

जनन पै ऐसे कान्ह करुना निकेत है ।[1]

धर्मवीर :-

धर्मवीर के दृष्टान्त में भरत का दृष्टान्त द्रष्टव्य है -

अवधनि घट नन्द गाउ कोस एक पद निरख्यौ,

कर वार पट धारी सोग साथ को ।

चिंतामनि कहे मृग चरम जटानि धरे,

मुनि वेष जगत अभय कर हाक को ।

वंस अलंकृत करि आपने चरित्र सत्य,

कारी भागीरथ आहरन गाथ को ।

जाइ हनुमान देख्यौ धरम ब्रतन धरे,

पेख्यौ है भरत उत भैया रघुनाथ को ।[2]

इस प्रकार चिंतामणि की रचनाओं में वीर रस के सभी रुपों के उदाहरण प्राप्त होते हैं । इसके अतिरिक्त राज प्रशस्तियों में अस्त्र, शस्त्र हाथी, घोड़े आदि के वर्णन में भावोदय, भाव सन्धि, भाव शबलता आदि के भी दर्शन होते हैं ।

कुल मिलाकर इतना अवश्य कहना पड़ता है कि जहाँ चिंतामणि ने मानवीय वीरत्व का वर्णन किया है वहाँ न तो आत्मा का उत्कर्ष ही हुआ है और न विस्मय उल्लास में पर्यवसित हुआ है । इसी प्रकार हृदय के उदात्त वृत्तियों का उन्नयन भी सम्भव नहीं हो सका है किन्तु जहाँ भगवान राम और कृष्ण की वीरता का वर्णन है ऐसे महान कार्यों के लिए उत्साह प्रदर्शित किया गया है जिससे पाठक श्रध्दा और संभ्रम से भर जाता है और उसकी आस्था उत्कर्ष को प्राप्त करती है ।

अतः निष्कर्ष रुप में यह कहा जा सकता है कि चिंतामणि का वीर काव्य रस परिपोष की दृष्टि से सफल हुआ है । हाँ, युग के प्रभाव से शब्दाडम्बर और अतिरंजनापूर्ण वर्णन की अधिकता खटकती है ।

0

1: क0क0त0 9/121

वात्सल्य रस

माता-पिता का अपने पुत्र के प्रति जो नैसर्गिग स्नेह होता है उसे वात्सल्य कहते हैं। अनुभव साक्षी है कि जन्मदाता माता-पिता के अतिरिक्त भी शिशु को देखकर एक स्वाभाविक आकर्षण प्रायः सब को होता है। मैक्डुगल आदि मनः शास्त्रीयों ने भी वात्सल्य को प्रधान एवं मौलिक भावों में परिगणित किया है।

संस्कृत के प्राचीन आचार्यों ने देवता पुत्रादि विषयक रति को ? केवल भाव के रूप में स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में इस प्रकार की रति जिसे (वात्सल्य) कहते हैं रस की भाँति चर्वणीय नहीं है।[1]

चिंतामणि ने भी काव्यशास्त्रीय विवेचन के क्रम में इस प्रकार के अपत्य स्नेह को भाव मात्र ही स्वीकार किया है[2] किन्तु अपत्य स्नेह की उत्कटता, आस्वादनीयता आदि से वे अपरिचित नहीं हैं अतएव उनके काव्य ग्रन्थों में वात्सल्य भाव और उसके समग्र अंगों का निरूपण और सुन्दर परिपाक प्राप्त होता है।

यों तो कवि कुल कल्प तरू में राम के बाल सौंदर्य एवं कौशल्या के वात्सल्य के भी एकाध चित्र मिल जाते हैं किन्तु कृष्ण चरित्र में श्रीमदभागवत की अनुप्रेरणा से श्री कृष्ण की रूप माधुरी, बालसुलभ चेष्टाएँ, शौर्य, सामर्थ्य आदि का उद्दीपन के रूप में वर्णन किया गया है। आलिंगन, अंग संस्पर्श, निर्निमेषदर्शन, आनन्दाश्रु, रोमांच आदि अनुभावों के भी चित्र मिलते हैं। इसके अतिरिक्त अनिष्ट की आशंका और तदनुकूल जड़ता दैन्य, चिंता, त्रास, मोह, विषाद, औत्सुक्य आदि तथा इष्ट की प्राप्ति में हर्ष, गर्व, औत्सुक्य आदि संचारी भावों का भी रमणीय समायोजन है।

सूर सागर की भाँति नन्द यशोदा तथा अन्य वयस्क गोप-गोपिकाओं का बाल कृष्ण के प्रति प्रेम आकर्षण, उपालम्भ, व्यंग्य, खीझ एवं बाल क्रीड़ाओं के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्र भी कम नहीं हैं। वात्सल्य के संयोग और वियोग दोनों पक्षों के

1: रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथांजितः भावः

काव्य प्रकाश-आचार्य मम्मट

2: क०क०त० 10/158

लिए कृष्ण चरित्र में समान अवसर प्राप्त हुआ है ।

सर्वप्रथम रूप माधुरी को लें । कारागार में वसुदेव देवकी के सम्मुख जब श्री विष्णु दिव्य मणिमय मुकुट, कुन्डल, किंकिणी और कंकण से सुशोभित पीताम्बर धारण किए एवं शंख, चक्र, गदा, पद्म से विभूषित होते हुए भी बालविग्रह में होते हैं तो देवकी और वसुदेव उस रूप माधुरी का दर्शन करते अघाते नहीं ।[1] ऐसे अवसर पर इस अलभ्यलाभ से माता-पिता के हृदय में जो वात्सल्य उमड़ता है, वह भक्ति भावना में परिणत होने के कारण तथा कंस के आतंक के कारण केवल भावोदय बन कर जाता है किन्तु ब्रज मंडल में जिस समय श्री कृष्ण के जन्म की सूचना प्राप्त होती है उस समय सारे व्रज मंडल में उल्लास भर जाता है । कृष्णचन्द्र के उदय से प्राची दिशा की भाँति यशोदा मोहान्धकार से मुक्त होकर परम प्रसन्न हो जाती हैं और नन्द तो समुद्र का भाँति उल्लसित हो उठते हैं साधु रूपी कुमुद खिल उठते हैं और गोप गोपिकाएँ रूप माधुरी का पान चकोर चकोरियों की भाँति करने लगती हैं[1] वस्तुतः कृष्ण को आलम्बन बनाकर जिस हर्ष संतोष एवं औत्सुक्य की योजना की गई है वह उस उद्दीपक रूप के कारण है जो अतसी कुसुम की भाँति श्यामता में दीप्ति को समेटे पूर्ण चन्द्रमा के समान विलसित हो रहा है, जिसके कर एवं चरण कल्प वृक्ष के पल्लवों से मनोहर हैं और नेत्र कमल के समान हैं—

प्राची सी जसोदा भई परम प्रसन्न रुचि
पहिलै परी ही महा मोह अँधकार मैं ।
चिन्ता मनि कुमुद से फूलै साधु जन मन
चारु उतपत्ति किति चन्द्रिका उदार मैं ।
गोपी गोप गन दौरे चकोरी चकोर जनु
आनि परे महा सुधा सुषमा के सार मैं ।
उमग्यो अपार पुत्र चन्द्र के उदै ते व्रज जातें
नन्दमयो मगन आनन्द पारावार मैं ।[2]

1: कृ० चरित्र 1/15

2: वही 1/18,19

सुललित सी अरसी कुसुम रंग अंगनि में
उलहति दीपति समूह सुख कंद को ।
लोचन चकोरन को परम सुखद सुख
मै विलास विमल सरद पून्यौं चन्द को ।
चिन्तामनि आपु अवतरै जो आनन्द रूप
भयो वह मन्दिर आनन्दमय नन्द को ।

वाजे हैं विविध विधि मधुर मधुर
वाजे सुनि भयो हरन सकल दुख दंद को ।
चिंतामनि फैल्यो सब थलन प्रकाश
दिव्य दुति वल्लवी जन वदन चारु चन्द को ।
आनि अवतर्यो वृज वारिज रसिक
भौर इंदिरा वदन अरविंद मकरन्द को ।
परम आनन्दमय गोविन्द जनम दिन
भयो वह मंदिर आनन्दमय नन्द को ।

यही श्री कृष्ण जब थोड़े बड़े हो जाते हैं तब व्रजवासियों को उनकी रूप माधुरी के दर्शन का उन्मुक्त अवसर प्राप्त होता है उनकी घुंघराली अलकें मुख पर झूलती हुई ऐसी सुशोभित होती हैं मानों नील कमल में मधु पान के लिए भँवरे ललक रहे हों । अतसी के समान अभिराम श्याम श्री कृष्ण को देखकर व्रजांगनाएँ नन्द और यशोदा के भाग्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करती हैं और स्वयं अतृप्त नेत्रों से उस बालेंदु से मुकुन्द का दर्शन करती हुई अपने को कृतार्थ मानती हैं ।[1]

यहाँ व्रजवासियों में जिस रूपाशक्ति का चित्रण किया गया है वह बालमुकुन्द के प्रति वात्सल्य भाव से अनुप्राणित है । यशोदा और नन्द के भाग्य की प्रशंसा में जिस ईर्ष्या मिश्रित हर्ष और औत्सुक्य की व्यंजना है वह अनायास ही वात्सल्यभाव की परिणाति के लिए पर्याप्त है । वस्तुतः आलम्बनगत सौन्दर्य और आलम्बन की चेष्टाएँ

1: कृ० चरित्र 1/22, 23, 24, 25

दोनों ही उद्दीपन का कार्य करते हैं तथा अनिमिष दृष्टि में आकर्षण की सफल अभिव्यक्ति हो जाती है अतः रूप माधुरी का प्रभावी परिणाम वात्सल्य रस का परिपोषक है ।

बाल सुलभ चेष्टाएँ और माताओं का अनुराग!–

नवजात शिशु ज्यों-ज्यों बढ़ता है त्यों-त्यों उसके नये-नये हाव-भाव माँ की ममता को बान्धते चले जाते हैं । माँ के हाथों का खिलौना शिशु जैसे-जैसे बड़ा होता है वैसे ही वैसे कुछ ऊधम और शरारतें भी करता है । पर जाने क्यों माँ को वह सब अच्छा लगता है ।

कन्हैया भी धीरे-धीरे बड़े हो गए हैं । दो दाँत निकल आए हैं । माँ के आस-पास धूल में लोटते हुए खेल रहे हैं । कभी कुछ पकड़ कर खींच लेते हैं और कभी किसी चीज को गिरा देते हैं पर इन सब चेष्टाओं से माँ का मन कृष्ण प्रेम में उलझता ही चला जा रहा है । कवि के शब्दों में देखिए –

कछु डारि देत कछू कर गहि खैंचि लेत ।
छोहै दैक दाँत काज मन अरु झोना सों ।।
मैया तेरे आस पास खेलै धूरि भरो श्याम ।
सुन्दर छवीलो कान्ह करिनी को छौना सों ।।[2]

हाँ तो करिनी के छौना से श्याम सुन्दर माँ के आस-पास खेल रहे हैं । माँ वात्सल्य के औत्सुक्य के कारण जरा-जरा देर में कन्हैया को पुकार रही है । नील-मणि के समान साँचे में ढले श्रीकृष्ण के छवि मंडित सौन्दर्य से बड़भागिनी यशोदा पुलकित हो रही है । डगमगाते चरणों से छोटे-छोटे पग धरते, धूल-लपेटे, हँस-मुख

1: संयोग से प्रथम सर्ग के 31वें छन्द के उत्तरार्द्ध से 45वें छन्द के पूर्वार्द्ध तक का अंश लुप्त है अतः बालसुलभ चेष्टाओं की झाँकी सजाना कुछ कठिन सा हो गया है तथापि प्राप्त अंशों के आधार पर परिचर्चा प्रस्तुत है ।

2: कृष्ण चरित्र 1/45

लाला को माँ जब गोद में लेने को बढ़ती है तो उसके सुख का क्या कहना:-

कहाँ धौ गए हैं बोलि बूझिए जसोदा मैया ।
चिंतामनि भागु तेरो सुरमुनि गावैरी ।।
सोहै नील मनि रंग साचे धौ सुढ़ारे ।
अँग छवि छलकत मनि मोद उमगावैरी ।।
छोटी छोटी डगन धरत डग मग पग ।
बाजै छुद्र घंटिका हरखु हरि धावैरी ।।
देत हैं दृगन सुख सुन्दर हसत मुख ।
धूरि सो लपेटे लला लटकन आवै री ।।

प्रत्येक बाल लीला के सुख का पुरस्कार माँ दूध पिलाकर देती है और इसलिए माँ कन्हैया को भी दूध पिलाने लगती है ।

अब कन्हैया कुछ और बड़े हो गए हैं घुटनों के बल दौड़ रहे हैं । बलराम और श्याम दोनों की शोभा अनिर्वचनीय है । माता यशोदा और रोहिणी दोनों ही इस बाल विनोद से उद्दीपित वात्सल्य का रस ले रही हैं कि अचानक अपनी ही परछाई देखकर कन्हैया भयभीत होकर दौड़कर माँ से चिपट जाते हैं और तुतलाती हुई वाणी में कुछ कहने लगते हैं । माँ समझाती है कि जिसने तुम्हें डराया है उसे मैं मारूँगी, और इस प्रकार कहते हुए गोबर और कीचड़ लिपटे श्याम को गोद में लेकर माँ अत्यन्त सुख का अनुभव करती है :-

किंकिन नूपुर की धुनि सों किलकैं कर जानुन केवल धावै।
दोऊ जने सित स्याम मनो मनि अंगन2की छवि छावै।।
रोहिनी संग विलोकि जसोमति बाल विनोद महा सुख पावै।
औचक आपनी छांह निहारि डराइकै माइ समीपहि आवै ।।

दैखि डरे से परे गहि अँगन आनन भीत को भाउ दिखावै।
बात कहै तुतरात कछू सु तो स्रौनन सुद्ध सुधारस नावै ।।

1: कृष्ण चरित्र 1/46

मारोगी वाहि डरै लखि जाहि सुहौं बलि हौं यह बैनि सुनावै।

बालक गोमय पंक भरे तनु गोद लै माइ महा सुख पावै[1]।।

बालकों की नटखटी लीला जहाँ माँ को सुख देती है वहीं हर समय पड़ौसियों के उलाहने और तानें भी सुनने पड़ते हैं। यद्यपि ये ताने भी वात्सल्य सुख के लिए ही दिये जाते हैं। कृष्ण बड़े होकर व्रज में सखा-वर्ग को साथ लेकर गोपियों के घर में मक्खन, दही खाते ही नहीं गिरा भी देते हैं। ऐसे ही सन्दर्भ के एक उपालम्भ प्रस्तुत है – गोपियों की भीड़ यशोदा के आँगन में जमा हो गई है कोई कहती है कि देखो बहुत दूर रखा हुआ दही, दूध, मक्खन इसने उपाय से चढ़कर ले लिया। स्वयं खाया, वन्दरों और मित्रों को खिलाया और जो बच गया उसे गिरा दिया। यहाँ आकर बिल्कुल भोला और सज्जन बनकर तुम्हारे पास खड़ा हो गया। अब बताओ कैसे उलाहना दूँ। दूसरी ने कहा कि जाकर छिपे रहते हैं और मौका पाते ही आँख बचाकर गाय और बछड़ों को खोल देते हैं। मैया यशोदा तुम्हारे इस छोटे ने कहाँ से ऐसी ढिटाई सीख ली है कि जरा सा मन किसी और लगा कि तब तक मक्खन बाँट-खाकर बराबर। हाय दइया। इसे ये गुण किसने सिखा दिए हैं? तीसरी ने कहा, कि तुम्हारे इस छोटे के हाथ पर जरा सी दही रख दो तो जैसे जैसे कहो वैसे वैसे नाच दिखाता है। चौथी ने कहा कि अरे मैया यह बड़ा जाल साज है कहेगा यह कि आओ विल्ली को मार भगाएँ और इस बहाने से सब दूध पी जाता है।

चारों ओर से उलाहनों की भीड़ में[2] कन्हैया खड़े भयभीत होकर सब की ओर देख रहे हैं और गोपियाँ इस भयभीत मुख की शोभा को देखकर वात्सल्स सुख का आनन्द लेती हुई अपने को बड़ भागिनी मान रही है। नन्द के आँगन में उलाहने के व्याज से वात्सल्य रस लूटने वाली गोपांगनाओं की भीड़ लगी हुई है। फिर माँ यशोदा ही क्या बोलें? वह भी चुपचाप श्याम सुन्दर के मुख को देखती हुई प्रेम- समुद्र में निमग्न हो रही हैं :-

---

1: कृष्ण चरित्र 2/1,2/2

2: वही 2/3,4,5

याविधि गोपी औराहनो दैति सभै अखियाँ मुख शोभनिपेखै।
प्रेम समुद्र समाइ रहीं निज भागनि धन्य सवै अवलेखैं ।।
नन्द के आँगन भीरतिपानि की मंजुल बाल विनोद विसेखैं।
माई जसोमति बात कछू नहिं बौलिसकै हँसि पूतहिं पेखै ।।[1]

कृष्ण की नटखटी लीलाओं का अन्त नहीं । दही बिलोती हुई माँ बिलोना छोड़ कर कृष्ण को दूध पिलाने लगी कि अचानक दूध उफनाने लगा । कृष्ण को छोड़ कर दूध उतारने दौड़ पड़ी फिर क्या था कन्हैया ने रोष में आकर पत्थर मारकर दही का वर्तन तोड़ दिया और घर में जाकर मक्खन बन्दरों को खिलाने लगे उत्पात की भी हद होती है । माँ के मन में कौतुक आया वह छोटी सी छड़ी लेकर छिप गई और तमाशा देखने लगी । इधर कन्हैया ने माँ को देखा तो ओखली से कूद कर भागे उस समय रोष, भय और सम्भ्रम के भाव मुखमण्डल पर झलक रहे थे । माँ यशोदा इस रूप को देखकर निहाल हो गई । वास्तव में वात्सल्य की इस लीला का सुख किसी भी अन्य रसात्मक अनुभूति से कहीं आगे है ।

× × ×

भाजे उलूखल से हरि कूदि ससंभ्रम नैन विलोकत मैया
मैया जसोमति देखि छकी छवि को न छकै छकिलेति बलैया[2]

× × ×

किन्तु लीला का अन्त यहीं नहीं हुआ माता यशोदा कृष्ण को पकड़ने के लिए दौड़ी और कृष्ण भाग चले । माँ अच्छी तरह से थक कर पसीने से लथपथ हो गई तब कहीं पकड़ में आए । माँ ने ओखली में बाँध दिया और आप दामोदर बन गए फिर यह ऐसा काम न करे ऐसी शिक्षा देने के लिए माँ कृष्ण को बाँधकर घर के काम में लग गई । अन्य गोपियों को यह बुरा लगा और माँ से रूठकर चली गई। उधर कृष्ण ने अवसर पाकर यमलार्जुन का उद्धार किया । सारे व्रज में वृक्षों के गिरने की बात फैल गयी ।

1: कृ0 च0 2/6
2: वही 2/13

बाबा नन्द ने जल्दी से कृष्ण के बन्धन खोले, उठाया, चूमा और गोद में ले लिया, और यशोदा से बिगड़ कर बोले यह तुमने क्या किया ? बड़ा भाग्य था जो बेटा बच गया। माँ तो सोच में सूख गई। बालक को गोद में ले लिया और बहुत दान-पुण्य किया।:-

नन्दन नन्द जू बंधनहीन के चूमि उठाइ के गोद में लीनो
बेटा बच्यो बड़भागन तें जसुदा सो खिझि यों कहा तुम कीनो
वृक्ष बड़े गिरे बीच बच्यो सुत माता को सोच भयो तन छीनो
अंक लै लाल को मंगल कारन विप्रन को बहुतै धन दीनो[1]

यहाँ कृष्ण पर अनिष्ट की आशंका से भय, उद्वेग, त्रास और कृष्ण के सुरक्षित बच जाने पर हर्ष, संतोष आदि संचारी भावों एवं गोद में उठाना, चूमना, दान देना आदि अनुभावों के योग में वात्सल्य रस का सुन्दर परिपाक दिखाई पड़ता है।

वात्सल्यमयी माँ की ममता लालन और ताड़न दोनों में समान होती है किन्तु जब कभी कभी अनहोनी घटना घट जाती है तब बिना किसी अपराध के माँ को सभी कोसते हैं और माँ उसे चुपचाप अपराधिनी बन कर झेल जाती है। सम्भवतः यह वात्सल्य की निकष-परीक्षा का क्षण होता है।

गोप वृद्धाएं आकर कहने लगीं यशोदा तेरा हृदय बड़ा कठोर है भला बच्चे को इतना कठोर दंड देते हैं ? भला कृष्ण ने कितना मक्खन ले लिया था जिसके नाते तूने ओखली में बाँध दिया था। यह तो बड़ी कुशल हुई कि यमलार्जुन के बीच में बालक बच गया। दूसरी ने व्यंग्य किया अरे यशोदा की बुद्धि तो सुनो बच्चे ने अधेला भर मक्खन खाया और उसको ओखली में बाँध दिया। बड़ी कुशल हुई जो पेड़ों के बीच बालक बच गया।[2] सच पूछो तो यह बालक इसे फिर से मिला। वास्तविकता यह है कि माता यशोदा के वात्सल्य की आलोचना करने वाली गोपांगनाओं के हृदय में भी वात्सल्य का भाव हिलोरें ले रहा है। इन आलोचनाओं का व्यंग्य

1: कृष्ण चरित्र 2/23

2: कृष्ण चरित्र 2/24,25

कृष्ण के प्रति अतिशय प्रेम नहीं तो और क्या है ?

ऐसा ही प्रसंग पूतना बध का है जिसमें माता यशोदा श्रीकृष्ण के सकुशल बच जाने पर दान-पुण्य करती और भगवान को धन्यवाद देती हैं[1]।

यही अनिष्ट-आशंका-जन्य भय और उद्वेग उस समय भी उत्पन्न हुआ है जब श्रीकृष्ण कालीदह में कूद पड़े हैं । एक क्षण के लिए जब कालीनाग से वेष्टित श्रीकृष्ण दिखाई पड़े उस समय करुणा, चिंता, भय, आशंका सारे वातावरण में फैल गयी । गौयें दीन भाव से देखने लगीं । व्रजवासियों को कृष्ण के बिना व्रज में रहना निरर्थक प्रतीत होने लगा और नन्द यशोदा को तो उन्मत भाव से कालीदह में कूदने से किसी तरह बलराम ने पकड़कर रोकाः—

गैयादीन ह्वैके देखि रही हैं कन्हैया जू को
दसा वह प्रभु की सकी न सब सहि कै
मन व्रज वासिन कैं पैठिए काली के दह
कान्ह विन या व्रज करैंगे कहा रहि के
काली दह कालिन्दी में पैठति निरखिनन्द
जसो मति जू को बलदेऊ ल्याये धरि कै[2]

इस प्रकार के मरण समान दर्मा वातावरणों में पड़कर भी बालक श्रीकृष्ण का बच जाना और वह भी उसका सकुशल एवं सानन्द होना माता-पिता के आँखो में किस प्रकार आनन्द के आँसू उमगाता है इसे केवल भुक्त भोगी ही जानता है ।[3] ऐसे अवसरों पर नन्द भवन में आयोजित महोत्सव माता-पिता के हर्ष की व्यंजना करते हुए वात्सल्य रस का आस्वादन प्रदान करते हैं ।

एक ऐसा ही और चित्र देखिए — श्री कृष्ण ने गोबर्दन उठा लिया है । यद्यपि कृष्ण अब बड़े हो गए हैं और समर्थ भी किन्तु माँ की ममता देखिए । वह कहती है कि मेरा यह छोटा सा छौना अपने कर कमल की पंखुड़ी सी छोटी छिगुनी पर पर्वत धारण किए हुए है और मेरा मन चिंता से पीड़ित हो रहा है ।

1: कृष्ण चरित्र 1/30
2: वही 5/4
3: काली दहते कुशल, कढ़ि दौरि कान्ह माता-पिता भेटि कै बनाय कै रोए हैं- कृ0च05/10

जब माँ से नहीं देखा जाता तो वह कहती है कि मेरे लाल। मेरा मन अकुला रहा है। तू कमल कोमल हाथ पर से इस कठोर पर्वत को उतार दे, जिसको मरना हो सो मरे, जिसको जीना हो सो जिए। मुझसे अपने बेटे का क्लेश नहीं देखा जाता। जब कृष्ण माँ की बात को नहीं मानते वह कहती है कि यदि मेरा कहना नहीं मानोगे तो मैं वहाँ जाकर प्राण दे दूँगी जहाँ चट्टाने टूट-टूटकर गिर रही हैं[1]

कहति जसोदा मैया का सों कहौं दैया कहा
सुर अवहेलन सिता को सरवत्तु है।
कहैं चिंतामनि मेरे बालक केवल व्रजु
देवन सौं वैरु करिवे को करभतु है।
औरु नीके क्यौं मेरे लाल की कहा है गति
मेरे चिते चिन्ता को समूह चरवतु है।
कहा कहौं छौना इन छिगुनी छवीली
कर कमल की पंखुरी में रख्यौ परवतु है।

कोमल कर कमल करकस गिरितें उतारि
धरि लाल मेरो मनु अकुलात है।
मरिहै सुमरौ जो जीवैगो वह जीवौ
मोसो कैसे निजु बालक क्लेसु देख्यौ जातु है।
मेरो कह्यो करि न तौ निकरि मरौंगी कहि
कढ़ी जहा करका सिलानि को निपातु है
जहा कढ़ै गोपी गोप गन संग नन्द रानी
तहाँ रछा कीबे को अचल अधि कातु है [2]

यद्यपि श्रीकृष्ण ने माँ को बहुत कुछ समझाया पर भला माँ का ममता भरा हृदय ममत्व कैसे छोड़ दे।

1: कृष्ण चरित्र 7/16, 17

इस प्रकार के माँ के ममता के चित्र और भी देखे जा सकते हैं जहाँ कृष्ण के बहुत देर तक खेल से न लौटने पर माँ घबड़ा कर खोजने निकल पड़ती है[1]। उपर्युक्त सभी प्रसंगों में कवि ने वात्सल्य रस परिपोषक सभी अंगों का समावेश करके यद्यपि बड़ी सफलता पाई है फिर भी भागवत का अनुवाद होने के कारण यथा-स्थान कृष्ण के ब्रहमत्व अथवा अतिमानव सामर्थ्य का उल्लेख होने से वात्सल्य रस विछिन्न होकर भक्ति रस का अंग बन गया है जो हो, रीति कालीन साहित्य में वात्सल्य रस का ऐसा सुन्दर परिपाक दूसरे कवियों में उपलब्ध नहीं है ।

प्रकरण समाप्ति से पूर्व कौशल्या के वात्सल्य भाव का भी चित्र प्रस्तुत कर देना अप्रासंगिक न होगा जो अनुमानतः कवि के रामायण महाकाव्य का ही एक छन्द है और कवि कुल कल्प तरु में पुत्र विषयक रति के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है —

कुलही ललित जर कसी जग मगै अरु झालर मै झलकत मुकता हसी सुढार
केसर के रंग रगी झीनी सी झगुलिया मै झलकत अंग कुवलय दल सुकुमार
हसत वदन दतिया दै देखि चिंतामनि जनम सुफल करि मानै दसरथ दार
गोद लैकै राम जू कौ आनन्द मगन मैया ललकि कै वलैया लेत वारवार [2]

यहाँ राजसी वस्त्राभूषणों में सुसज्जित राम के सौन्दर्य और मुस्कराते समय की दो दतुलियाँ देकर माता जिस प्रकार आनन्द मग्न होकर गोद में लेकर बलैया लेती है वह पूर्ण रसमयी स्थिति है । इसमें राम आलम्बन हैं माता आश्रय हैं राम के वस्त्राभूषण एवं मुस्कान उद्दीपन हैं माँ का गोद में लेना, भाग्य की प्रशंसा करना अनुभाव तथा हर्ष संचारी भाव हैं अतः यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है कि चिन्तामणि की रचनाओं में वात्सल्य रस का सुन्दर परिपाक हुआ है ।

* * * * *

1: कृष्ण चरित्र 2/28, 29

2: क0क0त0 10/161 पृष्ठ 213, 214

खण्ड 4

।: कृष्ण चरित्र: एक चरित काव्य

कृष्ण चरित्र

कृष्ण चरित्र बारह सर्गों में विभक्त एक सुन्दर प्रबन्ध काव्य है । उपलब्ध प्रति के अनुसार इसकी रचना 758 छन्दों में हुई थी किन्तु मूल प्रति के कुछ पृष्ठांशों के नष्ट हो जाने के कारण अब केवल 723 छन्द प्राप्य हैं । जैसा नाम से स्पष्ट है इस काव्य का वर्ण्य-विषय श्री कृष्ण का चरित्र है । व्रज में निवास करते हुए श्री कृष्ण ने जो लीलायें की हैं उन्हें इस ग्रन्थ में कवि ने अपनी रुचि के अनुकूल संक्षेप या विस्तार से प्रस्तुत किया है । श्री मद् भागवत हरिवंश पुराण, स्कन्द पुराण एवं ब्रह्मवैवर्त पुराण से यथा रुचि सामग्री का चयन किया गया है ।

ग्रन्थ का आरम्भ भगवान की ऐश्वर्य लीला से किया गया है और समाप्ति माधुर्य लीला में हुई है । प्रस्तावना में भगवान सदाशिव एवं सनकादि ऋषियों के संवाद की चर्चा है जो प्रकृति के अधिष्ठाता, जगत के सृष्टि-स्थिति संहारकारी, सब के अहंकार को चूर्ण करने वाले, अनन्त शक्ति सम्पन्न भगवान हैं वे ही अनन्त कृपा करके देवकी वसुदेव के तप को सफल बनाने के लिए पुत्र रूप में अवतरित हुए हैं, ऐसा उल्लेख किया गया है । द्वितीय छन्द में भाद्र पद कृष्णाष्टमी के अर्द्ध रात्री में देवकी गर्भ से श्री कृष्ण के अवतरित होने का वर्णन है ।2 इस अवसर पर अनेक दिव्य आभूषणों से युक्त कौस्तुभ मणि से

1: कहत सदा है सदाशिव सनकादिक सौं,
    प्रकृति की देवता सदा है जाकि सेव की ।
सब को रचै जो प्रतिपालै मेटि डारै,
    तासों कबहु न करहू की चलति अहमेव की ।
चिंतामनि जाकी बड़ी संकति धरति,
    पद पंकज पराग भव जल निधि खेव की ।
ऐसी कृपा भई ताही देवकी जो पोत भयो,
    तप की बड़ाई यों देवकी वसुदेव की ।(कृष्ण चरित्र 1/1)

2: कृष्ण चरित्र 1/2 तुलनीय भागवत 10/32 श्लोक

अलंकृत पीताम्बर धारी, शंख, चक्र, गदा, आदि से सुशोभित श्री कृष्ण को पुत्र रूप में प्राप्त करके वसुदेव-देवकी हर्ष से विह्वल हो जाते हैं[1] और भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे प्रभो। आपके जिस वेश का मुनिजन ध्यान भी नहीं कर पाते उस रूप को देखते हुए यह कौन स्वीकार करेगा कि ऐसे पुत्र की मैं माँ हूँ। मेरा भाई कंस मेरे वंश का शत्रु है। मैं डर रही हूँ कि कहीं वह नृशंस फिर न यहाँ आ जाय। इस पर श्री कृष्ण समझाते हुए कहते हैं कि आप दोनों ने पूर्व जन्म में मुझ से वरदान माँगा था कि मैं आपका पुत्र बनूँ मैंने उसे स्वीकार किया था इसलिये ये वेश मैंने दिखा दिया, अब मैं प्राकृत शिशु बन जाता हूँ। जन्म से ही अनन्त शक्तिशाली गोविन्द के रूप में मेरा केवल ध्यान न करते हुए आप मुझे अपने पुत्र के रूप में मानें।[2] तदनन्तर वसुदेव ज्यों ही कृष्ण को लेकर गोकुल जाने को तैयार होते हैं उनके बेड़ी के बंधन स्वतः टूट जाते हैं और कारागार के द्वार अनायास खुल जाते हैं। वसुदेव कृष्ण को लेकर यमुना के तट पर आते हैं शेष नाग अपने फन से छत्र का काम करते हैं। श्री कृष्ण के हुंकार मात्र से यमुना का जल घट जाता है[3] और वसुदेव क्षण मात्र में पार हो जाते हैं। वसुदेव जब गोकुल पहुँचते हैं तो वहाँ देखते हैं कि जिन योग माया ने देवकी के सातवें गर्भ को रोहिणी के गर्भ में पहुँचा दिया था वे ही स्वयं यशोदा के यहाँ अवतरित हुयीं हैं। अतः उन्होंने कृष्ण को यशोदा के पास सुला दिया और उस कन्या को लेकर लौट आये।[4] कन्या को देवकी को दे दिया और वे स्वयं दुख में मग्न हो गये? कंस संतान के जन्म की सूचना

1: कृष्ण चरित्र 1/3,4 तुलनीय भागवत 10/3 का 9,10

2: कृष्ण चरित्र 1/5,6 तुलनीय भागवत 10/2 का 12 से 46

3: कृष्ण चरित्र 1/7-9 भागवत 10/3 का 47 से 50

4: कृष्ण चरित्र 1/11 तुलनीय भागवत 10/3का 51 से 53

पाकर पहले की भाँति नृशंस कृत्य के लिए आता है और कन्या को छीनकर पत्थर पर पटक कर मारना ही चाहता है कि वह हाथ से छूटकर आकाश में जा पहुँचती है। अनेक आयुधों से सुशोभित महा माया कहती है कि तुम्हारा बध करने वाला कहीं और है। दीन अनाथों को क्यों मारते हो ?[1] योग माया से अन्तरधान हो जाने पर कंस देवकी और वसुदेव से छमा प्रार्थना करने लगता है।[2]

कृष्ण जैसे पुत्र को पाकर यशोदा परम प्रसन्न हो गई। गोपी-गोपगन श्री कृष्ण को देखकर यशोदा के भाग्य की सराहना करने लगे। नन्द जी ने मुँह माँगा दान दिया। वहा अनुपम महोत्सव मनाया गया।[5] अतसी-कुसुम के समान श्याम वर्ण के आनन्द कंद श्री कृष्ण के जन्मोत्सव में बृजांगनायें आरती लेकर आयीं और देवताओं ने प्रसन्न होकर फूल बरसाये।

कालान्तर में नन्द वार्षिक कर देने के लिये मथुरा जाते हैं वे वसुदेव से कहते हैं कि गोकुल में अनेक उत्पात हो रहे हैं।[4] इधर बालघातिनी पूतना कंस के आदेशानुसार स्तनों में विष लगाकर कृष्ण को दूध पिलाने लगती है कृष्ण दूध के बहाने उसके प्राणों का ही पान कर जाते हैं। सारे बृज में पूतना के मरने और कृष्ण के बच जाने की चर्चा फैल जाती है।[5]

श्री कृष्ण बड़े हो गये हैं। दो एक दाँत भी निकल आये हैं। माँ आँचल से ढक कर दूध पिला रही है सहसा कृष्ण को जम्हाई आने लगती है जिससे उनके मुख में नन्द रानी को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के दर्शन होने लगते हैं। वह पहले भयभीत हो जाती हैं किन्तु बाद में ज्ञान होने पर उसके सारे दुःख मिट जाते हैं। नन्द कुल-गुरु गर्ग से उनका नाम करण संस्कार कराते हैं।

कृष्ण थोड़े और बड़े हो जाते हैं। सखाओं के साथ ऊँचे रखे हुए दही, दूध, मक्खन आदि को खाते ही नहीं वरन् गिरा भी देते हैं किन्तु यशोदा के पास

1: कृष्ण चरित्र 1/11-13 तुलनीय भागवत 10/4 का 1 से 12 तक

2: कृष्ण चरित्र 1/14 तुलनीय भागवत 10/4/15 से 17 तक

3: कृष्ण चरित्र 1/15-17 तुलनीय-भागवत भावानुवाद 10/5/1 से 17 तक

4: कृष्ण चरित्र 1/31 तुलनीय भागवत 10/5/31

5: उपलब्ध प्रति में छन्द 31 के उत्तरार्द्ध छन्द 46 के पूर्वार्द्ध तक का अंश नहीं है

आकर भोले बन जाते हैं ।) गोपियाँ एक ओर तो कृष्ण के इस कृत्य के लिए अल उलहाना देती हैं और दूसरी ओर कृष्ण के मुख की शोभा को देखते हुए प्रेम के समुद्र में गोते लगाती हुई अपने भाग्य को सराहती हैं ।

एक दिन की बात है कि दधि-मंथन को रोकर मां कृष्ण को दूध पिलाने लगी इसी बीच में आग पर रखा हुआ दूध उफनाने लगा । माँ उधर दूध उतारने लगीं इधर कृष्ण ने एक बड़े पत्थर से दही का वर्तन तोड़ दिया और मक्खन खाने की इच्छा से घर के भीतर चले गये स्वयं खाया और बन्दरों को भी खिलाया । इसे देखकर माँ का शान्त मन क्रोध से भर गया । माँ ने पकड़ना चाहा । आप भागने लगे । माँ थक गई । पसीना आ गया जिसे देखकर वे करुणा से स्वयं पकड़ने आ गये । माँ ने कृष्ण को रस्सी (पगहिया) से बांधना चाहा लेकिन रस्सी छोटी होती गई । जिन परमात्मा की कृपा से माया भी बन्धन में नहीं बाँध पाती उन्हें आज मोह के कारण यशोदा रस्सी से बाँधने लगी । भगवान स्वयं बन्धन में आये और दामोदर नाम से प्रसिद्ध हो गये ।

कृष्ण फिर ऐसा कार्य न करें इस प्रकार की शिक्षा देने के लिये यशोदा ने रस्सी को ओखली से बाँध दिया और घर के काम में लग गयीं । इधर श्री कृष्ण के मन में कुबेर के पुत्रों (अर्जुनों) के उद्धार की इच्छा उत्पन्न हो गई[1] कृष्ण ने ओखली खींच कर यमलार्जुन की जड़ में फंसा दिया और जोर से खींचकर दोनों वृक्षों को गिरा दिया ।यमलार्जुन रूप नलकूबर और मणिग्रीव ज्योति स्वरूप होकर प्रकट हुए और अलकापुरी को चले गये ।[2] नन्द ने कृष्ण को बन्धन से मुक्त किया और उन्हें छ चुप कर गोद में ले लिया । सब ने अनुभव किया कि पूतना और तृणावर्त का बध तथा यमलार्जुन का उद्धार कृष्ण की ईश्वरता को प्रकाशित करते हैं किन्तु वही कृष्ण गोपियों के संकेत पर नाचते हैं यह तमाशा ही है कि त्रिलोकी नाथ प्रेम के कारण गोपियों की आज्ञा का पालन करते हैं ।[3]

1: कृष्ण चरित्र 2/11-19 तुलनीय भागवत 10/9

2: कृष्ण चरित्र 2/20 तुलनीय भागवत 10/10/26,27 तथा 43

3: कृष्ण चरित्र 2/21-25 तुलनीय भागवत 10/11/1-6 तक

अब ब्रज में होने वाले उत्पातों से नन्द वृन्दावन में आकर बस जाते हैं[1] कृष्ण छोटी सी लकुटिया और मुरली हाथ में लेकर कुछ दिनों बाद बछड़ों को चराने लगते हैं।[2] (इसके बाद 15 छन्द लुप्त हैं जिनमें सम्भवतः वत्स एवं बकासुर के बध की कथा रही होगी ब्रह्मा के द्वारा बछड़ों और ग्वाल बालों के छिपाये जाने का भी उल्लेख रहा होगा)

ब्रह्मा ने सब को छिपा दिया। भगवान श्री कृष्ण ने इस स्थिति को समझकर वैसे ही बछड़े बना दिये तथा नित्य की भांति क्रीड़ा विहार करते हुए ब्रज में जा पहुँचे। ब्रह्मा ने इस लीला को देखा कि जितने गोकुल के बालक और बछड़े थे वे सब माया के प्रभाव से सोये पड़े थे। इधर उतने ही और वैसे ही कृष्ण के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। वे प्रभु की इस माया को देखकर सुध बुध भूल गये। होश में आने पर उन्हें दंडवत किया और स्तुति करने लगे।[3]

तृतीय अध्याय में ब्रह्मा कृत श्री कृष्ण की स्तुति का भागवत से अनुवाद किया गया है 47 छन्दों में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन तथा कृष्ण की महिमा का भाव पूर्ण उल्लेख है।[4]

चतुर्थ अध्याय में धेनुक बध की कथा है। भगवान श्री कृष्ण ग्रामीण बालकों के साथ ग्रामीण जीवन व्यतीत करते हुए हंसते, खेलते, गाते, लड़ते जूझते विहार कर रहे है[4]। ऐसे समय श्रीदामा, गोपाल, सुबल आदि गोपो के अनुरोध पर बलराम एवं कृष्ण ताल बन में गये। बलराम जी ने ताल को हिलाया फलों के गिरने के शब्द को सुनकर वह गर्द गर्दभा सुर उनको मारने के लिये दौड़ा। पिछले दोनों पैरों से उसने बलराम की छाती में चोट की। बलराम ने उसके पैर को पकड़ा और नचाकर ताल वृक्ष पर दे मारा। धेनुक के मारे जाने पर दूसरे राक्षसों ने भी आक्रमण किये किन्तु बलराम और कृष्ण ने उन सब का संहार कर लिया।[5] देवताओं ने पुष्पों की वर्षा की, देव सुन्दरियां नृत्य करने लगीं।

1: कृष्ण-चरित्र 2/30 तुलनीय भागवत भावानुवाद 10/11/21-36
2: कृष्ण 2/31 तुलनीय भागवत भावानुवाद 10/11/37,38
3: कृष्ण-चरित्र 2/48 से 51 तुलनीय भागवत 10/13/22-64
4: कृष्ण-चरित्र 3/1-47 तक भावानुवाद तुलनीय भागवत 10/14/1-47
5: कृष्ण-चरित्र 4/1-19 तक तुलनीय 10/15/1-19

सभी लोगों ने बलराम और कृष्ण स्तुति की (आगे के लगभग 20 छन्दों में श्रीमद भागवत के दो श्लोकों से प्रेरणा लेकर कृष्ण के सौन्दर्य और गोपियों की दर्शनोत्कंठा का वर्णन किया गया है ।

पंचम सर्ग में कालिय मर्दन की कथा है । बलराम गोपियों के साथ गायें चराने के लिए यमुना तट पर गये । गर्मी से पीड़ित होने के कारण गौओं ने तथा गोपों ने उस विषैले जल को पिया और निष्प्राण होकर उस जल में गिर पड़े । श्री कृष्ण ने अपनी अमृत-वर्षिणी दृष्टि से सब को जिला लिया । वे पीताम्बर कमर में कस कर कदम्ब पर चढ़कर कालिय-दह में कूद पड़े । उस विषैले नाग से कृष्ण ने जमकर युद्ध किया और उसे नाथ लिया तथा उसके फन पर नृत्य करने लगे । नाग पत्नियों ने कृष्ण की स्तुति की और लोगों ने मानों नया जीवन पाया ।[2]

उसी दिन मध्य रात्री में सहसा बन में प्रचंड आग प्रकट हुई । सभी जीव जलने लगे । गोपी और गोपों ने कृष्ण की शरण में आकर रक्षा की प्रार्थना की, और प्रबल प्रतापी नन्द लाल ने दावानल का पान करके सब की रक्षा की[3]। कवि ने यहाँ भगवान श्री कृष्ण की अनेक अलौकिक लीलाओं की चर्चा बड़े विस्तार से की है ।

एक दिन की बात है कि प्रलम्बासुर गोप रूप धारण करके आया । भगवान ने बध करने की इच्छा से बलराम को प्रलम्बासुर की पीठ पर सवार कराया । कृष्ण के संकेत पर बलराम ने उसके सिर पर एक घूसा मारा जिससे उसका सिर फट गया और वह मर गया ।[4] इसके बाद वर्षा ऋतु का वर्णन है

1: मोर किरीट में चन्द्रिका पांति बनी मनि इन्द्र को चाप सो पेखौ ।
मंजल मंद बयारि चलै पट पीत चलै चपला अवरेखौ ।।
है यह जीवन दानि अली बग पांति अली मुकतावलि लेखो ।
नैननि को मन को अभिराम घनो श्याम की मूरति देखो ।

(कृष्ण-चरित्र 4/40 तुलनीय भागवत 10/16/42-46)

2: कृष्ण चरित्र 5/1-10 तुलनीय भागवत 10/15/47-52, 16 अध्याय तथा 17वें के 19वें श्लोक का भावार्थ

3: कृष्ण चरित्र 5/11 तुलनीय भागवत 10/17/20-25

4: कृष्ण-चरित्र 5/18

जिसमें वर्षा ऋतु की भगवान् श्री कृष्ण से तुलना की गई है ।[1]

इसी प्रकार कालान्तर में सुन्दर शरद ऋतु का आगमन हुआ । आकाश स्वच्छ हो गया । काश एवं कमल फूल गये । मल्लिका-मालती के मकरन्द भार से सुगन्धित समीर मन्द-मन्द बहने लगा । ऐसे वातावरण में श्री कृष्ण ने वंशी बजायी । इस वंशी को सुनकर गोपियों ने स्थान-स्थान पर समाज बना कर अपनी सखियों से अपनी श्री कृष्ण का गुण-कथन प्रारम्भ कर दिया । गोपियां कहने लगीं कि हम तो श्याम सुन्दर की बदन शोभा पर बिक चुकी हैं । वे कृष्ण के प्रेम में मग्न हैं । सांवली मूर्ति में हृदय लीन हो गया और कृष्ण का गुणानुवाद करते हुए कृष्ण-प्रेम में तनमय हो गईं ।[2]

छठे अध्याय में चीर हरण लीला का उल्लेख है । हेमन्त के प्रथम मास में अभिलाषा की पूर्ति के लिए गोप कुमारियों ने गिरिजा पूजन का व्रत किया । प्रातः काल उठ कर एक दूसरे को नाम लेकर पुकारकर हाथ से हाथ मिलाये गोविन्द का नाम लेती हुई वे अपने वस्त्रों को तट पर रख कर यमुना में स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुईं और कृष्ण का नाम लेकर जल विहार करने लगीं । उसी समय कृष्ण भगवान ने उनके वस्त्र उठा लिये और मुस्कराते हुए बोले तुम लोगों ने मेरे लिये तप करते हुए अपने शरीर को सुखा दिया और मुझे पति के रूप में प्राप्त करना चाहा इसलिये तुम लोग एक-एक करके आओ और हमारे पास से वस्त्र ले जाओ । इस बात को सुनकर गोपियां एक दूसरे को देखकर हंसने लगीं किन्तु लज्जा के कारण जल से बाहर नही आयीं । गोपियों ने कहा कि हम तुम्हारी दासी हैं लज्जा से पीड़ित हैं हमारे वस्त्र देकर धर्म करो जो कुछ कहोगे हम सब मान लेंगी । कृष्ण ने कहा यदि तुम चेरी हो और मेरी बात मानती हो तो आकर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ । वे सब शीत से कांप रही थीं इसलिये अपने अंगों को हाथ से ढंक कर कदम्ब के नीचे आयीं, तब भगवान श्री कृष्ण ने मुस्करा कर कहा कि व्रत में बिना वस्त्र के जल में प्रवेश करके देवताओं का अपमान किया है इसलिये हाथ जोड़ कर प्रार्थना करो और आकर वस्त्र ले जाओ । व्रत के खंडित होने के भय से गोपियों ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की । उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान ने सब के वस्त्र लौटा दिये । श्री कृष्ण ने गोपियों से कहा कि तुम्हारे मनोरथ पूर्ण हो गये तुम सब मेरे साथ विहार करोगी ।[3]

नोटः टिप्पणियां अगले पृष्ठ पर देखिए

सप्तम अध्याय में गोवर्द्धनोध्दारण की कथा है । एक समय श्री कृष्ण ने देखा कि नन्द आदि गोपगण इन्द्र पूजा का आयोजन कर रहे हैं । उन्होंने आकर नन्द से पूछा कि पिता जी ये ब्रजवासी सामग्री निकाल कर एक स्थान पर क्यों संचित कर रहे हैं ? उन्होंने कहा कि इन्द्र के आदेश से बादलजल वर्षा करते हैं इसलिये हम लोग यज्ञ करने जा रहे है । इसे सुनकर भगवान कृष्ण ने कहा कि जगत की उत्पत्ति स्थिति, लय का कारण कर्म है इन्द्र क्या करेंगे ? रजो गुण की प्रेरणा से बदल बरसते हैं । हम लोग पर्वत जंगल के निवासी हैं गाय एवं ब्राह्मणों से युक्त हैं । इसलिये गोबर्द्धन यज्ञ का आरम्भ कीजिये ।

कृष्ण के आदेशानुसार पर्वत को पायस (खीर) की बलि और गौओं को भोजन आदि देकर और उन्हें आगे करके ब्रजवासी पर्वत की प्रदक्षिणा करने लगे । गोपियां भी अलंकृत होकर कृष्ण चरित्र का गान करती हुई बैलगाड़ी पर बैठ कर प्रदक्षिणा करने लगीं । कृष्ण ने एक सुन्दर रूप धारण करके कहा कि मैं गोबर्द्धन हूँ और गोपों को विश्वास दिलाने के लिये बलि-भोजन ग्रहण किया तथा अपने असली रूप से गोबर्द्धन को प्रणाम किया । पर्वत की पूजा करके कृष्ण के साथ ब्रजवासी ब्रज को लौट आये ।[4]

1: सोहत अख उत को दंड मेघ मंडल से,
मोर पथ मुकुट ज्यों मंजुल गोपाल सी ।
गरजनि गंभीर ज्यों गोविन्द के गरे की धुनि,
दामिनी दमक जोति पट पीत जाल सी ।
गोपिका सी नीकी इन्द्र गोपिका निकरि आई,
चिंतामनि देखन को अद्भुत लाल सी ।
घनश्याम पट बग पाँति सी विराजत है,
धन श्याम उर पर मल्लिका की माल सी ।[1] (कृष्ण-चरित्र)

2: कृष्ण-चरित्र 2/21-33 तुलनीय भागवत 14/21 पूर्ण अध्याय

3: कृष्ण-चरित्र - 6/1-25 तुलनीय भागवत 10/22/1-27 तक

4: कृष्ण-चरित्र 7/1-8 भागवत 10/24/31 -38 तक

इस पर इन्द्र कुपित हो गये और उनके आदेशानुसार मुसलाधार वर्षा आरम्भ हुई । धरती अपार समुद्र सी हो गई । बिजली चमकने लगी । वर्षा और हवा के कारण गोपी गोप तथा शिशु शीत से कांपते हुए भगवान कृष्ण की शरण में गये । उन्होंने कहा कि हे अनाथों के नाथ श्री कृष्ण । इस प्रबल आपदा से गोधन के साथ हम सब की रक्षा कीजिये । उन्होंने कहा कि मैंने इस गोवर्द्धन को उठा लिया है । इस कन्दरा में सब लोग प्रविष्ट हो जाओ, यह अच्छी छाया देने वाला सुन्दर घर है । माँ यशोदा जब-जब कृष्ण के कर कमल पर गोवर्द्धन को देखकर व्याकुल होती थी, तब-तब पूतना-वध, विश्व रूप दर्शन, कालिय-मर्दन और दावाग्नि का स्मरण करके संतोष करती थीं ।

जिस समय अखंड जल वर्षा से यह धरती जल राशि पर कच्छपसी प्रतीत हो रही थी उस समय मुस्कराते हुए व्रजनाथ ने व्रजवासियों को पर्वत के नीचे करके बचाया । इन्द्र का अभिमान चूर्ण हो गया । ई उन्होंने बादलों को बरसने से रोक दिया । इस प्रकार कृष्ण ने सात दिन तक गोवर्द्धन धारण कर रखा । इन्द्र देवताओं के साथ सुर लोक से आये और प्रणाम करके डरते हुए श्री कृष्ण से बोले – हे प्रभो ! आप सत्य, विज्ञान और आनन्द स्वरूप विशुद्ध शक्ति-मूर्ति हैं । दुष्टों के विग्रह के लिये अपनी इच्छा के लीला'विग्रह धारण करते हैं । आप शरणागत प्रतिपालक हैं इसलिये मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये । आप ने पहले मुझे हजार नेत्र दिये और फिर मुझे मदान्ध बना दिया । आपने मेरे यज्ञ का विरोध किया और उस पर मैंने अनुचित क्रोध किया । मैंने ब्रज के विनाश के लिये प्रलय के मेघ पठाये पर उनकी शक्ति ही क्या थी ? हाँ आप-कीर्ति हाथ लगी । मेरे अपराध क्षमा कीजिये ।[1]

इसके बाद काम धेनु ने, कहा हे कृष्ण तुमने मेरी प्रजा की रक्षा की, ऐसा कहते हुए अपने दूध से अभिषेक करके उन्हें गोपेन्द्र की पदवी दी ।

श्री कृष्ण ने कहा तुम्हें इन्द्र पदवी पाकर अभिमान नहीं करना चाहिये था । इसे सुनकर सुरभी ने कहा कि भगवान अच्छी शिक्षा दे रहे हैं । इतना कहकर दोनों ने भगवान कृष्ण की स्तुति की जिससे श्री हरि नारायण प्रसन्न हो गये ।

1: कृष्ण-चरित्र 7/25 तुलनीय भागवत 10/27/1-13 तक

गोवर्द्धन धारण से विस्मित वृजवासियों ने नन्द से कहा कि इनके अद्भुत अशक्य गुणों के कारण ही गर्ग मुनि ने इनका हरि नारायण और ब्रह्म का नाम रखा ।

एकादशी के दिन वृत करने के बाद द्वादशी को अल्प जान कर ब्राह्म मुहूर्त में जब नन्द यमुना में स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुए तब आसुरी बेला समझकर वरुण का सेवक उन्हें पकड़कर वरुण के निकट ले गया । गोपालों के कोलाहल करने पर कृष्ण वहा तुरन्त पहुँचे । वरुण ने कृष्ण को देखकर दौड़कर उनकी पूजा की और उन्हें सिंहासन पर बिठाकर कहा कि मुझ अज्ञानी सेवक ने आपके पिता को पकड़ लिया और आपने इन चरण - कमलों का दर्शन करा कर हमारे भाग्य को धन्य कर दिया । अब मेरे अपराध को क्षमा कीजिए और अपने पिता को ले जाइये ।[1]

अष्टम सर्ग का प्रारम्भ राधा की जन्म कथा से होता है । शिव भक्त वृषभानु ने सन्तति प्राप्ति के लिये भगवान शिव की सेवा की । शिव ने इस प्रकार स्वप्न दिया कि श्री हरि की परमशक्ति तेरे घर कन्या के रूप में जन्म लेगी । श्री हरि वासुदेव अवतार लेकर नन्द के घर आयेंगे । यशोदा की कन्या को वसुदेव ले जायेंगे । नन्द और यशोदा द्वारा पालित वह बालक जब किशोर होगा तो उस समय वह कोटि कामदेव के सौन्दर्य से युक्त होगा । तुम्हारी कन्या राधा उससे छिप कर प्रेम करेगी और तुम्हारे कुल के भाग्य जगेंगे ।

इस प्रकार के स्वप्न को देखकर मन ही मन विस्मित वृषभानु की पत्नि रानी कीर्ति ने राधिका रूकमणि ज्योति को जन्म दिया । वृषभानु ने जन्मोत्सव मनाया । दिन प्रति दिन बड़े दुलार से उसे पाल पोस कर बड़ा किया । किशोरावस्था के आगमन पर राधा का सौन्दर्य नूतन कान्ति से परिपूर्ण हो गया । शिशिर ऋतु के अन्त में वसन्त का आगमन होता है । अब यौवन रूपी चन्द्रमा सम्पूर्ण कलाओं के साथ उसके जीवन में उगना ही चाहने लगा । उस चन्द्रमुखी राधा में दिन प्रति दिन नवीन सौन्दर्य का उदय होने लगा ।[2]

1: कृष्ण-चरित्र 7/31-34 तुलनात्मक भागवत 10/28/1-17

2: कृष्ण-चरित्र 8/1-17

एक रात्री के समय राधा और कृष्ण ने एक ही साथ स्वप्न देखा । यमुना के तट पर कोकिल- कूजित, भ्रमर-गुंजित कल्प-लता-कुंज में कमल-नयन श्याम-सुन्दर खड़े हैं । शरद इन्दुवदना श्री राधा को देख रहे हैं, राधा के मुख को देखकर मुस्कराते हुए ललचाई आँखों से कृष्ण अपनी अधीनता प्रकट कर रहे हैं और उनकी आंखों में हास-विलास उमड़ रहा है । काम भावना एक दूसरे को निकट ला रही है और वे एक दूसरे का मुख चूमना ही चाहते हैं कि उसी समय आंखें खुल जाती हैं । सुन्दरी राधा व्याकुल हो उठती है । श्री कृष्ण उसके लिये स्वप्न की सम्पत्ति बन जाते हैं । सुन्दरी राधा की जब नींद खुली तो वह काम भावना से पीड़ित हो उठी । राधा की प्रिय सखी ललिता को जब राधा की उस दशा का ज्ञान हुआ तो वह दौड़ कर उसके पास गई । राधा हथेली पर कपोल धारण किये हुए अश्रु बहा रही थी उसे काम भावना ने बेचैन कर दिया था ।

ललिता ने कहा कि हे कमल मुखी तुम्हारे आंखों से आंसू निकलने का क्या कारण है ? तुम्हारी विकलता से मैं अत्यन्त पीड़ित हो रही हूँ । तुम अपने मन के दुःख को कहो जिससे उसकी शान्ति का उपाय करूँ । अश्रु-मुखी राधा ने कहा- तुम्हारे अतिरिक्त और कौन मेरी पीर बटा सकता है । सखि ? स्वप्न में मैंने एक सौन्दर्य-पुज उदार पुरुष को देखा है जिसका सौन्दर्य अवर्णनीय है । कालिन्दी के तट पर जहां मैं स्नान ~~कर्स~~ करने गई थी वहीं वह अपना सौन्दर्य बिखेर रहा था । ज्योंही हम दोनों मुस्कराते हुए उस कुंज में पहुंचे और ललचाई आँखों से देखते हुए परस्पर चुम्बन करना चाहा त्यों ही मेरी आँखा खुल गई । बड़ी पीड़ा हुई । ऐसा लगता है जैसे कोई पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से कुम्भी पाक नरक में पहुंच गया हो । जिसे मैंने स्वप्न में देखा है वही यदि मेरे पास होगा तभी मेरा जीवन है अन्यथा प्राण दे दूंगी । इतना कहते-कहते काम पीड़िता राधा मूर्छित हो गयी ।

विशाखा आदि अष्ट सखियां राधा की दशा को सुन कर दौड़ीं हुई आयीं और शीतल उपचार के द्वारा राधा को होश में लाने का प्रयास करने लगीं ललिता ने राधा से कहा सखी उस रूप का चित्र बना दो । राधा ने लिखने की सामग्री लेकर कृष्ण के उस रूप को अंकित कर दिया जिसे उसने स्वप्न में देखा था । ललिता ने विशाखा आदि सखियों को बुलाकर श्री कृष्ण के उस चित्र को दिखा कर पूछा जिस उत्तम पुरुष का चित्र है उसे जिसने देखा हो वह उसका वर्णन करे । छिपा कर

न रखे । तब सब सखियों ने कहा आज प्रातःकाल स्वप्न में हमने इस रूप को देखा है । श्री राधा जी इनके पास थीं और इन दोनों के सुन्दर नेत्र सुशोभित हो रहे थे । सांवला सलोना नन्द कुमार अत्यन्त उदार और सौन्दर्य-पुंज है ।

तदनन्तर विशाखा , चम्पकलता, विचित्रा, इन्दुलेखा आदि सखियों ने परस्पर सुन्दर हास-परिहास किये । ललिता जी के साथ सब सखियों ने कहा कि हम सब ने स्वप्न में इसी रूप को देखा । तुंग विद्या ने कहा कि श्री कृष्ण अन्तर्यामी है उन्होंने स्वप्न में रूप दिखाया और अब कामना पूरी करेंगे ।

इधर श्री राधा जी सखियों के साथ हास-परिहास में व्यस्त थी और उधर नन्द भवन से यशोदा के द्वारा भेजी गई लोचन-चन्द्रिका नाम की एक गोपी कीर्तिमाता के पास पहुँची । वह एक ऐसी कमल की माल उपहार में लायी थी जो मलिन नहीं होती । इस माला को काली नाग ने भगवान कृष्ण को दिया था । यशोदा प्रेषित मुक्ताहार तथा सुन्दर कपड़े से ढका सोने का थाल लेकर वह कीर्ति माता के लिये पास आई और प्रणाम करके कहा कि यशोदा माता ने तुम्हारे पास ये आभूषण तुम्हारी लल्ली के लिये भेजे हैं । तब कीर्तिमाता मुस्कराती हुई कन्या के पास आयीं कि बेटी माँ यशोदा ने तुम पर प्रेम प्रकट किया है । तुम झट-पट इसे स्वीकार करो । उन दोनों सुन्दर मालाओं को राधा को पहनाकर अपने भवन में लौट आयीं ।

तदन्तर एक स्त्री ने आकर सूचना दी कि कीर्ति माता यमुना तट पर स्नान करने पहुंच गई हैं उस पर श्री राधा ने कहा कि कीर्तिमाता व हम भी स्नान करने के लिए चलेंगी । लोचन चन्द्रिका ने टिप्पणी की कि रूप निधान श्री कृष्ण को देखेंगी । राधा ने कहा कि सखी तुम भी चलो । तब लोचन चन्द्रिका ने कहा कि आज वसंत पंचमी है । आप लक्ष्मी के रूप में विराजमान हैं । हम दर्शन छोड़कर कहाँ जायेंगी । सभी सखियों के साथ चलो । यह सुनकर सभी वृन्दावन तट की ओर चलीं ।

नवम अध्याय का आरम्भ वसंत पंचमी के दिन राधा के यमुना स्नान के लिए प्रस्थान से होता है । राधा के अंग प्रत्यंग में वसन्त की शोभा फैल रही है । कामदेव के मित्र वसंत ने एक ओर वसुधा में वासंती सौन्दर्य बिखेर दिया है तो दूसरी ओर राधा के अंगों में यौवन उच्छादित हो उठा है ।

पार्वती के चरणों का स्मरण करके और विघ्न विनाशन एक दंत का ध्यान करके भगवान के कृपा-कटाक्ष की कामना करती हुई एवं वसंत की शोभा का अवलोकन करती वृषभानु नंदनी कुंज गली से होकर कालिंदी की ओर चलीं। सखियों ने कहा सखी! आनन्द पूर्वक वसंत ऋतु का स्वागत कीजिये सुन्दर पुष्प रस के माधुर्य की मिठास का आनन्द लीजिये और सुन्दरी! मोर मुकुट रसिक शिरोमणि श्री कृष्ण का दर्शन कीजिये।

हँसती हुई सखियों के हास्य प्रवाह रोकनेके लिये लोचन-चन्द्रिका ने राधा की बाँह पकड़ ली। इसी प्रकार कहते-सुनते राधा आगे बढ़ी। वसन्त की शोभा को देखकर रीझ गई। लोचन चन्द्रिका ने कहा कि अशोक का वृक्ष चरणों के स्पर्श से पुष्पित हो जाता है इसे देखने के लिये ज्यों ही राधा अशोक के निकट पहुँची त्यों ही उसने वहाँ श्री कृष्ण को देखा। प्रथम दर्शन के क्षण में शृंगार-रस के सभी अनुभाव एक साथ प्रकट हो गये। नयनों में प्रेमाश्रु, कंप, स्वेद, रोमांच स्तम्भ का आविर्भाव हुआ। शरीर पीला पड़ गया। मुख से वचन नहीं निकले। उधर राधा को देख कर श्री कृष्ण की भी वैसी दशा हो गई। काम देव की क्रीड़ा का आरम्भ हो गया मानों उनकी अभिलाषायें सफल हो गयीं। आँखों की मुस्कान से सारे सन्ताप दूर हो गये। हृदय में उमड़ते हुए आनन्द की लहर से दोनों के हृदय लहरा उठे।

१: लोचनन झलक्यो प्रमोद जल कंप सेद,
पुलक अचल तनु सलित पसार्‌यो है।
पीत रंग भयो मुख बैन निकटै न मैन,
इंगित निरखि कछु खेल यों उघार्‌यो है।
देखत कन्हैया जू की वहै गति भई,
उन देवता सरूप धेय आपनो विकार्‌यो है।
वचन अगोचर जो पट परम आनन्द नन्द नन्दन
सो वृषभान नन्दिनी निहार्‌यो है।
(कृष्ण चरित्र 9/12)

तदनन्तर वासन्ती, फूलों की सुगन्ध लेने के व्याज से राधा ने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया । उपवन अवलोकन के व्याज से मृग लोचनी राधा ने श्री कृष्ण की प्रदक्षिणा की । अगर की सुगन्ध से मानो धूप दिया तथा अंग में पहली दिव्य मणियों द्वारा ही नीराजना की ।

इसके बाद राधा और कृष्ण ने एक दूसरे की पूजा की । देवताओं ने उस कुंज भवन में सुन्दर शैया उप कल्पित की । राधा ने कृष्ण को चन्दन का अनुलेप किया और कृष्ण ने अमोल रत्नों का हार पहना दिया । दोनों ही शृंगार रस के अनुभावों से परिपूर्ण हो गये । श्री राधा जी जब ललिता और लोचन चन्द्रिका के कुंजों में आयीं तो वहाँ भी श्री कृष्ण निकलते हुए दिखाई पड़े । सभी गोपियों के साथ कृष्ण ने रसाल कुंज के नीचे अनन्त रूप धारण करके विहार किया ।

सकल विभूति के अधिपति ने रसाल कुंज के नीचे राधा के साथ वसंत पंचमी के दिन विहार किया । कुंज-भवन से निकलने से पहलेकहा कि लगता है बलराम गोप मंडली लेकर इधर ही आ रहे हैं इसलिए हे चन्द्रमुखी ! एक चुम्बन देकर जाओ और अपनी सखियों को खोज लो । राधा ने चुम्बन दिया और कुछ सकुचाती हुई स्नान कर घर लौट आयीं । इधर माता ने यमुना में स्नान करने के बाद देवताओं की पूजा करके और ब्राह्मणों को सुवर्ण एवं गऊ का दान करके नैवेध मिठाई, मणि, वस्त्र आदि भेजा । राधा ने सब को मिठाई बाँटी और स्वयं शैया पर लेट गयी तथा उनका मन श्री कृष्ण में लग गया ।

दशम अध्याय का प्रारम्भ वसंत पंचमी के प्रथम निकुंज मिलन के उपरान्त वियोग से पीड़ित राधा की विरह व्यथा से होता है । कृष्ण ने जाते-जाते जो अधर दंश दिया है उसकी स्मृति करके कभी राधा 'रिस' करती है तो कभी किस प्रकार ओंठ उठा दिया था और हरि का अधरामृत पान किया था' ऐसा सोच कर पुलकित हो जाती है । उसने जिस दिन से श्याम को देखा है उस दिन से और सब फीका लगने लगता है । विरहणी राधा कहती है कि सखी ! कोयल की कूक सुनकर हृदय में हूक उठती रही है । युवतीजनों के मन का हरण कर लेने वाले श्री कृष्ण नेत्र-बाणों से घायल कर गये हैं । इस कराल वसन्त काल में

नन्द लाल के बिना और कौन जिला सकता है ?

ऐसा सोचते-सोचते राधा की दशा उन्मादिनी हो जाती है । राधा ललिता से कहती है कि इस समय पंचमी की चाँदनी रात को देखकर मैं नन्दलाल के बिना कैसे जीवित रह सकती हूँ । ललिता ने कहा तुम्हारी बातें मैं इतनी आतुरता नहीं करूँगी । कीर्ति माता गंगा को गई हैं । विवेक पूर्वक सम्हाल कर बाते करें । इसी बीच राधा की धाय कीर्तिमाता को दूर तक पहुँचा कर लौटी और बोली कि तुम्हारी माता व्रत भंग के भय से बहुत दुखी होकर गयी हैं । उन्हें तुम्हारे ताप की बड़ी चिन्ता है ।

उधर श्री कृष्ण यद्यपि गुरुजनों के कार्य में उलझे रहे फिर भी काम जन्य मानसिक व्यथा उन्हें पीड़ित किये रही । राधा मिलन के अभाव में उनके अंग विरहाग्नि से संतप्त होते रहे । इधर वियोगिनी के प्राण हरि के मिलन की उत्कंठा में कंठ तक आ गये हैं । कुछ ही दिन बाद एक दिन लोचन चन्द्रिका अचानक आ गई । राधा ने उसे गले लगा कर भेंटा । उनके आँखों में आँसू गया, लगता था मानो व्यथा की नदी में डूबते हुये राधा को समीप में ही दिव्य लता का आश्रय मिल गया । उसने कहा श्री कृष्ण ने तुम्हें प्रणाम कहा है । जैसी दशा तुम्हारी है उससे भी अधिक विरह पीड़ित दशा उनकी भी है । उन्होंने तुम्हारी मूर्ति बना रखी है उसी मूर्ति से रीझते खीजते और विरहाकुल होकर अनेक प्रकार की बातें करते हैं । आँखों से आँसू बरसता रहता है । ऐसी दशा सुनकर तुम्हारा मन उनकी रक्षा के लिये क्यों नहीं आतुर होता ? राधा ने कहा कि त्रिलोकी नाथ ने मुझे जो सम्मान दिया है उससे उन्होंने मुझे अपनी क्रीत दासी बना लिया है । मैंने गुरुजनों की लोक लाज और कुल मर्यादा छोड़ दी है लोचन चन्द्रिका ने कहा है सखी ! तुम लोचन चन्द्रिका के साथ कृष्ण रूपी चातक की लोचन चन्द्रिका बनो । दुःख का समय बीत गया । अब अभिसार की तैयारी करो । राधा ने सफेद फूलों की माला केश पास में गूँथ कर श्वेत चन्दन लगा कर दूध के फेन से धवल, श्वेत वस्त्र पहन कर और मोतियों की माला गले में डालकर शुक्लाभिसारिका के रूप में कृष्ण मिलन के लिये प्रस्तुत हो गई ।

एकादश सर्ग में अभिससार का एवं राधा माधव विहार का वर्णन है । संध्या समय राधा का शुक्लाभिसारिका के रूप में धवल शृंगार किया गया जिससे ऐसा लगता था कि राधारूपी श्यामा वधू को चन्द्रमा ने चाँदनी में छिपा लिया हो । राधा के साथ जो सहस्त्रों की संख्या में सखियाँ हैं वे भी तदनुरूप शृंगार करके

सुसज्जित हो गयीं। जब चन्द्रमा आकाश में कुछ ऊपर चढ़ गया और धरती से आकाश तक सब कुछ चाँदनी में धवलित हो उठा, मलय समीर मन्द मन्द बहने लगा, तब राधा चाँदनी में अभिसार के लिये चल पड़ी और यमुना के पुलिन में फूलों से सुसज्जित शुभ्र शयन जहाँ उपकल्पित था ऐसे कल्पवृक्ष के नीचे श्री कृष्ण के पास जा पहुँची। द्वार पर नूपुर की झनकार सुनकर नन्दकुमार लता मंडप से प्रकट हुए। दोनों ने प्रफुल्लित नेत्रों से एक दूसरे का स्वागत किया। राधा और कृष्ण परस्पर गले मिले और श्री कृष्ण राधा की बाँह पकड़ कर आनन्द में झूमते हुए कुंज की ओर ले गये। राधा की अष्ट सखियों को भी अनेक रूप धारण करके श्री कृष्ण विभिन्न कुंजों में ले गये।[1]

अनन्तर लीला विहार की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई जिसका काव्य में वर्णन कवि ने बहुत रस लेकर किया है।[2] रात्रि के समय जागरण के कारण पलक

1: चन्द मुखी सेवित चरन प्रतिबिम्बित सद चंद।
चली चन्द अधिदेवता श्री सुन्दरि सानन्द।।
चन्दमुखी यों चन्द्रिका में कीन्हू अभिसारु।
जनु क्षीरधि अधिदेवता को क्षीरधि संचारु।।
विषद वेष प्रतिबिम्ब श्री राधा के संग।
चली अली उड़वत करत चन्दक चंद्रिक रंग।।
सेत बदन दुति बदन छवि मनि मनि मुक्तन की जोति।
चन्द मुखी मिलि चाँदनिहि ओप चौगुनी होति।।
तिहि छपावति चाँदनी समुझि बड़ो उपकारु।
विपुल करतु है चाँदनी सुन्दर को अभिसारु।।
तम महं प्रगट निहारिये दिन दीपति अधिकाहि।
घोष निशा की चाँदनी चली चाँदनी माँहि।।

(कृष्ण-चरित्र ।।/29 से 34 तक)

2: कियो रीझि इत वा सगे औचक चुम्बन श्याम।
मोह भंग चल सजल दृग हँसनि हरस्यो मनु वाम।।
स्याम कह्यो सुन्दरि सुभग सुभ्र बेख विस्तार।
जाति चन्द्रिका चन्द मुखि रच्यौ रुचिर अभिसार।।
मुकुत सितोपल वृंद मय गहनो भार उतारि।
जौतै पावत बड़ी छवि तातन अपर वारि।।
सह्यो भानु कर कस कुचनि वे तू सिरीख सुकुमार।
लखि एक एकावलि अंगिया हार उतार।।
यों कहि मुक्तावलि ललित अंगिया के बंद स्याम।
गेह गह गहे उन गहे कछु विलास अभिराम।।
बंद अंगिया के हरि गहे यों चितई वरनाम।

इस प्रकार भभक रहे थे जैसे कमल पर भौरे मडरा रहे हो । केलिके समय आभूषण अंगों पर अनंग की शोभा बरसा रहे थे । वह कुमारी देखने योग्य थी । प्रभात होता देखकर तथा राधा को विरह विह्वल होते देखकर श्री कृष्ण ने कहा कि जिस लिए तुम्हारे गुरुजन गंगा गये हैं वह बात यहीं बन गई । यह विचित्र हाल तुम देखो । सारी सखियों के साथ मैंने तुम्हारे दो रूप बना दिये हैं । अपने एक रूप से अपने भवन में विराजती रहो और दूसरे स्वरूप से नित्य वृन्दावन में मेरे साथ विहार करती रहो ।

द्वादस सर्ग में रति श्रांता गोपांगनाओं के रूप का वर्णन है श्री कृष्ण ने सभी गोपांगनाओं से कहा कि तुम अपने और हमारे इस मिलन की चर्चा राधा से न करना क्योंकि जब तक पक न जाय प्रेम रूपी खेती की विश्वासरूपी मंजरी को नहीं काटना चाहिये ।[1] अनन्तर अपने वस्त्राभूषणों को सुधारती बरसाने की विलासिनी गोपकुमारियां कुंज से निकलीं । उनके उनींदे नयन अध खुले कमल से दिखाई दे रहे थे ।

पिछले पृष्ठ की शेष

मनो मैन बानन हने भूले सब सुधि स्याम ।।

2: × × ×

सुधि करि धीर समारि कर कुच पर राख्यौ लाल ।
मानौ हर दिगवसन पर राख्यौ कमल सनाल ।।

(कृष्ण-चरित्र ।।/72,73,74,75,76,77 तथा 79)

1: सखी प्रान प्यारी तुम प्रान प्यारे हम अवै,
गनती वे मुनि पुनि गनै न ज्यों औगुनै ।
प्याइ मधु स्वादु इन्हें हाते आयो इत
उन सुनै है न रति मैं जै भूषनभन्न भुनै ।
चिंतामनि कहै होन दीजै परिपाक ज्यों न,
कांची प्रीति खेती की प्रतीत मंजरी लुनै ।
कान्ह कह्यौ राधा जू की साखिन सो प्रात यह,
हमारो तुम्हारो जोगु राधिका जु ना सुनै ।
(कृष्ण चरित्र ।2/1)

सखियों को देखकर, कुछ सकुचाती सी राधा रति चिन्हों को छिपाने के उद्देश्य से यमुना में प्रवेश करके जल क्रीड़ा में मग्न हो गयीं उसी बीच कृष्ण भी वहां आ गये । तरंगों के स्पर्श के व्याज से मृगलोचनी ने श्री कृष्ण के चरणों का स्पर्श किया । लहरों से इस प्रकार मिली मानों श्याम की भुजाओं से मिल रही हों । सुन्दरियों का समूह जल में तैर रहा था उनका मुख कमल की भाँति सुशोभित हो रहा था । श्री कृष्ण ने पुनः कौतुक किया । अनन्त रूप धारण करके सब के पास आये और जल क्रीड़ा में सन्नद्ध हो गये । अनेक प्रकार की विलासमयी जल क्रीड़ा के बाद श्री कृष्ण कल्पलता के कुंज में पहुँचे । वहाँ उन्होंने वंशी बजायी । राधा और कृष्ण के नृत्य एवं वंशी वादन को सुनकर गोपियाँ विह्वल हो उठीं । ग्रीष्म का आगम देखकर श्री कृष्ण ने राधा से कहा कि गोवर्द्धन की कन्दरा में चलें जहां निर्झर झर रहे हैं, सुरभित पवन चल रहा है ऐसा कह कर श्री कृष्ण उस गोवर्द्धन निकुंज में गये । वहाँ जाकर मल्लिका के फूलों की सुन्दर सेज की रचना की । कृष्ण की इच्छा से सब ने सुन्दर श्रृंगार किये । गोविन्द ने गोपियों के साथ गोवर्द्धन पर्वत पर नाना प्रकार से विहार किया ।

इसी प्रकार विहार करते करते वर्षा ऋतु का आगमन हुआ भूमि चारों ओर हरी भरी हो गई । मोर बोलने लगे । इस बीच कृष्ण और राधा युगल-किशोर कालिन्दी के कूल पर कुसमित कुँज में विहार कर रहे थे । इधर बादल बरस रहे थे उधर राधा घनश्याम पर स्नेह की वर्षा कर रही थी । इस प्रकार के वर्षा-विहार के समय जब बादल उमड़ घुमड़ रहे थे उस समय श्री कृष्ण हिंडोले पर झूल रहे थे और गोवर्द्धन की गिरि कन्दराओं में लीला हो रही थीः-

> श्याम तन घन घटनि अवर रही,
>
> छायो रही है आसार जल धराने धरनि भरि ।
>
> जलत गरज झाई मुरज गरज अरु
>
> संगीत सरस धुनि रही हैं जहाँ पसरि
>
> स्यामजू सखिन संग राधिका रिझवत है
>
> गावत है मलार सुललित सुर तान धरि
>
> सुन्दर गोबरधन गिरि कंदरन मध्य
>
> सुन्दरी वृन्द मिले बररषा में खेलै हरि ।[1]

1: कृष्ण चरित्र 2/59

कृष्ण चरित्र : एक चरित काव्य :-

कृष्ण चरित्र बन्ध की दृष्टि से प्रबन्ध काव्य है किन्तु इसे अधिक सूक्ष्म दृष्टि से 'चरित काव्य' कहना चाहिए। चरित काव्य की कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं जिनके कारण वह पुराण, इतिहास और कथा से भिन्न एक विशेष प्रकार का प्रबन्ध काव्य माना जाता है। संस्कृत साहित्य में प्रबन्ध काव्य की चार शैलियाँ प्राप्त होती हैं — 1: शास्त्रीय शैली 2: ऐतिहासिक शैली 3: पौराणिक शैली 4: रोमांसिक शैली इनमें से प्रथम के अतिरिक्त अन्य तीन शैलियों में चरित काव्य प्राप्त होते हैं। अपभ्रंश में पौराणिक और रोमांसिक इन दो ही शैलियों के काव्य मिलते हैं। वे सभी चरित काव्य हैं। कृष्ण चरित्र में भी पौराणिक और रोमांसिक शैलियों का सुन्दर समन्वय है।

चरित्र काव्य की जो मूलभूत विशेषताएँ हैं वे प्रायः कृष्ण चरित्र में प्राप्त हो जाती हैं। साहित्य कोष के आधार पर चरित्र काव्य की विशेषताएँ इस प्रकार हैं :-

1:- चरित काव्य की शैली जीवन चरित की शैली होती है। उसमें प्रारम्भ में या तो ऐतिहासिक ढंग से नायक के पूर्वज, माता पिता और वंश का वर्णन का वर्णन रहता है या पौराणिक ढंग से उसके पूर्व भावों का वृत्तान्त तथा उसके जन्म के कारणों का वर्णन होता है।

कृष्ण चरित्र में भगवान श्री कृष्ण के जन्म के कारणों का वर्णन पौराणिक पध्दति से किया गया है और भागवत पुराण की सामग्री लेकर पौराणिक शैली में ही जन्म माता-पिता की स्थिति, मथुरा से ब्रज की यात्रा, नन्द यशोदा आदि का उल्लेख किया गया है।

2:- चरित काव्य कथात्मक अधिक और वर्णनात्मक कम होता है। दूसरे शब्दों में कवि की दृष्टि कथा की ओर अधिक रहती है वस्तु वर्णन या प्रकृति चित्रण की अधिकता नहीं होती।

कृष्ण चरित्र के प्रथम सर्ग से सप्तम सर्ग तक केवल श्री कृष्ण और उनकी अतिमानवीय लीला के कथात्मक स्वरूप पर कवि की दृष्टि अधिक स्वाभाविक और सरल ढंग से माता-पिता आदि का संक्षिप्त वर्णन करने के बाद रोमांसिक शैली का आरम्भ होता गया है।

3: चरित काव्य में प्रायः प्रेम, वीरता और धर्म-वैराग्य-भावना का समन्वय दिखलाई पड़ता है । उसमें पौराणिक कथानक में भी प्रेमाख्यानक रंग भरने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है ।

इस काव्य में भी प्रेम, वीरता, और भक्ति का सुन्दर समन्वय दिखाई पड़ता है और ग्रन्थ का उत्तरार्द्ध राधा और कृष्ण के प्रणय व्यापार के कारण रोमांसिकता से परिपूर्ण हो गया है ।

4: चरित काव्यों में प्रेम का प्रारम्भ स्वप्न दर्शन, गुण श्रवण आदि से होता है । यहाँ भी स्वप्न दर्शन से राधा और कृष्ण के प्रेम का शुभारम्भ होता है किन्तु जहाँ अन्य काव्यों में प्रेमाख्यान शैली में विवाह से पहले या बाद में नायक नायिका के मिलन में अनेक बाधाओं का उल्लेख मिलता है वहाँ कृष्ण चरित्र में रीति कालीन परिप्रेक्ष्य में बड़ी स्वाभाविक प्रक्रिया में प्रेम का विकास और मिलन का सुअवसर प्रस्तुत किया गया है ।

5: प्रायः सभी चरित काव्यों का कथा रूप वक्ता, श्रोता, योजना के रूप में प्राप्त होता है । यहाँ भी दो बार वक्ता, श्रोता की योजना की गई है। प्रथम अध्याय के प्रथम छन्द में वक्ता भगवान सदाशिव और श्रोता सनकादि महर्षि हैं । दूसरी बार अष्टम अध्याय में राधा के चरित्र की चर्चा के प्रकरण में वक्ता भगवान सदाशिव ने हैं किन्तु श्रोता वृषभानु जी हैं जिन्हें राधा के जन्म से ही पूर्व स्वप्न में भगवान सदाशिव ने सब कुछ बता दिया ।

6: चरित काव्य में अलौकिक एवं अतिमानवीय शक्तियों, कार्यों आदि का समावेश रहता है । यह तत्त्व न्यूनाधिक रूप में पौराणिक और रोमांसिक दोनों शैलियों में प्राप्त होता है । इसीलिए कृष्ण चरित्र में भी जन्म से ही लेकर गोबर्द्धनोद्धारण तक के प्रसंग कृष्ण के अलौकिक कार्यों एवं उनकी अतिमानवीय शक्तियों का पदे-पदे उल्लेख है । उत्तरार्द्ध में प्रणय व्यापार में रोमांसिक अति-मान वीयता की योजना प्रायः नहीं है किन्तु कृष्ण का अनन्त रूप धारण करके सब के साथ सम काल में विहार करना सहृदय को चमत्कृत करने के लिए पर्याप्त है ।

7: चरित काव्य का कथानक शास्त्रीय प्रबन्ध काव्य की भाँति सन्धियों कार्यावस्थाओं और कार्यान्वितियों के प्रति आग्रहशील नहीं होता अपितु उसमें कथा-वस्तु विशद, विश्रृंखल एवं जटिल होती है। कृष्ण चरित्र में भी कथानक का विकास बड़े स्वाभाविक ढंग से हुआ है। सन्धियों और संध्यंगों की अपेक्षा उसकी विश्रृंखलता अधिक मनोरम प्रतीत होती है।

8: उसकी शैली सरलता एवं सादगी के साथ उदात्तता से युक्त होती है। कृष्ण चरित्र में जहाँ एक ओर सादगी और सरलता है वहाँ उसमें कृष्ण के उदात्त चरित्र की उदात्तता अतिशय प्रभाव जनक है।

9: चरित्र काव्य उद्देश्य प्रधान होता है। कथा काव्यों की तरह केवल मनोरंजन की अपेक्षा उसका उद्देश्य धार्मिक या लोक कल्याण मूलक होता है। कृष्ण चरित्र में कथाकार का उद्देश्य भी मनोरंजन न होकर श्री कृष्ण के चरित्र में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा करना है जिसमें ऐश्वर्य एवं माधुर्य दोनों प्रकार की लीलाओं का सौन्दर्य अधिक उभरा हुआ और स्पष्ट है जिसमें भक्ति भावना की प्राप्ति को ही चरम पुरुषार्थ माना गया है।

इस प्रकार विचार करने पर कृष्ण चरित्र प्रबन्ध काव्य के उपभेद चरित काव्य के लक्षणों के सर्वथा अनुकूल है। जिसमें शैली की दृष्टि से पौराणिकता और रोमांसिकता मधुर समन्वय है।

उद्देश्य और विषय वस्तु की दृष्टि से चरित काव्य के छः भेद माने गए हैं। उनमें से इसे धार्मिक पौराणिक भेद के अन्तर्गत रखा जाना चाहिए। इसमें प्रेम सम्बन्धी चर्चा होने से इसे प्रेमाख्यानक के रूप में भी देखा जा सकता है किन्तु जैसा हम पहले कह आये हैं इसमें प्रेमाख्यानक परम्परा के अनुरूप नायक नायिका के प्रेममार्ग में विघ्न बाधाएँ नहीं आती और न साहसिक कार्य अथवा युद्ध का विधान ही किया गया है। वस्तुतः इसमें प्रस्तुत प्रेम भावना माधुर्य भाव की भक्ति की प्रतिष्ठा के लिए की गई दृष्टिगत होती है। यह भी ध्यातव्य है कि आरम्भ के सात अध्यायों में जिस ऐश्वर्य लीला का चित्रण किया गया है उस का शेष अध्यायों की माधुर्य लीला में भी लोप नहीं हुआ है। श्री कृष्ण की चिंता मात्र से विलास कुंजों का निर्माता दिव्य आभूषण आदि का प्रयोग 16 हजार आठ गोपियों के साथ विहार आदि में ऐश्वर्य लीला का उल्लेख उत्तरार्ध में वर्णित शृंगार की दशाओं को भक्ति भावना में परिणत करने में पूर्ण समर्थ है।

नायक और नायिका :-

इस ग्रन्थ के नायक श्री कृष्ण हैं निका चरित्र जन्म से ही दिव्यता से ओत प्रोत है । ग्रन्थ के उपलब्ध स्वरूप के अनुसार श्री कृष्ण की शैशवास्था से तरूणाई तक का चित्रण किया गया है । शास्त्रों में नायक के जिन गुणों की चर्चा की गई है उसको ध्यान में रखते हुए श्री कृष्ण दक्षिण नायक के रूप में प्रस्तुत हैं । भानु दत्त के अनुसार दक्षिण नायक वह है जो सभी नायिकाओं के विषय में समान अनुराग करता है[1]। सम्पूर्ण गोपियों के साथ समान रूप से श्री कृष्ण के विहार का वर्णन करके चिंतामणि ने श्री कृष्ण को दक्षिण नायक के रूप में प्रस्तुत किया है । पुराण में तथा उससे प्रभावित साहित्य में नायक की कल्पना में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा एवं उदात्तता का निरूपण प्रायः देखने को मिलता है । जिसमें विनम्रता, माधुर्य, दक्षता, बुद्धि, उत्साह-सम्पन्नता आदि का होना आवश्यक माना गया है । उसमें लोक-रक्षक और लोक-रंजक दोनों स्वरूपों का सम्मिलन होता है । इस दृष्टि से चिंतामणि के कृष्ण चरित्र के नायक श्री कृष्ण एक पौराणिक नायक हैं ।

वस्तुतः हरिवंश पुराण के 'हल्लीश क्रीडन' अध्याय में कृष्ण और गोपियों के प्रेम प्रसंग का वर्णन है। विष्णु पुराण में गोपियों के साथ कृष्ण की प्रेम क्रीड़ा का वर्णन तेरहवें और चौदहवें अध्याय में मिलता है । ब्रह्म वैवर्त पुराण के चौथे खण्ड में कृष्ण लीला का वर्णन है जिसमें कृष्ण के साथ राधा का विशेष महत्त्व स्वीकार किया गया है ।

नायक और नायिका :-

इस ग्रन्थ के नायक श्री कृष्ण हैं । पुराणों में तथा उससे प्रभावित साहित्य में नायक में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा एवं लोकोत्तर उदात्तता का निरूपण प्रायः देखने को मिलता है । इस दृष्टि से चिंतामणि का नायक निरूपण एक पौराणिक नायक के समस्त गुणों से युक्त है । श्री कृष्ण के लोक रक्षक एवं लोक रंजक दोनों स्वरूपों के सम्मिलित रूप का सफल अंकन किया गया है । इस दृष्टि से श्री कृष्ण एक पौराणिक नायक हैं । काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में आचार्यों ने नायक में जिन गुणों का सन्धान किया है उनका चिंतामणि ने बड़ी सफलता के साथ कृष्ण के चरित्र में समावेश किया है किन्तु इसके साथ ही भक्ति काल के उत्तराधिकार के रूप में कृष्ण के व्यक्तित्व में अलौकिकता और लोकोत्तरता का सजग रूप से समावेश

किया गया है। जन्म के समय ही कृष्ण के जिस रूप का वर्णन चिंतामणि ने किया है और साथ ही त्रिभुवन पालक के बालक रूप में अवतार लेने का उल्लेख किया है[1]। उससे स्पष्ट है कि उन्होंने नायक में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा करके अलौकिक चरित्रों की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करदी है इसलिए शैशव कथा में ही पूतना वध, अघासुर, बकासुर संहार, कालीयमोक्ष, गोवर्द्धनोद्धारण आदि कथाओं में श्री कृष्ण के अलौकिक रूप, अपरिमित शक्ति और लोकरक्षकत्व का सुन्दर समन्वय मिलता है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि प्रथम सात सर्गों में श्री कृष्ण की जन्म तथा क्रमगत दिव्यता को प्रतिपादित करने एवं उनके अत्यल्प वय में ही लोकोत्तर कार्यों द्वारा भक्तजनों की रक्षा करने का जो दिव्य चारित्रिक विकास प्रस्तुत किया गया है उसमें कृष्ण मात्र नायक न होकर सम्पूर्ण क्रिया कलाप के केन्द्र बिन्दु हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि अनेक पात्रों के सन्दर्भ में ही नायकत्व प्रति नायकत्व आदि का निरूपण उपयुक्त होता है किन्तु जहाँ सम्पूर्ण कथ्य किसी एक पात्र के लोकोत्तर व्यापारों का संकलन मात्र होता है और जिसका उद्देश्य उस पात्र की महिमा का उद्घाटन होता है जिससे पाठक या श्रोता श्रद्धाभक्ति से अनुप्राणित हो उठता है। वहाँ नायकत्व का विचार अनायास ही बहुत पीछे छूट जाता है।

अतः यदि कृष्ण चरित्र में कृष्ण के नायकत्व का काव्य शास्त्रीय सन्दर्भ में आकलन करना अभीष्ट हो तो हमारी सम्मति में अष्टम अध्याय से आगे की कथावस्तु को ध्यान में रखते हुए श्री कृष्ण को धीर ललित दक्षिण शृंगारी नायक[2] के रूप में देखा जा सकता है चूंकि अष्टम अध्याय से कथानक में राधा का प्रवेश होता है और राधा एक कृष्णानुरागिनी मुग्धा नायिका के रूप में उपस्थित होती है और कृष्ण एक लोक रंजक चतुर लीला विहारी रूप में चित्रित किये गए हैं इसलिए वे धीर ललित नायक के समस्त गुणों से विभूषित हैं। उनकी अनिंद्य

1: कृष्ण चरित्र 1/3,4

2: अपवाद स्वरूप चतुर्थ सर्ग में श्रीकृष्ण के नटवर वेश को विभिन्न भावनाओं से देखने वाली गोपिकाओं के चित्र हैं जिन्हें रूपासक्ति के अन्तर्गत समझना चाहिए।

3: शृंगार-रस नायक गोकुल नाथ — कृष्ण चरित्र 8/116

रूप माधुरी राधा एवं उसकी सखियों को वशीभूत कर लेता है । उनकी निकुंज विकार में दक्षता, वंशी वादन एवं नृत्य गायन आदि में निपुणता, वंशी वादन एवं नृत्य-गायन आदि में निपुणता , जल विहार आदि में विदग्धता उन्हें शृंगार र रस के नायक के समस्त गुणों से विभूषित करती है । इसके साथ ही वे दक्षिण नायक भी हैं क्यों कि वे राधा के साथ ही रास-विहार के अवसर पर राधा की अष्ट सखियाँ एवं अठाहरह हजार सेवा सखियों के साथ समकाल में विहार करने में समर्थ हैं ।

यद्यपि श्री कृष्ण का स्वरूप मूलतः श्री मद्भागवत आदि से गृहीत है और कवि यथास्थान श्री कृष्ण के ऐश्वर्य भाव का झाँकी दिखाकर उन्हें रीतिकालीन भोगी नायक [1] की श्रेणी से ऊपर उठाने का प्रयत्न करता हुआ दृष्टिगत होता है तथापि इस अंश में शृंगारचित्रण रीतिकालीन वासनात्मक सन्दर्भों से ऊपर उठ नहीं सका है । स्वप्न दर्शन से समान रूप से प्रेम का उदय और गान्धर्वविधि से विवाह कराकर परकीया प्रेम के स्थान पर स्वकीया प्रेम की प्रतिष्ठा दारा कृष्ण में जहाँ पतिभाव स्थापित करने का प्रयास है वहीं अनेक गोपियों के साथ रमण रीति-कालीन औपपत्य एवं राधा वल्लभीय माधुर्य शरणागति का समान रूप से प्रतिष्ठा करता है । इस अंश में कृष्ण जयदेव, विद्यापति एवं चंडीदास आदि के कृष्ण से भिन्न हैं । कुल मिलाकर श्री कृष्ण का नायकत्व पौराणिक नायकत्व से प्रारम्भ होकर शृंगारी नायक में पर्यवसित होता है । यहाँ कुछ अंश उधृत किये जाते हैं जो उनके नायकत्व को प्रतिपादित करने के लिए पर्याप्त हैं ।

रूप सौन्दर्य :-

तहाँ श्याम सुन्दर खरे, खरे मनोहर गात ।
मैन रूप रचि ऐन मनि नैन नलिन नवपात ।।
सरद रूप सुन्दर बदन सुषमा सिन्धु अपार ।
सपने में श्री राधिका देखे नन्द कुमार ।[2]

1: लागी तु ध्यान सु ध्याई लई मुख कान्ह के संग सुधा के संजोगी ।
कुंज में दस दियो अधारा पर स्याम महा मनि मंडित भोगी ।
(कृष्ण चरित्र 10/1)

2: कृष्ण चरित्र 8/27, 28

इसी प्रकार निम्नलिखित अंश भी कृष्ण की रूप माधुरी का अलंकृत रूप प्रस्तुत करता है –

> बदन इन्दु आरसी सुमन, अँग रँग सुकुमार ।
> विमल रतन धन अभरन उर मुक्ताहल हार ।।
> मोर मुकुट धनु तड़ित, नव उन्नत धन श्याम ।
> नायन सुखद बगपांति ससि, मधुर मुकुट उर दाम ।।
> मधुर चलनि बोलनि मधुर मधुर नैन जल जात ।
> अति सुन्दर मुखचन्द सखि मधुर मंद मुसक्यात ।।[1]

श्री कृष्ण सकल काम कला में प्रवीण नायक हैं । इसका विस्तृत विवरण एकादश अध्याय में विशेष रूप से दृष्टव्य है ।[2] दक्षिण नायक का परिचय उन प्रसंगों में देखने योग्य है जहां कृष्ण अनेक नायिकाओं के साथ समकाल में विहार करते हैं ।[3] अतः नायकत्व उनके लोक रंजक और लोक रक्षक स्वरूपों के बीच उभरता हुआ दृष्टिगत होता है । एक ओर उनका लोकोत्तर चरित्र हमें दिव्यता से अभिभूत करता है तो दूसरी ओर उनका माधुर्य भाव आनन्द दायिनी लीला में निमग्न करता है ।

इस ग्रन्थ की नायिका श्री राधा हैं । अतः कृष्ण और राधा की प्रेम क्रीड़ाओं के चित्रण में ही नायिका भाव का विकास हुआ है । कृष्ण और गोपियों के प्रेम का प्रसंग हरिवंश पुराण के हल्लीश क्रीड़न अध्याय में तथा विष्णु पुराण के पाँचवें खण्ड के तेरहवें चौदहवें अध्याय में एवं श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्ध में अत्यन्त विस्तार के साथ प्राप्त होता है । राधा का पौराणिक उल्लेख ब्रह्म वैवर्त पुराण के चतुर्थ खण्ड में विस्तृत रूप से प्राप्त होता है । दक्षिण के अलवार सन्तों ने भी गोपी कृष्ण की प्रेम लीलाओं का अत्यन्त भावपूर्ण चित्रण किया है । चैतन्य सम्प्रदाय में प्रेमाभक्ति को उज्जवल अथवा माधुर्य के रूप में स्वीकार किया गया है । हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा में माधुर्य भक्ति और शृंगार रस के सम्मिलन के फल स्वरूप राधा की कृष्ण के प्रति माधुर्य भावना का जो चित्रण प्रस्तुत किया गया है उसमें राधा और कृष्ण के प्रेम सजीव एवं चित्रमय वर्णन है । चिंतामणि की राधा स्वकीया नायिका है तथा उनका वर्णन वयःसन्धि से प्रारम्भ किया गया है । स्वप्न दर्शन के कारण काम चेतना का जागरण बहुत ही सहज और कोमल रूप में प्रस्तुत किया गया है । स्वप्न में कृष्ण के जिस रूप का दर्शन राधा ने किया है उस रूप को प्राप्त करने के लिए वह अत्यन्त विह्वल हो उठी हैं इसलिए

उसका प्रेयसी रूप ही प्रधान है । रीतिकालीन सन्दर्भ प्रेयसी पूर्व राग जन्य विरहाकुलता की पृष्ठभूमि में राधा का प्रेयसी प्रधान रूप न तो उसमें भक्तिकालीन दिव्यता की प्रतिष्ठा कर सका न रीतिकालीन नायिका से मुखर है । यदि एक ओर कवि ने विद्यापति की राधा के मांसल वासनात्मक आवेग को दबाने का प्रयास किया है तो दूसरी ओर सूरदास की भांति प्रेम के वासना पूर्ण चित्रों को आध्यात्मिकता के स्तर तक पहुँचाने में भी पीछे रह गया है । हित हरिवंश के राधा वल्लभीय सम्प्रदाय की भाँति राधा कृष्ण की निकुंज लीला का रस लेकर वर्णन किया गया है किन्तु रीतिकालीन शृंगार भावना के प्रभावी हो जाने के कारण राधा के चरित्र में कहीं भी अलौकिकता या परम पुरुष की आद्याशक्ति का भाव प्रगट नहीं हुआ है । राधा में लौकिक प्रेम का शारीरिक विलास ही प्रधान है अतः भागवत आदि ग्रन्थों से प्रेरणा लेते हुए भी कवि की रीतिकालीन मनोवृत्ति के कारण राधा का स्वरूप मात्र विलास सहचरी सामान्या नारी के रूप में ही व्यक्त हुआ है । इसीलिए सखी दूती एवं अभिसार का अत्यन्त विस्तृत वर्णन है ।

अतः इन सन्दर्भों में राधा विरह विदग्धा एवं शुक्लाभिसारिका नायिका के रूप में चित्रित की गई है । निकुंज सहचरी राधा श्री कृष्ण की गान्धर्व विधि[4] से परिगृहीता पत्नी है । उसकी सखियां भी कृष्ण के प्रेम में समान रूप से यह सह भगिनी हैं किन्तु एक प्रसंग को छोड़कर उसमें ईर्ष्यामान जैसी भी कोई भावना नहीं है अतः राधा मध्यकालीन सन्दर्भों में एक विलासिनी और भक्तिकालीन सन्दर्भों

1: कृष्ण चरित्र 8/48, 49, 50

2: वही 11/51 से 85 तक

3: वही 11/96 से 99 तक

4: आजु कीजै ऐसे चल गन्धर्व गीत विधि संग में अनंग पूज - - कृ0च09/6

में निकुंज लीला सहचरी से अधिक कुछ नही है ।

वस्तुतः यदि नायक कल्पना को नायिका के आधार पर देखें तो कृष्ण का नायकत्व उस समय से प्रारम्भ होता है जहाँ से राधा नायिका के रूप में उपस्थित होती हैं और उस प्रकरण में श्री कृष्ण एक लोक रंजक धीर ललित दक्षिण नायक के रूप में चित्रित किये गये हैं । कृष्ण अनिन्द्य रूप सौन्दर्य से आमंडित हैं विलास लीलाओं के पंडित, वंशी वादन में चतुर नृत्य गायन में कोविद जल विहार करने वाले श्री कृष्ण निश्चय ही शृंगार रस के नायक के समस्त गुणों से विभूषित हैं । अतः वे विनीत मधुर, दक्ष, बुद्धि, उत्साह आदि से समन्वित कलावन शूर, दृढ़ और तेजस्वी नायक हैं । ग्रन्थ कलेवर की वृद्धि के भय से उनके कुछ ही गुणों का उल्लेख सोदाहरण किया जा रहा है ।

पूतना और तृणावर तासुर ए अति बाल दसा मैं सधारे ।
आज गिराइ दियो पग सों जमलर्ज्जुन ओषरि खैंचि उपारे
ईसुरता यों प्रकाशित कै प्रभु जू महा मोह समूह पसारैं
× × ×
कबहुक वे सुधि ता समय अन्तर जामी,
पूतना की छाती पर छोना को विहरिवो ।
कबहूँ त्रणवरत कंठ पकर निकौहू,
बदन अम्वुज विस्वरूप देखि डरिव होवै ।
जब जब होती पेषि विकल जसोदा,
कान्ह कर कंज कर कस गिरिवर धरिवो ।[2]

बढ़ो वरिधर वरखे अखंड धार,
सागर सी धरनि है रही महा कूर मै ।
नैव मृदु हास सुधा वरखि सबल करे,
बृजवासी वृज नाथ राखे सैल तर मै ।
दूरि कियो गरिवान मनु पति को गरवु,
उन वरजे पयोद मनु परयो महा उर मै ।
चिंतामनि कहै सात दिन लौ छबीले,
राख्यौ छिगुरी के बल छितिधर कान्ह करमै ।

1: कृष्ण चरित्र 2/26
2: वही 2/
3: कृष्ण चरित्र 7/2।

खण्ड 5 – आचार्य खण्ड

1: काव्य चिन्तन प्रकरण

चिन्तामणि का आचार्यत्व :-

आचार्य शब्द 'चर' धातु से 'आ' उपसर्ग ण्यत् प्रत्यम के योग से निष्पन्न होता है । 'चर' धातु का अर्थ यहाँ 'गति' लेना चाहिये । डा0 विजय पाल सिंह के अनुसार आ उपसर्ग के कारण क्रिया में अन्तर्निहित सम्भावित गति ही प्रगट नहीं होगी उसकी दिशा भी मिलती है ।[1] गति शब्द के अनेक अर्थ होते हैं जैसे गमन, मोक्ष, ज्ञान आदि । स्पष्ट है कि प्रसंगानुकूलता की दृष्टि से डा0 सिंह का भी 'गति' से तात्पर्य 'ज्ञान' से है । 'आ' उपसर्ग ज्ञान की परिधि अथवा विस्तार का आकलन करता है तथा ण्यत् प्रत्यय उस व्यापक ज्ञान पर उसके आधिपत्य को घोषित करता है । जिससे तत् तद् विषयक ज्ञान को व्याख्यायित एवं क्रियान्वित करने का अधिकार प्राप्त होता है ।

आचार्य शब्द अपने में उस अर्थ को भी गत्यात्मक ढंग से समाहित करने का संकेत देता है जिसमें एक ऐसे मार्ग का निर्माण अपेक्षित होता है जो अन्य लोगों के लिये उस ज्ञान के आंकलन एवं उपयोग का प्रवर्तक बन सके ।[2] एक अन्य व्युत्पत्ति के अनुसार शास्त्र के गम्भीर तत्वों का चयन क करने वाला ही आचार्य है किन्तु इस अर्थ में आचार्य शब्द की व्युत्पत्ति मूलक व्याख्या सम्भव नहीं है ।

इस प्रकार आचार्य शब्द में मूलतः निम्नलिखित विशेषतायें अन्तरगर्भित हैं -

---

1: केशव का आचार्यत्व - डा0 विजय पाल सिंह

2: क -
ख -

1ः जो किसी भी शास्त्र का गम्भीर मंथन कर सके ।

2ः तदनुकूल अपने प्रतिपाद्य की दृष्टि से तत्वों का चयन कर सके ।

3ः चुने हुए तत्वों का इस प्रकार प्रतिपादन करे कि एक मौलिक मार्ग की युक्ति पूर्ण स्थापना हो सके । वह स्वयं उसे व्यावहारिक रुप देकर न केवल सर्व सुलभ बना दे वरन दूसरों को भी इ उस मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे ।

इस दृष्टि से रीतिकालीन आचार्यत्व पर दृष्टिपात करें तो विदित होगा कि उक्त काल के आचार्य बहुधा अलंकार अथवा शृंगार रस एवं तदनुरुप नायक - नायिका भेद को ही अधिकांशतः अपने सूक्ष्म चिंतन का विषय बनाते रहे हैं । सर्वांग विवेचक आचार्यों के नाम अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं इस दृष्टि से विचार करने पर चिंतामणि एक ऐसे आचार्य ठहरते हैं जिन्होंने अनेक आकर ग्रन्थों का मंथन करके काव्य के सभी अंगों का साधिकार निरुपण किया है । उनके ग्रन्थों में कवि कुल कल्प तरु ही उनके यश करने में पर्याप्त है, वैसे शृंगार मंजरी, पिंगल, रस विलास आदि ग्रन्थ लिख कर उन्होंने कवि कुल कल्प तरु में सूक्ष्म विवेचित या अविवेचित सामग्री को सुन्दरता से समेट लिया है ।

प्रया विद्वानों ने रीति काल के इस कावय शास्त्रीय चिंतन का इन आचार्य कवियों की यशोलिप्सा अथवा प्रदर्शन की भावना से जोड़ा है किन्तु मेरी तुच्छ सम्मति में इन दिनों साहित्य शास्त्रीय चिंतन इतना प्रौढ़ हो चुका था कि उसके तत्वों का सूक्ष्म अनुशीलन किये बिना कलात्मक कवित्त्व का निर्माण सम्भव नहीं था । एक दूसरी बात यह भी थी कि लक्षणानुसारी लक्ष्य का निर्माण कवित्त्व और वैदुष्य की गंगा- जमुनी पुनीततः से युक्त हो जाता था ।

अतः उपर्युक्त सन्दर्भ में चिंतामणि के आचार्यत्व का मूल्यांकन उनके शास्त्रीय मंथन एवं अनुशीलन का तो है ही उनके प्रातिभ निर्माण कौशल का भी साक्षी है ।

अतः चिन्तामणि के आचार्यत्व का मूल्यांकन उनकी तत्त्वदर्शिनी प्रतिभा का ही मूल्यांकन होगा जिसमें उनका बोध एवं सर्जनात्मकता दोनों का युग पथ दोनों का महत्त्व उजागर हो सके ।

काव्य-चिन्तन

उत्तर-मध्यकालीन साहित्य-शास्त्रीय विवेचन के एक महत्वपूर्ण प्रस्थान का प्रारम्भ आचार्य चिन्तामणि (सत्रहवी शताब्दी) से होता है । 'चिन्तामणि' 'रसगंगाधर' के प्रणेता पंडित राज ~~'चिन्तामणि'~~ 'जगन्नाथ' के समसामयिक थे और यह भी उल्लेखनीय तत्थ्य है कि पंडितराज जगन्नाथ जिस शाहजहाँ के सभा पंडित थे और अपनी रचनाओं के लिए सम्मान और संरक्षण प्राप्त करते थे उसी दरबार में चिन्तामणि को भी संरक्षण प्राप्त था ।[1]

यह वह समय था जब संस्कृत-साहित्य में काव्य-चिन्तन की परम्परा चरम-बिन्दु का स्पर्श करके स्थिर सी हो गई थी । दूसरी ओर सामान्य जन मानस का बौध पक्ष भी दुर्बल होता जा रहा था और वह संस्कृत के प्रौढ़ चिन्तन को न समझ सकने के कारण उससे दूर होता जा रहा था । इसी दृष्टि से हिन्दी के भक्तियुगीन कवियों, जैसे – कबीर और तुलसी आदि ने साग्रह एवं सोद्देश्य भाषा – लोक भाषा में रचना प्रारम्भ की ।[2]

ऐसी स्थिति में चिन्तामणि ने जनभाषा के माध्यम से संस्कृत की समृद्ध काव्य-चिन्तन परम्परा को जन कवियों तथा सहृदयों तक पहुँचाने का प्रशंसनीय प्रयास किया ।

1: Chintamani of Cownpur district, who composed a verson of the Ramayan and a treatise on prosody, was also patronised by the emperor.
The cmbridge history of India. Vol. IV the mughal period by wolseley Haig-page 221- 1937

2: (क) कविरा संस्कृत कूप जल भाषा बहता नीर
जब चाहै तब ही लहै होवै विमल सरीर ।
कबीर

(ख) का भाषा का संस्कृत भाव चाहियत साँच
काम जो आवै कामरी कालै करौं कमाच ।
तुलसी

उन्होंने 'कवि कुल कल्प तरु' के मंगला चरण के उपरान्त प्रथम दोहे में स्पष्ट रूप से निवेदित किया है कि वे संस्कृत की काव्य-चिन्तन परम्परा का मन्थन करके प्राप्त विचारों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति देने जा रहे हैं ।[1]

युग भावना के परिप्रेक्ष्य में चिन्तामणि के आचार्यत्व का रहस्य ही था कि वे प्राचीन काव्य-चिन्तन को लोकवाणी के माध्यम से सर्व साधारण के लिए सुलभ बना रहे थे । जहाँ उनका आचार्य पक्ष सुलभ विभिन्न ग्रन्थों के सार-संकलन को लक्ष्य बनाकर चल रहा था । वहीं उनका कवि पक्ष प्रसंगानुकूल मौलिक उदाहरणों के निर्माण द्वारा अपने कवित्व की छाप छोड़ जाना चाहता था । हिन्दी में केशव इस परम्परा का सूत्रपात कर ही चुके थे । चिन्तामणि के समसामायिक और समान आश्रयदाता से संबद्ध पंडित राज जगन्नाथ ने प्रतिज्ञा पूर्वक स्वनिर्मित उदाहरणों का उपयोग किया था ।[2] अतः स्वनिर्मित उदाहरणों के प्रस्तुतीकरण के प्रति प्रतिस्पर्धा का भाव चिन्तामणि के भी मन में रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि ऐसे ही प्रसंगों में आचार्यत्व एवं कवित्व की संगम भूमि के दर्शन होते हैं । अतः चिन्तामणि ने शास्त्रीय-चिन्तन में स्वनिर्मित उदाहरणों की से जो चमत्कार उत्पन्न कर दिया है वह उनके आचार्य-कवित्व का प्रधान उद्घोषक है ।

'कविकुल कल्प तरु' के प्रथम अध्याय में उपक्रम के रूप में काव्य-संबन्धी जिन आनुषंगिक विषयों का उल्लेख किया गया है उनका यहाँ सांकेतिक उल्लेख प्रस्तुत किया जा रहा है ।

काव्य की परिभाषा :-

यद्यपि चिन्तामणि ने मम्मट विश्वनाथ और विद्यानाथ आदि अनेक आचार्यों

1: जे सुरवानी ग्रंथ हैं तिनको समुझि विचार
चिन्तामनि कवि कहत है भाषा कवित विचार क0क0त0 1/3

2: निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं काव्यंमयात्र निहितं न परस्य किंचित्
किं सेव्यते सुमनसां मनसापि गन्धः कस्तूरिका जनन शक्ति मृता मृगेण ।
रसगंगाधर पृ0 3-4

के ग्रन्थों से प्रेरणा ग्रहण की है तथापि मूलरूप से वे सबसे अधिक मम्मट से प्रभावित हुए हैं इसमें दो मत नहीं हैं । सर्वप्रथम हम काव्य की परिभाषा को ही लें । उन्होंने काव्य की दो परिभाषाओं का उल्लेख किया है –

क - बत कहाउ रस मैं जु है कवित कहावै सोइ[1]

ख - सगुनालंकारन सहित दोष रहित जो होइ
शब्द अर्थ ताको कवित कहत विबुध सब कोइ[2]

पहली परिभाषा में आये हुए 'बत कहाउ' का अर्थ बात का कहना अर्थात् उक्ति है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि चिन्तामणि के मत से 'रसमय उक्ति काव्य है' ऐसा काव्य लक्षण ठहरता है । इस प्रकार की परिभाषा से चिन्तामणि रसवादी आचार्यों की पंक्ति में आ-बैठते हैं क्योंकि इनके लक्षण पर विश्वनाथ के 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं'[3] की प्रतिच्छाया स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है ।

यहाँ विचारणीय यह है कि चिन्तामणि ने 'वाक्य' के स्थान पर जिस 'बतकहाउ' शब्द का प्रयोग किया है, उसका गम्भीर स्वारस्य कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है । भामह[4] आदि आचार्यों ने शब्दार्थ के साहित्य को काव्य कहा था । ध्वन्यालोक[5] में सहृदय श्लाघ्य अर्थ को महत्त्व प्रदान किया था । विश्वनाथ ने 'वाक्य' शब्द का प्रयोग किया और पंडितराज[6] ने 'शब्द' का ।

1: क0 क0 त0 1/4
2: वही 1/7
3: सा0 द0 परिच्छेद 1/3
4: शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् । काव्यालंकार-भामह 1/16
5: योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मा यो व्यवस्थितः ध्वन्यालोक उद्योत 1 कारिका 2
6: रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम् । रसगंगाधर प्रथम आनन पृ0 4

साहित्य-शास्त्र की परम्परा में यह एक एक अत्यन्त विवादास्पद विषय रहा है जिसका खण्डन मंडन विद्वानों ने बड़े संरंभ तथा विस्तार से किया गया है और अन्य आचार्यों की स्थापनाओं के बदले अपनी स्थापना के औचित्य का सशक्त प्रतिपादन भी किया है ।

प्रस्तुत प्रकरण में चिंतामणि ने किसी प्रकार के शास्त्रार्थ में न पड़कर एक नये पारिभाषिक शब्द 'बतकहाउ' का प्रयोग किया है किन्तु यह कोई सांयोगिक बात नहीं है क्योंकि उनके सामने अपभ्रंश के कवि का 'उक्तिविशेषः कब्बं भाषा जाहोइ सा होउ'[1] यह लेखा स्पष्ट रूप में विद्यमान था । अतः जहाँ 'बतकहाउ' कहने से उक्ति का समाहार अनायास ही हो जाता है वहीं अपभ्रंश के 'विशेषः' की व्याख्या 'रसमय' के द्वारा सुगमता से हो जाती है अतः चिन्तामणि का यह रसवादी लक्षण अन्य आचार्यों की अपेक्षा अधिक व्यापक और परिनिष्ठित प्रतीत होता है साथ ही विश्वनाथ के "वाक्य" पर लगे हुए आक्षेपों से भी छुटकारा मिल जाता है ।

चिंतामणि का दूसरा काव्य लक्षण आलोचकों की दृष्टि में मम्मट के काव्य लक्षण से अनुप्राणित है उसका तात्पर्य यह है कि काव्य उस शब्दार्थ का नाम है जो दोषों से रहित तथा गुण और अलंकारों के सहित हो ।[2] इस संबन्ध में डा० सूर्यनारायण द्विवेदी का कथन है कि " वास्तव में यह परिभाषा आचार्य मम्मट के 'तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि' से पृथक नहीं है, हाँ 'अनलंकृती पुनः क्वापि' को चिन्तामणि नहीं ले सके हैं, हो सकता है कि अलंकारों के प्रति स्वाभाविक युगीन आकर्षण ही इसका कारण रहा हो"[3] किन्तु हमारे विचार में डा० द्विवेदी की यह धारणा उचित नहीं है क्योंकि चिन्तामणि ने मम्मटानुयायी होते हुए भी हेमचन्द्र, वाग्भट्ट और विद्यानाथ द्वारा संशोधित मम्मटीय काव्य लक्षण को स्वीकार किया है, न कि मूल मम्मटीय लक्षण को । अतः 'अनलंकृती पुनः क्वापि' को (चिन्तामणि)

1:

2: का० प्र० 1/4 पूर्वार्द्ध सूत्र । पृ० 19

3: रीतिकालीन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित सिध्दान्त - डा० सूर्य नारायण द्विवेदी — पृष्ठ 148

नहीं ले सके,, इसमें आचार्य की जो असमर्थता सांकेतित है वह उचित नहीं क्योंकि उन्होंने विकसित चिन्तन की पृष्ठभूमि में 'अलंकारों' को जान बूझ कर काव्य का अनिवार्य धर्म मान लिया है । सच्ची बात तो यह है कि किसी भी सरस रचना में अलंकारों की सर्वथा उपेक्षा नहीं हो सकती । निरलंकारता स्वयमेव एक अलंकार है उक्ति विधान में बिना अलंकारों की स्पष्ट योजना के भी रचना धारा में अनायास ही झिलमिलाने वाले अलंकारों की महिमा को कोई कैसे अस्वीकार कर सकता है । अतः अलंकारों के प्राधान्य निर्देशन से चिन्तामणि का काव्य लक्षण अधिक औचित्यपूर्ण ही बन सका है । निष्कर्षतः चिन्तामणि के दोनों लक्षणों को एकान्वित करके ही उनके काव्य का अनुशीलन करना चाहिए निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि दोषों से रहित गुण एवं अलंकारों से रसमय शब्दार्थ रूप उक्ति को काव्य कहते हैं । इस लक्षण में सभी पक्षों के समाहार का सुन्दर प्रयत्न दिखाई देता है और यही चिन्तामणि की विशेषता है ।

संस्कृत काव्य-शास्त्र के अन्तर्गत रसवादियों एवं शब्दार्थवादियों के बीच काव्य-परिभाषा को लेकर स्पष्ट मतभेद दिखाई पड़ता है । शब्दार्थवादी काव्य वाक्य को शब्दार्थ युक्त स्वीकार करने के पक्षपाती हैं, रसवादी रसात्मकता के आग्रह को काव्य के लिए सर्वोपरि स्वीकार करते हैं । ध्वनिवादी दोनों का समन्वय करते हैं । आचार्य चिन्तामणि भी दोनों पक्षों का संकेत करते हुए आचार्य विश्वनाथ एवं पण्डितराज जगन्नाथ की रसवादी एवं मम्मट की शब्दार्थवादी धारणाओं का समन्वय करते हुए दिखाई देते हैं ।

काव्य के भेद :-

चिन्तामणि ने रचना की दृष्टि से काव्य के दो भेदों का उल्लेख किया है:- १- गद्य 2- पद्य । विशेष उल्लेखनीय यह है कि उन्होंने इन भेदों की चर्चा संस्कृत साहित्य के अधार पर की है -

गद्य पद्य द्वै भाँति से सुर वानी में होय ।[1]

1: क0 क0 त0 1/4

चिन्तामणि के समय तक हिन्दी साहित्य में परिनिष्ठित गद्य का प्रायः अभाव रहा है किन्तु जब संस्कृत साहित्य के आधार पर भेद किए गए तो उन्हें चम्पू नामक तीसरे भेद की भी चर्चा करनी चाहिए थी क्योंकि 'सुरवानी' में चम्पू काव्य के उत्तम दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। अतः इसे चिन्तामनि का स्खलन ही कहा जाना चाहिए।

छन्दबध्द रचना को पद्य और विना छन्द की रचना को गद्य कहते हैं :–
छन्द निबध्द सुपद्य कहि, गद्य होत बिनु छन्द [1]

चूँकि भाषा में छन्दबध्द रचनाएँ होती थीं इसलिए चिन्तामणि ने लिखा है कि उच्च कोटि के कवियों द्वारा निवध्द भाषा के छन्दों को सुनकर आनन्द की प्राप्ति होती है –

भाषा छन्दनिवध्द सुनि सुकवि होत सानन्द [2]

काव्य प्रयोजन :–

काव्य रचना अथवा काव्य के पठन, श्रवण का प्रयोजन क्या है ? इस प्रश्न पर विद्वानों ने अनेक प्रयोजन गिनाये हैं। चिन्तामणि के उपजीव्य मम्मट ने भी यश, धन का लाभ, व्यवहार का ज्ञान, अमंगल का नाश, सद्यःपरमानन्द की प्राप्ति तथा कान्ता सम्मित उपदेश जैसे अनके कारणों का उल्लेख किया है[3] किन्तु चिंतामणि ने काव्य के प्रयोजन में केवल आनन्द को ही महत्त्व दिया है। ×××सुकवि होत सानन्द।[4]

अनेक प्रयोजन का परिगणन न करके केवल 'सद्यः पर निर्वृति'[5] को ही कारण मानने की प्रेरणा सम्भवतः मम्मट के इस कथन से प्राप्त हुई है – " सकल प्रयोजन मौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादन समुद्भूतं विगलितवेद्यान्तरमानन्दम्"[6]

1: क0क0त0 1/5
2: वही 1/5
3: का0 प्र0 - 1/2 पृ0 10
4: क0क0त0 - 1/5
5: का0 प्र0 - 1/2 पृ0 10
6: का0प्र0 - 1/2 की वृत्ति पृष्ठ 10

स्पष्ट है कि जब आचार्य मम्मट आनन्द को 'सकल प्रयोजन मौलिभूत' स्वीकार करते हैं फिर चिन्तामणि अनेक प्रयोजनों की उलझनों में क्यों फंसे ? दूसरी बात यह है कि ध्वन्यालोक, वक्रोक्ति जीवित, साहित्य-दर्पण जैसे विभिन्न सम्प्रदायों के समर्थन ग्रन्थों में भी आनन्द के प्रयोजकत्व को निर्विवाद रूप से महत्त्व दिया गया है । अतः चिन्तामणि में के आनन्द रूप प्रयोजन में कहीं कोई मतभेद नहीं है ।

काव्य पुरुष :-

यों तो महाभारत, वायुपुराण तथा काव्य-मीमांसा में काव्य-पुरुष (सारस्वतेय) के जन्म की कथाओं का उल्लेख मिलता है ।[1] किन्तु चिन्तामणि ने जिस काव्य-पुरुष की कल्पना की है उसका उल्लेख उद्देश्य काव्य के विविध उपकरणों को समन्वित रूप में प्रस्तुत करना तथा उनके सानुपातिक महत्त्व को उजागर करना है । काव्य-पुरुष की कल्पना कारण सम्भवतः यह है कि जब काव्य की आत्मा का अन्वेषण प्रारम्भ हुआ तो अनायास ही आत्मा (देही) से भिन्न उपकरणों को देह अथवा देहावयव के रूप में स्वीकार कर लिया गया । इस पुरुष की कल्पना का एक और भी महत्त्व है वह यह कि इसके द्वारा काव्य के सभी तत्त्व एक साथ अन्वित हो जाते हैं और वे परस्पर विरोधी न होकर पूरक बन जाते हैं ।

चिन्तामणि ने लिखा है कि शब्द और अर्थ को काव्य-पुरुष का शरीर, रस को उसका जीवित श्लेष आदि गुणों को शौर्य आदि गुणों के समान आत्मा के निश्चलधर्म, उपमादिक अलंकारों को हारादि के समान समझना चाहिए । रीति को मानव स्वभाव और वृत्ति को मानव की वृत्ति के रूप में लेना चाहिए । इसी के साथ उन्होंने शय्या और पाक की भी चर्चा की है । यह शय्या पदों के अनुकूल विश्राम को कहते हैं । यह विश्राम दायिनी शय्या की भाँति है और काव्य के रसास्वादन में जो सहायक है वह पाक है, जो पाक की तरह आस्वाद्य है । इस प्रकार काव्य पुरुष को लोक की

1: साहित्यिक कोश - द्वितीय संस्करण - पृष्ठ 256

भाँति समझना चाहिए ऐसा चिन्तामणि का मत है ।

> सबै अर्थ तनुवर्णिये, जीवित रस जिय जानि ।
> अलंकार हारादि ते, उपमादिक मन आनि ।।
> श्लेष आदि गन सूरतादिक से मनौ चित्त ।
> बरनौ रीति सुभाय ज्यौं, वृत्ति वृत्ति सी मित्त ।।
> पद अनुगुन विश्राम सौं, सज्जा सज्जा जानि ।
> रस आस्वादनभेद जे पाक पाक से मानि ।।
> कवित पुरुष की साजु सब समुझ लोक की रीति ।
> गुन विचार अब करत हौं, सुनौ सुकवि करि प्रीति ।।[1]

यद्यपि चिन्तामणि ने प्रतापरुद्र यशोभूषण के आधार पर काव्य पुरुष की कल्पना की है तथापि दोनों में कई बिन्दुओं पर मतभेद है । विवेचन से पूर्व विद्यानाथ की काव्य पुरुष की कल्पना और काव्य सम्पदा का उल्लेख निम्नांकित है ।[2]

> शब्दार्थौ मूर्तिराख्यातौ जीवितं व्यंग्य वैभवं ।
> हारादिवदलंकारास्तत्र स्युरुपमादयः ।।
> श्लेषादयोगुणास्तत्रशौर्यादिय इव स्थिताः ।
> आत्मोत्कर्षविहास्तत्र स्वभावा इव रीतयः ।।
> शोभामाहार्यिकीं प्राप्ता वृत्तियो वृत्तयोयथा ।
> पदानुगुण्यविश्रान्तिः शय्या शय्येवसंमता ।।
> रसास्वाद प्रभेदाः स्युः पाकाः पाका इवस्थिताः ।
> प्रख्याता लोकवदियं सामग्री काव्य सम्पदः ।।[3]

चिन्तामणि और विद्यानाथ में अन्तर :-

एक - विद्यानाथ ने व्यंग्य को काव्य की आत्मा माना है परन्तु चिन्तामणि

1: क0क0त0 - 1/9, 10, 11, 12

2:

3: प्र0रु0 भू0 - 2/25

ने रस को काव्यात्मा स्वीकार किया है । यद्यपि उन्होंने मम्मट की भांति रस को भी ध्वनि का एक प्रभेद मानकर ध्वनि प्रकरण में ही रस का निरूपण किया है और उसे व्यंग्यमान अर्थ पर आश्रित माना है तथापि वे रस की उपेक्षा नहीं कर सके हैं । हाँ, रस को व्यंग्य मान लेने पर विद्यानाथ के व्यंग्य और इनकी रस ध्वनि में अधिक अन्तर नहीं रह जाता ।

डा0 सत्यदेव चौधरी के अनुसार " इस स्थल में रस को जीवित कहने का समाधान केवल यही हो सकता है कि ध्वनि के ही समान रस ध्वनि को सर्वश्रेष्ठ मानना अभिष्ट है अथवा इस अवसर पर विश्वनाथ द्वारा प्रस्तुत "काव्य पुरुष रूपक" की प्रसिध्दि को चिन्तामणि विस्मृत न कर सके । पिछले कारण की सम्भावना अधिक है[1]।"

विश्वनाथ ने 'काव्य पुरुष रूपक' का इस प्रकार उल्लेख किया है –

काव्यस्य शब्दार्थों शरीरम् रसादिश्चात्मा, गुणाः शौर्यादिवित् दोषाः रीतयोऽवयव संस्थान विशेषवद् अलंकाराः कटककुण्डलादिवत्इति[2]

अतः यह स्वीकार कर लेने में कोई आपत्ति नहीं है कि चिन्तामणि ने रस को आत्मा मानने वाली बात विश्वनाथ से ली है ।

दूसरा अन्तर यह है कि विद्यानाथ में शब्दार्थ, अलंकार, गुण, रीति, वृत्ति, शय्या, पाक को काव्य की सम्पदा माना है वहाँ चिन्तामणि ने विश्वनाथ से प्रभावित होकर शब्द, शब्दार्थ, रस, अलंकार, गुण, रीति और वृत्ति को काव्य-पुरुष-रूपक देकर ढंग से घटित किया है,[3] शय्या और पाक संगति बिठाना उचित नहीं प्रतीत होता, अनुभव साक्षी है कि यह वस्तुएँ न तो पुरुष शरीर के घटक हैं और न उसकी जीवन्तता तथा शोभा के कारण । चिन्तामणि ने यदि इनका उल्लेख

1: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य – डा0 सत्यदेव चौधरी : पृष्ठ 4

2: सा0 द0 1/2 की वृत्ति पृष्ठ 19

3: वही

होता तो रूपक का संश्लिष्ट निर्वाह हो गया होता किन्तु यह उल्लेखनीय है कि शय्या और पाक आदि के लिए 'साज' शब्द का प्रयोग करके इन्होंने विद्यानाथ की सम्पदा के निकट पहुँचने का प्रयास किया है । कुछ भी हो शय्या और पाक का काव्य पुरुष के रूपक में प्रयोग निश्चय ही चिन्त्य है ।

रूपक में श्लेषादि गुणों को शौर्यादि के समान रस रूप आत्मा का उत्कर्षक धर्म माना गया है किन्तु यहाँ भी विद्यानाथ का अनुकरण ही भ्रान्ति का कारण बना है । रसवादी आचार्यों ने वामन सम्मत श्लेषादि गुणों का खण्डन कर दिया है और माधुर्यादि तीन गुणों में ही 10 गुणों का अन्तर्भाव किया है । ऐसी दशा में श्लेषादि गुणों का उल्लेख या तो अनुवाद के प्रवाह में किया है या प्रमादवश । रीति और वृत्ति को चिन्तामणि ने क्रमशः मानव स्वभाव और मानव वृत्ति के साथ जोड़ा है । मानव स्वभाव और मानव वृत्ति में अन्तर यह है कि मानव स्वभाव अपेक्षाकृत बहिरंग होता है जबकि मानव वृत्तियाँ आन्तरिक । चंचलता, उग्रता आदि मानव स्वभाव के अंग हैं तथा दया, स्नेह आदि मानव वृत्तियों के । ऐसी स्थिति में कहा जा सकता है कि रसानुकूल उचित शब्द व्यवहार रीति तथा अर्थ योजना वृत्ति है । विश्वनाथ ने 'रीतिरवयव संस्थान विशेषवत्'[1] कह कर जिस 'पद संघटना रीतिः' का उल्लेख किया है । वह काव्य-पुरुष के रूप में अधिक संगत है । भले ही चिंतामणि ने अपने विवेचन के द्वारा रीति और वृत्ति में भेदक रेखा खींचने में सफलता पाई है ।

इन उपर्युक्त आलोच्य तथ्यों के रहते हुए भी यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि चिन्तामणि का काव्य सामग्री संचयन निश्चय ही महत्त्वपूर्ण और प्रशंसनीय है । रूपक के निर्वाह में कठिनाई विद्यानाथ के अनुकरण के कारण हुई है।

= × 0 × =

1: सा0 द0 - 1/2 की वृत्ति पृष्ठ 16

2: गुण प्रकरण

गुण प्रकरण

गुण एक ऐसा विशिष्ट पारिभाषिक शब्द है जिसका विद्वानों ने अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार अनेक प्रकार से विवेचन किया है । भरतमुनि ने अपने नाट्य-शास्त्र में दोष के विपर्यय को गुण की संज्ञा दी है ।[1] उनकी दृष्टि में गुण और दोष का परिचय एक दूसरे के अभाव रूप में ही होता है । अतः कहा जा सकता है कि भरत की दृष्टि में गुण अभावात्मक तत्व है, किन्तु लक्षण करते समय उन्होंने दस प्रकार के गुण के जो लक्षण दिये हैं उनसे गुण प्रायः भावात्मक ही दृष्टिगत होते हैं । कालान्तर में भरतमुनि के विपर्यय का अर्थ दोष का अभाव अन्यथाभाव और विपरीत भाव आदि किया गया है ।

वामन वस्तुतः गुण के प्रथम प्रतिष्ठापक आचार्य हैं । उनके अनुसार गुण काव्य की शोभा (सौन्दर्य) को उत्पन्न करने वाले धर्म (तत्त्व) हैं ।[2] चूँकि शब्दार्थ का साहित्य ही काव्य है अतः गुण शब्द और अर्थ के धर्म हैं तथा काव्य में उनकी अनिवार्य स्थिति है ।

ध्वनिवादी आचार्यों ने गुणों को रस रूप आत्मा के धर्म के रूप में माना है । मम्मट का कथन है कि आत्मा के शौर्यादि धर्मों के समान काव्य के आत्मभूत प्रधान रस के जो अपरिहार्य और उत्कर्षाधायक धर्म है वे गुण कहलाते हैं । जैसे शौर्यादि धर्म आत्मा के ही होते हैं आकार के नहीं, इसी प्रकार माधुर्यादि गुण रस के ही धर्म होते हैं वर्णों के नहीं ।[3]

1: एतएव विपर्यस्ता गुणाः काव्येषु कीर्तिताः ।
नाट्य-शास्त्र 17/95

2: क- काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः ।
काव्यालंकार सूत्र वृत्ति 3/1/1

ख- ये खलु शब्दार्थयोः धर्माः काव्य शोभांकुर्वन्ति ते गुणाः । काव्यालंकार 3/1/1 की वृत्ति

3: ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादि इवात्मनः ।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ।।
काव्य-प्रकाश - 8/66

पंडित राज जगन्नाथ का दृष्टिकोण मौलिक है । वे रस-मात्र-धर्मता को उचित नहीं मानते । उनका यह भी तर्क है कि रस आत्मानन्द है, आनन्द आत्मा का गुण नहीं स्वरूप है । आत्मा निर्गुण है फिर माधुर्य आदि को उसका गुण कहना और नित्य धर्म मानना कैसे संगत है ।[1] अतः उन्होंने गुण को शब्दार्थ धर्म माना है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि "काव्य की शोभा को सम्पादित करने वाले या काव्य की आत्मा को प्रकाशित करने वाले तत्त्व या विशेषता गुण हैं । ये गुण शब्द और अर्थ के धर्म हैं । ये वर्ण संघटन, शब्द योजना, शब्द चमत्कार, शब्द प्रभाव और अर्थ दीप्ति पर आश्रित हैं ।[2]

गुणों की संख्या के विषय में भी आचार्यगण एक मत नहीं हैं । भरतमुनि ने श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पदसौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता और कान्ति नामक दस गुण बतलाये हैं ।[3]

दंडी ने भी इन्हीं को स्वीकार किया है किन्तु समाधि, कान्ति आदि कुछ गुणों के विषय में उनकी धारणा भिन्न प्रकार की है । वामन के गुणों की संख्या दस है किन्तु वे शब्द और अर्थ के भेद से बीस प्रकार के होते हैं ।

गुणों की संख्या का सबसे अधिक विस्तार भोज में मिलता है । उन्होंने उक्त दस गुणों के साथ चौदह अन्य गुणों को स्वीकार किया है तथा वाह्य, आभ्यन्तर एवं वैशेषिक रूप से तीन भेद किए हैं । वाह्य स्पष्टतः शब्द गुण और आभ्यन्तर अर्थ गुण है । वैशेषिक वे दोष हैं जो किसी विशेष सन्दर्भ में गुण हो

1: किंचात्मनो निर्गुणतयात्मरूपरसगुणत्वं माधुर्यादिनामनुपपन्नम् ।
रस गंगाधार पृष्ठ 55

2: हिन्दी साहित्य कोश, द्वितीय संस्करण पृष्ठ 297 गुण शब्द का विवेचन ।

3: श्लेषः प्रसादः समता समाधिर्माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम् ।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यस्य गुणादशैते ।।
नाट्य शास्त्र 16/96

जाते हैं। ऐसी दशा में भोज की दृष्टि में गुणों की संख्या बहत्तर तक पहुँच जाती है।

अग्निपुराण में शब्दगुण, अर्थगुण और शब्दार्थ भेद से 18 गुण दिये हैं। आचार्य कुन्तक ने गुणों के दो वर्ग किये हैं – सामान्य एवं विशेष। सामान्य के अन्तर्गत उन्होंने औचित्य और सौभाग्य को माना है और विशिष्ट गुणों में माधुर्य, प्रसाद और अभिजात्य की चर्चा की है। आनन्दवर्द्धन ने चित्त की तीन स्थितियों द्रुति, दीप्ति और व्यापकत्व के आधार पर माधुर्य, ओज और प्रसाद नामक तीन गुण माने हैं। मम्मट आदि ने इन्हीं का अनुकरण किया है।

चिन्तामणि का गुण विचार :–

'कवि कुल कल्प तरु' के प्रथम प्रकरण में चिन्तामणि ने सत्तर छन्दों में गुण निरूपण को स्थान दिया है। मुख्यतः काव्य प्रकाश को उपजीव्य बनाकर इन्होंने गुण का विवेचन किया है किन्तु आवश्यकतानुसार 'साहित्यदर्पण' से भी सहायता ली है। 'काव्य प्रकाश' का अनुसरण करते हुए चिन्तामणि ने आवश्यक के संग्रह और अनावश्यक के त्याग के द्वारा अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।

उनकी दृष्टि में गुण रस रूपी आत्मा का आन्तर धर्म है। जिस प्रकार शूरता आदिक आत्मा के स्थिर एवं उदात्त धर्म हैं उसी प्रकार गुण रस के स्थिर धर्म हैं :–

जे रस आगे के धरम ते गुन बरने जात।
आतम के ज्यों शूरतादिक निहचल अवदात।।[1]

जिस प्रकार आत्मा के धर्म शूरता आदिक को उपचार (लक्षणा) के कारण शरीर का धर्म मान लिया जाता है वैसे ही शब्द और अर्थ में गुणों की स्थिति औपचारिक (लाक्षणिक) है और उनकी व्यंजकता विशिष्ट वर्ण समुदाय और समास रचना शैली से होती है :–

शब्द अर्थ में लक्षना तें गुन की थिति जानि।[2]

1: कवि कुल कल्प तरु 1/8
2: वही 1/52

तथा

रचना वरन समास में गुण के विंजक जानि ।[1]

इससे स्पष्ट है कि चिन्तामणि का गुणों के प्रति दृष्टिकोण मम्मट[2] आदि नव्य आचार्यों के समान है । इसलिए उन्होंने वामनादि स्वीकृत दस गुणों के स्थान पर माधुर्यादि तीन गुणों को ही स्वीकार किया है :-

प्रथम कहत माधुर्यपुनि ओज प्रसाद बखानि ।
त्रिविधै गुन तिनमैं सबै सुकवि लेत मन आनि ।।[3]

माधुर्य गुण :-

मम्मट का कथन है कि श्रृंगार रस में रहने वाला आह्लादकत्व धर्म माधुर्य गुण कहलाता है जो चित्त के द्रवीभाव अर्थात् विगलित होने का कारण है । यहाँ श्रृंगार से तात्पर्य संभोग-श्रृंगार से है । यह माधुर्य गुण करुण, विप्रलम्भ (श्रृंगार) तथा शान्त रस में उत्तरोत्तर अतिशयता से युक्त (चमत्कार जन्य) होता है क्योंकि इसमें चित्त[4] का विगलन अत्यन्त अतिशयता से युक्त होता है ।

चिन्तामणि ने इसी आधार पर लिखा है कि :-

जो संयोग श्रृंगार में सुखद द्रवावै चित्त ।
सो माधुर्य बखानिये यह ई तत्त्व कवित्त ।।

1: कवि कुल कल्प तरु - 1/19

2:क- आत्मन एव हि यथा शौर्यादयो नाकारस्य, तथा रसस्यैव माधुर्यादयो गुणा न वर्णानाम् । काव्य प्रकाश - 8/66 की वृत्ति - पृष्ठ 380

ख- गुणवृत्त्या पुनस्तेषां वृत्तिः शब्दार्थयोर्मता । का0 प्र0 - 8/71 पृष्ठ 390

3: वर्णाः समासो रचना तेषां व्यञ्जकतामिताः ।का0 प्र0 - 8/73 पृष्ठ 393

4: कवि कुल कल्प तरु - 1/13

जो संयोग श्रृंगार ते करुण मध्य अधिकाइ ।
विप्रलम्भ अरु शान्त रस तामें अधिक बनाइ ।।[1]

किन्तु उन्होंने सुखद शब्द का प्रयोग किया है तथा 'यहई तत्त्व कवित्व' अपनी ओर से जोड़ दिया है । इससे विदित होता है कि उन्होंने माधुर्य गुण को काव्य का सर्वस्व माना है । यद्यपि संस्कृत के आचार्यों ने गुणों में परस्पर उत्कर्षापकर्ष की चर्चा नहीं की तथापि रस राजत्व से अभिव्यक्त किये जाने वाले श्रृंगार, करुण अथवा शान्त रस से संबद्ध माधुर्य का महत्त्व देना तथा कवित्व का तत्त्व कहना अनुचित नहीं कहा जा सकता ।

ओजगुण :-

दीप्ति चित्तविस्तार को हेतु ओज गुन जानि ।
सुतौवीर वीभत्स अरु रौद्र क्रमादिक मानि ।।[2]

यह मम्मट का अविकल अनुवाद है[3] जिसमें दीप्ति के द्वारा चित्त विस्तार होता है । ऐसा ओजगुण, वीर, वीभत्स और रौद्र रसों में क्रमशः अधिकाधिक वृद्धि अथवा अतिशयिता को प्राप्त करता है ।

प्रसाद गुण :-

प्रसाद गुण का स्वभाव है शीघ्रता से चित्त को व्याप्त कर लेना । जिस प्रकार सूखे ईंधन में अग्नि अथवा स्वच्छ (वस्त्र) में जल व्याप्त हो जाता है वैसे ही प्रसाद गुण चित्त में व्याप्त होता है और वह सर्वत्र (सभी रसों और रचनाओं में) होता है ।[4] चिन्तामणि ने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है :-

---

1: कवि कुल कल्प तरु - 1/13
2: वही 1/16
3: का0 प्र0 - 8/69 पृ0 389
4: वही 8/70 पृ0 390

सूखो इंधन आग ज्यौं स्वच्छ नीर की रीति ।
झलके अक्षर अर्थ जो सो प्रसाद गुन नीति ।।[1]

इस अनुवाद में 'सहसैव व्याप्नोति' क्रिया के साथ 'शुष्केन्धनाग्नि' तथा 'स्वच्छ जल' का अन्वय है अतः अर्थ संगति के लिए 'स्वच्छे जलवत्' ऐसा समास करना पड़ेगा तभी 'स्वच्छ में(स्वच्छ वस्त्र में) जल की भांति सहसा व्याप्त होता है' यह अर्थ मिल सकेगा । चूँकि चिन्तामणि ने भ्रमवश सप्तमी तत्पुरुष न करके विशेषण-विशेष्य भाव रख कर्मधारय समास मान लिया है अतः व्याप्ति के बदले 'झलके' का प्रयोग किया है जो अपने मन्तव्य को व्यक्त करने में शिथिल एवं असंगत है । 'अक्षार-अर्थ) का उल्लेख भी एक मनोरंजक तथ्य की ओर संकेत करता जान पड़ता है । वह यह है कि यद्यपि चिन्तामणि की दृष्टि में गुण आत्मा के धर्म हैं किन्तु प्रसाद गुण का संबन्ध देहवादी आचार्यों की भांति शब्दार्थ-निष्ठ भी है ।

यह भी ध्यातव्य है कि मम्मट ने प्रसाद गुण को सभी रचनाओं में और सभी रसों में व्यापक माना है इसलिए प्रसाद गुण की प्रधानता उचित प्रतीत होती है किन्तु चिन्तामणि का माधुर्य के प्रति पक्षपात रीतिकालीन वातावरण की देन है । माधुर्य और ओज में जो विभिन्न रसों में मात्रात्मक भेद मम्मट को स्वीकार्य है उसी का अनुगमन चिन्तामणि ने भी किया है ।

वर्णादिगत गुण :--

उल्लेख किया जा चुका है कि माधुर्यादि गुण उपचार से वर्णादि के गुण भी माने जाते हैं । अतः मम्मट के अनुसरण पर चिन्तामणि ने वर्णादिगत गुणों का उल्लेख इस प्रकार किया है :-

---

1: क0 क0 त0 - 1/17

क - माधुर्य गुण :–

अनुस्वार जुत बरन जिति सबै वर्ग अठ वर्ग ।
मृदु समास माधुर्य की घटनौं में जुनि सर्व ।।[1]

माधुर्य गुण के व्यंजक वर्ण हैं – 'टवर्ग' को छोड़कर शेष स्पर्श वर्णों से पूर्व पंचम वर्ण से संयुक्त अक्षर जैसे – ङ्क, ञ्च, न्द, म्ब आदि, किन्तु चिन्तामणि ने उन्हें अनुस्वार युक्त माना है । यद्यपि संस्कृत की दृष्टि से अनुस्वार युक्त कं, चं, दं आदि अशुद्ध हैं क्योंकि संस्कृत नियम से पर-सवर्ण सन्धि अवश्य होगी किन्तु ब्रजभाषा की दृष्टि से ऐसा उल्लेख अनुचित नहीं है । रेफ के शकार को भी उन्होंने सम्मिलित नहीं किया है । शकार तो ब्रजभाषा में आता ही नहीं किन्तु रेफ का उल्लेख क्यों नहीं है यह एक चिन्त्य प्रश्न है । माधुर्य का उदाहरण इस प्रकार है –

इक आजु मैं कुन्दनि बेलि लखिमिनि मंदिर की सचि वृंद भरैं ।
कुरविंद के पल्लव इन्दु तहाँ अरविंदन तै मकरन्द झरैं ।।
वृंदन के मुक्ता गन ह्वै फल सुन्दर द्वै पर आनि परैं ।
लखि यो दुतिकंद अनन्दकला नदनन्द सिलाद्रव रूप धरै ।।[2]

इस प्रकार चिन्तामणि ने अनुनासिक वर्णों के संयोग एवं मृदु समास को वांछनीय माना है जबकि मम्मट ने असमास या मध्य-समास को माधुर्योपयोगी स्वीकार किया है ।

ख - ओजगुण :–

ओज व्यंजक वर्णादि एवं संघटना का विवेचन पूर्णतः मम्मट के अनुकूल है ।

1: कवि कुल कल्प तरु - 1/20

तुलना कीजिए –

मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू ।
अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा ।।
का० प्र० 8/74

2: क० क० त० - 1/21

वर्णमाला के प्रथम और तृतीय वर्णो का, द्वितीय और चतुर्थ वर्णो के साथ योग क्ख, ग्घ, ज्झ आदि, रेफ का सभी प्रकार से संयोग जैसे र्क, क्र आदि तथा ष, श और टवर्ग तथा दीर्घ समास ओज गुण में माने गए हैं ।

वर गन मैं जो आदि अरु तीजो आखर कोइ ।
तिनसो योग द्वितीय अरु चौथे कौ जो होइ ।।
रेफ जोग सब ठौर जो तुल्य वरन जुग जोग ।
सघट वरग दीरघा करत जे समास कवि लोग ।।[1]

उदाहरण :–

इक्क पक्क फल खात इक्क कूदत किलकत अति ।
चिन्तामनि बलवंत इक्क धावत उद्धत गत्ति ।।
मद्ध दिग्गज कद पक्व समद गरजत गंभीर धुनि ।
चूरन करत पर्षानि रहे प्लवग मानौ धुनि ।।
उत उमड़ि पूरि गिरवर धारनि प्रबल जलधिजिमि विन हटक ।
सम करत सैल मग्गन विकट उदभट मरकट भटकटक ।।[2]

ग - प्रसाद गुण :–

प्रसाद गुण में सभी प्रकार के वर्ण समास और रचनायें ग्राह्य हैं किन्तु शर्त यह है कि पदों के सुनते ही अर्थ बोध होना चाहिए । यहाँ भी चिन्तामणि ने मम्मट-धारणा को अविकलरूप से अनूदित किया है –

1: कवि कुल कल्प तरु - 1/22-23

तुलनीय :– योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययोः ।
टादिः शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि ।।
वर्गप्रथमतृतीयाभ्यामन्त्ययोः द्विचतुर्थयोः रेफेण अध उपरि उभयत्र वा यस्य कस्यचित्, तुल्ययोस्तेन तस्यैव संबन्धः टवर्गोऽर्थात् णकारवर्जः, शकारषकारौ, दीर्घ समासः विकटा संघटना ओजसः ।
काव्य प्रकाश 8/75 तथा उसकी वृत्ति ।

2: क० कु० क० त० - 1/26

जामहि सुनतहि पदन के अर्थ बोध मन होइ ।
सो प्रसाद बरनादि इति साधारन सब जोइ ।।[1]

उदाहरण –

साँवरो सलौनो नित बड़ी अखियान कौजुहौतु आभरन आनि जमुना के तीर को।
चिन्तामनि कहै गारी दीजै तौ हँसत दीठ घासि निकसत पुनि नारिन की भीर को ।।
मैं तौं आजु जानी अबलौं न हौं जानत ही करतु अनीति जैसो छोहरा अहीर को ।
पनिघाट रोकत कन्हैया जाको नाम दैया छोटो है निपट छोटो भैया बलबीर को।।[2]

वामनसम्मत गुणों का उल्लेख और उसका खण्डन :–

माधुर्यादि तीन गुणों के पक्षपाती होने पर भी चिन्तामणि ने वामनादि सम्मत दस गुणों के स्वरूप निर्धारण और उनके खण्डन में मम्मट का ही अनुसरण किया है । कुछ एक उदाहरणों को छोड़कर शेष उदाहरण भी चिन्तामणि के अपने हैं जो रीतिकालीन काव्य सौन्दर्य से मंडित हैं । वामनीय गुणों के उल्लेख में चिन्तामणि ने दंडी की भी चर्चा की है । वामन ने वैदर्भी रीति को दस गुणों से युक्त माना था,[3] और दंडी ने दस गुणों को वैदर्भ मार्ग का प्राण कहा था ।[4] चिन्तामणि ने दंडी का ही अनुवाद इस प्रकार किया :–

ए वैदर्भी रीति के प्रानद गुन सो मानि[5]

यद्यपि दंडी के लक्षण के आधार पर वामन की समीक्षा का औचित्य नहीं है तथापि स्पष्टता के लोभ में दंडी सम्मत लक्षण का अनुवाद किया गया है ऐसा अनुमान किया जा सकता है ।

शब्द गुण :–

1: श्लेष –
बहुत पदन को एक पद समुझो है आभास ।
ताको कहत सलेष गुण सिथिल निबन्ध विलास ।।[6]

1: कविकुल कल्प तरु - 1/28, तुलनीयकाव्यप्र० 8/76
2: वही - 1/29
3: समग्रगुणा वैदर्भी । वामन - काव्यालंकार सूत्र 12/11
4: इति वैदर्भ मार्गस्य प्राणाः दस गुणाःस्मृताः । दंडी-काव्य दर्पण 1/142
6: क० क० त० 1/33

वामन ने श्लेष को 'मसृणत्व' कहा है क्योंकि 'मसृणत्व' का अर्थ है बहुत से पदों का एक ही समान भासित होना । यह लक्षण मम्मट के अनुसार निर्दिष्ट है ।[1]

2: उदारता –

उदारता के लक्षण चिन्तामणि ने दो प्रकार के माने हैं :–

क – जहाँ नृत्य सो करत पद सो उदारता जानि ।

ख – अर्थ चारुता सहित सो अति मंजुल पहिचान ।।[2]

वामन के 'विकटत्वमुदारता'[3] का विश्वनाथ के शब्दों में अर्थ है – पदों का प्रायः नृत्य करना[4] चिन्तामणि ने प्रथम रूप में विश्वनाथ का अनुवाद मात्र किया है किन्तु उनका मत है कि अर्थ चारुता से युक्त होने पर उदारता अतिशय मंजुलता (सौन्दर्य) से युक्त हो जाती है । डा० सत्यदेव चौधरी ने मंजुलता को मंजुलध्वनि के रूप में लिया है और उसे ध्वन्यर्थव्यंजना अलंकार के समानान्तर माना है ।[5]

3: अर्थव्यक्ति :-

अर्थव्यक्ति का अन्तर्भाव चिन्तामणि ने सम्भवतः वामन सम्मत प्रसाद में किया है न कि मम्मट सम्मत प्रसाद में । क्योंकि मम्मट के अर्थव्यक्ति का लक्षण है, शीघ्रता से अर्थबोधन की शक्ति[6] और वामन की दृष्टि में ओज से मिश्रित शिथिलता ।[7]

1: ~~क० क० त०~~ – बहूनामपि पदानामेकपदवत् भासमानात्मा यः श्लेषः । का० सू० 8/75 की वृत्ति

2: क० क० त० – 1/37

3: का० सू० वृ० – 3/1/33

4: विकटत्वं पदानां नृत्यप्रायत्वम् । सा० द० परिच्छेद 8 पृष्ठ 68

5: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य – पृष्ठ ...

6: अर्थव्यक्तिः- झटित्यर्थोपस्थापनसामर्थ्यमित्यर्थः । का० प्र० (बा० बो०) पृ० 479

7: प्रसादोगुणो भवत्येव ओजसा सह गुणेन संप्लवात् । शुद्धस्तु दोष एव । का० सू० वृ० – 3/1/78

अतः चिन्तामणि का यह लक्षण –

ओज विमिश्रित शिथिल पद यह प्रसाद है कोइ ।
अर्थ व्यक्ति जहँ-उल्लसत वहौ प्रसादै होइ ।।[1]

अपने पूर्वार्ध में वामनाश्रित है और उत्तरार्द्ध में मम्मटाश्रित, किन्तु अर्थ व्यक्ति में शीघ्रता से अर्थ बोध के साथ चिन्तामणि कुछ अलंकारों का भी योग चाहते है । यह उनकी मौलिकता है –

अर्थ व्यक्त प्रसाद तें अर्थ आनि जो कोइ ।
तहाँ जो अर्थ व्यक्त सो अलंकार कछु होइ ।।[2]

4: समता :–

समता का अर्थ है मार्ग का अभेद, अर्थात् आदि से अन्त तक एक सी शैली का निर्वाह, अथवा विषम-बन्ध को न आने देना । इसलिए चिन्तामणि कहते हैं:–

जामैं पद समतुलित है सो समता पहिचानि ।
या मै कहौ प्रकार यों विषमबन्धु जनि आनि ।।[3]

मम्मट ने समता को कहीं-कहीं दोष के रूप में भी देखा है ।[4] उसी की व्याख्यात्मक विवेचना चिन्तामणि इस प्रकार करते हैं –

अर्थ प्रौढ़ में जँह कहत दोष बखान्यो जात ।
कहूँ प्रबुध्दन मैं जु मग एकै कहा सुहात ।।[5]

1: क0क0त0 – 1/40

2: क0क0त0 – 1/42

3: क0क0त0 – 1/43

4: मार्गाभेदरुपा समता क्वचिद्दोषः । का0 प्र0 1/72 की वृत्ति

5: क0 क0 त0 1/46

स्पष्ट है कि विद्वज्जन कभी एक मार्गावलम्बन को पसन्द नहीं करते । विश्वनाथ का तो मत है कि जहाँ समता दोष न हो वहाँ भी इसे गुण नहीं मानना चाहिए क्योंकि मृदु कठोर अथवा सुगम रचना के अनुसार इसका अन्तर्भाव माधुर्य, ओज और प्रसाद में हो ही जायगा ।[1]

समता के प्रसंग में भी चिन्तामणि ने एक नवीन धारणा प्रस्तुत की है किन्तु पदों के अनुप्रास संबद्धता का नाम तो समता है और यह समतालंकार का विषय है न कि गुण का ।

जँह समता सो पदनि में बद्ध बद्धनुप्रास ।
शब्द अलंकारन विषै तिनको प्रकट प्रकाश ।।[2]

किन्तु समता को अनुप्रास का विषय मान लेना चिन्तामणि की भ्रान्ति है जिससे सहमत होना सम्भव नहीं है ।

5: समाधि :-

पद आरोह अवरोह सौ जौग समाधि प्रकार [3]
इससे संगीतात्मकता का जन्म होता है ।

6: सुकुमारता :-

सौकुमार्य अपरुष वचन श्रुति कटु दोष अभाउ ।[4]
यह गुण दोषकेदोनों अभाव रूप में हैं ।

1: सा० द० 8/13

2: क० क० त० -/49

3: क० क० त० - 1/35

4: तुलनीय - आरोहावरोहक्रमः समाधिः ।
का० सू० वृ० 3/1/13 तथा क० क० त० 1/51

7: कान्ति :-

कान्ति का अर्थ है कमनीयता । अतएव मम्मट ने इसे औज्ज्वल्यरूपा कहा है । वामन ने इसे रचना की नवीनता में माना है, किन्तु चिन्तामणि ने इसे ग्राम्यत्व दोष के अभाव में के साथ स्वीकृत किया है ।

उज्ज्वल पद्यातु कान्ति यह ग्राम्य अभाउ गनाउ ।[1]

8: प्रसाद :-

ओज सहित जो सिथिल पद बन्ध प्रसाद जु कोइ ।[2]

यह अंश वामन सम्मत हैं[3] किन्तु माधुर्य तथा ओज के लक्षण नहीं दिये हैं, केवल उदाहरण दिया है । मम्मट ने भी ओज का पृथक लक्षण नहीं किया है ।

दस शब्द गुणों का तीन गुणों में अन्तर्भाव :-

मम्मट के आधार पर अन्तर्भाव तीन रूपों में किया गया है :-

कोउ अन्तर भूत इत कोउ दोष अभाव ।
कोउ दोष त्रिविधगुन तातें दस न गनाउ ॥[4]

1: क0क0त0 1/51

2: क0क0त0 1/34

3: शैथिल्यं प्रसादः । का0 सू0 वृ0 3/1/16

4: क0 क0 त0 1/18

तुलनीय - केचिदन्तर्भवन्त्येषु दोषत्यागात्परे श्रिताः ।
अन्ये भजन्ति दोषत्वं कुत्रचिन्न ततो दश ॥काप्र8/72

क - अन्तर्भाव :-

श्लेष, समाधि, उदारता का ओज में,[1] माधुर्य का माधुर्य[2] में तथा अर्थव्यक्ति का प्रसाद में।[3]

ख - दोष अभाव :-

कष्टत्वं (श्रुति कटुत्व) और ग्रामीणत्व दोषों के अभाव का नाम ही क्रमशः सुकुमारता और कान्ति है अतः इन्हें अलग से गुण मानना उचित नहीं है ।

ग - गुण की दोष रूपता :-

समता गुण कहीं दोष भी हो जाता है । इस प्रकार दस प्रकार के गुणों का खण्डन करके तीन प्रकार के गुणों का समर्थन किया है ।

अर्थगुण :-

वामन सम्मत दस अर्थ गुणों को स्पष्ट करने में चिन्तामणि ने भी मम्मट का अनुसकरण किया है, हाँ उदाहरणों के लिए काव्य-प्रकाश, साहित्य-दर्पण अथवा काव्य अलंकार सूत्र वृत्ति से प्रायः छायानुवाद कर दिया है ।

१: श्लेष :-

श्लेष कहते हैं घटना को, जो क्रमशः क्रम-कौटिल्य, अनुल्वण और उपपत्ति इन चारों तत्त्वों के समावेश से बनती हैं ।

1: क0 क0 त0 1/3।

2: क0 क0 त0

3: क0 क0 त0 1/40

क्रम कौटिल्य जो अनुल्वन उपपति जोग की जुक्ति ।[1]
जो घटना यह अर्थ की तहाँ श्लेष की उक्ति ।।

पर यह वस्तुतः कोई गुण नहीं है अपितु कवि कौशल से उत्पन्न वैचित्र्य मात्र है ।

कवि चातुरी विचित्रता यह गुन क्यों करि होइ ।[2]

श्लेष का उदाहरण वामन एवं विश्वनाथ द्वारा प्रयुक्त 'दृष्ट्वैकासन संस्थिते प्रियतमे'[3] इत्यादि का भावानुवाद है –

एक पलका पै बैठी सुन्दरि सलौनी दोऊ चाहि कै छबीलो लाल आयौ रति केलि घर।
चिन्तामनि कहै आनि बैठ्यो प्रीतम पै काहू सों कछू न कहि कै सकत दुहू के डर।।
सुख कै मनाइवे कौ एक को दिखायो नाँह विपरीत रति को स्वरूप लखि चित्र पर।
जौलौं वह सकुचानि आँखैं मूँदि रही तौलौं प्यारे आन प्यारी के उरोज पर कर धर।।[4]

2: ओज गुण :–

ओज गुण प्रौढ़ि का पर्याय है । यह प्रौढ़ि पाँच प्रकार की होती है :–

पद के प्रतिपाद्य अर्थ (के बोधन) में वाक्य रचना, वाक्य के प्रतिपाद्य अर्थ में पद का कथन करना, विस्तार या संक्षेप करना और अर्थ का (विशेषरूप से) साभिप्रायत्व (यहाँ पाँच प्रकार की) प्रौढ़ि होती है ।[5]

1: काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ सन् 1875 के संस्करण में लक्षण के पूर्वार्द्ध का पाठ इस प्रकार है –

क्रम कौटिल्य जो अप्रगट उपमादिक की जुक्ति । क0क0त0 1/76

किन्तु मम्मट से भिन्न तथा अस्पष्ट होने के कारण इस पाठ को उपेक्षित कर दिया गया है । तुलनीय – क्रमकौटिल्यानुल्वणत्वोपपत्ति रूपघटनात्मा श्लेषोऽपि विचित्रत्व मात्रम् । का0प्र0 8/72 की वृत्ति पृ0 292

2: क0क0त0 1/77

3: सा0द0 अष्टम परि0 पृ0 71, तथा का0सू0वृ0 3/2/4

4: क0क0त0 1/78

5: का0प्र0 8/72 की वृत्ति

चिन्तामणि ने इसका विवेचन इस प्रकार किया है :-

वाक्य रचन पद अर्थ मैं एक प्रौढ़ि यह कोइ ।
वाक्य ~~रचन~~ अर्थ मैं पद रचन प्रौढ़ि दूसरी होइ ।।[1]
बहु वाक्यन को अर्थ जो एक वाक्य मैं होइ ।
याहूँ प्रौढ़ समास यह बरनत है कवि कोइ ।।
साभिप्राय पदिन कथनि ओज अर्थ गुन कोइ ।[2]

पदार्थ के लिए वाक्य [illegible] कथन का उदाहरण :-
'अत्रि नयन संभव सदा संभुमौलिकृत वास'[3]

इन पंक्तियों का अर्थ एक शब्द में चन्द्रमा है । इसी प्रकार अन्य भेदों के उदाहरण दिए गए हैं ।

मम्मट ने ओज के उपर्युक्त पाँच प्रकारों में से प्रथम चार प्रकारों को वैचित्र्य मात्र कहा है और अन्तिम साभिप्रायत्व को अपुष्टार्थता आदि दोषों के अभाव के रूप में स्वीकृत किया है । चिन्तामणि ने मम्मट के वैचित्र्य मात्र को अलंकारों से युक्त बतलाया है तात्पर्य यह है कि वैचित्र्य में उक्तिगत वैचित्र्य के साथ अलंकार का भी योग होता है-

या विधि के वैचित्र्य मैं अलंकार कछु होइ ।
ए जो वनंत अर्थगुन समुझौ सुतौ न कोइ ।।[4]

डा0 सत्यदेव चौधरी ने -''इन्होंने मम्मट के वैचित्र्य को अलंकार नाम दे दिया है " ऐसा लिखा है अतः फलतः अपने इस भ्रान्त निर्णय को युक्ति युक्त सिद्ध करने के लिए शंका समाधान भी प्रस्तुत किया है[5] किन्तु यह सब निरर्थक प्रपंच विस्तार है ।

1: क0 क0 त0 1/56

2: क0 क0 त0 1/61 तथा 1/64

3: क0 क0 त0 1/57

4: क0 क0 त0 1/63

5: देखिए - हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - पृ0 568

सुकुमारता :-

सुकुमारता अपारुष्य (अकठोरता) का पर्याय मम्मट द्वारा स्वीकृत है किन्तु चिंतामणि ने अपने लक्षण में मंगलमय शब्द का सान्निवेश किया है जो अमंगल व्यंजक अश्लीलता के निराकरण का संकेत देता है –

मंगलमय कोमल अरथ सुकुमारता बखानि ।
अमंगल्य अश्लील को यह अभावमन आनि ।।[1]

समाधि :-

समाधि अर्थ दृष्टि को कहते हैं । इसके दो भेद किए गए हैं – अयोनि एवं अन्यछाया योनि । अयोनि का अर्थ है मौलिक रचना तथा अन्यछाययोनि से तात्पर्य है अन्य कवि की छाया पर आश्रित रचना ।

वरनी एक अजौनि है अर्थ दृष्टि इत कोइ ।
अन्यछाया जोनि पुनि अर्थ दृष्टि इत होइ ।।[2]

अर्थव्यक्ति एवं उदारता:-

किसी वस्तु के स्वभाव वर्णन को ,कहते हैं,[3] तथा उदारता ग्राम्यता दोष के अभाव का नाम है –

अर्थबीज अग्रामता उदारता से जानि ।
ग्राम दोष की सुजन इति इहाँ अभावै मानि ।।[4]

7: प्रसाद गुण :-

प्रसाद गुण का स्वरूप है विमलात्मकता –

जहाँ अधिक पद परत नहिं विमलात्मक जु प्रसाद[5]

1: का0का0त0 1/70
2: का0का0त0 1/55
3: का0का0त0 1/675
4: का0का0त0 1/72
5: का0का0त0 1/66

8 : माधुर्य :-

माधुर्य उक्तिवैचित्र्य को कहते हैं जिसमें नूतनता हो ।

नयो उक्त वैचित्र्य जो सो माधुर्य निहारि ।[1]

9 : कान्ति :-

कान्ति का तात्पर्य है दीप्त-रस-रूपता -

गुतो दीप्त रस रूप कान्ति बखानत सोइ [2]

10 : समता :-

अवैषम्य का नाम समता है ।[3] इस प्रकार सभी गुणों की मम्मटानुसार[4] व्याख्या करके उनका खण्डन भी मम्मट के अनुसार किया गया है किन्तु समता गुण के संबंध में विश्वनाथ के साहित्य-दर्पण से सहायता ली गई है ।

दस अर्थ गुणों का खण्डन :-

क: अन्तर्भाव :-

अर्थव्यक्ति का स्वभावोक्ति अलंकार में और कान्ति का रसध्वनि में अथवा गुणीभूत व्यंग्य में अन्तर्भाव माना गया है ।

श्लेष वैचित्र्य मात्र है अतः गुण न होकर कविचातुर्य का नामान्तर है ।[5]

दोष का अभाव :-

प्रसाद, माधुर्य, सौकुमार्य, उदारता, रूपगुण क्रमशः अधिक-पदत्व, अनवीकृतत्व, अमंगलरूप अश्लीलतत्त्व तथा ग्राम्यता दोषों के अभाव ही हैं । इसी प्रकार[6] अवैषम्यरूप समता, प्रक्रम भेद[7], रूप दोष के अभाव का नाम है । ओज के

---

1 : क0 क0 त0 1/68
2 : क0 क0 त0 1/76
3 : वही 1/77
4 : का0 पृ0 8/72 की वृत्ति
5 : क- वही 1/74 तथा 76
6 : ख- वही 1/77
7 : क - वही 1/66, ख- वही 1/68, ग- वही 1/70, घ- वही 1/72 तथा 1/77

प्रथम चार प्रकारों को भी श्लेष की भाँति वैचित्र्य मात्र माना गया है और उसके पाँचवें प्रकार को अधिक पदत्व नामक दोष के अभाव के रूप में स्वीकार किया गया है ।[1]

समाधिगुण के अयोनि और अन्यच्छाया योनि नामक दो भेद किए गए हैं तथा उनके उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं ।[2] किन्तु इसके खण्डन का उल्लेख नहीं है । मम्मट ने माना है कि किसी रचना में यदि दोनों भेदों में से कोई भेद न हो तो काव्य का अस्तित्व ही सम्भव नहीं है अतः यह काव्य के कारणों में आ सकता है किन्तु चिन्तामणि ने यहाँ मौन क्यों धारण कर लिया यह बतलाना कठिन है।

चिन्तामणि की देन :-

चिन्तामणि की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने काव्य प्रकाश को आधार बनाते हुए भी वामन के अनुकूल दोषों के लक्षण और उनके उदाहरणों का विस्तृत उल्लेख किया है और छन्दों की सीमा में भी खण्डन-मण्डन की शास्त्रीय प्रक्रिया का निर्वाह किया है । इससे गुण के प्रायः पूर्ण और शुद्ध रूप का परिचय सरलता से हो जाता है । दूसरी बात यह है कि इनके उदाहरण लक्षणों की कसौटी पर अत्यन्त खरे उतरे हैं । लक्षणानुकूलता के निर्वाह के साथ रीतिकालीन रंगीनी और सरसता से युक्त ये उदाहरण - मुक्तक चिन्तामणि के कवि रूप को प्रकाशित करने में पूर्ण समर्थ हैं । आचार्यत्व एवं कवित्व का यह मणिकांचन संयोग निश्चय ही प्रसंशनीय है ।

जहाँ तक मौलिकता का प्रश्न है, वहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि चिन्तामणि की दृष्टि मूल रूप में परम्परा को हिन्दी कवियों तक पहुँचाने में रही है, किन्तु यत्र तत्र इनकी मौलिक अभिनवता स्पष्ट झलकती है जो इस प्रकार है :-

1: माधुर्य गुण को इन्होंने सर्वप्रथम काव्य के मूल तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है।
2: उदारता में अर्थचारुत्व और अर्थव्यक्ति में सालंकारता का निरूपण किया है ।
3: आज के वैचित्र्य में अलंकारत्व के सन्निवेश का उल्लेख किया है ।

अतः कुल मिलाकर चिन्तामणि का गुण प्रकरण रीतिकालीन अन्य आचार्यों की तुलना में अधिक व्यवस्थित और शुद्ध है ।

1: क0क0त0 1/66 2: क0क0त0 1/55 तथा 1/80, 1/81

३ः अलंकार प्रकरण

अलंकार प्रकरण

चिन्तामणि के आचार्यत्व का मूल रहस्य है उनकी सारग्राहिणी प्रवृत्ति । यही कारण है कि उन्होंने किसी एक आचार्य की गतानुगतिकता को स्वीकार न करके अपनी रुचि और शक्ति के अनुरूप अनेक आचार्यों के सार-संकलन का प्रयास किया है । फलतः उनकी इस संग्रह-त्याग की प्रवृत्ति के कारण 'कवि कुल कल्प तरु' में अनेक मौलिकताओं का समावेश हो सका है । ग्रन्थ के उपक्रम में उन्होंने इस तथ्य का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि इस ग्रन्थ में संस्कृत साहित्य के विभिन्न आकर ग्रन्थों के अवगाहन से प्राप्त निष्कर्षों को अपने चिन्तन के आलोक में विवेचित करने का प्रयास किया है ।[1]

अतः इस पृष्ठभूमि में जब हम चिन्तामणि के अलंकार निरूपण के प्रसंग में आचार्य मम्मट, विद्यानाथ, विश्वनाथ एवं अप्पय दीक्षित के ग्रन्थों की प्रतिछाया देखते हैं तो हमें एक सुखद संतोष ही प्राप्त होता है । उल्लेखनीय है कि स्थान-स्थान स्थान पर तत्तद् आचार्यों का नामोल्लेख करके चिन्तामणि ने अपनी स्पष्ट कृतज्ञता ज्ञापित करने का प्रयत्न किया है । साथ ही आधारभूत ग्रन्थों के उल्लेख से ग्रन्थ की प्रामाणिकता भी सिध्द हो गयी है । नीचे आकर ग्रन्थों के उल्लेख के अंश उद्धृत किये जाते हैं :-

मम्मट का उल्लेख :-

श्लेष विशेषन बलउकुल जो कछु और की होइ ।
याहि समासोकति कहत पंडित मम्मट कोइ ।।
अतिशयोक्ति ये चारि विधि मम्मट कथन प्रकार ।
बरनत चिंतामनि सुकवि निजमति के अनुसार ।।

1: जे सुर वानी ग्रन्थ हैं तिनको समझ विचार ।
चिंतामनि कवि कहत हैं भाषा कवित विचार ।।
क0 क0 त0 — 1/3

मम्मट आचरज इहाँ ऐसो कियो विवेक ।
परिसंख्यालंकार को समुझो पंडित एक ।।[1]

विद्यानाथ का उल्लेख :-

चौविधि चिंतामनि कहे अध्यवसाइ बनाइ ।
क्रम तेहि विधि सुजोग ए विद्यानाथ गनाइ ।।
जो वाच्य स्वरूप की उत्प्रेक्षा की माँह ।
वाच्य गम्यता अर्थ को वरनी विद्यानाह ।।
प्रस्तुत कारज तेजु है प्रस्तुत कारन जान ।
पर्यायोक्ति कहत यों विद्यानथ सुजान ।।[2]

कुवलयानन्द का उल्लेख :-

सिध्दासिध्दास्पद बहुरि द्विविध और निरधारि ।
सुभग कुवलयानन्द में गह क्रम कियो विचारि ।।[3]

विश्वनाथ का उल्लेख :-

नाम लेकर विश्वनाथ का उल्लेख नहीं किया गया है किन्तु उपमा के श्रौती एवं आर्थी भेदों तथा रसनोपमा, परिणाम और उल्लेख अलंकारों के लिए चिन्तामणि विश्वनाथ के ऋणी हैं । उदाहरार्थ मालोपमा, के प्रसंग में साधारण धर्म के लिए वस्तु-प्रतिवस्तु- भाव तथा बिम्ब - प्रति - बिम्ब - भाव का उल्लेख साहित्यदर्पण के अनुवाद रूप में किया गया है और सम्भवतः 'बुधजन' कह कर विश्वनाथ का ही स्मरण किया गया है । -

---

1: क0क0त0 - 3/316, 3/110 तथा 3/262

2: क0क0त0 - 3/32, 3/37 तथा 3/236

3: क0क0त0 - 3/68

इत साधारन धर्म बुध जन द्वै भाँति गनाइ ।
वस्तु और प्रति वस्तु को क्रम बिम्बोज बनाइ ।।[1]

<u>तुलनीय</u> :-

× × × × × × भिन्न साधारणो गुणः ।
भिन्ने बिंबानुबिम्बत्वं शब्दमात्रेण वा भिदा ।।[2]

इसी प्रकार उपमा भेद के लिए देखिए :-

ज्यों आदिक पद के लिए श्रौती उपमा जानि ।
सदृसतुल्य पद केलिए होति आरथी आनि ।।[3]

<u>तुलनीय</u> :-

श्रौती यथेव वा शब्दा इवार्थो वा वतिर्यदि ।
आर्थी तुल्यसमानाद्यास्तुल्यार्थो यत्र वा वतिः ।।[4]

इसी प्रकार साहित्य-दर्पण का आकलन अन्य अनेक अलंकारों में भी संभव है ।

कविकुल कल्प तरु के द्वितीय ~~और तृतीय~~ प्रकरण में सात शब्दालंकारों की 37 छन्दों में सोदाहरण विवेचना की गई है । तृतीय प्रकरण में 67 अर्थालंकारों के भेदोपभेद सहित निरूपण में 320 छन्दों का उपयोग किया गया है । लक्षण-निरूपण दोहों तथा सोरठों में ही हुआ है किन्तु उदाहरणों के क्रम में कवित्त सवैया आदि दीर्घकाय छन्दों का पुष्कल प्रयोग किया गया है । गद्य का प्रयोग केवल दो स्थानों में हुआ है जिनमें अप्रस्तुतप्रशंसा एवं संकर अलंकार के उदाहरणों की संगति दिखाई गई है ।

1: क0क0त0 - 3/17
2: सा0द0 - 10/23 - 24 पूर्वार्द्ध
3: क0क0त0 - 3/4
4: सा0द0 - 10/16

अलंकार विषयक धारणायें :-

अलंकार संबन्धी विवेचन से पूर्व चिन्तामणि की अलंकार विषयक धारणा को स्पष्ट कर लेना अप्रासंगिक न होगा । इनके अनुसार अलंकार काव्य - शरीर को अलंकृत करने वाला धर्म है । जिस प्रकार हार आदि लौकिक अलंकार मानव शरीर की शोभा बढ़ाते हैं उसी प्रकार अनुप्रास, उपमादिक काव्य के अलंकार काव्य के शोभावर्द्धक तत्त्व हैं :-

सबै अर्थ तनुवर्णिये जीवित रस जिय जानि ।
अलंकार हारादितै उपमादिक मन आनि ।।[1]
अलंकार ज्यों पुरुष के हारादिक मन आनि ।
प्रासोपम आदिक कवित अलंकार ज्यों जानि ।।[2]

जहाँ तक काव्य में अलंकारों के महत्त्व का प्रश्न है चिन्तामणि गुणों के समानान्तर ही अलंकार के महत्त्व को स्वीकार करते हैं । उनकी दृष्टि में काव्य का 'सगुनालंकारन सहित'[3] होना नितान्त आवश्यक है । ऐसी दशा में इनकी यह धारणा मम्मट के 'अनलंकृतीपुनःक्वापि'[4] के विपरीत है । मम्मट के परवर्ती आचार्यों ने सब से अधिक आक्षेप 'अनलंकृती' पर ही किया है और उन्होंने अलंकार को काव्य के महत्त्वपूर्णघटक के रूप में स्वीकार किया है । अतः परवर्ती आचार्यों के चिन्तन के आलोक में यदि चिन्तामणि ने अलंकार की प्रधानता को स्वीकार किया है तो इसे उचित ही समझना चाहिए ।

इसके साथ ही शब्दालंकारों को इन्होंने शब्द-चित्र के रूप में स्वीकार किया

1: क0 क0 त0 - 1/9

2: क0 क0 त0 - 2/4

3: क0 क0 त0 - 1/7

4: का0 प्र0 - 1/4

है तथा ध्वनिहीन अर्थालंकारों को अर्थ चित्र के रूप में। इन दोनों ही प्रकारों को अधमकाव्य की संज्ञा दी है।[1] इस अर्थ में इनकी अलंकार विषयक धारणा ध्वनिवादियों से प्रभावित है।

अलंकारों के प्रकार :-

चिन्तामणि के विचार से शब्द और अर्थ की गति के भेद से अलंकार दो प्रकार के होते हैं —

शब्द अर्थ गति भेद सों अलंकार द्वै भाँति।
अलंकार आदिक शबद अलंकार की पाँति।।[2]

इसी आधार पर इन्होंने शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का क्रमशः द्वितीय और तृतीय प्रकरण में विवेचन किया है किन्तु उभयालंकारों की चर्चा कहीं भी नहीं की है।

शब्दालंकार :-

शब्दालंकारों के वर्गीकरण का आधार इन्होंने मम्मट से प्राप्त किया है और यह बतलाया है कि वक्रोक्ति अनुप्रासादिक सात अलंकारों में जिन शब्दों के कारण चमत्कार होता है यदि उनको हटाकर उनके पर्यायवाची अन्य शब्द रख दिये जाँय तो उनका अलंकारत्व समाप्त हो जाता है। प्रस्तुत पंक्तियों में उनके विचार दृष्टव्य हैं —

1: शब्द चित्र इत ए सबै, अधम कवित्त पहिचानि।
जेते हैं ध्वनि हीनते, अर्थ चित्र सो मानि।।

क० क० त० - 2/56

तुलनीय -

शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यंत्ववरं स्मृतम्।

का० प्र० 1/5

2: क० क० त० 2/1

वक्रोक्ति अनुप्रास पुनि, कहिलाटानुप्रास ।
जमकश्लेषौ चित्र पुनि, पुनुरुक्तवदाभास ।।[1]
सात शब्द अलंकार ए, तिनमें शब्द जु होइ ।
ताहि ते पर्याय पद, दिये न भासै कोइ ।।[2]

अर्थालंकार :-

अर्थालंकारों में 67 अलंकारों का विवेचन चिन्तामणि ने किया है किन्तु शब्दालंकारों की भाँति उनका परिगणन नहीं किया है । हाँ उनका क्रमानुबन्धान प्रायः विद्यानाथ के अनुरूप हुआ है । केवल समासोक्ति, प्रत्यनीक, सूक्ष्म उदात्त और परिवृत्त और अलंकारों के स्थान में कुछ हेर फेर कर दिया गया है । रसनोपमा और परिवृत्त अलंकार का निरूपण विद्यानाथ ने नहीं किया है किन्तु चिन्तामनि ने इन दोनों का संग्रह कर लिया है । इसके विपरीत अर्थापान्तर, विकल्प और मालादीपक का उल्लेख चिन्तामणि ने नहीं किया है जबकि प्रताप रुद्र यशोभूषण में इनका समुचित विवेचन उपलब्ध है । मम्मट की भाँति विद्यानाथ ने वक्रोक्ति को अलंकारों में स्थान दिया है किन्तु चिन्तामणि ने मम्मट का अनुसरण करते हुए शब्दालंकारों में परिगणित किया है ।

उल्लेखनीय है कि "गुणज्ञ और सारग्राही आचार्य चिन्तामणि ने विद्यानाथ की व्यवस्था और मम्मट की प्रतिभा का सदुपयोग करते हुए क्रम तो एक आचार्य से ग्रहण किया है और स्वरूप निर्देशन दूसरे आचार्य से । यदि चिन्तामणि विद्यानाथ के समान अलंकारों के विभिन्न वर्गों का नामोल्लेख भी कर देते तो श्रेयस्कर रहता "[3] केवल अनुमान अलंकार में तर्क न्यायमूलक नामक वर्ग का उल्लेख है[4] जो मात्र संयोगिक या छन्द पूर्ति के

1: क0 क0 त0 2/2

2: क0 क0 त0 2/3

3: तुलनीय — इह दोषगुणालंकाराणां शब्दार्थगतत्वेन यो विभागः सः अन्वयव्यतिरेकाभ्यामेव-व्यवतिष्ठते । तथाहि कष्टत्वादिगाढत्वाद्यानुप्रासादयः, व्यर्थत्वादि प्रौढ्याद्युपमादयः। तद्भावतदभावानुविधादित्वादिव शब्दार्थगतत्वेन व्यवस्थाप्यन्ते ।
का0 प्र0 श्लोक 85 सूत्र 119 की वृत्ति ।

3: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा0 सत्यदेव चौधरी पृष्ठ 667

4: जुहै साध्य साधन कठिन, सो वरनत अनुमान ।
तर्क न्याय मूलक सुतौ, अलंकार सज्ञान ।। क0 क0 त0 -3/242

आग्रह से समाविष्ट किया गया प्रतीत होता है ।

अलंकारों के लक्षण :-

हम ऊपर उन आचार्यों का उल्लेख कर आए हैं जिनके ग्रन्थों से सामग्री ग्रहण करके चिन्तामणि ने अलंकारों के लक्षणों का निरूपण किया है । प्रस्तुत प्रसंग में लक्षणों पर निम्नलिखित दृष्टियों से विचार करने का प्रयास किया जायेगा जिससे अध्ययन में वैज्ञानिकता के साथ स्पष्टता का समावेश हो सके ।

क - क्या संस्कृत लक्षणों का शुद्ध एवं सफल अनुवाद किया गया है ?

ख - क्या भावानुवाद या छायानुवाद किया गया है ?

ग - क्या कोई मौलिकता या विशेषता प्रकट हुई है ?

घ - क्या संक्षिप्तता अथवा लाघव की प्रवृत्ति के कारण लक्षण अस्पष्ट दोषपूर्ण अथवा अधूरे हो गये हैं ?

अनुप्रास :-

चिन्तामणि -

समता जो आखरन की अनुप्रास सो जानि ।
छेकवृत्ति द्वै भाँति सो, द्वै विधि ताहि बखानि ।।[1]

मम्मट - वर्णसाम्यमनुप्रासः छेक वृत्ति गतो द्विधा ।[2]

विवेचन:-

प्रस्तुत अनुवाद अत्यन्त स्पष्ट और अविकल है ।

छेकानुप्रास -

ललितै है आखरन की बारक समता होइ ।

1: क0क0त0 - 2/8

2: का0प्र0 सूत्र 103-104 पृष्ठ - 404

चिन्तामणि :–

चिन्तामणि कवि कहत यों छेक कहावै सोइ ।।[1]

मम्मट :–

सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः

(अनेकस्य अर्थात् व्यंजनस्य सकृदेकवारं सादृश्यं छेकानुप्रासः[2]) –(अर्थात् अनेक व्यंजनों का एक बार सादृश्य छेकानुप्रास है)

विवेचन :–

यहाँ मम्मट की कारिका के साथ वृत्ति अंश को भी लक्षण में सम्मिलित कर लिया गया है जिससे लक्षण अधिक स्पष्ट और पूर्ण बन पड़ा है, किन्तु 'ललितै' का प्रयोग लक्षण को एकांगी बना रहा है क्योंकि इस अलंकार में केवल ललित व्यंजनों की आवृत्ति ही नहीं होती वरन् कठोर व्यंजनों की भी आवृत्ति होती है । इसीलिए काव्य-प्रकाश में इस संबन्ध में कोई व्याख्या नहीं दी गई है । 'आखरन' का प्रयोग भी चिन्त्य है क्योंकि आखर - अक्षर में स्वर और व्यंजन दोनों का समावेश होता है जब कि अनुप्रास में ~~केवल~~ व्यंजनों की आवृत्ति का महत्त्व है । मम्मट ने 'व्यंजनस्य' लिखा भी है ।

वृत्यनुप्रास :–

चिन्तामणि –

एक अनेकाक्षार रचत बार-बार सर होइ ।
चिंतामनि कवि कहत हैं, वृत्य कहावै सोइ ।।[3]

मम्मट –

एकस्याप्यसकृत्परः

(एकस्य अपि शब्दादनेकस्य व्यंजनस्य द्विर्बहुकृत्वो वा सादृश्यं वृत्यनुप्रासः[4]) –

1: क0 क0 त0 - 2/9
2: का0 प्र0 सूत्र 105 तथा उसकी वृत्ति - पृष्ठ 404
3: क0 क0 त0 - 2/11
4: का0 प्र0 - सूत्र 106 तथा उसकी वृत्ति 9/79

(एक वर्ण के भी और अनेक वर्णों के भी अनेक बार के आवृत्तिसाम्य होने पर दूसरा अर्थात् वृत्यानुप्रास होता है)

एक वर्ण और 'अपि' शब्द के प्रयोग से अनेक व्यन्जनों का एक बार या बहुत बार का सादृश्य अर्थात् आवृत्ति वृत्यानुप्रास होता है ।

विवेचन :–

मम्मट के लक्षण के साथ उनके वृत्ति अंश को भी पद्यबद्ध किया गया है फिर भी लक्षण पूर्ण और स्पष्ट हैं ।

पुनरुक्तवदाभास :–

चिन्तामणि –

भिन्न पदन में एक सो, जहाँ अर्थ आभास ।
चिंतामनि कवि कहत सों, पुनरुक्तवदाभास ।।[1]

मम्मट –

पुनरुक्तवदाभासोविभिन्नाकारशव्दगा ।
एकार्थतेव शव्दस्य तथा शव्दार्थयोरयम् ।।[2]

विवेचन :–

यहाँ मम्मट के 'एकार्थतेव' अंश तक का ही अनुवाद करने को सफल प्रयत्न किया गया है । इस प्रकार पुनरुक्तवदाभास का लक्षण तो स्पष्ट हो गया है किन्तु शव्दनिष्ठ और शब्दार्थ निष्ठ रुप से जो दो भेद किए गए हैं और इस रुप में उसे जिस तरह उभयालंकार सिद्ध किया गया है इसकी चिन्तामणि ने उपेक्षा कर दी है, ऐसा क्यों हुआ इसका कारण बताना प्रायः असम्भव है, फिर भी ऐसा कहा जा सकता है कि शब्द निष्ठ का उदाहरण प्रस्तुत करना अपेक्षाकृत सुगम था उसे चिन्तामणि ने प्रस्तुत भी किया है ।[3] परन्तु शव्दार्थ-निष्ठ के उदाहरण को उपेक्षित कर दिया गया है । अतः

1: क0क0त0 2/34 2: का0 प्र0 - सूत्र 121, 122, 123-9/86

3: तन सुबरन कंचन ललित, घन बादर सम बार ।
आखें सरसी तीरसीं, सुन्दर रुप उदार ।। क0क0त0 2/35

काठिन्य की बाधक हो सकता है । 'यहाँ विवेचन अधूरा रह गया है यह आक्षेप चिन्तामणि पर लगाया भी जा सकता है ।

यमक :--

चिन्तामणि --

अरथ होत अन्यारथक, बरनन को जहँ होइ ।
फेर श्रवन सो जानक कहि, बरनत यौं सब कोइ ।।[1]

मम्मट :--

अर्थे सत्यर्थ भिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुति ।
यमकम्पादतद्भागवृत्ति तद्यात्यनेकताम् ।।[2]

विवेचन :--

चिन्तामणि ने यहाँ मम्मट-कृत 'यमकान्त' भाग को ही अनूदित किया है । इसका कारण सम्भवतः यह है कि उन्होंने यमक के भेदोपभेद का उल्लेख नहीं किया है वैसे अनुवाद शब्दशः किया गया है और उनकी सफलता सराहनीय है ।

वक्रोक्ति :--

चिन्तामणि --

और भाँति को वचन जो, और लगावै कोइ ।
कै सलेष कै काक सो, वक्रोकति है सोइ ।।[3]

मम्मट :--

यदुक्तमन्यथावाक्यमन्यथाऽन्येन योज्यते ।

1: क0क0त0 - 2/2।

2: का0प्र0 - सूत्र 116, 117 9/92

3: क0क0त0 - 2/5

श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथाद्विधा ।।[1]

विवेचन :-

दोहा जैसे लघु छन्द में संस्कृत लक्षणों का इतना शुद्ध और खरा अनुवाद चिन्तामणि की अपूर्व सफलता का द्योतक है । इससे विषय सहज ही सुबोध एवं ग्राह्य बन गया है ।

लाटानुप्रास :-

चिन्तामणि :-

तात्पर्य के भेदते, दीन्हों जो पद देइ ।
सो लाटानुप्रास है, समझ सज्जनै लेइ ।।[2]

मम्मट :-

शाब्दस्तु लाटानुप्रासो भेदे तात्पर्यमात्रतः ।[3]

विवेचन :-

यहाँ अनुवाद में मम्मट के लक्षण की मात्र छाया दृष्टिगोचर होती है । साथ ही इसके मम्मटोल्लिखित पाँच भेदों की भी चर्चा नहीं है, वैसे स्पष्टता की दृष्टि से लक्षण पर्याप्त सफल है ।

चित्र अलंकार :-

चिन्तामणि :-

खड्ग आदि ह्वै कै मुरज, काम धेनु ह्वै आदि ।
चित्रालंकृत बहुत विधि, वरनत सुकवि अनादि ।।[4]

1: का0प्र0 - सूत्र 102 - उल्लास 9 का 78

तुलनीय-
अन्यस्यान्यार्थकं वाक्यमन्यथायोजयेद्यदि ।
अन्यः श्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिस्ततोद्विधा । सा0द0 - 10/9

2. क0क0त0 - 2/9

3: का0प्र0 - सूत्र - 111- नवम उल्लास - 81

4: क0क0त0 - 2/29

मम्मट :—

तच्चित्रं यत्र वर्णानां खड्गाद्याकृतिहेतुता:[1]

विवेचन :—

मम्मट ने वर्णों के सन्निवेश की विशेषता से खड्ग आदि आकृतियों के बन जाने पर चित्रालंकार बतलाया है किन्तु चिन्तामणि ने वर्ण विन्यास का उल्लेख नहीं किया है। केवल खड्ग आदि न कहकर 'मुरज' 'कामधेनु' आदि का समाहार केवल छन्द पूर्ति की दृष्टि से किया गया प्रतीत होता है, क्योंकि इससे भी सभी भेदों का समाहार नहीं हो सका है और 'आदि' का सहारा लेना ही पड़ा है। 'बहु विधि' भी केवल आदि शब्द की व्याख्या है। अतः डा० ओम् प्रकाश शर्मा का यह कथन सर्वथा उचित ही है कि "चिन्तामणि ने मम्मट के लक्षण का भावानुवाद किया है।" किन्तु उनके इस कथन से कि "यह अनुवाद अशक्त नहीं"[2] सहमत होना सम्भव नहीं है। स्पष्ट है कि जो आचार्य एक ही बात को ('आदि शब्द को) एक ही लक्षण में तीन बार दुहराता है उससे दोहे जैसे छोटे से छन्द में निबद्ध लक्षण को अशक्त क्यों न माना जाय ?

श्लेष अलंकार :—

चिन्तामणि —

पद अभिन्न भिन्नारथक कहत तहाँ श्लेष।
याको देत उदाहरण, सुनहु सुकवि सुविशेष।।[3]

मम्मट —

वाच्य भेदेन भिन्ना यद् युगपद्भाषणस्पृशः।
श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा।।[4]

1: का० प्र० - सूत्र 120 - नवम उल्लास 85

2: रीतिकालीन अलंकार साहित्य का शास्त्रीय विवेचन - लेखकः डा० ओम् प्रकाश शर्मा शास्त्री पृष्ठ 320

3: क० क० त० - 2/24

4: का० प्र० - सूत्र 118 9/84

विवेचन :-

यहाँ मम्मट के उपर्युक्त लक्षण का छायानुवाद मात्र दृष्टिगत होता है । चिन्तामणि के लक्षण में न तो मम्मट जैसी बारीकी है और न आठ प्रकार के भेदों का उल्लेख । स्थूल रूप से काम चलाऊ लक्षण बना लिया गया है ।

इस प्रकार सात शब्दालंकारों के लक्षणों के लिए चिन्तामणि मम्मट के ऋणी हैं । लक्षणों में मौलिकता के दर्शन नहीं होते । भेदोपभेदों के उल्लेख के अभाव में ग्रन्थ का गौरव कम हो गया है । लक्षणों और उदाहरणों का समायोजन अवश्य उत्तम हुआ है किन्तु आचार्यत्व के बिन्दु पर चिन्तामणि का योगदान उल्लेखनीय महत्व का नहीं है ।

अर्थालंकार :-

चिन्तामणि ने 'कविकुल कल्प तरु' के तृतीय प्रकरण में 67 अर्थालंकारों का निरूपण किया है जिनका विवेचन और जिनके प्रेरणा-स्रोत का अनुसंधान यथा सम्भव निम्नलिखित है ।

उपमा :-

चिन्तामणि के अनुसार जहाँ वर्ण्यमान (प्रस्तुत या उपमान) का अन्य (अप्रस्तुत या उपमेय) के साथ सौन्दर्यपूर्ण साम्य का वर्णन हो उसे उपमा अलंकार कहते हैं । यह लक्षण जयदेव के चन्द्रालोक से प्रभावित है ।

चिन्तामणि -

जामैं मंजुल आन सो, समता बरनी होइ ।
वर्ण्यमान कछु वस्तु सो उपमा कहिये सोइ ।।[1]

जयदेव -

उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः ।
हृदये खेलतोरुच्चैस्तन्वंगी स्तनयोरिव ।।[2]

1: क० क० त० - 3/2

2: चन्द्रालोक - जयदेव - पृष्ठ 50

विवेचन :-

आचार्य मम्मट ने केवल साधर्म्य[1] की बात कही है और विश्वनाथ ने 'साम्य'[2] की, किन्तु चिन्तामणि ने मंजुल साम्य का उल्लेख किया है जो जयदेव के लक्ष्मी का रूपान्तर है। वस्तुस्थिति तो यह है कि चिन्तामणि ने अप्पय्य दीक्षित के कुवलयानन्द से ही सर्वत्र प्रेरणा ली है और अप्पय्य दीक्षित ने चन्द्रालोक के लक्षण को अविकल रूप से ले लिया है।[3]

उपमा के भेद :-

कविकुल कल्पतरु में उपमा के श्रौती और आर्थी दो भेद किए गए हैं और इन दोनों के पूर्णा तथा लुप्ता की दृष्टि से पुनः दो-दो भेद किये गए हैं तथा इन चारों भेदों के लक्षण भी दिए गए हैं।

सो पुनि श्रौती आरथी, द्वै विधि चित में ल्याय ।
पूरन लुप्ता भेद तें, दोऊ दुविध गनाय ।।[4]

विवेचन :-

यह भेद निरूपण अत्यन्त स्थूल है तथा मम्मट एवं विश्वनाथ दोनों के अनुकूल है[5] स्मरणीय है कि मम्मट ने पूर्णा के छः भेद तथा लुप्ता के 19 भेद माने हैं। विश्वनाथ ने पूर्णा के तो छः भेद ही स्वीकार किये हैं किन्तु लुप्ता के 21 भेदों का उल्लेख किया है। चिन्तामणि ने पूर्णा के शाब्दी और आर्थी भेद किए हैं तथा लुप्ता के उपमान,

---

1: साधर्म्यमुपमा भेदे । का० प्र० सूत्र 124 - पृष्ठ 445

2: साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमाद्वयोः । सा० द० 10/14

3: उपमा यत्र सादृश्य लक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः ।
हंसीव कृष्ण! ते कीर्तिः स्वर्गंगामवगाहते ।।
कुवलयानन्द - अप्पय्य दीक्षित ।

4: क० क० त० 3/3

5: (क) - सा० द० 10/15, 16, 17
(ख) - का० प्र० 10/87 सूत्र 126 तथा 10/88 सूत्र 128

उपमेय धर्म और वाचक के लोप के आधार पर चार भेद स्वीकार किये हैं । लक्षणों की तुलनात्मक परिचर्चा निम्नांकित है ।

श्रौती :–

चिन्तामणि –

ज्यों आदिक पद के लिए श्रौती उपमा जानि ।[1]

विश्वनाथ –

श्रौतीयथेववाशब्दा इवार्थो वा वतिर्यदि ।[2]

आर्थी :–

चिन्तामणि –

सदृश तुल्य पद के दिए होति आरथी आनि[3]

विश्वनाथ –

आर्थी तुल्य समानाद्यास्तुल्यार्थो यत्र वा वतिः[4]

पूर्णा :–

चिन्तामणि –

उपमानो उपमेयपद उपमा वाचक होइ ।

अरु साधारन धर्म यह पूरन उपमा होइ ।।[5]

विश्वनाथ –

सा पूर्णा यदि सामान्यधर्म औपम्यवाचि च ।

उपमेयं चोपमानं भवेद्वाच्यम् × × × ।।[6]

1: क० क० त० - 3/4 - पूर्वार्द्ध

2: सा० द० - 10/16 - पूर्वार्द्ध

3: क० क० त० - 3/4 उत्तरार्द्ध

4: सा० द० - 10/16 उत्तरार्द्ध

5: क० क० त० - 3/5

6: सा० द० - 10/15

चिन्तामणि –

जहाँ एक द्‌वै तीनि को, लोप चारि मैं होइ ।

चिंतामनि कवि कहत है, लुप्ता कहिए सोइ ।।[1]

विश्वनाथ –

लुप्ता सामान्य धर्मादिरेकस्य यदि वा द्वयोः

त्रयाणां वानुपादाने श्रौत्यार्थी सापिपूर्ववत् ।[2]

विवेचन :–

स्मरणीय है कि यहाँ श्री चिन्तामणि ने केवल चार तत्त्वों में से एक दो अथवा तीन के लोप की बात कही है किन्तु लुप्ता के श्रौती आर्थी भेदों का लक्षण में उल्लेख नहीं किया है जब कि विश्वनाथ के लक्षण में स्पष्ट उल्लेख है ।

उपमा में साधारण धर्म के स्वरूप तथा प्रकार का निर्देशन :–

जिन उपमा भेदों में साधारण धर्म लुप्त नहीं हुआ करता, उनमें उसकी (साधारण धर्म की) ये कतिपय अवस्थाऐं हुआ करती हैं –

1- कहीं-कहीं (उपमान और उपमेय दोनों में) साधारण धर्म एक रूप का ही रहता है ।

2- कहीं-कहीं उपमानगत साधारण धर्म से उपमेयगत साधारण धर्म की इस भिन्न - भिन्न रूपता की दो सम्भावनाएँ हुआ करती हैं (क) या तो उसमें बिम्ब प्रति बिम्ब भाव का का संबन्ध होता हो या (ख) केवल शब्दमात्र का भेद होता हो ।

इसी आधार पर चिंतामणि ने अपनी परिभाषा निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत की है :–

चिन्तामणि –

इत साधारण धर्म बुध जन द्‌वै भाँति गनाइ ।

वस्तु और प्रति वस्तुसो, क्रम बिम्बोज बनाइ ।।

1: क0क0त0 - 3/17,18,19

2: सा0द0 - 10/23 का उत्तरार्द्ध तथा 10/24 पूर्वार्द्ध

एक अर्थ द्वै शब्द सो, जहँ कहिए द्वै बार ।
कहि वस्तु प्रति वस्तु यह, भाव सुबुद्धि विचार ।।
एक शब्द सों अर्थ जुग, जहाँ बखान्यौ होइ ।
तहाँ बिम्ब प्रति बिम्ब यह, भाव कहै कवि कोइ ।।[1]

विश्वनाथ –

एक रूपः क्वचित्क्वापिभिन्नः साधारणो गुणः ।
भिन्ने बिम्बानुबिम्बत्वं शब्दमात्रेण वा भिदा ।।[2]

विवेचन :–

विश्वनाथ के 'शब्द मात्रेण वा भिदा' अंश का तात्पर्य यह है कि शब्द मात्र से साधारण धर्म की भिन्नता प्रतीत होती है । अर्थ में कुछ भिन्नता नहीं होती । अतः जहाँ एक ही तत्व को दो शब्दों से दो बार कहते हैं वहाँ वस्तु प्रति वस्तु भाव हुआ करता है । डा० सत्यव्रत सिंह के अनुसार "साहित्यदर्पणकार का यह साधारण धर्म स्वरूप विवेचन अलंकार सर्वस्व की इन पंक्तियों पर अवलम्बित है :–

"तत्रापि साधारण धर्मस्य क्वाचिदनुगामितया एकरूप्येण निर्देशः क्वाचिद् वस्तुप्रतिवस्तुभावेन पृथङ् निर्देशः"

वहीं वस्तु प्रति वस्तु भाव और बिम्ब प्रति बिम्ब भाव के स्पष्टीकरण के लिए निम्नांकित वाक्य उद्धृत किये गए हैं –

क – "एकस्यैव धर्मस्य संबन्धिभेदेन द्विरुपादानं वस्तुप्रतिवस्तुभावः" । (जब संबन्धी की भिन्नता के आधार पर एक ही धर्म का दो बार ग्रहण होता है तो वहाँ वस्तु-प्रतिवस्तुभाव होता है)

ख – "वस्तुतो भिन्नधर्मयोः परस्परसादृश्यादभिन्नतयाध्यवसितयोर्द्विरुपादानं बिम्ब प्रतिबिम्बभावः ।" (वास्तविक रूप में भिन्न धर्म वाली दो वस्तुओं में जब परस्पर

1: का०क०त० – 3/17, 18, 19

2: सा०द० – 10/23 का उत्तरार्द्ध तथा 10/24 का पूर्वार्द्ध ।

सादृश्य के कारण अभेद का अध्यवसान होता है और उनका दो बार ग्रहण होता है तो वहाँ बिम्ब प्रति बिम्ब भाव होता है)[1] वस्तुप्रतिवस्तु भाव प्रतिवस्तुपमा की भाँति है जहाँ सम्बन्धों का भेद मात्र होता है और प्रतिवस्तूपमा दृष्टान्त अलंकार की भाँति हैं । चिन्तामणि का यह विवेचन विश्वनाथ की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है ।

मालोपमा :–

चिन्तामणि –

जितग कहिव उपमेय जंह, सो उपमान अनेक ।
सो मालोपम जानिये, भिन्न धर्म कै एक ।।[2]

मम्मट –

(इति) अभिन्ने साधारणे धर्मे (इति) भिन्ने च तस्मिन् एकस्यैव बहूपमानोपादाने मालोपमा ।[3]

विवेचन :–

चिन्तामणि के लक्षण में स्पष्टता होते हुए भी 'भिन्न धर्म के एक' के संकेत से अभिन्न धर्मा मालोपमा की ऊहा करनी पड़ती है जबकि मम्मट ने दोनों का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है । यद्यपि साहित्यदर्पण का पूर्वार्द्ध और चिन्तामणि का पूर्वार्द्ध एक-सा ही है[4] तथापि चिन्तामणि पर मम्मट का ही प्रभाव मानना चाहिए क्योंकि विश्वनाथ ने साधारण धर्म के भिन्नत्व का उल्लेख नहीं किया है ।

रसनोपमा :–

चिन्तामणि –

प्रथमहिं जो उपमेय वह, पुनि उपमान जु होइ ।
वस्तु और को क्रम जु यह, रसनोपम है सोइ ।।[5]

1: सा0द0 - शशिकला टीका पृष्ठ 708 पर डा0 सत्यव्रत सिंह द्वारा 'विमर्श' के अन्तर्गत उद्धृत ।
2: क0क0त0 - 3/14
3: का0 प्र0 - सूत्र 133 की वृत्ति 10 उल्लास पृष्ठ 459
4: मालोपमा यदेकस्योपमानं बहुदृश्यते । सा0द0 10/26 का पूर्वार्द्ध ।
5: क0क0त0 - 3/22

मम्मट :–

यथोत्तरमुपमेयस्योपमानत्वे पूर्ववदभिन्नभिन्नधर्मत्वे ×××

इत्यादिका रशनोपमा ।[1]

विवेचनः–

मम्मट ने मालोपमा की भाँति रशनोपमा में साधारण धर्म की भिन्नता और अभिन्नता के आधार पर वस्तु प्रति वस्तु भाव तथा बिम्बप्रतिबिम्ब भाव का स्पष्ट उल्लेख किया है जबकि चिन्तामणि ने 'वस्तु और को क्रम जु' कह कर भिन्न धर्मिता रूप बिम्ब प्रति बिम्ब भाव के अध्याहार का अवसर छोड़ दिया है। फिर भी लक्षण पर्याप्त स्पष्ट है ।

अ न न्व य :–

चिन्तामणि :–

कहिए जो उपमेय अरु, कहै जहाँ उपमान।
ताहि अनन्वय कहत हैं, पंडित सुकवि सुजान ॥[2]

मम्मट :–

उपमानोपमेयत्वे एकस्यैवैक वाक्यगे
अनन्वयः ××××××××××××××
उपमानान्तरसंबन्धाभावोऽनन्वयः ।[3]

विवेचन :–

चिन्तामणि ने मम्मट कृत लक्षण का भावानुवाद किया है 'एक वाक्यगे' को छोड़कर दिया है किन्तु 'जहाँ' शब्द के बल से एक ही वाक्य में ऐसा अध्याहार किया जा सकता है । साथ ही वृत्ति भाग को, जिसमें अन्य उपमान के संबंध के न होने को अनन्वय कहा गया है, उपेक्षित कर दिया गया है । अतः चिन्तामणि का यह लक्षण केवल आंशिक सफलता का अधिकारी है ।

उपमेयोपमा :–

चिन्तामणि :–

जहाँ वर्ण्य उपमान कौ, बदलौ बरन्यो होइ ।
उपमेयो उपमान कहि, बरनै है सब कोइ ॥[4]

मम्मटः–

विपर्यास उपमेयोपमा तयोः । तयोरुपमानोपमेययोः । परिवृत्तिः अर्थाद्वाक्यद्वये, इतरोपमानव्यवच्छेदपरा उपमेयोपमा इति उपमेययोः

विवेचनः–

चिंतामणि ने सूत्र अंश का अनुवाद करके लक्षण पूर्ण कर लिया है किन्तु वृत्ति अंश के 'विपर्यास' के लिए 'परिवृत्ति' शब्द देकर जो अर्थात् वाक्यद्वये

1: का0 प्र0 10/90 सूत्र 133 की वृत्ति 2: क0क0त0-3/25
3: का0प्र0 10/91 का पूर्वार्द्ध तथा उसकी वृत्ति पृष्ठ 480 4: क0क0त0-3/27
5: का0 प्र0 10/136 सूत्र पृष्ठ 460

लिखा गया है उस पर ध्यान नहीं दिया है । स्मरणीय है कि एक वाक्य में उपमान-उपमेय का परिवर्तन असम्भव है । अतः वाक्य भेद होने पर ही अथवा वाक्यार्थ-भेद होने पर ही उपमेयोपमा अलंकार सम्भव है, क्योंकि एक वाक्य में उपमेय के उपमान बन जाने पर प्रतीप अलंकार हो जाता है । दूसरी बात यह है कि अनन्वय में एक वाक्य होता है । इसलिए 'वाक्यद्वये' शब्द अनन्वय का व्यवच्छेदक है । अतः उपमान और उपमेय का ऐसा विपर्यास जिसमें अन्य उपमान का निषेध हो उपमेयोपमालंकार' का स्थल है । कहना न होगा कि इस सूक्ष्म शास्त्रीय चिंतन की ओर चिंतामणि की दृष्टि नहीं गई । फलतः लक्षण शास्त्रीयता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता ।

उत्प्रेक्षा :-

चिन्तामणि -

सदृश धर्म सो अन्यता, सम्भावन यों होइ ।
वर्ण्यमानु कछु वस्तु को उत्प्रेक्षा कहि सोइ ।।[1]

मम्मट -

सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत् ।[2]

विवेचन -

सामान्यतः उत्प्रेक्षा अलंकार का चिंतामणि कृत लक्षण मम्मट एवं तदुत्तरवर्ती विद्यानाथ एवं विश्वनाथ आदि के अनुकूल है, किन्तु 'सदृश धर्म' की चर्चा से चिंतामणि का लक्षण अधिक स्पष्ट एवं निश्चित हो गया है । साधारण धर्म को निमित्त मान कर की गई कवि प्रतिभा जन्य सम्भावना से ही उत्प्रेक्षा अलंकार की सिद्धि होती है ।

उत्प्रेक्षा के भेद :-

चिंतामणि ने उत्प्रेक्षा के भेदों का विस्तार से निरूपण किया है । यद्यपि वे संस्कृत आचार्यों की इस भेद निरूपण पद्धति के प्रति उतने आग्रह शील नहीं हैं जितने विषय के स्पष्टीकरण के प्रति, तथापि उत्प्रेक्षा के भेदों के प्रति उन्होंने विशेष रुचि प्रदर्शित की है । भेद निरूपण के क्रम में इन्होंने दो बार विद्यानाथ का

1: क0क0त0 - 3/29

2: का0प्र0 सूत्र 136 10 उल्लास पृष्ठ 460

उल्लेख किया है और एक बार कुवलयानन्द का, किन्तु जहाँ विद्यानाथ ने 104 भेदों की चर्चा की है तथा विश्वनाथ ने 176 भेद माने हैं वहाँ चिंतामणि ने विद्यानाथ के प्रमुख 32 भेद और कुवलयानन्द के मुख्य चार भेद स्वीकार किये हैं । उद्धरणों के उल्लेख से अनावश्यक ग्रन्थ का कलेवर न बढ़ाकर भेदों के निरूपण निम्नलिखित हैं –

सर्व प्रथम उत्प्रेक्षा के दो भेद हैं - 1: वाच्योत्प्रेक्षा 2: प्रतीयमानोत्प्रेक्षा । जाति, क्रिया, गुण और द्रव्य भेद से दोनों चार-चार प्रकार की होती हैं । पुनः भाव और अभाव रूप से दोनों के 8-8 भेद हो जाते हैं । तदनन्तर गुण निमित्त और क्रिया निमित्त के आधार पर दोनों के 16-16 भेद होते हैं । यहाँ विद्यानाथ के निम्नलिखित निरूपण का चिन्तामणि ने अनुसरण किया है ।

भेदाः-वाच्या, प्रतीयमाना च । जातिक्रियागुणद्रव्याणाम चतुर्णामध्यवसाय विष-यत्वेन सा द्विविधा । प्रत्येकं चतुर्विधा । तेषां भावाभावरूपतया द्वैविध्ये अध्यवसायस्य गुण-निमित्तत्वेन क्रियानिमित्तत्वेनच द्वैविध्यं प्रत्येकं षोडशप्रकाराः ।[1]

<u>स्मरण अलंकार</u> :–

<u>चिन्तामणि</u> –

सदृशवस्तु अनभौ सदृश, वस्त्वन्तर को ज्ञान ।
समरन बोलत विबुधजन, समुझौ सुकवि सुजान ।।[2]

<u>रूय्यकः</u>-

सदृशानुभवाद्-वस्त्वन्तरस्मृतिः स्मरणम्[3]

<u>विवेचनः</u>-

प्रस्तुत लक्षण रूय्यक के लक्षण का अनुवाद है । विश्वनाथ तथा विद्यानाथ ने भी रूय्यक ही से प्रभाव ग्रहण किया है किन्तु 'अन्तर' शब्द के न होने से भाव

1: प्र0 रु0 भू0 - पृ0-
2: क0 क0 त0 3/75
3: क0 क0 त0 अलंकार सर्वस्व-32

पूरा व्यक्त नहीं हुआ है । चिंतामणि ने अन्तर शब्द का प्रयोग करके विषय को अधिक स्पष्ट किया है । चिंतामणि के ज्ञान शब्द का प्रयोग भी विचारणीय है । सम्भवतः स्मृति संचारिभाव के लक्षण में विश्वनाथ का यह कथन —'स्मृतिः पूर्वानुभूतार्थ विषयज्ञान-मुच्यते' ही प्रेरक रहा होगा जिसमें स्मृति को ज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया गया है । अतः चिंतामणि का लक्षण अपेक्षाकृत स्पष्ट प्रतीत होता है ।

रूपकः—

चिंतामणि —

(क) जहँ विषयी अरु विषय को, बरन्यों होर अभेद ।
अलंकार रूपक तहाँ, समझौ सुजन अखेद ।।[1]

मम्मट :—

तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः ।
अतिसाम्यादनपहृतभेदयोरभेदः ।[2]

(ख) चिंतामणि :—

जो अतिरोहित विषय को, उपकारक जो होइ ।
विषयी सो रूपक बरन, यों बरनत कवि कोइ ।।[3]

विद्यानाथः—

आरोपविषयस्य स्यादतिरोहितरूपिणः ।
उपरंजकमारोप्यमाणं तद्रूपकमतम् ।।[3]

विवेचनः—

चिंतामणि ने रूपक के दो लक्षण दिये हैं । पहले लक्षण में (विषयी) उपमान तथा विषय दोनों के अभेद का चित्रण है । यह मम्मट के कारिकांश का अविकल अनुवाद है किन्तु वृत्ति अंश को छोड़ दिया गया है क्योंकि वृत्ति अंश के अनुसार अत्यन्त सादृश्य के कारण प्रसिद्ध (अनपहृनुत) भेद वाले उपमान और उपमेय का अभेद वर्णन रूपक अलंकार है । इसी बात को विश्वनाथ ने कहा है कि निरपह्नव (बिना सत्य के गोपन के) विषय में विषयी का रूपित आरोप रूपालंकार है ।[4] किन्तु चिंतामणि का लक्षण अनपहृनुत के प्रयोग के ही अभाव में एकांगी हो गया है । दूसरा लक्षण विद्यानाथ का

1: का0प्र0 10/93 का पूर्वार्द्ध तथा उसकी वृत्ति सूत्र 138

है । उनके अनुसार अतिरोहित (प्रकट अथवा अप्रस्तुत) विषय का जो विषयी उप-रंजक अथवा उपकारक होता है वह रूपक है । इस लक्षण में भी आरोप्यमाण अंश का लक्षण में उल्लेख नहीं है । इतना होते हुए भी दोनों लक्षण एक दूसरे के पूरक हैं और सम्मिलित रूप से रूपक अलंकार की सीमा को स्पष्ट करते हैं । यह भी स्मरणीय है कि विद्यानाथ के लक्षण का संकेत मम्मट की वृत्तियों में विद्यमान है ।[5]

रूपक के भेद :–

चिन्तामणि ने रूपक का भेद निरूपण निम्नलिखित रूप से किया है –

चिन्तामणि –

पुनि इत सावयव अरु निरवयव वस्तु प्रकार ।
द्वै विधि सावयव पुनि त्रिविधि बरनत विमल विचार ।
सरव वस्तु विषयक प्रथम बरनत सुकवि विचारि ।
एक देस बिवरत अपर परंपरित निरधारि ।।
निरवयवो पुनि द्विविधि गन केवल मालारूप
इनके देत उदाहरन सुनियै सुजन अनूप
जहाँ एक आरोप में आरोपान्तर होइ ।
परम्परित रूपक तहाँ ।।
श्लिष्ट विशेषन होइ कहु औ अश्लिष्ट निहारि ।
मालारूप परम्परित, रूपक सुभग विचारि ।[6]

2: क0क0त0 3/77

3: प्र0रु0भू0- विद्यानाथ, पृष्ठ 268

4: सा0द0 10/28 का पूर्वार्द्ध

5: द्रष्टव्य - का0प्र0 10/93 की वृत्ति

6: क0क0त0 3/79-81 और 85, 86

मम्मट –

निम्तारोपणोपायः स्यादारोपः परस्यगः ।

तत् परम्परितं श्लिष्टे वाचके भेदभाजि वा ।।[1]

विवेचन :–

चिन्तामणि ने नियत अर्थ के आरोप का उल्लेख नहीं किया है । शेष सब मम्मट से ही प्रभावित है । परम्परित रूपक की परिभाषा देते समय समस्त वस्तु विषय एवं एक देश विवर्ती की परिभाषा नहीं दी है जबकि मम्मट एवं विश्वनाथ ने इनकी परिभाषाएँ दी हैं । हाँ उन्होंने परम्परित रूपक की परिभाषा मम्मट के अनुसार दी है ।

परिणाम –

चिन्तामणि –

लखि विषयी विषयात्मके, करत प्रकृति उपजोग ।

रूपक ते परनाम जो, भिन्न कहत कविलोग ।।[2]

विद्यानाथ :–

आरोप्यमाणमारोपविषयात्मतयास्थितम् ।

प्रकृतस्योपयोगित्वे परिणामः उदाहृतः ।।[3]

विवेचन:–

परिणाम अलंकार को परिणाम इसलिए कहते हैं कि उसमें जो आरोप्यमाण (उपमान) होता है वह आरोपविषय (उपमेय) के रूप में परिणित हो जाता है । साथ ही उसका प्रकृतार्थोपयोगी होना आवश्यक है । चिन्तामणि का लक्षण बिल्कुल अस्पष्ट

1: का0 प्र0 10/95 सूत्र 144

2: क0 क0 त0-3/93

3: प्र0 रु0 भू0, विद्यानाथ पृष्ठ- 273

है । यद्यपि उन्होंने रूपक और परिणाम अलंकार के भेदक तत्त्व को स्पष्ट करने का प्रयास किया है किन्तु 'लखिविषयी विषयात्मकै' इस कथन में शिथिलता के कारण परिणाम का लक्षण असमर्थ रह गया है । इसके भेदों की चर्चा भी चिन्तामणि ने नहीं की है ।

सन्देह :-

चिन्तामणि :-

जहां विषय विषई सुगम कवि सम्मत मत ताहि ।
संदेहास्पद होत है कहि संदेह तकाहि ।।
प्रथम कहत निश्चय गरभ, निश्चयांत पुनि जान ।
अलंकार संदेह यह, सजन द्विविधा मन आन ।।[1]

विद्यानाथ :-

विषयो विषयी यत्र सादृश्यात् कविसंमतात्
संदेह गोचरौ स्यातां संदेहालंकृतिश्चसा
सात्रिविधा- शुद्धा निश्चयगर्भा, निश्चयान्ता चेति[2]

विवेचनः-

स्पष्ट है कि चिन्तामणि ने विद्यानाथ के कारिका एवं वृत्तिभाग का उचित अनुवाद करके संदेह का लक्षण प्रस्तुत किया है । जहाँ तक भेदों का प्रश्न है वहाँ विद्यानाथ ने तीन भेद किये हैं । शुद्धा का उल्लेख नहीं किया है सम्भव है ~~उन्हें~~ उन्हें दो ही भेद मान्य हों अथवा यह भी हो सकता है कि संदेह के लक्षण को शुद्धा संदेह मान लिया हो और शेष दो भेदों का उल्लेख कर दिया है, जो भी हो शुद्धा का उल्लेख न होने से अधूरापन शास्त्रीयता में बाधक हो गया है ।

भ्रान्ति मानः-

चिन्तामणि :- जहाँ होत है प्रकृतिमें, अप्रकृतिहिं को ज्ञान ।

1: क0क0त0 3/95 तथा 3/96

2: प्र0रू0भू0, विद्यानाथ पृष्ठ 274

भ्रान्तिमान ताको कहत पंडित सुकवि सुजान ।।[1]

मम्मट :—

भ्रान्तिमानन्यसंवित् तत्तुल्यदर्शने ।

तदिति अन्यत् अप्रकारणिकं निर्दिश्यते । तेन समानं ब अर्थादिह प्राकरणिकम् आक्षिप्यते । तस्य तथाविधस्य दृष्टौ सत्यां यत् अप्राकरणिकतया संवेदनं स भ्रान्तिमान् ।[2]

विवेचन :—

भ्रान्तिमान अलंकार में अप्राकरणिक वस्तु के समान प्राकरणिक अर्थ का भान होता है । चिन्तामणि ने मम्मट के उपर्युक्त लक्षण एवं वृत्ति का अनुवाद करते हुए प्राकरणिक एवं अप्राकरणिक के स्थान पर प्रकृति तथा अप्रकृति का प्रयोग किया है जो अलंकार के मौलिक रूप के प्रतिकूल नहीं है । साथ ही लक्षण की सहजता सुरक्षित है । अतः यह लक्षण प्रशंसनीय है ।

अपह्नुति :—

चिंतामणि :—

विषई को आरोप कै, करि जो विषै निषेध ।

ताहि अपह्नुति कहत हैं धर्महि समुझि सुमेध ।।[3]

विद्यानाथ :—

निषिध्य विषयं साम्याद् अन्यारोपेह्यपह्नुतिः[4]

विवेचन :—

चिंतामणि ने विद्यानाथ का भावानुवाद किया है अतएव 'जहाँ 'अन्यारोप' के स्थान पर 'विषई' के आरोप' के द्वारा विषय को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है वहीं 'साम्यात्' को ठीक ढंग से प्रस्तुत नहीं किया गया है । 'धर्महि समुझि' के

1: क०क०त० 3/99

2: का०प्र० - 10/132 का उत्तरार्द्ध तथा उसकी वृत्ति सूत्र 199

3: क०क०त०- 3/101

4: प्र०रु०भू०, विद्यानाथ 276

द्वारा उपानधागिता का दूरारूढ़ आरोप किया जा सकता है । अतः अनुवाद अविकल न होते हुए भी अस्पष्ट नहीं है ।

<u>उल्लेख</u> :—

<u>चिन्तामणि</u> :—

कहुँ ग्राहक के भेद कहुँ विषय भेद सो होइ ।
एकहि को उल्लेख बहु, कहि उल्लेख जुसोइ ।।[1]

<u>विश्वनाथ</u> :—

क्वचिद्भेदात् ग्रहीतृणां विषयाणां तथा क्वचित्
एकस्यानेकधोल्लेखो यः स उल्लेख उच्यते[2]

<u>विवेचन</u> :—

चिंतामणि ने विश्वनाथ के लक्षण का अत्यन्त सफल एवं स्पष्ट शब्दानुवाद किया है तथा उन्हीं के अनुसार ग्राहक भेद एवं विषय भेद से दो प्रकार के उल्लेख की चर्चा की है ।

<u>विशिष्ट टिप्पणी</u> :—

चिन्तामणि ने लिखा है कि परिणाम और उल्लेख यह दोनों अलंकार रूपक में ही समाहित होते हैं किन्तु इन दोनों का तथा इनके भेदक तत्त्वों का उल्लेख मम्मट[3] ने नहीं किया है । वस्तुस्थिति यह है कि रूपक में आरोप्यमाण उपमान (चन्द्रादि) आरोप विषयक उपमेय मुख आदि के उपरंजक प्रतीत हुआ करते हैं किन्तु परिणाम में प्रकृत अर्थ की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए आरोप्यमाण और आरोप विषय में सर्वथा तादात्म्य स्थापित हो जाता है और यह तादात्म्य उसके कार्य में भी प्रयुक्त हुआ करता है ।

1: क0क0त0 3/103

2: सा0द0 10/37

3: परमाना उल्लेख ए दोऊ रूपक माँहि ।
भिन्न अंश कृत रूप तौ मम्मट वरने नाहि ।। क0क0त0- 3/107

जहाँ तक उल्लेख का संबन्ध है वहाँ भी अभेदारोप होने के कारण रूपक का ही भेद होता है किन्तु रूपक में केवल विषय भेद का ही महत्त्व होता है और उल्लेख में ग्राहक के भेद का ही । इसीलिए उल्लेख को मालारूप से भिन्न एक विच्छित्ति उत्पन्न करने वाला माना गया है । मम्मट की यह आलोचना चिन्तामणि की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है ।

अतिशयोक्ति :–

चिन्तामणि :–

प्रौढ़उक्ति जो कविनकी अतिशयोक्ति है सोइ ।
भिन्न अलंकृत भेद ते भिन्न कही जो जोइ ।।[1]

मम्मट :–

निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य परेणयत् ।
प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम् ।।
कार्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्य विपर्ययः
विज्ञेयाऽतिशयोक्तिः × × × × ×।।[2]

विद्यानाथ :–

विषयस्यानुपादानाद्विषय्युपनिबध्यते ।
यत्र सातिशयोक्तिः स्यात् कवि प्रौढोक्तिजीवित[3]

विवेचन :–

अतिशयोक्ति का निरूपण करते हुए चिंतामणि ने मम्मट एवं विद्यानाथ दोनों को समन्वित करने का प्रयास किया है किन्तु न जाने क्यों उन्होंने एक ओर मम्मट के

1: क०क०त० - 3/108

2: का०प्र० - 10/100 तथा 10/101 का पूर्वार्द्ध

3: प्र०रू०भू०, विद्यानाथ पृष्ठ 287

निगरण और अध्यवसाय की उपेक्षा कर दी है तो दूसरी ओर विषय का ग्रहण न करते हुए विषयी के उपनिबन्धन को छोड़ दिया है । साथ ही विद्यानाथ ने प्रसंगतः जिस कविप्रौढ़ोक्ति को अतिशयोक्ति का जीवनीयतत्त्व बतलाया है उसे चिन्तामणि ने भ्रान्तिवश अतिशयोक्ति का पर्यायवाची शब्द मान लिया है ।[1] मम्मट के चार भेदों की चर्चा उन्होंने प्रायः ठीक ढंग से प्रस्तुत की है और उसका उल्लेख भी कर दिया है ।

समासोक्ति :-

चिन्तामणि :-

> विशेष विशेषन बल उकुत जो कछु और की होइ ।
> यहि समासोक्ति कहत पंडित मम्मट कोइ ।।
> प्रस्तुति वक्र विशेषनन कहै जो फल होइ ।
> अप्रस्तुति गर्भिता समासोक्ति कहै सो कोइ ।।[2]

मम्मट :-

> परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः[3]

विद्यानाथ :-

> विशेषणांतौल्येन यत्र प्रस्तुतवर्तिनाम्
> अप्रस्तुतस्यगम्यत्वं सा समासोक्तिरिष्यते[4]

विवेचन :-

चिंतामणि ने समासोक्ति के दो लक्षण दिये हैं । इनमें प्रथम लक्षण स्पष्टतः मम्मट कृत लक्षण का अनुवाद है जिसे उन्होंने उनका नाम देकर स्पष्ट कर दिया है दूसरा लक्षण विद्यानाथ कृत लक्षण का अनुवाद है । इन्होंने साहित्य दर्पण का विश्वनाथ से प्रभाव ग्रहण किया है । विश्वनाथ ने प्रस्तुत और अप्रस्तुत में समान रूप से अन्वित होने

1: प्र0 रू0 भू0 विद्यानाथ पृष्ठ 287
2: क0 क0 त0 3/116, 118
3: का0 प्र0 - 10/97 का उत्तरार्द्ध सूत्र 147
4: प्र0 रू0 भू0, विद्यानाथ पृष्ठ 289

वाले कार्य, लिंग और विशेषण से प्रस्तुत में अप्रस्तुत के व्यवहार के आरोप को समासोक्ति बतलाया है ।[1] उसी क्रम में विशेषण साम्य का विवेचन करते हुए उनके तीन भेद प्रस्तुत किये हैं –

विशेषणसाम्यं तु श्लिष्टतया, साधारण्येन, औपम्यगर्भत्वेन च त्रिधा ।[2] इसी आधार पर चिंतामणि ने –

> श्लिष्ट विशेषन होत कहुँ, कहुँ साधारन आनि ।
> उपमा गर्भित होत कहुँ सज्जनगन मन जानि ।।[3]

का उल्लेख किया है । इसका कारण प्रतीत नहीं होता । एक बात और विचारणीय है कि उपमा और रूपक से समासोक्ति की भिन्नता के विषय में विचार एवं शास्त्रार्थ करते हुए विश्वनाथ ने औपम्य गर्भ विशेषण से समासोक्ति नहीं होती ऐसा निर्णय लिया गया है[4] किन्तु चिन्तामणि ने इस शास्त्रीय विवेचन की उपेक्षा कर दी है । यह एक ऐसा अलंकार है, जहाँ चिंतामणि प्रत्यक्षतः मम्मट, विद्यानाथ एवं विश्वनाथ के ऋणी हैं किन्तु यही बात उनके संगृही आचार्यत्व के लिए प्रशंसा सूचक भी है । उचित तो यह होता कि वे कम से कम विश्वनाथ कृत चार भेदों[5] का अपने ग्रन्थ में समाहार कर लेते।

1: समासोक्तिःसमैर्यत्र कार्य लिंग विशेषणैः
व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः
साo दo 10/56 का उत्तरार्द्ध तथा 10/57 का पूर्वार्द्ध ।

2: साo दo 10/57 के पूर्वार्द्ध की वृत्ति ।

3: कo कo तo 3/120

4: तेनौपम्यगर्भविशेषणोत्थापिततत्त्वं नास्या विषय इति ।
साo दo 10/57 की वृत्ति ।

5: विशेषणसाम्ये श्लिष्टविशेषणोत्थापिता साधारण विशेषणोत्थापिता चेति द्विधा ।
कार्यलिंगयोस्तुल्यत्वे च द्विविधेति चतुःप्रकारा समासोक्तिः ।
साo दo 10/56 की वृत्ति ।

स्वभावोक्ति :—

चिंतामणि :—

जाको रूप स्वभाव अरु, क्रिया जु जैसी होइ ।

ताको तैसोई कथन, स्वभावोक्ति कहि सोइ ।।[1]

अप्पय्य दीक्षित :—

स्वभावोक्तिः स्वभावस्य जात्यादिस्थस्य वर्णनम्[2]

मम्मट :—

स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्[3]

विद्यानाथ :—

स्वभावोक्तिरसौ चारु यथावद्वस्तु वर्णनम्[4]

विवेचन :—

स्वभावोक्ति के लक्षण निरूपण में चिंतामणि की सारग्राहिणी प्रवृत्ति का सुन्दर दृष्टान्त मिलता है । कुवलयानन्द से 'स्वभाव' काव्य प्रकाश से 'क्रिया' और 'रूप' तथा विद्यानाथ से यथावद्वस्तुवर्ण का संकलन करके चिंतामणि ने जो लक्षण प्रस्तुत किया है वह पूर्ण भी है और परिनिष्ठित भी है ।

व्याजोक्ति :—

चिंतामणि :—

प्रगटित वस्तु छिपाइयै, जो बनाइ कछु काज ।

व्याजोकति तासो कहत, पंडित सुकवि समाज ।।[5]

मम्मट :—

व्याजोक्तिश्छद्मनोद्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनम् ।[6]

1: क०क०त० 3/122
2: प्र०रू०भू० विद्यानाथ - पृ० 297
3: का०प्र० 10/111 तथा सूत्र 167
4: प्र०रू०भू० - पृष्ठ 297
5: क०क०त० 3/124
6: का०प्र० - 10/118 सूत्र 182

विवेचन :—

चिंतामणि ने आचार्य मम्मट के लक्षण का भावानुवाद किया है जिससे लक्षण का आभास तो मिलता आता है किन्तु स्पष्टता नहीं है । मम्मट ने किसी 'छद्म' के व्यपदेश को छिपाने जाने की बात कही है अतः 'छद्म' छिपाने में कारण होगा किन्तु चिंतामणि ने कारण के स्थान पर 'काज' शब्द का प्रयोग कर दिया है अतः भ्रान्ति उत्पन्न हो सकती है ।

सहोक्ति :—

चिंतामणि :—

जहाँ अर्थ के शब्द बल है भासक पद एक ।
तहाँ सहोक्ति होति है, यों कवि करत विवेक ।।[1]

मम्मट :—

सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम्[2]

विवेचन :—

यह अलंकार सह शब्द अथवा सह के अर्थ पर आश्रित है । चिंतामणि ने मम्मट के लक्षण का शब्दानुवाद किया है । अनुवाद स्पष्ट एवं सफल है ।

विनोक्ति :—

चिंतामणि :—

जहाँ काहु बिन होत कछु रम्य अरम्य जुवात ।
बुद्ध जन मत सो विनउकति अलंकार कहि जात ।।[3]

मम्मट :—

विनोक्तिः सा विनाऽन्येन यत्रान्यः सन्न नेतरः ।
क्वचिदशोभनः क्वचिच्छोभनः ।[4]

1: क0 क0 त0 3/126
?
2: का0 प्र0 10/112 सूत्र 183
3: क0 क0 त0 3/126
4: का0 प्र0 10/112 ~~का पूर्वार्द्ध तथा उसकी वृत्ति~~ । सूत्र 169

विद्यानाथ :-

विना सम्बन्धिकांचित् यत्रान्यस्य पराजयेत् ।
अरम्यता रम्यता वा सा विनोक्तिरिति स्मृता ।।[1]

विवेचन :-

विनोक्ति के लक्षण में चिंतामणि ने मम्मट एवं विद्यानाथ के सारांश को लेकर अत्यन्त स्पष्ट लक्षण दिया है किन्तु मम्मट के शोभन और अशोभन के बदले विद्यानाथ के रम्य और अरम्य का प्रयोग किया गया है ।

सामान्य :-

चिंतामणि :-

प्रस्तुति मैं जहँ और लौं, गुन के साम्य निहारि
एक रूपता बरनिये सो सामान्य विचारि ।[2]

मम्मट :-

प्रस्तुतस्य यदन्येन गुणसाम्यविवक्षया ।
ऐकात्म्यं बध्यते योगात् तत्सामान्यमिति स्मृतम्[3]

विवेचन :-

मम्मट के लक्षण का चिंतामणि द्वारा सफल और स्पष्ट अनुवाद प्रस्तुत किया गया है ।

तद्गुण :-

चिंतामणि :-

निज गुन तजि उत्कृष्ट गुन, गहै आनिकै कोइ ।
अलंकार तद्गुण कहौ कवि जन समुझत जोइ ।।[4]

विद्यानाथ :-

तद्गुणः स्वगुण त्यागादन्योत्कृष्ट गुणाहृतिः ।[5]

1: प्र० रु० भू० विद्यानाथ - 289-290
2: क० क० त० 3/131
3: का० प्र० 10/134 तथा सूत्र 201
4: क० क० त० 3/133
5: प्र० रु० भू० विद्यानाथ चिंतामणि

विवेचन:–

तद्गुण के लिए चिंतामणि ने विद्यानाथ का आधार लिया है । विद्यानाथ ने अन्य के उत्कृष्ट गुण को ग्रहण करने के लिए अपने गुण का त्याग करने को तद्गुण कहते हैं । ध्यातव्य है कि मम्मट[1] ने उत्कृष्ट के बदले अति उज्ज्वलता का उल्लेख किया है और अप्पय्य[2] दीक्षित ने बिना किसी कारण के त्याग और दूसरे गुण के ग्रहण को तद्गुण माना है । विश्वनाथ का लक्षण भी विद्यानाथ के समान है –

तद्गुणः स्वगुणत्यागादत्युत्कृष्टगुणग्रहः[3]

अतद्गुणः–

चिंतामणि:–

और वस्तु गुन को ग्रहन जहँ न करै अनुलात ।
ताहि अतद्गुण कहत हैं जो कवि मति अविकात ।।[4]

मम्मट:–

तद्रूपाननुहारश्चेदस्य तत् स्यादतद्गुणः[5]

विवेचन:–

चिन्तामणि ने मम्मट का भावानुवाद किया है । किसी भी कारण से दूसरे के गुण ग्रहण न किये जाने का उल्लेख करके चिंतामणि ने मम्मट की वृत्ति द्वारा सांकेतिक अतद्गुण की दोनों स्थितियों के उल्लेख का सफल प्रयास किया है तथापि लक्षण का झुकाव वृत्ति के निम्नलिखित अंश की ओर है :–

तेन यत् अप्रकृतस्य रूपं प्रकृतेन कुतोऽपि निमित्तात् नानुविधीयते सोऽतद्गुण इत्यापि प्रतिपत्तव्यम् ।[6]

1: का0 प्र0 10/37 तथा सूत्र 203

2: कुवलयानन्द - पृष्ठ 235

3: सा0 द0 10/90

4: क0 क0 त0 3/135

5: का0 प्र0 10/138 तथा सूत्र 204

6: वही 10/138 की वृत्ति ।

विरोध: —

चिंतामणि : —

जो विरोध अविरुद्ध मैं जहँ विरोध अभिधान ।
सुनौ जाति गुन क्रिया अरु द्रव्य माह संधान ।।
जाति जात्यादिकन सौं गुन गुनादि सो मानि ।
क्रिया क्रिया अरु द्रव्य सौं, द्रव्य द्रव्य सो मानि ।।
यौं विरोध दस भाँति सो मम्मट भए बखानि ।
तिनके देत उदाहरन सुकवि लेहु मन मानि ।।[1]

मम्मट: —

विरोधः सोऽविरोधोऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः ।
वस्तुवृत्तिनाविरोधोऽपि विरुद्धयोरिव यदभिधानं स विरोधः
जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्विरुद्धा स्याद् गुणैस्त्रिभिः [2]

विवेचन: —

चिंतामणि ने मम्मट के लक्षण का शुद्ध भावानुवाद किया है और मम्मट का नामोल्लेख करके प्रामाणिकता की मुहर भी लगाई है । मम्मट की भाँति दस भेदों के उदाहरण भी दिए गए हैं ।

विशेष: —

चिन्तामणि : —

विना प्रसिद्ध आधार जो करौ अधेय बखानि ।
एकहि की इकबार जो थित अनेक थल आनि ।।[3]

मम्मट: —

विना प्रसिद्धमाधारमाधेयस्य व्यवस्थितः ।
एकात्मा युगपद् वृत्तिरेकस्यानेकगोचरा ।।

1: क0क0त0 3/137, 3/138, 3/139

2: का0प्र0 10/110 तथा उसकी वृत्ति सूत्र 165,166

3: क0क0त0 3/149

अन्यत् प्रकुर्वतः कार्यमशक्यस्यान्यवस्तुनः ।

तथैव करणं चेति विशेषस्त्रिविधः स्मृतः ।।[1]

(प्रसिद्धाधारपरिहारेण यत् आधेयस्य विशिष्टा स्थितिरभिधीयते स प्रथमो विशेषः)

एकमपि वस्तु यत् एकेनैव स्वभावेन युगपदनेकत्र वर्तते स द्वितीयः

यदपि किंचिदारभमाणस्तेनैव यत्नेनाशक्यमपि कार्यान्तरमारभते सोऽपरो विशेषः[2]

अधिकः—

चिंतामणिः—

जो आधार आधेय की अनुरूपता न होइ ।

सोऊ जो आधिक्य, अधिक अलंकृत सोइ ।।[3]

विश्वनाथ :—

आधाराधेययोरानुरूप्याभावोऽधिकोऽपि॰[4]

विवेचनः—

चिंतामणि ने विश्वनाथ के लक्षण का शब्दानुवाद प्रस्तुत किया है किन्तु छन्दों के अनुरोध से इन दोनों शब्दों में जो हेर फेर किया है उसे अनुवाद की सरसता को ठेस पहुँची है ।

विभावनाः—

चिंतामणिः—

कारज उतपति की जहां कारन को प्रतिषेध ।

सो सब कहत विभावना पंडित सुकवि सुमेध ।।[5]

1: का0 प्र0 10/135, 10/136 तथा सूत्र 202

2: का0 प्र0 10/135, 10/136 की वृत्ति, सूत्र 202

3: क0 क0 त0 3/155

4: प्र0 रू0 भू0 विश्वनाथ- 304

5: क0 क0 त0 - 3/159

मम्मट :--

क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना ।।[1]

विवेचन :--

आचार्य मम्मट के लक्षण क्रिया के (कारण) प्रतिषेध के होने पर भी फलोत्पत्ति (कार्योत्पत्ति) को विभावना माना है । इसी आधार पर चिंतामणि ने भी सरल और स्पष्ट लक्षण निरूपित किया है । यह एक ऐसा अलंकार है जहाँ अनुवाद के विपरीत हो जाने पर भी विभावना के स्वरूप में बाधा नहीं पड़ती ।

विशेषोक्ति :--

चिंतामणि :--

जो अखंड कारन मिलै कारज कछू न होइ ।
तासो विशेषोक्ति कहत पंडित सब कवि कोइ ।।[2]

मम्मट :--

विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः ।
मिलितेष्वपि कारणेषु कार्यस्याकथनं विशेषोक्ति ।।
अनुक्तनिमित्ता उक्तनिमित्ता अचिन्त्यनिमित्ता च ।[3]

विवेचन :--

चिंतामणि ने मम्मट कृत लक्षण का तथा वृत्ति का सम्मिलित रूप से अनुवाद करके अपना लक्षण प्रस्तुत किया है किन्तु मम्मट वर्णित तीन भेदों का उल्लेख भी नहीं किया है । लक्षण शुद्ध तथा स्पष्ट है ।

असंगति :--

चिंतामणि :--

हेतु और थल में कहूँ काज और थल होइ ।
अलंकार ज्ञाता कहत होति असंगति सोइ ।।[4]

1: का0 प्र0- 10/107 तथा सूत्र 161

2: क0 क0 त0- 3/161

3: का0 प्र0 - 10/108 का पूर्वार्द्ध तथा उसकी वृत्ति सूत्र 162

4: क0 क0 त0 - 3/163

विश्वनाथ :–

कार्यकारणयोर्भिन्नदेशतायामसंगतिः ।[1]

विवेचन:–

चिन्तामणि ने असंगति का सामान्य लक्षण दिया है और साहित्यदर्पण से प्रभावित हैं । आचार्य मम्मट ने कार्यकारणभूत दो धर्मों की 'भिन्नदेशतया' और 'युगपद प्रतीति' को असंगति का क्षेत्र माना है । ऐसी दशा में डा० ओम प्रकाश का यह कथन है कि "आचार्य चिंतामणि तथा कुलपति के लक्षण क्रमशः ... तथा स्वतंत्र मतावलम्बी हैं"[2] उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि मम्मट की छाया ढूढ़ने के बदले विश्वनाथ का प्रत्यक्ष अनुवाद क्यों न मान लिया जाय ।

विचित्र :–

चिन्तामणि :–

कहौ विचित्र सु विरुद्धफल पावन कौ उद्योग ।
अलंकार सु नवीन यह वरनत पंडित लोग ।।[3]

विश्वनाथ :–

विचित्रो तद्विरुद्धस्य कृतिरिष्टफलाय चेत् ।[4]

विवेचन:–

मम्मट ने विचित्र अलंकार का लक्षण नहीं दिया है किन्तु उनके बाद के आचार्यों ने जैसे रुय्यक[5] अप्पय्य दीक्षित[6] तथा विश्वनाथ आदि ने इसका लक्षण दिया है और प्रायः सब के लक्षण एक से जैसे हैं किन्तु चिंतामणि का लक्षण विश्वनाथ की शब्दावलि के अत्यन्त निकट है । डा० ओम प्रकाश ने लिखा है कि "रीतिकाल के चिंतामणि, कुलपति, रत्नेश, अमीरदास तथा निहाल कवि ने इसका लक्षण नहीं दिया । इसका कारण उनका मम्मट कृत लक्षणों का अनुयायी होना है"[7] एक अत्यन्त भ्रामक

1: सा०द० 10/69
2: रीतिकालीन अलंकारों का शास्त्रीय विवेचन - डा० ओम प्रकाश पृष्ठ 379
3: क०क०त० 3/165
4: सा०द० 10/71
5: अलंकार सर्वस्व-रुय्यक पृष्ठ 164
6: अप्पय्य दीक्षित-कुवलयानन्द पृ.164
7: रीतिकालीन अलंकारों का शास्त्रीय विवेचन - डा० ओम प्रकाश पृ० 385

सूचना है क्योंकि चिन्तामणि ने विचित्र अलंकार का लक्षण नहीं दिया अपितु 'अलंकार कु नवीन' यह कहकर स्पष्ट कर दिया है कि यह अलंकार मम्मट के परवर्ती आचार्यों में प्राप्य है पता नहीं डा0 ओम प्रकाश ने इसे क्यों नहीं देखा ? एक बात और उल्लेखनीय है कि चिन्तामणि ने मम्मट के अतिरिक्त अन्य आचार्यों से भी यथा अवसर लाभ उठाया है फिर उन्हें मम्मट के लक्षण का अनुगामी बतलाना सत्य का अपलाप है ।

<u>अन्योन्य:</u>—

जहाँ बिमल द्वै बात कछु, करत परस्पर काज ।
अलंकार अन्योन्य यह, बरनत सब कबि राज ।।[1]

<u>मम्मट:</u>—

क्रियया तु परस्परम् ।
वस्तुनोर्जननेऽन्योन्यम् ।[2]

<u>विवेचन:</u>—

चिंतामणि ने मम्मट के लक्षण का भावानुवाद किया है इसीलिए एक 'क्रिया' तथा 'जनन' का उल्लेख नहीं है । वृत्ति अंश की भी उपेक्षा कर दी गई है तथापि लक्षण स्पष्ट एवं शुद्ध है ।

<u>विषम:</u>—

<u>चिन्तामणि:</u>—

जो संयोग द्वै भाँति को जथा जोग नहिं होइ ।
विषम अलंकृत कहत यह, कवि पंडित सब कोइ ।।[3]
कर्त्ता कौ न क्रिया फलै, पुनि अनर्थ कछु होइ ।
जो कारज कछु क्रिया तें कीज और विधि सोइ ।।
यों विरुद्धता देखि कै, विषम कहत कवि नाह ।
अलंकार करता न के देखौ ग्रन्थन माँह ।।[4]

1: क0क0त0 3/167

2: का0प्र0 10/120 का उत्तरार्द्ध तथा 121 का पूर्वार्द्ध

3: क0क0त0 3/169, 3/170, 3/171

4: का0प्र0 10/126, 10/127 तथा सूत्र 193

मम्मट :-

क्वचिद्यदतिवैधर्म्यान्न श्लेषो घटनामियात्
कर्तुः क्रियाफलावाप्तिर्नैवानर्थश्च यद् भवेत्
गुणक्रियाभ्यां कार्यस्य कारणस्य गुणक्रिये ।
क्रमेण च विरुद्धे यत् स एव विषमो मतः ।।[1]

विवेचन :-

आचार्य मम्मट के लक्षण का शब्दानुवाद प्रस्तुत करने में चिन्तामणि ने भरपूर प्रयास किया है और उन्हें बहुलांश में सफलता भी प्राप्त हुई है किन्तु प्रथम पंक्ति का अनुवाद ठीक नहीं हो सका है जब कि शेष तीनों पंक्तियों का अनुवाद शुद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है । इतना होते हुए भी अलंकार के मौलिक रूप में अनुवाद में कोई बाधा नहीं उत्पन्न हुई है । अतः चिन्तामणि का प्रयत्न स्तुत्य है ।

सम :-

चिन्तामणि :-

होत समालंकार सों जो कछु जोग संजोग ।
द्विविध सुवरन ते सत असत् जोग कहत कवि लोग ।।[2]

मम्मट :-

समं योग्यतया योगो यदि सम्भावितः क्वचित् । इदमनयोः श्लाघ्यमिति योग्यतया संबन्धस्य नियतविषयाध्यवसानं चेत्तदा समम् । तत्सद्योगेऽसद्योगे च ।[3]

विवेचन :-

चिंतामणि ने मम्मट कृत लक्षण का अनुवाद दोहे के पूर्वार्द्ध में और वृत्तिभाग का दोहे के उत्तरार्द्ध में करने का प्रयत्न किया है किन्तु कारिकांश के अनुवाद में उन्हें सफलता नहीं मिली है और अनुवाद अस्पष्ट हो गया है । यह भी उल्लेख्य है कि यद्यपि अप्पय्य दीक्षित ने सम अलंकार के तीन भेद माने हैं और चिन्तामणि कुवलयानन्द से अपरिचित नहीं हैं तथापि उन्होंने मम्मट के अनुरूप सद् असद् रूप के दो भेद ही स्वीकार किए हैं ।

1: का०प्र०त० 3/176
2: का० पु०
3: का० पु० 10/125 का उत्तरार्द्ध तथा उसकी वृत्ति, सूत्र 192
4: क०क०त० 3/176

तुल्ययोगिता:–

चिंतामणि :-

कै प्रकृत तिन छोडकै, अप्रकृतन (अप्रस्तुत?) की जोड ।

तुल्य धर्म इक बारही तुल्य जोगता जोइ[1] ।। ॐ

मम्मट:–

नियतानाम् सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता नियतानाम् प्राकरणिकानामेव अप्राकरणिकानामेव वा[2]

विवेचन:–

चिंतामणि ने आचार्य मम्मट के लक्षण और वृत्ति के मिश्रण से अपने लक्षण का निर्माण किया है और मम्मटोक्त प्राकरणिक और अप्राकरणिक के स्थान पर 'प्रकृत' अथवा अप्रकृत शब्द का प्रयोग किया है । लक्षण में शिथिलता नहीं है ।

दीपक :–

चिन्तामणि:–

प्रकृति और अप्रकृति की वृत्ति एक ही बार ।

कारक की बहुक्रियन मैं, दीपक उक्ति उदार ।।

प्रस्तुति अप्रस्तुतिन को सदृश धर्म संजोग ।

गम्य होइ औपम्य (औपम्य?) जिन तित दीपक कहा लोग ।।[3]

मम्मट:–

सकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम् ।

सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम् ।।[4]

विद्यानाथ:–

प्रस्तुतानां अप्रस्तुतानां तु सामान्ये तुल्यधर्मतः[5]

1: क0क0त0 - 3/179

2: का0प्र0 10/104 का उत्तरार्द्ध तथा उसकी वृत्ति सूत्र 158

3: क0क0त0 3/181, 182

4: का0प्र0 10/103 सूत्र 155

5: प्र0रु0भू0 विद्यानाथ पृष्ठ 209

विवेचनः—

चिन्तामणि ने दीपक अलंकार के दो लक्षण दिये हैं । इनमें से पहला मम्मट कृत लक्षण का अक्षरशः अनुवाद किया है और विश्वनाथ के लक्षण का भी पूर्ण सरल एवं शुद्ध अनुवाद किया है ।

मालादीपकः—

चिन्तामणिः—

पूरब पूरब करै जो उत्तर को उपकार ।
मालादीपक कहत यह समझौ बुद्धि उदार ।।[1]

मम्मटः—

मालादीपमाद्यं चेद्यथोत्तरगुणावहम् । पूर्वेण पूर्वेण वस्तुना उत्तरमुत्तरं
चेदुपक्रियते तन्मालादीपकं ।[2]

विवेचनः—

चिंतामणि ने मम्मट कृत लक्षण के कारिका की वृत्ति का शब्दानुवाद किया है । अनुवाद सरल एवं स्पष्ट है कोई मौलिक उद्भावना नहीं है ।

प्रतिवस्तूपमाः—

चिन्तामणि :—

सादृश धर्म इतेक जो शब्द भेद सों होय ।
कवित एक द्वै बात मैं, प्रतिवस्तूपम सोइ ।।[3]

मम्मटः—

प्रतिवस्तूपमा तु सा ।
सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थितिः ।[4]

विवेचनः—

चिन्तामणि ने मम्मट कृत लक्षण का भावानुवाद किया है । भावानुवाद सरल एवं स्पष्ट है । उल्लेखनीय है कि चिंतामणि ने मम्मट के ही समान मालारूप प्रतिवस्तूपमा

1: क0 क0 त0: 3/186
2: का0 प्र0-10/104 का पूर्वार्द्ध तथा उसकी वृत्ति सूत्र 156
3: क0 क0 त0 3/189
4: का0 प्र0 10/101 का उत्तरार्द्ध तथा 10/102 का पूर्वार्द्ध सूत्र 153

के लिए भी दो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं किन्तु लक्षण का उल्लेख नहीं है । मम्मट ने भी अलग प्रतिवस्तूपमा की चर्चा नहीं की है ।

दृष्टान्त :—

चिन्तामणि:—

जहँ बिम्ब प्रति बिम्ब को भाव सकल में होइ ।
कहत सुकवि दृष्टान्त है, सुनहु ताहि सब कोइ ।।
जहाँ तुलित द्वै वस्तु को शब्द भेद अभिधान ।
सो बिम्ब प्रति बिम्बत्व, भाव कहत सुजान ।।
अलंकार दृष्टान्त में, सदृश धर्म को होइ ।
विशेषनहु को होत पुनि-पुनि विशेष्य में सोइ ।।[1]

मम्मट:—

दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्[2]

विवेचन :—

मम्मट के लक्षण को स्पष्ट करने के लिए प्रतिवस्तूपमा के लक्षण से 'वाक्ययोर्द्वयोः' की अनुवृत्ति करनी पड़ती है और इस प्रकार 'वाक्यद्वय' अर्थात् उपमान वाक्य और उपमेय वाक्य दोनों में 'एतेषाम्' अर्थात् उपमान, उपमेय वाक्य दोनों में और साधारण धर्म इन तीनों का 'प्रतिबिम्बनम्' अर्थात् बिम्ब प्रति बिम्ब भाव होने पर दृष्टान्त अलंकार होता है । चिन्तामणि ने इसी परिष्कृत लक्षण के आधार पर दृष्टान्त का लक्षण प्रस्तुत किया है । वस्तु प्रति वस्तु भाव में प्रतिवस्तूपमा और प्रतिबिम्ब भाव में दृष्टान्त अलंकार होता है ।

जहाँ एक ही या अभिन्न साधारण धर्म का पुनरुक्ति से बचने के लिए भिन्न शब्दों में कथन होता है वहाँ बिम्ब प्रति बिम्ब भाव होता है जहाँ विभिन्न दो धर्मों के सादृश्य के कारण औपम्य प्रयोजक रूप में उपमान वाक्य तथा उपमेय वाक्य में पृथक

1: क० क० त० 3/193, 3/194, 3/195

2: का० प्र० 10/102 का उत्तरार्द्ध सूत्र 154

उपमा होता है जहाँ बिम्ब प्रति बिम्ब भाव होता है ।

"एकक्रियाविषय शब्दभेदेनाभिधानात् वस्तु प्रति वस्तु भावः दृष्टान्तेऽदृष्टान्ते निदर्शनायामिव भावः" ।[1]

इसी तत्व को चिन्तामणि ने स्पष्ट किया है और इस प्रकार विश्वेश्वर आदि द्वारा सूचित विवेचन के आधार पर प्रतिवस्तूपमा से दृष्टान्त अलंकार को पृथक सिद्ध करने का सार्थक प्रयत्न किया है ।

निदर्शना:—

चिन्तामणि:—

> अनहोनो जग वस्तु जो वस्तु संबन्ध जो होइ ।
> उपमा परिकल्पक इते निदर्शना कहि सोइ ।।
> अपने अपने हेतु को जो संबन्ध बखान ।
> होत क्रिया ते निदर्शना ताहू कहत सुजान ।।[2]

मम्मट:—

> अभवन् वस्तु संबन्धः उपमा परिकल्पकः
> स्व स्वहेत्वन्वयस्योक्तिः क्रिययैव च साऽपरा क्रिययैव स्वस्वरूपस्वकारणयोः संबन्धो यदवगम्यते साऽपरा निदर्शना ।[3]

विवेचन:—

निदर्शना का लक्षण एवं भेद विवेचन मम्मट के आधार पर किया गया है । ध्यातव्य है कि मम्मट ने अपने लक्षण की प्रेरणा उद्भट के लक्षण[4] से प्राप्त की है । वामन की दृष्टि में क्रिया के द्वारा ही अपना और अपने प्रयोजन के संबन्ध का बोध कराना निदर्शना है ।[5] इसी आधार पर चिन्तामणि ने भी अपने लक्षण का निरूपण किया

1: देखिए का0 प्र0 10/102, की व्याख्या में आचार्य विश्वेश्वर का विवेचन पृष्ठ 485, 486

2: क0 क0 त0 3/195 तथा 3/201

3: का0 प्र0 10/97 का उत्तरार्द्ध तथा 10/98 का पूर्वार्द्ध और उसकी वृत्ति सूत्र 149

4: काव्यालंकार सार संग्रह - उद्भट 5/10

5: काव्यालंकार सूत्र वृत्ति 4/3/20

है और वे इसमें पूर्णतया सफल रहे हैं ।

व्यतिरेक:—

चिंतामणि:—

अधिक जहाँ उपमेय करि, घाटि बरनत उपमान ।
तेहि व्यतिरेक बनाइ कै बरनत सुकवि सुजान ।।
उपमेय गत उत्कर्ष अरु अपकर्ष जो उपमान को ।
भेद होत है इन दुहुन को इत कथन सुकवि सुजान को ।।
कहुँ कथन दोइ दुहून कहु कहु एक हू को जानिए ।
कहुँ शब्द ते कहु अर्थ ते आक्षेप ते कहु मानिए ।।[1]

मम्मट:—

उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः ।
(अन्यस्योपमेयस्य । व्यतिरेक आधिक्यम्) ।
हेत्वोरुक्तावनुक्तीनां त्रये साम्ये निवेदिते ।।
शब्दार्थाभ्यामथाक्षिप्ते श्लिष्टे तद्वत् त्रिरष्ट तत् । व्यतिरेकस्य हेतुः उपमेयगतमुत्कर्ष-निमित्तम्, उपमानगतमपकर्षकारणम् । तयोर्द्वयोरुक्तिः । एकतरस्य द्वयोर्वा अनुक्ति-रित्यनुक्तित्रयम् । × × × चतुर्विधोभेदाः ।[2]

विवेचन:—

व्यतिरेक के लक्षण और उदाहरण के निरूपण में चिन्तामणि ने पूर्णतया मम्मट के सूत्र एवं वृत्ति का आश्रय लिया है । मम्मट के अनुसार व्यतिरेक के हेतु उपमेयगत उत्कर्ष का कारण और उपमान गत अपकर्ष का कारण दोनों की उक्ति से व्यतिरेक का एक भेद होता है उन दोनों में से किसी एक की अथवा दोनों की अनुक्ति । इस प्रकार तीन तरह की अनुक्ति मिलाकर चार भेद होते हैं । इनके शब्द द्वारा प्रतिपादित होने पर चार भेद अर्थ द्वारा प्रतिपादित होने पर चार भेद तथा आक्षेप द्वारा प्रतिपादित होने पर चार भेद होते हैं । इस प्रकार कुल 12 भेद होते हैं । ज्ञातव्य है कि मम्मट को श्लिष्ट और अश्लिष्ट के आधार पर 24 भेद मान्य हैं । जबकि

1: क०क०त० 3/203 - 205 तक

2: का०प्र० 10/105 तथा 10/106 का पूर्वार्द्ध और उसकी वृत्ति सूत्र 159

चिन्तामणि ने केवल 12 भेदों पर ही [illegible] किया है । मम्मट ने '[illegible]' और 'अनुचित' का भी उल्लेख न होने के कारण को कार 'पुरुष' 'पुरुष' का प्रयोग कुछ भ्रामक बन गया है किन्तु में लक्षण और निरूपण [illegible] प्रयास प्रशंसनीय है ।

श्लेष:—

चिंतामणि:—

> एक वाक्य में होत हैं जहाँ बहु अर्थ अनेक ।
> ताको अर्थ श्लेष कहि कवि जन करत विवेक ।।[1]

मम्मट:—

> श्लेषः स वाक्ये एकस्मिन् यत्रानेकार्थता भवेत्[2]

विवेचन:—

चिंतामणि ने मम्मट कृत लक्षण का अनुवाद किया है । अनुवाद निभ्रान्त और स्पष्ट है । बहुत से आचार्यों ने इस विषय पर अपने विवेचन प्रस्तुत किये हैं कि श्लेष शब्दालंकार है या अर्थालंकार किन्तु चिन्तामणि ने इसे दोनों रूपों में स्वीकार किया है ।

परिकर:—

चिन्तामणि:—

> साभिप्राय विशेषनन कथन सु कवि परिकर जान ।
> याको देत उदाहरन सुकवि लेहु मन मान ।।[3]

मम्मट:-

> विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः ।[4]

विवेचन:—

चिन्तामणि ने मम्मट कृत लक्षण का शब्दानुवाद किया है ।

आक्षेप:—

चिन्तामणि:—

> जहाँ विशेष अभिधान की इच्छा कथन निषेध ।
> चिंतामणि कवि कहत हैं सो आक्षेप निषेध ।।[5]

1: क0क0त0 3/211
2: का0प्र010/96 का उत्तरार्द्ध सूत्र 146
3: का0प्र क0त0 3/213
4: का0प्र010/118 का पूर्वार्द्ध सूत्र 182
5: क0क0त0 3/215

मम्मट:—

निषेधो वक्तुमिष्टस्य यो विशेषाभिधित्सया ।
वक्ष्यमाणोक्तविषयः स आक्षेपो द्विधा मतः[1]

विवेचन:—

चिंतामणि ने लक्षण का शब्दशः अनुवाद किया है और आक्षेप के जो भेद वक्ष्यमाण विषय निषेध आक्षेप तथा उक्त विषय निषेध आक्षेप के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

व्याजस्तुति:—

चिन्तामणि:—

स्तुति निन्दा (के) मिसि जो रे अस्तुति निन्दा होइ ।
चिंतामनि कवि कहत है व्याज-स्तुति है सोइ ।।[2]

मम्मट:—

व्याजस्तुतिर्मुखे निन्दा स्तुतिर्वा रूढिरन्यथा[3]

विवेचन:—

मम्मट कृत लक्षण का भावानुवाद प्रस्तुत करते हुए चिंतामणि ने निंदा के व्याज से स्तुति और स्तुति के व्याज से निन्दा के दो उदाहरण दिए हैं 'रूढि' तथा 'मुख' शब्दों का अनुवाद में उपयोग नहीं किया गया है । जिनका अर्थ टीकाकारों ने क्रमशः 'पर्यवसान' एवं प्रारम्भ किया है तथापि लक्षण दोष पूर्ण नहीं है ।

अप्रस्तुत प्रशंसा:—

चिन्तामणि:—

अप्रस्तुति के कथन बिनु प्रस्तुति जान्यौ जाइ ।
अप्रस्तुति परसंस तो सज्जन गुनौ कहाइ ।।

1: का० प्र० 10/106 का उत्तरार्द्ध तथा 10/107 का पूर्वार्द्ध ।

2: क० क० त०- 3/218

3: का० प्र० 10/112 का पूर्वार्द्ध सूत्र 168

कारज के प्रस्ताव मैं कारण को अभिधान ।
कारन के प्रस्ताव मैं कारज कथन सुजान ।।
अप्रस्तुति सामान्य जो तहँ विशेष कहि जात ।
कहुँ विशेष प्रस्तुति कहैं सामान्यौ मुख गात ।।
कहुँ तुल्य प्रस्ताव मैं होत तुल्य अभिधान ।
अप्रस्तुति अलंकार के पंच भेद इमि जान ।।[1]

मम्मट:—

अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया ।।
(अप्राकरणिकस्याभिधानेन प्राकरणिकस्याक्षेपोऽप्रस्तुत प्रशंसा)
कार्ये निमित्ते सामान्ये विशेषे प्रस्तुते सति ।
तदन्यस्य वचस्तुल्ये तुल्यस्येति च पंचधा ।[2]

विवेचन:—

चिंतामणि का लक्षण एवं भेद निरूपण मम्मट से प्रभावित है तथापि इस अलंकार में मम्मट की अपेक्षा कुछ विशिष्ट व्याख्या की गई है । मम्मट ने जो पाँच भेद माने हैं वे इस प्रकार हैं:—

1: अप्रस्तुत कार्य से प्रस्तुत कारण का द्योतन
2: अप्रस्तुत कारण से प्रस्तुत कार्य का द्योतन
3: अप्रस्तुत सामान्य वस्तु से प्रस्तुत सामान्य वस्तु का बोधन
4: अप्रस्तुत सामान्य का प्रस्तुत विशेष से अभिव्यंजन
5: अप्रस्तुत विशेष से प्रस्तुत सामान्य का सूचन

किन्तु चिन्तामणि ने सामान्य के प्रस्ताव में सामान्य कथन रूप मम्मट के तीसरे भेद को पाँचवाँ भेद कहा है । जहाँ तुल्य अभिधान अर्थ सामान्य का सामान्य कथन अथवा विशेष का विशेष कथन होता है वहाँ विशेष के तीन प्रकार बताए हैं —

1: का०क०त० 3/221 — 224 तक
2: का० प्र० 10/98 का उत्तरार्द्ध और उसकी वृत्ति तथा 10/99 सूत्र 150,151

1- श्लेषमूलक, 2- समासोक्ति मूलक, 3- समता मूलक[1]

अप्पय का यह विश्लेषण स्पष्टीकरण विलक्षण है । एक यह भी विशेषता है कि इन्होंने मम्मट की भाँति सामान्य के प्रस्ताव में सामान्य कथन न कर अन्य के सदृश के प्रस्ताव में सदृश कथन की बात भी कही है इससे विशेष के प्रस्ताव में विशेष कथन या सामान्य के प्रस्ताव में सामान्य कथन दोनों का समाहार हो जाता है ।

पर्यायोक्ति:-

चिन्तामणि:-

व्यङ्ग्य अर्थ जो विकल सो प्रतिपादित होइ ।
पर्यायोक्ति ताहि जो कहत विबुध सब कोइ ।।
वाच्य जु वाचक भाव की रीति तजे कु युक्ति ।
पैच लिए सो कहत पर्यायोक्ति सुभक्ति ।।[2]

मम्मट:-

(क) पर्यायोक्तं विना वाच्यवाचकत्वेन यद्वचः[3]
वाच्यवाचकभावव्यतिरिक्तेनावगमनव्यापारेण यत् प्रतिपादनं
तत्पर्यायेण भंड़्यन्तरेण कथनात् पर्यायोक्तम्

चिन्तामणि:-

प्रस्तुत कारज ते जु है प्रस्तुत कारन जानि ।
पर्यायोक्ते कहत हों विद्यानाथ सुजान ।।[4]

अप्पय दीक्षित:-

(ख) पर्यायोक्तं तु गम्यस्य वचोभङ्ग्यन्तराश्रयम्[5]

1: जहाँ तुल्य अभिधान तँह तीन प्रकार विशेष ।
श्लेष समासोक्ति अपर समता मूलक लेष ।। क0क0त0 3/229
तुलनीय - का0प्र0 सूत्र 151 की वृत्ति

2: क0क0त0 3/234 तथा 3/233

3: का0प्र0 10/115 का पूर्वार्द्ध तथा उसकी वृत्ति सूत्र 174

4: कुवलयानन्द - अप्पय दीक्षित पृष्ठ 121

5: क0क0त0 3/236

व्याख्यात्मक शैली से अपना लक्षण बनाया है । विद्यानाथ के 'कैमर्थक्येन कथ्यते' की व्याख्या के रूप में (जो मम्मट की वृत्ति में भी है) 'जह रचि के औरै रचे' का उल्लेख है और मम्मट के 'तिरस्कार निबन्धनम्' को 'करै अनादर ब्याज' के रूप में व्यक्त किया गया है । शेष दोनों आचार्यों में समान है । मम्मट की भाँति प्रतीप में उन्होंने दो भेद किये हैं ।

अनुमानः—

चिन्तामणिः—

जु है साध्य साधन कथन सो बरनत अनुमान ।
तर्क न्याय मूलक सुतौ अलंकार जान ।।[1]

मम्मटः—

अनुमानं तदुक्तं यत् साध्यसाधनयोर्वचः[2]

विवेचनः—

चिंतामणि ने मम्मट कृत लक्षण का अनुवाद किया है । ध्यातव्य है कि चिन्तामणि ने प्रथम और अन्तिम बार अलंकारों के वर्गीकरण के आधार की चर्चा अपने अलंकार प्रकरण में की है । अनुमान को तर्क न्यायमूलक में रखना इस बात का प्रमाण है कि चिंतामणि रुद्रट आदि के वर्गीकरण को स्वीकार करते हैं ।

काव्यलिंगः—

हेतु वाक्य को अरथ कै अर्थ पदन को होइ ।
काव्यलिंग तासों कहत हेतु बखानत कोइ ।।[3]

विद्यानाथः—

हेतोर्वाक्य पदार्थत्वे काव्यलिंगमुदाहृतम्[4]

1: क0क0त0 3/242

2: का0प्र0 10/117 का उत्तरार्द्ध सूत्र 181

3: क0क0त0 3/244

4: प्र0रु0भू0 विद्यानाथ पृष्ठ 323

मम्मट:—

काव्यलिंगं हेतोर्वाक्यपदार्थता ।[1]

विवेचन:—

चिन्तामणि ने मम्मट अथवा विश्वनाथ के आधार पर काव्यलिंग का जो लक्षण प्रस्तुत किया है वह बहुत स्पष्ट नहीं है । उल्लेख्य है कि इन्होंने काव्यलिंग का एक नामान्तर हेतु भी प्रस्तुत किया है । उदाहरणों के क्रम में श्लेषमूलक काव्यलिंग का भी उल्लेख है जब कि लक्षण में इसकी चर्चा नहीं है । सम्भवतः यह इनकी मौलिक कल्पना है है ।

अर्थान्तरन्यास:—

करत समर्थन जो सबल (समर्थन?) सो सामान्य विशेष ।
सो अर्थान्तरन्यास कहि लखि पंडित गुन लेख ॥[2]

मम्मट:—

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा ॥[3]

विवेचन:—

चिन्तामणि ने मम्मट कृत लक्षण का भावानुवाद प्रस्तुत किया है किन्तु 'साधर्म्य' अथवा 'वैधर्म्य' का उल्लेख न होने के कारण लक्षण अपूर्ण है ।

यथासंख्य:—

चिन्तामणि:—

क्रम क्रम को अन्वय जहाँ बरनत क्रम क्रम जोइ ।
यथासंख्य सो अलंकृत सुमति कहत सब कोइ ॥[4]

1: का० प्र० 10/114 का उत्तरार्द्ध सूत्र 181

2: क० क० त० 3/249

3: का० प्र० 10/109 सूत्र 164

4: क० क० त० 3/252

<u>मम्मटः</u>—

यथासंख्यं क्रमेणैव क्रमिकाणां समन्वयः[1]

<u>अप्पय्य दीक्षितः</u>—

यथासंख्यं क्रमेणैव क्रमिकाणां समन्वयः[2]

<u>विवेचना</u>—

मम्मट एवं अप्पय्य दीक्षित के लक्षणों का सफल अनुवाद करके चिन्तामणि ने अपने लक्षण का निर्माण किया है ।

<u>परिसंख्या</u>—

<u>चिन्तामणिः</u>—

<u>कवित्त लक्षणः</u>—

(क) एक वस्तु जो एक ही ठौर नेम जो होइ ।
परिसंख्या तासो कहत कवि पंडित सब कोइ ।।

(ख) एक वस्तु जँह अनेक थल प्रापत एकहि ठार ।
नियमित सो जै एक थल परिसंख्यालंकार ।।[3]

<u>विद्यानाथः</u>—

एकस्य वस्तुनः प्राप्तावनेकत्रैकवारणादि ।
एकत्र नियमः सा हि परिसंख्या निगद्यते ।।[4]

<u>चिंतामणिः</u>—

(क) पूछ्यो अन पूछ्यो कथन कछु वस्तु को होइ ।
ऐसो औरन होत यह परिसंख्या कहि सोइ ।।

(ख) परिसंख्यालंकार में कहत शब्द गत होइ ।
कहूँ अर्थ बल पाइये जो सम नाहीं कोइ ।।[4]

1: का0 प्र0 10/108 का उत्तरार्द्ध सूत्र 165

2: कुवलयानन्द - अप्पय्य दीक्षित - पृष्ठ 17

3: क0 क0 त0 3/256, 3/257

4: क0 क0 त0 3/260, 3/261

[illegible] [illegible] उ.आसिल वर्णो ऐसो [illegible] विवेक ।

परिसंख्यालंकार सो अपनो [illegible] एक ।।[1]

मम्मट:—

किञ्चित्पृष्टमपृष्टं वा कथितं यत्प्रकल्पते ।

तादृगन्यव्यपोहाय परिसंख्या तु सा स्मृता ।।

प्रमाणान्तरावगतमपि वस्तु शब्देन प्रतिपादितं प्रयोजनान्तराभावात् सदृशवस्त्वन्तरव्यवच्छेदाय यत्पर्यवस्यति सा भवेत्परिसंख्या । अत्र च कथनं प्रश्नपूर्वकं तदन्यथा च परिदृष्टम्, तथैतस्य व्यपोह्यस्य प्रतीयमानता वाच्यत्वं चेति चत्वारो भेदाः ।[2]

विवेचन:—

चिंतामणि ने परिसंख्या का विस्तृत विवेचन किया है । विद्यानाथ और मम्मट के आधार पर निर्मित लक्षण सरल और स्पष्ट है । स्वतंत्र रूप से भी लक्षण - निर्माण का प्रयास किया है । भेदों का उल्लेख करते हुए यद्यपि इन्होंने मम्मटादि के अनुसार शब्दगत और अर्थगत तथा प्रश्न पूर्विका, अप्रश्न पूर्विका इन चार भेदों का उल्लेख किया है किन्तु उदाहरणों के क्रम में श्लेषमूलकता के आधार पर चार भेद और सोदाहरण विवेचित किये हैं । यह संकेत सम्भवतः साहित्य दर्पण से लिया गया है । जहाँ विश्वनाथ का कथन है कि परिसंख्या श्लेष मूलक भी हुआ करती है और इसमें अधिक विचित्रता रहा करती है ।[3] यहाँ चिन्तामणि की सारग्राहिणी प्रवृत्ति प्रशंसनीय है ।

समुच्चय:—

चिन्तामणि:—

एक सिद्धी कर संग मिलि औरो साधक होय ।

होइ अनेक समुच्चय अलंकार यह सोय ।।

सद्वस्तु, असद्वस्तु, सदृश जोग, गुन गुन जोग, क्रिया क्रिया जोग ।

1: क0क0त0 3/262

2: का0 प्र0 10/119 सूत्र 184 तथा उसकी वृत्ति

3: श्लेषमूलकं चास्य वैचित्र्यविशेषः

सा0द0 10/81 की वृत्ति

मम्मटः—

तत्सिद्धिहेतावेकस्मिन् यत्रान्यत् तत्करं भवेत् ।

× × × × ।।

एष एव समुच्चयः सद्योगे, असद्योगे सदसद्योगे च पर्यवस्यतीति न पृथक् लक्ष्यते ।

स त्वन्यो युगपद् या गुणक्रिया ।[1]

विवेचनः—

चिंतामणि ने मम्मट कृत लक्षण के आधार पर लक्षण बनाया है किन्तु द्वितीय भेद का लक्षण न देकर केवल उदाहरणों के द्वारा भेदों का परिगणन कर दिया है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चिंतामणि मम्मटोक्त द्विविध प्रकार के समुच्चय को स्वीकार करते हैं । भावानुवाद के रूप में प्रस्तुत लक्षण सुबोध है ।

समाधिः—

चिंतामणिः—

दूजे कारन के मिले काज जु झरपर होइ ।

सो समाधि बरनत विबुध सकल सुमति जन जोइ ।।[2]

मम्मटः—

समाधिः सुकरं कार्यं कारणान्तरयोगतः ।[3]

विवेचनः—

मम्मट के उपर्युक्त लक्षण का चिंतामणि ने अनुवाद प्रस्तुत किया है । मम्मट ने 'सुकर' शब्द का प्रयोग किया है और वृत्ति में 'यत्नलेशेन' का उल्लेख किया है चिंतामणि ने उसका 'झरपर' (झटपट) अनुवाद कर दिया है जो मूल अर्थ का ठीक से निर्वाह नहीं करता ।

1: का०प्र०10/116 का पूर्वार्द्ध तथा उसकी वृत्ति सूत्र 177,178

2: का०क०त० 3/28।

3: का०प्र०10/125 का पूर्वार्द्ध सूत्र 191

स्वाभाविक:—

चिंतामणि:—

जँह कहिये परतक्ष ज्यों भावी भूत जुबात ।

अलंकार प्रवता कहत स्वाभाविक कवि जात ।।[1]

मम्मट:—

प्रत्यक्षा इव यद्भावाः क्रियन्ते भूतभाविनः ।

तद् भाविकम् × × × × × × ×।।[2]

विवेचन:—

मम्मटोक्त लक्षण का चिंतामणि ने भावानुवाद प्रस्तुत किया है । उपलब्ध पाठ के अनुसार स्वभाविक के बदले 'सो' तथा 'भाविक' पृथक पृथक दो शब्द होने चाहिए । इससे ग्रन्थ की संगति में बाधा नहीं आती और अलंकार का नाम भी शुद्ध रूप में प्रस्तुत होता है ।

व्याघात:—

चिन्तामणि:—

जा उपाय काहू करी कछु जु अन्यथा बात ।

ता उपाइ जो तैसिये करै क्रिया व्याघात ।।[3]

मम्मट:—

यद्यथा साधितं केनाप्यपरेण तदन्यथा ।

तथैव यद्विधीयेत स व्याघात इति स्मृतः ।।[4]

विवेचन:—

चिन्तामणि ने मम्मट कृत लक्षण का अनुवाद किया है और उन्हीं की भाँति केवल एक भेद स्वीकार किया है । डा० ओम् प्रकाश का कहना है कि "चिन्तामणि का लक्षण सरल नहीं बना, कष्टबोधक (बोध्य?) है"[5] किन्तु यह आक्षेप चिंतामणि के दोष के कारण नहीं, उस पाठ दोष के कारण है जिसे डा० ओम् प्रकाश जी ने स्वीकार किया है । "ता उपाय जीते किधो करे क्रिया व्याघात" अनुचित पाठ स्वीकार करके दोषारोपण असंगत है ।

1: क० क० त० 3/283

2: का० प्र० 10/114 का पूर्वार्द्ध तथा वृत्ति 172

3: क० क० त० 3/285

4: का० प्र० 3/138 तथा सूत्र 205

5: रीतिकालीन अलंकार साहित्य का शास्त्रीय विवेचन-डा० ओम् प्रकाश पृ393

पर्यायः—

चिंतामणिः—

क्रम क्रम एक अनेक मैं एकहु माँह अनेक ।

द्वै प्रकार परजाय सौं सत कवि करत विवेक ॥[1]

मम्मटः—

एकंक्रमेणानेकस्मिन् पर्यायः ।

एकं वस्तु क्रमेणानेकस्मिन् भवति क्रियते वा स पर्यायः ।[2]

अप्पय्य दीक्षितः—

पर्यायो यदि पर्यायेणैकस्यानेकसंश्रयः ।

एकस्मिन् यद्यनेकं वा पर्यायः सोऽपि संमतः ॥[3]

विवेचनः—

चिंतामणि का लक्षण काव्यप्रकाश तथा कुवलयानन्द दोनों में से किसी एक पर आश्रित माना जा सकता है क्योंकि मम्मट के सूत्र एवं वृत्ति भाग दोनों के सम्मिश्रण से ही अप्पय दीक्षित की परिभाषा है, और उसी के आधार पर चिन्तामणि का लक्षण स्पष्ट है ।

कारणमालाः—

चिंतामणिः—

पूरब पूरब अर्थ जँह उत्तर उत्तर हेतु ।

कारण माला होतु सो सुनै बढ़ै चित चेतु ॥[4]

मम्मटः—

यथोत्तरं चेत्पूर्वस्य पूर्वस्यार्थस्य हेतुता ।

तदा कारण माला स्यात् - - - - ॥[5]

1: का०क०त० 3/287

2: का०प्र० 10/117 का पूर्वार्द्ध तथा उसकी वृत्ति सूत्र 179

3: कुवलयानन्द अप्पय्य दीक्षित पृष्ठ 180

4: का०क०त० 3/293

5: का०प्र० 10/120 का पूर्वार्द्ध सूत्र 185

चिन्तामणि —

प्रत्यनीक:—

जाहि तिन्हौ करि बैरु जौं करही प्रबल बिचारि ।
एकै के अधिकार को प्रत्यनीक निरधारि ।।[1]

मम्मट:—

प्रतिपक्षमशक्तेन प्रतिकर्तुं तिरस्क्रिया ।
या तदीयस्य तत्स्तुत्यै प्रत्यनीकं तदुच्यते ।।[2]

विवेचन:—

मम्मटोक्त लक्षण का भावानुवाद प्रस्तुत करते हुए भी चिन्तामणि पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं कर सके । 'तिरस्क्रिया' तथा 'तत्स्तुत्यै' का अनुवाद में उल्लेख नहीं है और सफलता न मिले जा सकने के कारण प्रबल बिचार का अन्तर्निहित उल्लेख है । अतः लक्षण असफल कहा जा सकता है ।

सूक्ष्म:—

चिन्तामणि:—

कोइ जु कौनौ अर्थ तें सूक्षम अर्थ प्रकास ।
सूक्षम नाम प्रसिद्ध यह अलंकार बुध बास ।।[3]

मम्मट:—

कुतोऽपि लक्षितः सूक्ष्मोऽप्यर्थोऽन्यस्मै प्रकाश्यते ।
धर्मेण केनचिद् यत्र तत् सूक्ष्मं परिचक्षते ।।[4]

विवेचन:—

चिन्तामणि का अनूदित लक्षण भावानुवाद है । 'धर्मेण केनचिद्' का अनुवाद नहीं हुआ है अतः लक्षण अपूर्ण है किन्तु अपूर्णता के रहते हुए भी वक्तव्य स्पष्ट है ।

1: क0क0त0 3/301

2: का0 प्र0 10/129 सूत्र 195

3: क0क0त0 3/303

4: का0प्र0 10/122 सूत्र 188

भाव का लक्षण है संकर अलंकार का सामान्य लक्षण भी माना जा सकता है । अंगांगी भाव का यह लक्षण मम्मट का स्पष्ट एवं पूर्ण अनुवाद है । 'अविश्रान्तिजुषाम' का अनुवाद दोहे के उत्तरार्द्ध में सम्पन्न हुआ है सन्देह संकर का लक्षण अर्थों का अनिश्चय है । अतः चिन्तामणि ने मम्मट के सूत्र 208 तथा उसकी वृत्ति का समन्वय करके लक्षण बनाया गया है किन्तु न्यायदोषाभावात् की उपेक्षा करदी गई है । अतः अनिश्चय के कारण भूत साधक-बाधक तत्वों की परिचर्चा के अभाव में लक्षण अपूर्ण हो गया है । एकाश्रयानुप्रवेश संकर नामक तीसरे भेद में मम्मट के लक्षण का अविकल अनुवाद प्रस्तुत किया गया है ।

<u>सामान्य लक्षणों की समीक्षाः—</u>

अलंकारों के लक्षणों में चिन्तामणि को पर्याप्त सफलता मिली है । दोहे जैसे लघुकाय छन्द में जिस सिद्ध हस्तता के साथ उन्होंने संस्कृत लक्षणों का शुद्ध एवं सुबोध अनुवाद किया है वह प्रशंसनीय है । कहीं-कहीं अपनी ओर से कुछ कहने का प्रयास भी किया गया है और कहीं-कहीं अनावश्यक भेदोपभेद की उपेक्षा भी कर दी गई है ।

यद्यपि पहले प्रत्येक अलंकार की मूलभूत विशेषता का विवेचन यथा स्थान कर आये हैं तथापि उपमा, विनोक्ति, अधिक, अप्रस्तुत प्रशंसा, समाधि आदि अलंकारों के लक्षणों की ओर यहाँ पुनश्च ध्यान दिलाना आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि इस प्रकार के लक्षणों में चिन्तामणि का मौलिक योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण और स्वच्छ है किन्तु कहीं-कहीं संक्षिप्तता के आग्रह के कारण लक्षण अस्पष्ट एवं भ्रष्ट हो गए हैं । उदाहरणार्थ काव्य लिंग को लें —

विश्वनाथ के अनुसार काव्यलिंग वहाँ होता है जहाँ वाक्यार्थ अथवा पदार्थ किसी का का हेतु हो किन्तु चिन्तामणि के लक्षण से यह अर्थ निकलता है कि जहाँ वाक्य अर्थ और पद का हेतु है । इसी प्रकार प्रत्यनीक, अनुमान आदि अलंकारों के विषय में भी कहा जा सकता है । इतना होते हुए भी चिन्तामणि के लक्षणों की सफलता कम महत्वपूर्ण नहीं है ।

<u>उदाहरणः—</u>

अलंकार के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत रचनाओं को दो दृष्टियों से देखना चाहिए —

(क) - कवि कर्म की दृष्टि से

(ख)- लक्षणानुरूपता की दृष्टि से

जहाँ तक कवि कर्म का सम्बन्ध है चिन्तामणि को अपनी रचनाओं में यथोचित सफलता मिली है । रीतिकालीन वातावरण में रहते हुए भी कवि ने उदाहरणों के लिए लक्ष्य को यथोचित व्यापकता प्रदान की है उदाहरणों में यद्यपि शृंगार की प्रमुखता है तथापि उनमें राम, कृष्ण एवं शिव आदि देवों के प्रति निष्ठा तथा जीवन के व्यापक अनुभावों को गूँथने का प्रयास देखने को मिलता है । मालोपमा का एक उदाहरण देखिए—

सरद ते जल की ज्यों दिन तें कमल कि ज्यों धन तें ज्यों थल की निपट सर सांइ हैं
धन तें सावन की ज्यों सीप ते रतन कि ज्यों गुन ते सुजन कि ज्यों परम सुहाई है
चिंतामनि कहै आछे अच्छरनि छन्द की ज्यों निशा गन चंद की ज्यों दूध कुल नाई है
नगरी ज्यों राजन वसंत ते ज्यों वन की त्यों जोबन तें तन की निकाई अधिकाई है ।[1]

यहाँ यौवन से शरीर की शोभा के संवर्धन हेतु उपमाओं की जो माला गूँथी गई है वह निश्चय ही अत्यन्त प्रभावी है उत्प्रेक्षालंकार में विभिन्न पक्षों को उभारने के लिए कल्पना के अनेक सुन्दर चित्र संजोए गए हैं । रोमावलियाँ मानों आह के धुएँ हैं इस दूरारूढ़ कल्पना का आनंद लीजिए --

गुन विधु लखि कुच कोक जुग लखि बिछुरनि प्रकास
रोमावलि जनु लई उन दुखन सधूम उसास[2]

उक्तास्पदा स्वरूपोत्प्रेक्षा के इस उदाहरण में कल्पना का जो चमत्कार दृष्टिगत होता है वह निश्चय ही प्रशंसनीय है । कहीं-कहीं इन्होंने संस्कृत के उदाहरणों के भी अनुवाद किए हैं —

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः[3]

जैसी सूक्ति के केवल उपरि निर्दिष्ट अंश का अनुवाद करके एक नये प्रसंग

1: क0क0त0 2/15

2: क0क0त0 3/69

3: का0 प्र0 संसृष्टि का उदाहरण पृष्ठ 553

की सृष्टि की है । अनुक्तास्पदाहेतूत्प्रेक्षा के इस उदाहरण का आनन्द लीजिए —

बरसत अंजन नभ मनौ तम लीपत जनु अंग ।
श्यामा श्याम स्वरूप धरि लख्यौ श्याम को अंग ।।[1]

इसी प्रकार काव्यलिंग, प्रत्यनीक, अनुमान, संदेह, परिणाम आदि अलंकारों के उदाहरण में चिन्तामणि को पूर्ण सफलता मिली है । यह इस बात का प्रमाण है कि हमारे आलोच्य कवि ने केवल शास्त्रीय लक्षणों की आवृत्ति नहीं की थी अपितु उनके रहस्य को इतना हृदयंगम कर लिया था कि उदाहरणों के निर्माण काल में वैसी शब्द योजना या संदर्भ योजना करने में समर्थ हो सके । इस दृष्टि से चिन्तामणि के लक्षणों की परीक्षा उनके उदाहरणों को समन्वित करके ही की जानी चाहिए । हमारा विश्वास है कि इस प्रकार के अध्ययन से चिन्तामणि की विशेषताओं पर अधिक प्रकाश पड़ सकेगा ।

रीतिकाल के अनेक आचार्यों की तुलना में चिन्तामणि का महत्त्व इस लिए भी बढ़ जाता है कि उन्होंने किसी एक ग्रन्थ के अनुवाद का प्रयास न करके अपनी शक्ति और सीमा के अनुरूप एक शोधार्थी की भूमिका अपनाई है । अनेक महत्त्वपूर्ण शास्त्रीय ग्रन्थों जैसे— साहित्यदर्पण, काव्य प्रकाश, प्रतापरुद्रीयम, और कुवलयानन्द आदि से सामग्री चयन करके उन्होंने जो कुछ प्रस्तुत किया है वह साधन मौलिक भले न हों किन्तु चिन्तामणि की प्रखर चिन्तनशीलता और सारग्राहिणी प्रवृत्ति को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है और किसी आचार्य के लिए यह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । हम तो इसे मौलिकता ही कहना चाहेंगे । शोध ग्रन्थों की शैली में लिखा गया यह ग्रन्थ नीर-क्षीर-विवेक का उत्तम दृष्टान्त है । चिन्तामणि का यह अलंकार प्रकरण हर प्रकार से पठनीय एवं उपादेय है ।

==××00××==

1: क0क0त0 3/70

4: दोष प्रकरण

दोष-प्रकरण

संस्कृत काव्य-शास्त्र का इतिहास साक्षी है कि गुण सिद्धान्त की भाँति दोष का विचार विवेचन भी दो वर्गों में विभक्त है । प्रथम वर्ग के विद्वान वे हैं जो 'शब्द एवं अर्थ के साहित्य को काव्य' स्वीकार करते हैं । अतः उनकी दृष्टि में दोष शब्द और अर्थ के अपकर्षक तत्त्व हैं ।

दूसरा वर्ग रसध्वनिवादियों का है जो दोषों को मुख्य रूप से काव्यात्मा - रस- का अपकर्षक मानते हैं । गौण रूप से ये दोष, शब्द और अर्थ के भी अपकर्षक हुआ करते हैं ।

स्पष्टता के लिए हम एक व्यक्ति के जीवन का दृष्टान्त मान लेते हैं,- जैसे व्यक्ति के शारीरिक दोष (काणत्व खंजत्व आदि) उसके शारीरिक बाह्य सौन्दर्य का अपकर्षक कर देते हैं वैसे ही काव्य के शब्दार्थनिष्ठ दोष उसको विकलांग बनाकर उसके सौन्दर्य को नष्ट कर देते हैं, और जिस प्रकार लोकनिन्दित अनुचित आचरण व्यक्ति के चारित्रिक दोष बन कर उसकी आत्मा को निर्बल बना देते हैं, उसी प्रकार रस के दोष काव्य की प्रभविष्णुता और शक्ति का क्षय कर देते हैं । अतः दोष के स्वरूप, स्थिति एवं भेद आदि के संबन्ध में मतभेद रखते हुए भी आचार्यगण दोषों के निराकरण के संबन्ध में एक मत हैं ।

काव्य की निर्दोषता किस सीमा तक हो इस संबन्ध में भी चिन्तन दो प्रकार के हैं — पहला वर्ग दोष को नितान्त हेय समझता है, जिसमें भामह[1] दंडी[2]

1: सर्वथा पदमप्येकं न निगाद्यमवद्यवत् ।
विलक्ष्मणाहि काव्येन दुस्सु तेनेव निन्द्यते ।।
ना कवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा ।
कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृति माहर्मनीषिण ।। काव्यालंकार ।/।।,।2

2: तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथंचन ।
स्याद् वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम् ।। का0द0 ।/7

आदि उल्लेखनीय हैं । यह वर्ग उन घोर आचारवादी धर्म शास्त्रियों की भाँति है जिनकी व्यवस्था में साधारण से प्रमाद के कारण भी व्यक्ति को पतित घोषित कर दिया जाता है, और वह सामाजिक दृष्टि से हेय एवं उपेक्षा का पात्र बन जाता है । ठीक इसी प्रकार आचार्यों का उक्त वर्ग काव्य में दोष को किसी भी रूप में क्षम्य नहीं मानता।

दूसरा वर्ग उन उदारचेता आचारवादियों का है जिनका विश्वास है कि इस गुण दोषमय सृष्टि में सर्वथा निर्दोष व्यक्ति अलभ्य हैं । इसलिए साधारण दोषों को क्षमा भी किया जा सकता है । ठीक इसी प्रकार के उदार आचार्य ईषत्-दोष-युक्त काव्य को अकाव्य नहीं मानते क्योंकि सर्वथा दोष मुक्त काव्य दुर्लभ अलभ्य है । इस दूसरे वर्ग में विश्वनाथ जैसे आचार्य हैं ।[1]

गुण प्रकरण की भाँति दोष प्रकरण भी चिन्तामणि ने आचार्य मम्मट को ही मुख्य रूप से अपना उपजीव्य बनाया है । इसलिये हम भरत से मम्मट पूर्व तक के (दोष-विचार) की ऐतिहासिक यात्रा से बचकर परिचर्चा को मम्मट से ही आगे बढ़ाते हैं।

मम्मटीय दोष की परिभाषा पर अनुशीलन प्रस्तुत करने से पूर्व यह आवश्यक है कि दोष के प्रति मम्मट का दृष्टिकोण स्पष्ट कर लिया जाय । उनके काव्य लक्षण में[2] अदोषता को प्राथमिकता दी गई है । इससे स्पष्ट है कि मम्मट की दृष्टि में दोष राहित्य काव्य में प्रथम प्रयोजनीय है । अतएव वे दोषाभाव रूप निषेध पक्ष को प्रामाणिकता देते हैं और गुण तथा अलंकार के साहित्य रूप विधि पक्ष को बाद में स्वीकार करते हैं ।

1: किं चैव काव्यं निर्विषयं प्रविरल विषयं वा स्यात् ।
सर्वथा निर्दोषस्यैकान्तमसम्भावात् ।
सा0द0 मपटि - पृष्ठ 2।

2: सगुनालंकारन सहित दोष रहित जो होइ ।
शब्द अर्थ ताको कवित कहित विबुध सब कोइ ।।
क0क0त0 - 1/7

तुलनीय – तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि ।
का0 प्र0-1/4 का पूर्वार्द्ध सूत्र - । पृष्ठ 19

जहाँ तक चिंतामणि का प्रश्न है वे अपनी काव्य परिभाषा के लिए मुख्यतः विद्यानाथ के ऋणी हैं,[1] और उन्हीं से प्रभावित होकर गुण और अलंकार के सद्-भाव को प्राथमिकता देते हैं और दोषों के अभाव को बाद में प्रस्तुत करते हैं ।

दोषों की परिभाषा :-

मम्मट के अनुसार जिससे मुख्य अर्थ का अपकर्ष होता है वह दोष है, और रस मुख्य है । अतः उसका (रस का) आश्रय होने से वाच्य अर्थ भी मुख्य अर्थ कहलाता है । शब्दादि इन दोषों के उपकारक होते हैं । अतः शब्द, वर्ण, रचना आदि में भी दोष रहता है ।[2] मम्मट के उक्त लक्षण का विश्लेषण करने पर रस दोष, अर्थ दोष और शब्दादि दोष, रूप, दोष के तीन भेद प्राप्त होते हैं । इन्हीं को आधार बनाकर चिन्तामणि का कथन है कि –

शब्द अर्थ रस को जु इत, देखि परे अपकर्ष ।
दोष कहत हैं ताकि को सुने घटतु है हर्ष ।।[3]

यहाँ दो बातें विचारणीय हैं – पहली बात है 'सुने घटतु है हर्ष' की । यह अंश काव्य-प्रकाश से अधिक है । चूँकि काव्य के लक्षण में इन्होंने 'आनन्द'[4] को महत्त्व दिया है, और दोष उस हर्ष (आनन्द) का नाश करता है । अतः दोष युक्त काव्य अवांछनीय है । दूसरी बात यह ध्यान देने योग्य है कि मम्मट ने दोष को मुख्य रूप से रस से संबद्ध किया है तदनन्तर लक्षणा शक्ति से, वाच्यार्थ से और फिर वाचक शब्दों से । किन्तु चिन्तामणि ने क्रमविपर्यय करके शब्द और रस की चर्चा

1: गुणालंकार सहितौ शब्दार्थौ दोष वर्जितौ ।
प्र0 रु0 भू0 - पृष्ठ 42

2: मुख्यार्थहतिर्दोषोरसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद् वाच्यः
का0 प्र0 - 7/49 पूर्वार्द्ध

3: शब्द अर्थ रस को जु इत देखि परै अपकर्ष ।
दोष कहत हैं ताहि को सुने घटतु है हर्ष ।। क0 क0 त0 4/1

4: छन्द निबद्ध सुपद्य कहि गद्य होत बिन छन्द ।
भाषा छन्द निबद्ध सुनि सुकवि होत सानन्द ।। क0क0त0 - 1/5

की है । परिणामतः वे मम्मट के स्वारस्य को नहीं व्यक्त कर सके । यह उनके अनुवाद के असामर्थ्य का द्योतक है ।

दोष के प्रकार :-

मम्मट ने अपने काव्य-प्रकाश में दोष के पाँच भेद बतलाए हैं:- पदगत, पदांशगत्, वाक्यगत, अर्थगत और रसगत । चिन्तामणि ने 'पद' के स्थान पर 'शब्द' का प्रयोग करके शब्द गत दोषों का उल्लेख किया है और पदांश दोषों की अवहेलना कर दी है । इसका कारण यह हो सकता है कि संस्कृत भाषा की विशिष्टता के कारण जिस रूप में शब्दों के प्रकृति, प्रत्यय-प्रत्यय रूप विभाग किये जा सकते हैं, और उनमें दोषादि का सूक्ष्म उल्लेख किया जा सकता है, वैसा बृजभाषा की संघटना में सम्भव न हो अतः अपनी सीमा में चिन्तामणि का यह परिष्कार उचित प्रतीत होता है । फलतः चिन्तामणि के मत से दोष चार प्रकार के होते हैं :-

1: 1: शब्दगत दोष

2: वाक्यगत दोष

3: अर्थगत दोष

4: रसगत दोष

1:शब्दगत दोष :-

चिन्तामणि ने मम्मट के आधार पर शब्दगत दोषों का परिगणन इस प्रकार किया है:-

श्रुति कटु च्युत जो संस्कृत, अर्थ जुचित असमर्थ ।
निहतारथ अनुचित अरथ, और जु होइ निरर्थ ।।
और अवाचक त्रिविध पुनि, इत अश्लील विचारि ।
संदिग्धो अप्रतीत पुनि, ग्राम नेयार्थ निहारि ।।
क्लिष्टौ बहुरि बखानियै, विरुद्ध मति क्रम जानि ।
शब्दन के ये दोष हैं, सुजन लेहु मन आनि ।।[1]

1: क0क0त0 - 4/2 - 4 तक

इसके अनुसार शब्दगत दोषों की संख्या निम्नलिखित है :-

1- श्रुति कटु, 2- च्युतसंस्कृत, 3- अप्रयुक्त (अर्थयुक्त?), 4- असमर्थ, 5- निहतार्थ, 6- अनुचितार्थ, 7- निरर्थक, 8- अवाचक, 9- त्रिविध अश्लील, 10- संदिग्ध (शंसयित?) 11- अप्रतीत, 12- ग्राम्य, 13- नेयार्थ, 14- क्लिष्ट, 15- विरुद्ध मतिकृत (विरुध्द मति क्रम?)

उपर्युक्त उल्लेख के अनुसार मम्मटोक्त 'अविमृष्टविधेयांश' दोष को छोड़ कर चिन्तामणि ने पन्द्रह शब्दगत दोष स्वीकार किए हैं, और कहीं-कहीं छन्द योजना के लिए पर्यायवाची नाम रख दिये हैं। जैसे - संदिग्ध के लिए संशयित, अप्रयुक्त के स्थान पर अर्थजुक्ति यह स्पष्ट नहीं होता।

लक्षणोदाहरण के क्रम में इनमें से अप्रयुक्त असमर्थ और अश्लील के केवल उदाहरण किये गए हैं। निरर्थक और अवाचक के लक्षण और उदाहरण मिश्रित कर दिये गए हैं। शेष दस के लक्षण उदाहरण दोनों दिये गए हैं।

2: वाक्य दोष :-

वाक्य दोषों का उल्लेख इस प्रकार है :-

प्रतिकूलाक्षर होत है, अरु हत वृत्ति बखानि।
ऊन अधिक पद कथित पद, पतत प्रकर्षौ मानि।।
पुनि समाप्त पुनिरात कहि, चरनान्तर पद होइ।
पुनि अभवन्मत जोग कहि, अकथित वाच्यौ कोइ।।
पुनि कहि अस्थानस्थपद, संकीरनौ निहारि।
गर्भित और प्रसिध्द हत् भग्न क्रम निरधारि।।
अक्रम अमत अपारथौ (पसरथौ?) वाक्यदोष येमानि।
कवि चिन्तामणि कहत हैं सज्जन के मत आनि।।[1]

1: क० क० त० - 4/29, 32

इस प्रकार चिन्तामणि परिगणित सत्रह दोषों के नाम इस प्रकार हैं :-

1- प्रतिकूलाक्षार, 2- हतवृत्त, 3- न्यूनपद, 4- अधिकपद, 5- कथितपद, 6- प्रतत्प्रकर्ष, 7- समाप्तपुनरात्त, 8- चरनान्तरपद (अर्थान्तरैक वाच्य?), 9-अभवन्मत योग, 10- अकथित वाच्य (अनभिहित वाच्य), 11- अस्थानस्थपद, 12- संकीर्ण, 13- गर्भित, 14- प्रसिद्ध हत, 15- भग्नक्रम, 16- अक्रम, 17- अमतपरार्थ ।

इनमें से विवेच्य क्रम में चरणान्तर पद का केवल लक्षण दिया गया है । अक्रम दोष का लक्षण और उदाहरण दोनों छूट गए हैं । शेष सभी दोषों के लक्षण-उदाहरण प्राप्त हैं ।

3: अर्थ दोष :-

मम्मट के 23 अर्थ दोषों में से परिगणन के समय केवल उन्नीस वाक्य दोषों की चर्चा 'कवि कुल कल्प तरु' में प्राप्त होती है । इस सन्दर्भ में निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेख्य हैं -

अर्थ अपुष्ट जु कष्ट पुनि, व्याहत अरु पुन रुक्त ।
अग्रामी संसयित पुनि, जो न हेत संयुक्त ।।
और प्रसिद्ध विरुद्ध पुनि, अनवीकृत मन गन्य ।
नेम अनेम विहीन पुनि, विन विशेष सामन्य ।।
साकांक्षा पद युक्ति पुनि, सहचर भिन्न विचारि ।
कहिय प्रकाश विरुद्ध पुनि, चिन्तामनि निरधारि ।।
त्यक्त पुनः स्वीकृत कहयौ पुनि अश्लील बखानि ।
अर्थ दोष या भाँति के अपने मन में आनि ।।[1]

लक्षणोदाहरण के क्रम में 'विध्ययुक्त' और 'अनुवादायुक्त' का उल्लेख भी मिलता है -

---

1: क0 क0 त0 - 4/69-72 तक

जामैं विधि अनुवाद को, कथनन नीको होइ ।
विध्यनुवाद अयुक्तसो, कहत विबुधा सब कोइ ।।[1]

अतः दुष्क्रमत्व तथा विदूयाविरुद्धत्व नामक दो दोषों को छोड़कर 21 अर्थ दोषों की चर्चा चिन्तामणि ने की है जिनका नामोल्लेख इस प्रकार है :-

1- अपुष्ट, 2- कष्ट, 3- व्याहत, 4- पुनरुक्त, 5- ग्राम्य, 6- संदिग्ध, 7- निर्हेतु, 8- प्रसिध्दविरुध्द, 9- अनवीकृत, 10- नियम में अनियम, 11- अनियम में नियम, 12- विशेष में सामान्य, 13- सामान्य में विशेष, 14- साकांक्षता, 15- अपदयुक्तता, 16- सहचर भिन्नता, 17- प्रकाशित विरुध्दता, 18- त्यक्तपुनः स्वीकृति, 19- अश्लील, 20- विध्ययुक्त, 21- अनुवादायुक्त ।

इस क्रम में कष्टत्व और अपुष्ट और अश्लील के केवल उदाहरण दिये गए हैं । व्याहत, पुनरुक्त, विध्यनुवादायुक्त, त्यक्त पुनः स्वीकृत इन पाँचों के लक्षण, उदाहरण दोनों दिये गए हैं । शेष के संबन्ध में चिन्तामणि मौन हैं ।

4: रस दोष :-

1- व्यभिचारी भावों, 2- स्थायीभावों एवं 3- रसों की शब्द वाच्यता, 4- अनुभाव, 5- विभाव की अभिव्यक्ति में कष्ट कल्पना, 6- प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण, 7,8- आनसमउक्ति (अकांड में प्रथन और छेद?), 9- मुख्याननुसंधान, 10- अंग की बहुजुक्ति(अनंग अथवा अंग का विस्तार), 11- प्रकृति विपर्यय तथा 12- अनुचित वर्णन । इनका उल्लेख चिन्तामणि ने इस प्रकार किया है -

संचारी थाई रसौ शब्द कथित जो जोइ ।
अरु अनभाव की भावतें व्यक्त कष्ट ते होइ ।।[2]

1: क0 क0 त0 4/79

2: क0 क0 त0 4/84

प्रतिकूल विभावादि को गहन आन सम उक्ति ।
रस को अनुसंधान नहिं अंगहि की वहु जुक्ति ।।[1]

प्रकृतिन को पुनि विपर्यय, अनुचित वरनन जानि ।
चिन्तामनि कवि कहत हैं, ये रस दोष बखानि ।।[2]

यहाँ मम्मट सम्मत 13 रस दोषों में से 'पुनः पुनः दीप्ति' नामक दोष को छोड़कर शेष 12 का समाहार किया गया है । 8 दोषों के केवल उदाहरण दिये गए हैं । लक्षण किसी का नहीं दिया गया है । इस प्रकार चिन्तामणि द्वारा उल्लिखित समस्त दोषों की संख्या 65 पहुँच जाती है ।

यहाँ विचारणीय यह है कि मम्मटीय परम्परा का अनुसकरण करते हुए चिन्तामणि ने जिन दोषों का वर्णन नहीं किया है । उसके संबन्ध में उनका सैध्दान्तिक या वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्राप्त नहीं होता, ऐसी दशा में संग्रह एवं त्याग में उन्होंने स्वेच्छा से ही काम लिया होगा । संभव है इसके पीछे उनकी असमर्थता रही हो ।

दोषों के स्वरूपः—

मम्मट ने केवल उन्हीं दोषों के लक्षण प्रस्तुत किये थे जिनका नाम अपने स्वरूप का बोध कराने में पूर्णतया समर्थ नहीं थे, साथ ही स्पष्टता की दृष्टि से लक्षण निरूपण में उन्होंने गद्य का आश्रय लिया था किन्तु चिन्तामणि ने ऐसे दोषों के भी लक्षण बनाने का प्रयत्न किया जो अन्वर्थ संज्ञा थे । लक्षणों को पद्यबद्ध करने की परम्परा थी ही परिणाम स्वरूप अनेक स्थलों पर उनकी स्थिति उपहासास्पद बन गई है । उदाहरणार्थ निम्नलिखित दोषों के लक्षणों का अवलोकन कीजिये :—

अनुचितार्थ —

होइ अनुचितारथ तहँ, उचित न बरनत होइ ।
ताहि अनुचितारथ कहत, पंडित सत कवि सोइ ।।[3]

1: क० क० त० 4/85
2: क० क० त० 4/86
3: क० क० त० - 4/14

संदिग्ध —

जहाँ होत सन्देह है, सो संदिग्ध बखानि ।[1]

विरुद्धमतिकृत —

सो विरुद्धमतिकृत जहाँ, जान्यो जाइ विरुद्ध ।
ऐसो कवित न कीजिए, है यह निपट अशुद्ध ।।[2]

संकीर्ण —

जहाँ होइ संकीर्ण पद सो संकीर्ण बखानि ।[3]

इन स्थलों पर दोषों के नामाक्षरों को ही घुमाफिराकर लक्षण बनाने का प्रयास तथा छन्द पूर्ति के लिए निरर्थक पंक्तियों का प्रयोग एक ओर दोष के स्वरूप को स्पष्ट करने में असमर्थ हैं तो दूसरी ओर कवि के असामर्थ्य का द्योतक है । यहाँ न तो किसी संस्कृत के आचार्य का अनुकरण दृष्टिगत होता है और न किसी प्रकार की विशेषता ही लक्षित होती है । इतना ही नहीं कहीं-कहीं तो चिन्तामणि मम्मट आदि के मन्तव्य को लक्षणों में ठीक प्रकार से स्पष्ट करने में असफल रहे हैं । उदाहरणार्थ दोषों में नेयार्थ और च्युति संस्कृति के लक्षण अस्पष्ट एवं व्याख्यापेक्षी हैं । मम्मट ने व्याकरण के नियमों के अनुकूल न होने वाले अर्थात् व्याकरण के संस्कार से हीन को च्युत संस्कृति कहा है ।[4] किन्तु चिन्तामणि नेः—

"संसकार च्युत होइ सो, च्युत संस्कृत मानि "[5]

में व्याकरण का उल्लेख न करके अस्पष्टता उत्पन्न कर दी है । इसी प्रकार नेयार्थ के लक्षण —

" जँहा निषिद्ध की लक्षणा सो नेयार्थ बखानि "[6]

1: क0क0त0- 4/19
2: क0क0त0- 4/27
3: क0क0त0- 4/55
4: च्युत संस्कृति व्याकरण लक्षण हीनं यथा का0प्र0 पृष्ठ 267
5: क0क0त0 4/5
6: वही 4/24

में निषिद्ध की लक्षणा का अर्थ स्पष्ट नहीं है जबकि मम्मट के अनुसार जहाँ निषिद्ध (रूढ़ि अथवा प्रयोजन के अभाव में स्वेच्छापूर्वक प्रयुक्त) लक्षणा वाला पद प्रयुक्त होता है । वहाँ नेयार्थ दोष होता है । इसी प्रकार कुछ अन्य दोषों के लक्षण भी अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने में असमर्थ हैं किन्तु विस्तारभय से उनकी चर्चा नहीं की जा रही है ।

कुछ दोषों के उदाहरण एवं भेद वर्णन में भी चिन्तामणि से चूक हुई है जैसे- हतवृत्तता के मम्मट सम्मत तीन भेदों में से अश्रव्य और रसाननुगण को तो स्थान दिया है किन्तु अप्राप्त गुरुभावान्त लघु का उल्लेख नहीं किया है:-

यथा -

सर्व लक्षन न कर सहित सुनत न नीको होइ ।[1]
यहौ कहत हत वृत्त हैं ते सज्जन कवि लोइ ।।
जोइ कर सज्जा छन्द मै भलो जो उत्तम होइ ।
जो जाके प्रति कूल है यौ हुँ कहत सब कोइ ।।[2]

इसी प्रकार अश्लील दोष के उदाहरण में मम्मट सम्मत अमंगल और जुगुप्सा की व्यंजना तो हुई है किन्तु व्रीड़ा की नहीं -

वे मारग देखत उहाँ पाव परी हौं आइ ।
तू तब कैसी करहिजो विरह पीउमरि जाइ ।।[3]

'समाप्तपुनरात्तता' दोष का लक्षण मम्मट ने नहीं लिखा है किन्तु चिंतामणि ने उसका लक्षण इस प्रकार किया है -

जब वाक्यार्थ समाप्त कै बहुरि विशेषै देइ ।
सो समाप्तपुनरक्ति है जानि सज्जनै लेइ ।।[4]

1: क0क0त0 4/38
2: वही 4/36
3: वही 4/18
4: वही 4/47

इसमें 'बहुरि विशेषै देइ' शब्दों द्वारा इसके स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। डा0 सत्यदेव चौधरी ने चिन्तामणि के 'विशेषै' पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि "वस्तुतः वाक्य की समाप्ति के उपरान्त विशेषण के ही उपादान से यह दोष होता है न कि विशेष्य के"। स्वयं चिन्तामणि का निम्नलिखित उदाहरण इसी आधार पर समाप्त पुनरात्तता दोष से दूषित है –

बड़े बार लोइन बड़े छीनोदर बर नारि ।
दक्षिन दिसि में साँवरी वह सोहति सुकुमारि ।।[2]

यहाँ डा0 साहब ने 'विशेषै' का अर्थ विशेष्यमान कर यह आक्षेप किया है और 'सुकुमारि' को विशेष्य मान कर ही उदाहरण की संगति बैठाई है किन्तु यहाँ 'सुकुमारि' यह विशेष शब्द 'सोहति' इस समीपस्थ वाक्य के समाप्त होने पर आया है। अतः यहाँ समाप्तपुनरात्त दोष है। 'सुकुमारि' 'बरनारि' का विशेषण है ही।

अस्थानस्थ समाप्त दोष का उदाहरण प्रस्तुत करके मम्मट ने टिप्पणी लगाई थी कि "यहाँ क्रुद्ध (चन्द्रमा की उक्ति में) प्रथम दो चरणों में समास नहीं किया है, और (अन्तिम दो चरणों में) कवि की उक्ति में किया है"[3] चिन्तामणि ने इसी पद को अपने लक्षण में इस प्रकार समाविष्ट किया है –

ज्यों पद अस्थानस्थ पद यों ही अस्थ समास ।
जो न क्रुद्ध की उक्ति में कवि की उक्ति प्रकाश ।।[4]

1: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य – डा0 सत्यदेव चौधरी पृष्ठ

2: क0 क0 त0 - 4/48

3: अत्र (अद्यापिस्तन शैल दुर्ग विषमे सीमन्तिनीनाम् हृदि इत्यादि पद्य में) क्रुद्धस्योक्तौ समासो न कृतः कवेरुक्तौ तु कृतः ।
का0 प्र0 पृष्ठ 318

4: क0 क0 त0 4/69

"दोहे के उत्तरार्द्ध का अंश मम्मट के उदाहरण पर टिप्पणी हो सकती है अस्थानस्थ समास दोष का लक्षण नहीं"।[1]

डा० सत्यदेव चौधरी की उपर्युक्त समीक्षा तो ठीक है किन्तु चिन्तामणि ने जो उदाहरण दिया है उसमें 'क्रुद्धपिक' के कथन में समास नहीं किया गया है। उदाहरण इस प्रकार है –

> मेरे आगम मानु यों कहियत पिकधुनिवन्त।
> अलि हुंकित/कालित आयो अली बसन्त।।[2]

अतः चिन्तामणि के इस उदाहरण के आधार पर भी उनका लक्षण अनुचित नहीं प्रतीत होता।

प्रक्रम भंग के उदाहरणः–

'अरुन उदित रवि होत है अरुनै अथवत आइ'[3] में अरुन शब्द का दो बार प्रयोग होने से कथित पदत्व हो सकता है इसका समाधान यह है कि उद्देश्य का यदि प्रतिनिर्देशन करना अभीष्ट हो तो पुनः उसी शब्द अथवा उसके/बोधक सर्वनाम द्वारा करना चाहिए उसके पर्याय द्वारा नहीं, अन्यथा प्रक्रम भंग नामक दोष हो जाता है। मम्मट[4] तथा विश्वनाथ[5] सम्मत इसी धारणा को चिन्तामणि ने यों व्यक्त किया हैः–

> उद्देश्य प्रति निर्देश थल में प्रथम ही जो दीजिए।
> पुनि जा कहिये परै तो वहै ता थल लीजिए।।
> जा कथित पद की भांति तै पर्याय पद तित कीजिए।
> तौ होइ प्रक्रम भंग दोषसु सत्यजान पतकीजिए।।
> अरुन उदित रवि होत है अरुनै अथवत आइ।
> सम्पति विपति बड़े न कौ ए कै क्रम लखि जाइ।।
> अरुन उदै रवि करत है लालै अथवत आइ।
> ऐसौ जो करियै सुतौ प्रक्रम भंग है जाइ।।[6]

1: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य– डा० सत्यदेव चौधरी पृष्ठ-
2: क०क०त० 4/69
3: क०क०त० 4/64
4: का० प्र०
5: सा० द०
6: क०क०त० 4/63,64,65

अर्थ दोषों में व्याहत का लक्षण मम्मट ने नहीं दिया है किन्तु चिन्तामणि ने मम्मट के उदाहरण के आधार पर इस दोष का लक्षण बना लिया है ।

सुधि न जहाँ निज कथन की, सो व्याहततज्ञान
जोनिजित कहिए प्रथम, सोइ पुनि उपमान[1]

तात्पर्य यह कि जिस वस्तु की एक बार अवहेलना कर दी गई हो पुनः उसी वस्तु को उपमान के लिए अपना लिया जाय तो व्याहत दोष होता है —

तेरे सम होना सक्यो चन्द्रमुखी यह चन्द्र ।
कमल नयन ते नयन लखि कमलागति दुति मंद ।।[2]

रस दोष के संबन्ध में चिन्तामणि ने भीमम्मट की भाँति लक्षण निर्माण न करके केवल उदाहरण ही प्रस्तुत किये हैं । इस प्रकरण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जिन रस दोषों को प्रबन्धगत समझकर मम्मट ने उनके पद्यबध्द उदाहरण न देकर नाटकों से गद्य वाक्य लिये थे उनके उदाहरण चिन्तामणि ने प्रस्तुत किया। इस प्रसंग में अंगी के अननुसंधान तथा अंग के विस्तार के एक-एक सुन्दर उदाहरण देखिए —

मैं चौपर खेलन लगी, निसा समै में आजु ।
बैठी सखी समाज मैं, भूलि गए वृज राजु ।।[3]

यहाँ चौपड़ खेलते हुए ब्रजराज की सुधि का न आना अंगी का अननुसंधान है। अंग का विस्तारः—

कालिन्दी सुन्दर नदी सुन्दर पुलिन सरूप
बृंदावन घन छाँह तकि कुंजनि रूप अनूप[4]

1: क0क0त0 - 4/75
2: वही 4/76
3: वही - 4/76
4: वही - 4/92

यहाँ कालिन्दी, पुलिन, कुंज आदि का वर्णन विस्तृत रूप से है जबकि अंगी ब्रजराज का वर्णन नहीं है । चिन्तामणि ने असमय उक्ति का उदाहरण दिया है —

भली भई बहुतै अली लागी घर में आगि ।
मेरे कर की गागरी लीन्हीं साजन माँगि ।।[1]

इस पर डा0 सत्यदेव चौधरी की टिप्पणी है कि अकांड में छेद से तात्पर्य है अवसर पर किसी कार्य का बन्द कर देना । पर उक्त उदाहरण में घर में आग लगने पर गोपिका की गागर लेकर आग बुझाने जाने अवसरोपयोगी घटना है । अतः " यह उदाहरण मम्मट की तुलना में अशुद्ध है । किन्तु इस विषय में डा0 जनार्दन स्वरूप अग्रवाल का विचार है कि — यह उदाहरण अकांड प्रथन का है । परवर्ती आचार्यों में जगतसिंह ने भी अकांड प्रथन के लिए यही नाम (असमय उक्ति) दिया है । अकांड छेद का नाम तो असमय अनुक्ति होगा, जैसा भिखारी दास ने बताया है"[2]

उपर्युक्त उल्लेख का तात्पर्य यह नहीं है कि चिन्तामणि का दोष निरूपण अत्यन्त दूषित है । उन्होंने उदाहरणों के उपस्थापन में अत्यन्त सराहनीय कार्य किया है । उनके स्वनिर्मित उदाहरण प्रायः शुध्द एवं शास्त्र सम्मत हैं । जैसे —

ग्राम्य —

चुची जभीरी सी बनी गोल लाल है गाल ।
जा के नैन विलास वह गरे लगै कब बाल ।।[3]

चुची स्तनों के लिए ग्राम्य शब्द है तो जभीरी का उपमान भी कम अनागर नहीं है । सच तो यह है कि पूरे छन्दों में अपरिष्कृत रूचि का शृंगार दिखाई पड़ता है ।

1: क0 क0 त0 - 4/90

2: हिन्दी में काव्य दोषः एक आलोचनात्मक अध्ययन- डा0 जनार्दन स्वरूप अग्रवाल पृष्ठ 330

3: क0 क0 त0 - 4/23

क्लिष्ट :-

द्रव्य नास दृग हीन पद आसन रिपु परगास[1]
फूल खान ताको सुहृद तीन्यों दूखद तास

इसका वास्तव में अर्थ बोध अत्यन्त कठिन है ।

प्रतिकूलाक्षार:-

कट्टत वट्ट विघट्ट कुच छुट्टियः टुट्टिय भार[2]
दंपति जुट्टिये लुट्टि सुख छुट्टिय पट्टिय बार

जहाँ सृंगार रस के अनुकूल माधुर्यगुण सम्पन्न शब्दों का प्रयोग ही शास्त्र सम्मत है वहाँ ओजगुण युक्त शब्दों का प्रयोग निश्चय ही प्रतिकूलाक्षार दोष उत्पन्न करता है ।

संचारी स्थायी तथा रस की स्वशब्द वाच्यता:-

संका दुरजन के लिए याके हिए उछाह ।
अरिन सराहत वीर रस अनुरागी नर नाह ।।[3]

यहाँ 'शंका', 'संचारी', 'उछाह' स्थायी तथा वीर रसों की स्वशब्द वाच्यता दर्शनीय है अतः हम कह सकेत हैं कि चिन्तामणि को दोष निरूपण में पर्याप्त सफलता मिली है, हाँ कुछ स्थलों पर उन्होंने मम्मट का छायानुवाद भी किया है, जैसे-

गर्भित:- औरन के उपकार तें खलसौं कहूँ मिलाप ।
तुम्हहि सिखाऊँ कोहु जनि किये परम संताप ।।[4]

तुलनीय:- परापकार निरतै र्दुजनै सह संगतिः ।
वदामि भवतस्तत्त्वं न विधेया कदाचन ।।[5]

1: क0क0त0 4/26
2: क0क0त0 4/34
3: क0क0त0 4/87
4: क - क0क0त0 4/57
ख- क0प्र0 7/241

निहतार्थ :-

चिन्तामणि –

लोइन ललित विलास है रकत रूप है हाय[1]

मम्मट –

यावकरसाद्र प्रहार शोणितकच्छेनदयितेन ।

विरूद्ध मति कृतः–

चिन्तामणि –

बड़े प्रवीन सुबुद्धि हैं सदा अकारथमित्र[2]।

मम्मट –

अकार्यमित्रमेकोऽसौतस्यकिं वर्णयामहे ।

नेयार्थ :–

मम्मट –

शरत्काल समुल्लासिपूर्णिमा शर्वरीप्रियन् ।
करोति ते मुखं तन्वी चपेटापातनातिथिम् ।।[3]

चिन्तामणि –

चन्दहि हनत चपेट सो तेरो मुख मृदुबानि

अश्लीलः–

मम्मट – हन्तुमेव प्रवृत्तस्य स्तब्धस्य विवरैषिणः ।
यथास्याजयतेपातो न तथा पुनरून्नतिः ।।[4]

चिन्तामणि –

है कठोर मार्यो चहत छिद्र तके जो होइ ।
ताको हरवर पात ज्यों उन्नत है नहिं होइ ।।

1-क- क0 क0 त0 4/13
ख- का0 प्र0 7/145
2-क- क0 क0 त0 4/28
ख- का0 प्र0 7/165
3-क- का0 प्र0 7/157
ख- क0 क0 त0 4/24
4-क- का0 प्र0 7/206
ख- क0 क0 त0 4/83

इसी क्रम में 'अपुष्टार्थता' एवं 'विध्य युक्तता' दोषों के उदाहरण की छाया का उल्लेख भी कम रोचक नहीं है । मम्मट ने 'गगन' के लिए 'अतिविितत'[1] विशेषण दिया है । चिन्तामणि ने समुद्र के लिए अति विस्तीर्ण [2] । दोनों स्थलों पर दोष यह है कि ये विशेषण अपने-अपने विशेष्यों की पुष्टि नहीं करते । विध्ययुक्तता में भी एक जैसी शब्द योजना है यद्यपि वातावरण भिन्न है ।

'वेणीसंहार' के पद्य में मम्मट ने विधि की अयुक्तता बताई है[3]। इसी भाव को लेकर चिन्तामणि ने उक्त दोष का उदाहरण निम्नलिखित दिया है —

प्यौ आयौ परदेश ते सुख समूह अधिकारा ।
प्रति प्रज्वर बोधित सखी सोवैगी तू प्रात ।।[4]

स्पष्ट है कि चिन्तामणि तथा मम्मट दोनों के उदाहरण एक ही वातावरण में ढले हैं । मम्मट का उदाहरण दुर्योधन के विषय में है तो चिन्तामणि का आगतपतिका के विषय में ।

दोष परिहार :5

दोष परिहार के क्रम में भी चिन्तामणि ने मम्मट के विवेचन को अनूदित कर दिया है किन्तु उनके उदाहरण प्रस्तुत नहीं किए हैं विवरण इस प्रकार हैं — 'अवतंस' के साथ 'कर्ण' इत्यादि पद का प्रयोग 'अपुष्ट' अथवा 'निर्हेतु' दोष का उत्पादक है, पर सन्निधान समीपता के बोध के लिए इसका प्रयोग उचित है —

1: क - अतिविततगगनसरणिपरिमुक्ताविश्रामानन्दः ।
मरुदुल्लासितसौरभकमलाकरहासकृद्विजयति ।। का0 प्र0 7/256
ख - अति विस्तीरन समुद को पार उतरि किन जाइ ।
परि नव रस तुव गुन कथन कियौ न जाइ बनाइ ।। क0 क0 त0 4/73
2: प्रयत्न परिबोधितः स्तुतिभिरद्यशेषे निशाम् । का0 प्र0 2/8।
3: क0 क0 त0 4/8
तुलनार्थ— 4: क - क0 क0 त0 4/95
ख - कर्णावतंसादि पदे कर्णादिध्वनिनिर्मितिः सन्निधानादि बोधार्थम् ।
का0 प्र0 कारिका 58 सूत्र 76

क्योंकि प्रसिध्द हेतु को प्रदर्शित करने में कोई दोष नहीं होता –

जहाँ होत परसिध्द है तहँ न रहे तन दोष ।
सब अदृष्ट अनुकरन मैं इनतें नहीं अतोष ।।[1]

सदोष कथन भी दोष युक्त नहीं माना जाता –
"सब अदृष्ट अनुकरन में इतने नहीं अतोष"[2]

जहाँ दोष गुण हो जाया करता है मम्मट का कथन है कि वक्ता आदि औचित्य के कारण कहीं दोष भी गुण हो जाता है और कभी कभी वह न दोष रहता है और न गुण । उक्त कथन की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'वक्ता - बोध्दा' (प्रतिपाद्य) व्यंग्य, वाच्य और प्रकरण आदि के वैशिष्ट्य से कहीं दोष भी गुण हो जाता है और कहीं गुण या दोष दोनों ही नहीं होता"[3] इसका सूक्ष्म उल्लेख चिन्तामणि ने इस प्रकार किया है –

"वक्तादिक औचित्य तें दोषो गुन है जाइ"[4]

अन्त में यह उल्लेख आवश्यक है कि 'काव्यप्रकाश' का आधार लेकर ही चिन्तामणि ने गम्भीर विषय का विवेचन नहीं किया है । अनेक स्थलों पर उदाहरणों का अभाव ग्रंथ को अस्पष्ट बना रहा है तथापि हिन्दी के प्रथम दोष विवेचक के रूप में चिन्तामणि ने जो कुछ लिखा है वह कम प्रशंसनीय नहीं है । रीतिकालीन वातावरण में ढले हुए इनके उदाहरण अत्यन्त सुन्दर और सशक्त हैं । रस दोषों के लिए निर्मित इनके उदाहरण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । अतः मौलिकता के अभाव में भी चिन्तामणि का प्रयास सफल है ।

*** ***

1: क - क0क0त0 4/96
   ख - ख्यातेऽर्थे निर्हेतोरदुष्टता - का0प्र0 - कारिका '59 सूत्र 78

2: क - क0क0त0 4/96
   ख - अनुकरणे तु सर्वेषाम् - का0प्र0 कारिका 59 सूत्र 79

3: वक्त्राद्यौचित्यवशाद्दोषोऽपि गुणः क्वचिन्नोभौ । वक्तृप्रतिपाद्य व्यंग्य वाच्य प्रकरणादीनाम् महिम्नो दोषोऽपि क्वचित् गुणः क्वचिन्नदोषो न गुणः ।
   का0प्र0 कारिका 7/59 सूत्र 80 तथा उसकी वृत्ति

4: क0क0त0 4/97

5: ध्वनि प्रकरण

ध्वनि

अर्थानुसारी काव्य विभाजन का सर्वप्रथम प्रयत्न आनन्दवर्द्धन ने किया है। इन्होंने अर्थ के दो भेद किये – (1) वाच्य और (2) प्रतीयमान। अतः इन्होंने प्रतीयमान अर्थ की प्राधान्य स्थिति में ध्वनि-काव्य, इसकी गौण स्थिति में गुणीभूत व्यंग्य काव्य तथा प्रतीयमान के बदले वाच्य वाचक सौन्दर्य की विवक्षा में चित्र-काव्य माना है। इन्हीं तीन वर्गों को आचार्य मम्मट ने उत्तम, मध्यम, और अवर नाम दिये हैं। चूँकि ये नाम श्रेणी भेद को दृष्टि में रखकर दिये गये हैं अतः आनन्दवर्द्धन के भेदों से इनका मेल नहीं होता क्योंकि आनन्दवर्द्धन व्यंग्य के मात्रात्मक भेद को महत्त्व देते हैं।

अस्तु, आचार्य चिन्तामणि ने मम्मट एवं उनके परवर्ती विद्यानाथ आदि के ग्रन्थों का आश्रय लेकर कुछ संशोधन के साथ मम्मट का ही वर्गीकरण स्वीकार किया है।

मम्मट ने वाच्यातिशायी व्यंग्य को उत्तम काव्य कहा है और उसको ध्वनि नाम स्वीकार किया है। वाच्य से अधिक चमत्कारी व्यंग्य के न होने पर, अर्थात् गुणीभूत व्यंग्य होने पर उक्त काव्य को मध्यम काव्य माना है। व्यंग्य से रहित शब्द-चित्र एवं अर्थ-चित्र को अवर काव्य की संज्ञा दी है।[1] किन्तु व्याख्या के क्रम में अतिशायी का अर्थ –" प्रधान भूत स्फोट रूप व्यंग्य व्यंजकस्य शब्दस्य ध्वनि रिति व्यवहारः कृतः।"[2] अव्यंग्य एवं अवर की व्याख्या करते हुए लिखा है कि –"अव्यंग्यमितिस्फुट प्रतीतमानार्थ-रहितम्। अवरम् अधमम्"[3] इसी आधार पर विद्यानाथ ने व्यंग्य के प्रधान-अप्राधान्य एवं अस्फुटत्व के आधार पर उत्तम, मध्यम तथा अधम की संज्ञा दी है[4] चिन्तामणि ने भी इसी प्रकार वर्गीकरण किया है –

1: काव्यप्रकाश - 1/4,5 – सूत्र 2,3,4

2: वही 1/4 की वृत्ति

3: वही 1/5 की वृत्ति

4: प्र० रु० भू० - विद्यानाथ पृष्ठ - 5।

उत्तम मध्यम अधाम ये, त्रिविध कवित पहिचानि ।
तिनके लक्षन उदाहरन, दैत लेहु मन आनि ।।
वाक अर्थते कहत मानि, व्यंग्य अधिक जहँ होइ ।
सौं जन उत्तम कवित यह, जानत है कवि कोइ ।।
उत्तम व्यंग्य प्रधान गन, अप्रधान गन व्यंग्य ।
सो मध्यमपुनि अधामगनि, त्रिविध चित्र अव्यंग ।।[1]

यहाँ चिन्तामणि ने 'अतिशायी' आर 'अनतिशायी' जैसे शब्दों का प्रयोग न करके मम्मट सम्मत विद्यानाथीय प्रधान, अप्रधान शब्द का प्रयोग किया ह । 'अवर' के स्थान पर मध्यम को महत्त्व दिया ह, और अव्यंग्य के स्थान पर अस्फुट व्यंग्य का उल्लेख नहीं किया ह । उत्तम व्यंग्य को तो ध्वनि नाम नहीं दिया गया है किन्तु मम्मट के 'बुधैकथितः'[2] तथा आनन्दवर्द्धन के 'सहृदयश्लाघ्यः'[3] को 'जानत है कवि कोइ' में समेटने का सुन्दर प्रयास किया गया है ।

इन्होंने व्यंग्य की परिभाषा दो स्थानों पर दी है । पहले का उल्लेख शब्द-शक्ति विवेचन में किया जा चुका है ।[4] पुनः उन्होंने लिखा है —

वाच्य लक्ष्यते भिन्न जे, कवित सुनो ते अर्थ ।
भासे ते सब व्यंग्य कहि, बरनत सुकवि समर्थ ।।[5]

तात्पर्य यह कि जहाँ वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न अर्थ भासित होता है उसे व्यंग्य अर्थ कहते हैं जिनका वर्णन समर्थ कवि ही करते हैं ।

इस प्रकार व्यंग्य की परिभाषा के उपरान्त उत्तम काव्य के दो उदाहरणों का उल्लेख करके उन्होंने ध्वनि के भेदोपभेद की चर्चा की है । स्पष्ट रूप से ध्वनि का लक्षण नहीं दिया है अतः ऐसा प्रतीत होता है कि व्यंग्य और ध्वनि को उन्होंने

1: क0क0त0 5/2/1,2,3

2: का0प्र0 1/4 सूत्र 2

3: ध्वन्यालोक 1/2 पृष्ठ ११

4: क0क0त0 5/1/7

5: वही 5/2/4

मम्मट के संकेत से पर्यायवाची ही मान लिया है ।

ध्वनि के भेद और उनका स्वरूपः-

ध्वनि के प्रमुख दो भेद हैं । एक — अविवक्षित वाच्य और दूसरा — विवक्षित वाच्य ।

एक अविवक्षित वाच्य ध्वनि एकु विवक्षित वाच्य ।
द्वैविध उत्तम काव्य यह सत कवि पंडित राच्य ।।[1]

क - अविवक्षित वाच्यः-

जहाँ वक्ता की इच्छा अभीष्ट वाच्यार्थ में नहीं होती वहाँ अविक्षित वाच्य ध्वनि होता है —

वक्ता की इच्छा न जँह, वाच्य अर्थ में होइ ।
सो अविवक्षित वाच्य है, कहत सकल कवि लोइ ।।[2]

इस अविवक्षित वाच्य के भी दो भेद किए गए हैं । अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य तथा (अन्यार्थ) संक्रमित वाच्य[3]। डा० सत्यदेव चौधरी ने लिखा है कि " ये दोनों पदगत और वाक्यगत होते हैं । इस प्रकार अविवक्षित वाच्य ध्वनि चार प्रकार की हुई[4] किन्तु चिन्तामणि के ग्रन्थ में ऐसा कहीं कोई उल्लेख नहीं है अतः इसे भ्रान्ति ही मानना चाहिए ।

ख - विवक्षितान्यपरवाच्यः-

जहाँ वाच्य अर्थ विवक्षित रहता हुआ भी अन्य अर्थ का बोधक होता है । वहाँ

1: क०क०त० 5/2/7

2: क०क०त० 5/2/8

3: अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य अन्यार्थ संक्रमित वाच्य ।
द्विविध मूल ध्वनि वरनते अविवक्षित वाच्य ।। क०क०त० 5/2/8

4: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा० सत्यदेव चौधरी- पृष्ठ 191

विवक्षितान्य पर वाच्य ध्वनि होती है । इसके दो भेद हैं - एक - लब्ध(संलक्ष्य)कृम व्यंग्य दूसरा - अलब्ध (असंलक्ष्य) कृम व्यंग्य ।

वाच्य अर्थ सुविवतिता, वाच्य द्विविध पहिचानि ।
लब्ध अलब्ध कृमानि सो, व्यंग्य सु मन मैं आनि ।।[1]

संलक्ष्य कृम व्यंग्यः-

जब वाच्यार्थ के अनन्तर व्यंग्यार्थ की प्रतीति में पूर्वापरकृम लक्षित होता है उसे संलक्ष्य कृम व्यंग्य कहते हैं । इसके प्रथमतः तीन भेद हैं -
(अ) शब्दशक्त्युद्भव व्यंग्य (आ) अर्थशक्त्युद्भव व्यंग्य (इ) शब्दार्थशक्त्युद्भव व्यंग्य ।

प्रतिशब्दाकृत लब्ध कृम व्यंग्य सु द्विविध बखानि ।
शब्द अर्थ जुग सक्तिभव इमि ध्वनि भेद सुजानि ।।[2]

(अ) शब्दशक्त्युद्भव व्यंग्य :-

शब्दशक्त्युद्भव संलक्ष्यकृम के दो भेद हैं - 1: अलंकारगत और 2: वस्तुगत । फिर इन दोनों के पदगत और वाक्यगत भेद करने पर शब्दशक्त्युद्भव के चार प्रकार हो जाते हैं ।

अलंकार अरु वस्तु जहं, व्यक्त शब्द ते होइ ।
शब्द शक्ति उद्भव सु वह वरनत है कवि कोइ ।।[3]
दोउ पदगत वाक्यगत जो गन चार प्रकार ।[4]

(आ) अर्थशक्त्युद्भव संलक्ष्य कृम व्यंग्यः-

अर्थशक्त्युद्भव संलक्ष्यकृम व्यंग्य के तीन भेद किये हैं - 1: स्वतः संभवी,

---

1: क0क0त0 5/2/10
2: क0क0त0 5/2/12
3: क0क0त0 5/2/13
4: क0क0त05/2/17

2: कविप्रौढ़ोक्तिमात्रसिद्ध तथा 3: कवि निबद्धमात्र प्रौढ़ोक्तमात्रसिद्ध । इन तीनों को पुनः चार-चार प्रकार हैं – वस्तु से अलंकार, वस्तु से वस्तु, अलंकार से अलंकार व्यंग्य ।

इस प्रकार कुल भेदों की संख्या 12 हुई । इन बारह भेदों को पुनः तीन-तीन प्रकारों में विभक्त किया है – पद गत, वाक्य गत और प्रबन्धगत । इस प्रकार अर्थ शक्त्युद्भव ध्वनि के कुल 36 भेद हो जाते हैं :-

अर्थ शक्ति भवभेद को, करत विबुध विस्तार ।
स्वतस्संभवी सुकवि की, प्रौढ़ उक्ति पर सिद्धि ।।
त्रिविधा अर्थ व्यंजक छविधि, वस्तु चमत्कृत रूप ।
त्योंही व्यंग्य छभेद सो, द्वादस भेद अनूप ।।[1]
अर्थ शक्ति उद्भव अरथ बारह भेद विचारि ।
सो पद वाक्य प्रबन्धगत छत्तिस भांति निहारि ।।[2]

(इ) शब्दार्थशक्त्युद्भव संलक्ष्यक्रम व्यंग्य :-

केवल वाक्यगत शब्दार्थशक्त्युद्भव संलक्ष्यक्रम व्यंग्य केवल वाक्यगत होता है । इस प्रकार संलक्ष्य क्रम व्यंग्य के भेद निम्नलिखित हैं –

क - शब्दशक्तित्युद्भव — 4
ख - अर्थशक्तित्युद्भव -- 36
ग - शब्दार्थशक्तित्युद्भव — 1

कुल योग 41

संलक्ष्यक्रम भेद यों कहे एक चालीस[3]

असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य:-

असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य को चिन्तामणि ने रसादि ध्वनि कहा है और इस

1: क0क0त0 5/2/17, 18, 19
2: वही 5/2/35
3: वही 5/2/44 की गद्य-वृत्ति

आदि से रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावशान्ति, भाव सन्धि, भावशबलता आदि इन आठ का ग्रहण किया है ।

असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि, आनि रसादिक चित्र ।
इतै आदि पद लक्ष्यजे, तिन्हैं गनावत मित्र ।।
प्रथमहि रस पुनि भाव गनि, तिनके पुनि आभास ।
भाव सान्ति अनभाव को, उदै बखानि प्रकास ।।
भाव सन्धि पुनि सबलता, भाव न की मन आनि ।
असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि तिनके भेद बखानि ।।[1]

रस को असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य क्यों कहते हैं ? इसकी व्याख्या करते हुए चिन्तामणि लिखते हैं कि –

गनि विभाव अनुभाव अरु, संचारीन मिलाइ ।
जित थाई है भाव जो, सौ रस रूप गनाइ ।।
कछुक यथाक्रम अधिक यह, तीनहु को क्रम कोइ ।
व्यंजन को न लख्यौ परै, तौ अलक्ष्य क्रम होइ ।।[2]

तात्पर्य यह है कि इत्यादि स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से अभिव्यक्त होते हैं तो उनकी रस संज्ञा होती है । विभावादि कारण हैं और रस कार्य, क्योंकि कारण पूर्ववर्ती होता है और कार्य परवर्ती । ऐसी दशा में कारण और कार्य के बीच एक क्रम होता है किन्तु वह क्रम शीघ्रता के कारण लक्षित नहीं होता । इस सम्बन्ध में चिन्तामणि ने काव्य प्रकाश एवं उनकी टीकाओं से प्रेरणा ली है ।[3] असंलक्ष्य क्रम में 'नञ्' का प्रयोग क्रम के नितान्त अभाव का बोधक नहीं है; अपितु शीघ्रता के कारण उसका लक्षित न होना मात्र समझना चाहिए ।

1: क0 क0 त0 – 5/2/47
2: क0 क0 त0 – 5/2/48, 49
3: का0 प्र0 – 4/41 की वृत्ति

मम्मट ने पद, पदांश, रचना, वर्ण, वाक्य और प्रबन्धगत होने से इसमें छ प्रकार माने हैं[1] किन्तु चिन्तामणि ने इन भेदों का उल्लेख नहीं किया है । इस प्रकार चिन्तामणि के द्वारा प्रस्तुत ध्वनि के 44 भेद प्राप्त होते हैं । (इसका वंश वृक्ष परिशिष्ट में देखिए)

ध्वनि संबन्धी उदाहरणों की प्रस्थापना में चिन्तामणि ने अपनी कवि प्रतिभा का पूर्ण उपयोग किया है । लक्षणानुकूल सरस पद्य रचना ~~पद्य रचना~~ के कारण इन स्थलों में इनके आचार्यत्व एवं कवित्व का मणिकांचन संयोग दिखाई पड़ता है । उदाहरणों की संगति के लिए गद्य का आश्रय लेकर इन्होंने विचार विवेचन को अधिक स्पष्टता प्रदान की है । कुछ उदाहरण देखिए –

सखि निसि तै पति सौ जिती, रति रन मदन प्रसाद ।
सुन्दरि जय दुन्दुभि रच्यो, कलकिंकिनी निनाद ।।[2]

यहाँ उद्दीप्तकामा नायिका के रति का प्रसंग है । रात्रि में रति युद्ध में नायिका विजयिनी हुई इस बात का संकेत उसके कटि किंकिनी का निनाद मानो डिण्डिम-घोष करता है । यहाँ पूरे प्रकरण से नायिका की विपरीत रति व्यंजित होती है । अत्यन्ततिरस्कृत वाच्य ध्वनि का उदाहरण इस प्रकार है –

सज्जनता प्रगटित करी, किया बहुत उपचार ।
ऐसो काज करो सदा, जीवो वर्ष हजार ।[3]

किसी अपकारी व्यक्ति के प्रति उसके अपकार से मारे हुए दुखियारे की यह उक्ति है । प्रत्यक्ष अर्थ तो यह है कि आपने बड़ी सज्जनता दिखाई है, आपने मेरा बड़ा उपकार किया है । मित्र सदा ही ऐसा करते हुए आप हजार वर्ष तक जीते रहें किन्तु वस्तुतः विपरीत लक्षणा से यह अर्थ होगा कि अरे दुष्ट ! तूने अपनी दुर्जनता को प्रगट करते हुए मेरा बहुत बड़ा अपकार किया है । तू ऐसा न कर सके तभी अच्छा है, और जितने जल्दी संसार को छोड़ दे उतना ही ठीक है । यह दोहा मम्मट के निम्नलिखित श्लोक का छायानुवाद है –

उपकृतं बहु तत्र किमुच्यते सुजनता प्रथिता/भवता ~~परम्~~
विदधदी दृशमेव सदा सखे सुखितमास्स्व ततः शरदाशतम् ।।[4]

1: का0 प्र0 4/42,43 सूत्र 58 से 61 तक
2: क0 क0 त0 5/1/5
3: क0 क0 त0 5/2/9
4: का0 प्र0 4/24 उदाहरण

रीतिकालीन रंगीनी एवं चमत्कार प्रवृत्ति भवता परम् के अनुरूप कवि-प्रौढ़ोक्तिसिद्ध का यह उदाहरण . . देखिए --

बाजे जब बाजे महा मधुर नगर बीच नागरिनिनिखिल ललकनि अकुलाई हैं
चिंतामनि कहें अति परम ललित रूप अटापर दूलह विलोकन को आइ है
फैली महलनि मनि मेखला झलक महा मनि नूपुर की निनाद की झाइ है
पहिले उज्यारी तन भूषन मयूरवन की पीछे ते मयंक मुखी झरोखन आई है[1]

इसकी व्याख्या स्वयं चिन्तामणि ने इस प्रकार की है --

" इहाँ चन्द्र प्रदीपादिक जे ल्हादक तैजस पदार्थ तिनके अगमन ते पहिले ही दीप्ति फैलति तैसे उनके मुखादिक अंगन की अरु रत्नन की दीप्ति फैलती है पहिले उज्यारी तन भूषन मयूख के पीछे ते मयंक मुखी झरोखन आई है।। यह कवि प्रौढ़ोक्ति शब्द वस्तु करि इनसो चन्द्र प्रदीपादिक तिनसो उपमान उपमेय भाव है याते उपमालंकार व्यंग है ।"[2]

चन्द्रमुखी के गवाक्ष पर आने से पहिले ही उसके शरीर और आभूषण की दीप्ति का गवाक्ष पर फैल जाना सौन्दर्य की अतिशयता को भी व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ है । उपमालंकार है और व्यंग्य तो है ही ।

मानिनी राधा के मानापनोदन हेतु राधा की प्रशंसा में श्री कृष्ण की यह उक्ति द्रष्टव्य है । यह कवि निवद्धवक्तृप्रौढ़ोक्तिसिद्ध स्वतः सम्भवी अलंकार ध्वनि का सुन्दर उदाहरण है ।

1: क0क0त0 5/2/27

2: क0क0त0 5/2/28 वृत्ति

3: क0क0त0 5/2/33

अमल अमोलमुक्ताहल को हारतै सौंहंसनि अमोल अमोल मुक्ताहल के हारसी
चिन्तामनि चारु चीर छुल्यो छीरफेन सम सरद जुन्हैया सुखसखनमी के सारखी
जगत हमारी पर रीझि है हमारी प्यारी, राधा रिझवारि सारदा कोअवतारसी
धवल पुलिन मध्य जमुना की धार धासी दुरद/रदन धार ... परजनु आरसी[1]

प्रबन्ध शक्त्युद्भव ध्वनि का उत्तम उदाहरण के रूप में सीता के वियोग में राम के विलाप का प्रसंग दिया गया है । छ छन्दों में निबद्ध इस प्रसंग में रामसीता का विरहजन्य उन्माद है ।

उल्लेख्य है कि प्रबन्ध शक्त्युद्भव ध्वनि के उदाहरण काव्य प्रकाश में भी नहीं दिये गये हैं । राम की उन्मादिनी स्थिति को सूचित करने के लिए एक छन्द पर्याप्त होगा –

ऐसे सवै वन के द्रुम जंतुन पूछत जानकी जी को पुकारै ।।
व्याकुल है मुरझाई गिरे, उछलै मनि नैननि नीर की धारै ।।
दुख महोधि की लहरै, जनु मूरछा आवति जाति अपारै ।।
लछ्मन के उपचार जगे मुख, भाई को दीननिहारि सम्हारै ।।[2]

गुणीभूत व्यंग्यः–

कवि कुल कल्प तरु में गुणीभूत व्यंग को स्थान नहीं दिया गया है । केवल दो स्थानों पर इसका नामोल्लेख मात्र हुआ है – एक – जहाँ ध्वनि प्रकरण में काव्य के तीन भेदों की गणना की गई है –" अप्रधान गन व्यंग सो मध्यम ।" तथा दूसरा – कान्ति नामक अर्थगुण के रसध्वनि एवं गुणीभूत व्यंग्य में अन्तर्भूत करने का निर्देश देते समय ।

रसनध्वनि गुनिभूत पुनि व्यंग जहां रसु होइ ।।
सुतौ दीप्त रस रूप वह, कांत बखानत सोइ ।।[3]

1: क0क0त0 5/2/33
2: क0क0त0 5/2/42
3: क0क0त0 5/2/3

अतः उनका यह प्रकरण अत्यन्त संक्षिप्त है ।

वैशिष्ट्य एवं निष्कर्षः—

कवि कुल कल्प तरु के पंचम प्रकरण के तीन भाग हैं । प्रथम भाग में शब्दार्थ निरूपण है । द्वितीय भाग में 44 पद्यों में ध्वनि के अन्य भेदोपभेदों का और शेष 208 पद्यों में तथा तीसरे भाग में रसध्वनि का निरूपण है । इस प्रकार इन्होंने मम्मट के समान संलक्ष्यक्रम व्यंग्य रूप रस ध्वनि की चर्चा ध्वनि के भेदों के बीच न करके उनको स्वतंत्र महत्त्व दिया है । इससे रस ध्वनि के निरूपण में एक व्यवस्था आ गई है और उसका महत्त्व भी स्पष्ट रूप से लक्षित हुआ है ।

एक प्रश्न उठता है कि चिन्तामणि को ध्वनिवादी आचार्यों की कोटि में रखा जाय या रस-वादी क्योंकि एक ओर उन्होंने रस को उत्तम काव्य माना है तो दूसरी ओर रसमय वाक्यों को ही काव्य को उत्तम काव्य की संज्ञा दी है । इस संबन्ध में स्पष्ट ही यह कहा जा सकता है कि ध्वनिवादी आचार्यों ने भी अन्ततः रस ध्वनि को ही उत्तम काव्य माना है फिर चिन्तामणि का रस ध्वनिवादी होना अनायास ही सिद्ध हो जाता है ।

मम्मट के 51 ध्वनि भेदों के स्थान पर यद्यपि चिन्तामणि ने केवल 44 भेदों की चर्चा की है किन्तु अन्तर केवल भेदों के विस्तार का है उनकी मौलिक स्थापनाओं में कोई मतभेद नहीं है । जहाँ तक उदाहरणों का प्रश्न है चिंतामणि के अधिकांश उदाहरण स्वनिर्मित हैं । शास्त्र सम्मत होने के साथ-साथ उनके स्वनिर्मित उदाहरण सरस और सुन्दर भी हैं । उन्हें सुबोध और सरस बनाने के लिए चिंतामणि ने जो गद्यात्मक वृत्तियाँ दी हैं उनसे उनका आचार्य कर्म और अधिक उपादेय बन गया है ।

यद्यपि उदाहरणों के अतिरिक्त विवेचन के क्षेत्र में कोई भी मौलिकता नहीं है तथापि इनकी निरूपण शैली प्रशंसनीय है । सरस उदाहरणों की उपस्थापना एवं कवित्व शक्ति के प्रदर्शन में चिन्तामणि अपने प्रतिद्वन्दियों को निश्चय ही पीछे छोड़ गए हैं । यह कहने में संकोच नहीं है ।

ooooooooooo

6: शब्द शक्ति प्रकरण

शब्द शक्ति

'कविकुल कल्पतरू' के पंचम प्रकरण में चिन्तामणि ने प्रारम्भ में काव्यप्रकाश को आधार बनाकर शब्द शक्ति का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है । पदार्थ निरूपण का यह प्रसंग भी आचार्य चिन्तामणि के लिए एक श्रेय का कारण है क्योंकि इन्होंने इस दिशा में भी सर्व प्रथम प्रयास किया ।[1] प्रद्यपि अभिधा, लक्षणा और व्यंजना आदि की सप्रभेद सोदाहरण चर्चा की गई है किन्तु यह प्रसंग प्रायः अत्यन्त संक्षिप्त है । इसके दो कारण सम्भव हैं – (1) शब्दशक्ति का विवेचन एक अत्यन्त गहन विषय है, जिसकी सूक्ष्म एवं स्पष्ट विवेचना में संस्कृत के आचार्यों को भी सर्वत्र, सफलता नहीं मिली[2] है (2) फिर हिन्दी के आचार्यों के पास तो विषय के प्रतिपादन के योग्य प्रौढ़ एवं परिष्कृत भाषा का प्रायः अभाव था । अतः कहीं-कहीं अस्पष्टता या भ्रान्ति का जो अनुभव होता है उसका दोष आचार्य के सामर्थ्य की अपेक्षा उसकी सीमा को दिया जाना चाहिए ।

यह कहा जा सकता है कि चिन्तामणि ने जब कहीं-कहीं गद्य का भी प्रयोग किया है तो उन्हें गद्य में शब्द शक्ति का गम्भीर विश्लेषण करना चाहिए था किन्तु ग्रन्थ के स्वरूप को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि आचार्य शास्त्रार्थ की प्रणाली को नहीं अपनाना चाहते थे ।

चिन्तामणि ने संस्कृत आचार्यों की भाँति शब्द शक्ति की परिभाषा प्रस्तुत न करके उसके त्रिविध भेदों का ही वर्णन किया है जो इस प्रकार है ।

<u>पद और अर्थः</u> –

'कवि कुल कल्पतरू' में पद (शब्द) के वाचक, लक्षक (लाक्षणिक) तथा व्यंजक ये तीन प्रकार बताये गये हैं और उसी के आधार पर क्रमशः वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य ये तीन अर्थभेद स्वीकृत किये गये हैं ।[3]

1- हिन्दी में आचार्य चिंतामणि के पूर्व शब्दशक्ति विवेचन से संबन्धित कोई भी रचना प्राप्त नहीं है । यद्यपि चिन्तामणि से पूर्व आचार्य केशव का नामोल्लेख अवश्य आता है लेकिन शब्द शक्ति विवेचन विषयक कोई भी ग्रन्थ उनके द्वारा रचित नहीं मिलता ऐसी स्थिति में हिन्दी में काव्यशास्त्रीय परम्परा के अन्तर्गत शब्द शक्ति विवेचन के प्रथम प्रयास का समस्त श्रेय- आचार्य चिंतामणि को दिया जा सकता है ।

रीतिकवियों की मौलिक देन पृष्ठ 73 – डा0 किशोरी लाल गुप्त

2: परन्तु ये (शब्द शक्ति और अलंकार) विषय तो हैं ही इतने गम्भीर और सूक्ष्म कि संस्कृत के भी अनेक आचार्य इनमें साफ नहीं उतर पाये । रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ १४३

3-पद वाचक अरु लाक्षणिक, व्यंजक त्रिविध बखान ।
वाच्य लक्ष्य अरु व्यंग्य पुनि, अर्थौ तीनि प्रमान ।। क0क0त0-5/।

तुलनार्थ3- का0प्र02/5/तथा 2/6 कारिका सूत्र 5, 6

शब्द की शक्तियों में अभिधा पर प्रकाश नहीं डाला गया है और उसकी परिभाषा भी नहीं दी गयी है किन्तु आगे अभिधा का उल्लेख किया गया है ।[1] इससे स्पष्ट है कि चिन्तामणि ने शब्द की क्रमशः अभिधा, लक्षणा और व्यंजना इन तीन शक्तियों को यथावत् स्वीकार किया है ।

वाचक की परिभाषाः –

जिस शब्द का अर्थ बिना अन्तर (भेद व्यवधान) के वर्णित किया जाता है, उसे वाचक शब्द कहते हैं –

बिन अन्तर जा शब्द कर, जा कौ होत बखान ।
सो बाचक पद होत है, कहत सुकवि परमान ।।[2]

यह लक्षण मम्मट के अनुकूल है,[3] किन्तु इसका विस्तार नहीं किया गया है ।

लक्षणा शक्तिः –

लक्षणा शक्ति के स्वरूप को स्थिर करने में चिन्तामणि ने मम्मट के तीन तत्वों का उल्लेख किया है ।[4] वे तत्व हैं – (1) मुख्य अर्थ का बाध (अन्वय की अनुपपत्ति या तात्पर्य की अनुपपत्ति), (2) मुख्यार्थ से योग, (3) रूढ़ि अथवा प्रयोजन से प्रेरित अर्थ का बोध । चिन्तामणि का लक्षण देखिए –

मुख्यारथ के बाध अरु, जोग लक्षणा होइ ।
होत प्रयोजन पाइ कै, कहूँ रूढ़ि हित सोइ ।।[5]

इतना ही नहीं उदाहरण भी संस्कृत परम्परा में अतिशय प्रसिद्ध 'गंगायाम् घोषः' का लिया गया है, और इसका विवेचन इस प्रकार किया गया है ।

गंगाघोषक है जहाँ, होत तीर कौ बोध ।
शीतलतारु पवित्रता, तहाँ प्रयोजन सोध ।।[6]

'गंगायाम् घोषः' इत्यादि में गंगापद के जलप्रवाह रूप मुख्यार्थ में 'घोषः' (आवास) आदि का आधारत्व सम्भव न होने से मुख्य अर्थ की बाधा होने पर सामीप्य

1- क0क0त0 5/7

2- वही 5/2

3- का0 प्र0 2/7 सूत्र - 9

4- मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढ़ितोऽथ प्रयोजनात् ।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणा रोपिता क्रिया ।। का0प्र02/9 सूत्र 12

5 - क0क0त0 5/4

6 क0क0त0 5/5

सम्बन्ध के आधार पर प्रयोजनवशात् मुख्य अर्थ के योग से तट में लक्षणा करके जिन शीतलता और पवित्रता आदि धर्मों की प्रतीति होती है, उस प्रतीति के प्रयोजक व्यापार को लक्षणा कहते हैं[1]। स्पष्ट है कि चिन्तामणि की दृष्टि केवल प्रयोजनवती लक्षणा पर रही है और इसलिए उन्होंने 'गंगायाम्' घोषः' का उदाहरण प्रस्तुत किया है। लक्षणा के इस विवेचन से यह भी स्पष्ट होता है कि आचार्य की दृष्टि मुख्यतः व्यंजना पर रही है, इसीलिए प्रयोजनवती लक्षणा में व्यंजना वृत्ति की स्थिति मान कर वे सीधे व्यंजना पर उतर आए हैं[2]। सम्भवतः व्यंजना और ध्वनि पर ही दृष्टि केन्द्रित होने के कारण लक्षणा के भेदोपभेद की उपेक्षा कर दी गई है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि चिन्तामणि ने लक्षणा सम्बन्धी कोई उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया है किन्तु सौन्दर्य चित्रण में जहाँ उन्होंने विम्बविधान का आश्रय लिया है वहाँ अनायास ही सारोपागौणी लक्षणा के उदाहरणों उपलब्ध हो जाते हैं। अलंकारों के उदाहरणों एवं नायिका भेद के प्रसंगों में लक्षणा के प्रयोग अनायास देखे जा सकते हैं। रूपकातिशयोक्ति अलंकार का प्रस्तुत उदाहरण द्रष्टव्य है:-

पूरन मंडल वेलि के मूल, लग्यो अकलंक मयंक तक्यौ है।
नील सरोज झरै मधु वि(बुं)दन, लैं सरतारका वृंद सक्यौ है।।
डोलत है तिल फूल के पौन, वधू की लखे छवि को न छक्यौ हैं।
गेह के द्वार में काहू महा, सुकृती जन को जनु पुन्य पक्यौ हैं।।[3]

रूप चित्रण का यह एक अत्यन्त मनोरम प्रसंग है। कोई प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा में उत्सुक नायिका द्वार पर खड़ी हुई कवि को दृष्टिगत होती है उसका लोकोत्तर सौन्दर्य कवि के मानस को अनायास ही उदात्तता से भर देता है उस

~~1- क0 क0 त0 5/5~~
1- तुलनीय - का 0 प्र0 2/9 सूत्र 12 की वृत्ति।
2- क0 क0 त0 - 5/6
3 क० क० त० - 3/12

विरहिणी का रूप चित्रण करते हुए कवि उस भाग्यशाली प्रियतम की प्रशंसा करता है जिसके अनन्त पुण्यों के फल के रूप में ऐसी रूपवती साध्वी पत्नी प्राप्त हुई है[1] मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान है, दाँत बेली के फूल जैसे हैं, नील कमल जैसी आखों से टपकता हुए मधु-बिन्दु तारागणों से युक्त मँयक का विभ्रम उत्पन्न कर रहे हैं। तिल फूल जैसी नासिका से निर्गत उच्छ्वास-पवन से प्रेरित, वन्धूक जैसे कम्पित अधर को देख कर कौन नहीं चकित रह जाता ? क्या सचमुच किसी अनन्त पुण्यात्मा के गेह के द्वार पर उस का पुण्य ही अपने परिणाम को नहीं प्राप्त हो रहा है ? यहाँ रूपकातिशयोक्ति के द्वारा मुख में पूर्ण चन्द्रमा की, दातों में बेलि के फूल की, ओष्ठ में वन्धूक कुसुम की जो कल्पना की गई है उसका आरोप कामिनी के सौन्दर्य को पुष्पमय बना रहा है। निश्चय ही इस पुष्प का परिपाक जब फल के रूप में होगा तो यह किसी अनन्त पुण्यात्मा को ही प्राप्त होगा। यहाँ साध्यवसाना लक्षणा द्वारा जो चमत्कार प्रस्तुत किया गया है वह कम आकर्षक नहीं।

व्यंजनाशक्ति :-

कहा जा चुका है कि चिन्तामणि ने प्रयोजनवती लक्षणा में व्यंजना की स्थिति मानी है। इस अंश पर वे साहित्यदर्पण से प्रभावित हुए हैं उनका कथन है कि —

तहाँ व्यंजना वृत्ति वह होत लक्षना मूल ।
जहाँ प्रयोजन जानिए कहत ग्रन्थ अनुकूल ।।[1]

व्यंजन की परिभाषा भी काव्य-प्रकाश में सुस्पष्ट नहीं है। अस्तु, चिन्तामणि को व्यंजना की परिभाषा के लिए भी साहित्यदर्पण का आश्रय लेना पड़ा हैं —

जंह अभिधा अरु लक्षना, अति कछु भिन्न प्रकार ।
होइ अर्थ को बाध तहं कवि व्यंजक व्यापार ।।[2]

इस प्रकार इनके अनुसार जहाँ अभिधा लक्षणा और व्यंजना वृत्तियों के विरत हो जाने पर जिस शक्ति के द्वारा कुछ भिन्न प्रकार के अर्थ की प्रतीति होती है उसे व्यंजना

1- क० क० त० 5/1/6

तुलनीय :-

लक्षणोपास्यते यस्य कृते तत्तु प्रयोजनम् ।
यथा प्रत्याय्यते साऽस्याद् व्यंजना लक्षणाश्रया ।।
सा०द० 2/15

2- क० क० त० 2/7

कहते हैं । मम्मटादि आचार्यों ने व्यंजना के दो मुख्य भेद किये हैं -

1 - शाब्दी

2 - आर्थी

पुनः शाब्दी व्यंजना के दो भेद किये हैं - 1 - लक्षणामूला और 2 - अभिधामूला । चिंतामणि ने तो इन भेदों को स्वीकार किया है किन्तु इनका नाम संकेत नहीं दिया है।

लक्षणामूलाशाब्दी व्यंजनाः-

जिस प्रयोजन की प्रतीति के लिए लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग किया जाता है, उस प्रयोजन की प्रतीति करने वाली लाक्षणिक शब्द से प्राप्त शक्ति लक्षणा-मूला शाब्दी-व्यंजना कहलाती है जैसे 'गंगायामघोषः' उदाहरण में देखा जा सकता है कि वहाँ गंगा में यह शब्द गंगातट रूप लक्षणार्थ का बोध कराता है और उस लक्षणार्थ का प्रयोजन है 'घोष की पवित्रता आर शीतलता आदि की व्यंजना कराना । इसका उदाहरण निम्नलिखित हैः-

भई अनूपम चोप तनु, प्रफुल्लित नैननि चैन ।
अंकुस दै फेर्‌यो हियो, बालापन ते मैन ।।[1]

यह वयः सन्धि का चित्र है । नायिका का बालापन की ओर स्वाभाविक आकर्षण विद्यमान है किन्तु कामदेव जो इस समय उसके मनरूपी हाथी का महावत हो रहा है । उसे बरबस यौवनोद्‌गम रूपी अंकुश से शिशुता की ओर से मोड़ रहा है और इसीलिए नायिका के शरीर में एक अवर्णनीय आभा छा गई है, तथा उसकी आँखें विकसित(बड़ी-बड़ी) हो गई हैं जिनमें चैन आनन्द अथवा मस्ती भरी हुई है । यहाँ 'प्रफुल्लित' 'अंकुश' आदि अनेक पद हैं जो लाक्षणिक हैं । चोप का सामान्य अर्थ कान्ति है उसका लक्ष्यार्थ हुआ सौन्दर्य का उदय । प्रफुल्लित का अर्थ है अच्छी प्रकार से खिलना, जो पुष्प-धर्म है, इसका लाक्षणिक अर्थ है विकसित होना अर्थात् लाक्षणिक बड़े-बड़े नैन ।

1: क0 क0 त0 - 2/7

तुलनीय :- विरतास्वभिधाद्यासु यथार्थो बोध्यते परः
सा वृत्तिर्व्यंजनानाम शब्दस्यार्थादिकस्य च । सा0द0 2/12,13

अंकुश हाथी के लिए प्रयोग में आता है किन्तु यहाँ हृदय के लिए अंकुश का प्रयोग होने से अंकुश का लाक्षणिक अर्थ हुआ नियंत्रण ।

अब व्यंग्यार्थ पर विचार करें । वक्तृ-बोद्धव्य-वैशिष्ट्य से नायिका के शरीर में अनुपम सौन्दर्य का उल्लेख उसके मदनोद्दीपक आकर्षक सौन्दर्य को व्यंजित कर रहा है । नेत्रों को प्रफुल्लित कहने से व्यंग्य रूप में नेत्रों का कमलवत् होना अनायास भासित हो जाता है । प्रफुल्लित नेत्रों में चैन है का एक अर्थ जहाँ नायिका के आँखों में मस्ती का संकेत करता है, वहीं दूसरी ओर उसके मुख्य अर्थ में बाधा भी देखी जा सकती है क्योंकि 'चैन' मस्ती या आनन्द केवल नायिका के ही आँखों में ही नहीं है वरन् बड़ी-बड़ी आँखों को देख कर दर्शक को भी उसकी कमनीयता का अपूर्व आनन्द प्राप्त हो रहा है । अंकुश द्वारा हृदय को फेरने में कामदेव का यौवन की ओर ले जाना नायिका की अनिच्छा से युक्त है । इतना ही नहीं उसमें बचपन की ओर नायिका की ललक और बरबस यौवन की अनुभूति एक विचित्र सुखद वेदना से युक्त है । यह सब अंकुश का लक्षणामूलक व्यंग्यार्थ है । अतः नवोद्भिन्न यौवना नायिका का चित्रण लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना से ही चमत्कार युक्त हो सका है ।

अभिधामूला शाब्दी व्यंजनाः-

मम्मट के अनुसार संयोगादि के द्वारा अनेकार्थ शब्दों के वाचकत्व के (किसी एक विशिष्ट अर्थ में) नियंत्रित हो जाने पर (उससे भिन्न) अवाच्य अर्थ की प्रगति प्रतीति कराने वाला शब्द का व्यापार व्यंजना (अभिधामूला व्यंजना) कहलाता है ।[1] इसी को चिन्तामणिनेइस प्रकार प्रस्तुत किया है -

शब्द अनेकारथ वरनि अति कछु भिन्न प्रकार ।
होइ सजोगादिक गनन इत अवाच्य को सार ।।2

मम्मट ने भर्तृहरि के वाक्यपदीय की दो कारिकायें उद्धृत करके शब्दों की वाचकता को नियंत्रित करने वाला अथवा अनेकार्थी शब्दों के प्रकरण विशेष में विशेष अर्थ

1: अनेकार्थस्य शब्दस्य वाचकत्वे नियंत्रिते ।
संयोगाद्यैरवाच्यार्थधीकृद् व्यापृतिरंजनम् ।।
काo प्रo - 2/19 सूत्र 32

2: कo कo तo - 5/8

का निर्माण कराने वाले चौदह तत्वों का उल्लेख किया है । वे इस प्रकार हैं —

1: संयोग 2-विप्रयोग 3-साहचर्य 4- विरोधिता 5- अर्थ 6- प्रकरण 7- लिंग 8- शब्दान्तरसान्निधि 9- सामर्थ्य 10- औचित्य 11- देश 12- काल 13- व्यक्ति 14- स्वरादि । किन्तु विवेचन के क्रम में स्वर (उदात्तादि) को केवल वेद में माना है काव्य में नहीं) साथ ही आदि पद से अभिनय आदि को ले लिया है ।[1]

चिन्तामणि ने लक्षण निरूपण के क्रम में केवल 11 की चर्चा की है वे इस प्रकार हैं:— 1- संयोग 2- वियोग 3- अर्थ 4- प्रकरण 5- लिंग 6-शब्दान्तर संनिधि 7- सामर्थ्य 8- औचित्य 9- देश 10- काल तथा आभरन[2] (अभिनय?) संयोगादिक जो गनो प्रथम एक सो

संयोगादिक जो गनो प्रथम एक सो जोग ।
चिन्तामनि कवि कहत इत बरनो बहुरि विजोग ।।
अर्थो प्रकरन चिन्ह पुनि आनशब्द कृत संग ।
सामर्थी औचित्य औ देस समै पर संग ।।
और आभरन आदि तें शक्ति नियंत्रित रीति ।
एक अर्थ में और की, व्यंजन ते परतीति ।।[3]

किन्तु उदाहरणों का उल्लेख करते हुए विरोध और साहचर्य के भी उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जिससे कुल 13 तत्तवों का समावेश किया है । हाँ अर्थ और प्रकरण के उदाहरण नहीं दिये गए हैं । 'व्यक्ति' (पुलिंग, स्त्रीलिंग आदि में प्रयुक्त अनेकार्थी शब्द) का सर्वथा उल्लेख नहीं है । लगता है भाषा में इस प्रकार के शब्दों का प्रायः अभाव देखकर ही इसकी उपेक्षा कर दी गई है ।

1: इन्द्रशत्रुरित्यादौवेद एव न काव्ये स्वरो विशेष प्रतीतिकृत -।
का० प्र० - 2/9 की वृत्ति

2: दोह नं० 5/1/12 में 'और आभरन आदि तें' पाठ है किन्तु दोहा नं० 5/1/18 में 'अभिनय तै पेखि' का उल्लेख है । अतः अभिनय के अर्थ में आभरन का प्रयोग है अथवा आभरन अलंकार का बोधक है यह स्पष्ट नहीं होता । जो हो मम्मट के के साक्ष्य पर अभिनय का ही संग्रह करना उचित प्रतीत होता है ।

3: क० क० त० - 5/1/10, 11, 12

जहाँ तक उदाहरणों का प्रश्न है उनमें सर्वत्र मम्मट के काव्य-प्रकाश का उल्थामात्र किया गया है । सांकेतिक रूप से दो एक उदाहरणों का उल्लेख पर्याप्त होगा ।

चिन्तामणि –

शंख चक्र जुत हरि तजे, शंख चक्र करि आनि ।
राम लखन दसरथ तनय, साहचर्य ते जानि ।।
रामार्जुन तिन दुहुन की परस राम इत मानि ।
सहस बाहु अरु मनि कहै दुऔ विरोधितजानि ।।[1]

मम्मट –

सशंखचक्रो हरिः अशंख, चक्रो हरिः इति अच्युते । राम-लक्ष्मणौ इति दशरथी । रामार्जुन गतिस्तयोः इति भार्गव - कार्तवीर्ययोः[2]

एक स्वतंत्र उदाहरण कवित्त के रूप में दिया गया है जिसमें लिंग और अभिनय के वैशिष्ट्य से अर्थ का नियमन होता है । कवित्त इस प्रकार है –

जोवन के आगमन दीसे मकरध्वज के, नीको लागों लगन सखी की रस वतिया।
चिन्तामनि पल पल पर प्रीतम को प्यार चढ्यौ, उपज्यौ वियोग व्यापीबिथा -
दिन रतिया।
मोह होते जहां तहां पिय को देखन लागी, हँसि खोलि बोलि तहां लह्यो हैसुखतिया।
याही समै आये वेई साँचे आपु आपुही ते, नवलाल पकु लागी लालन कीछतियाँ[3]

यहा 'मकरध्वज' में मकरध्वज का अर्थ औषधि विशेष न होकर कामदेव और 'याही समय आये वेई' में 'वेई' का अर्थ अभिनय से प्रियतम का लगाया जा सकता है ।

1: क0क0त0 - 5/1/13,14

2: का0प्र0 2/19 सूत्र 32 की वृत्ति

3: क0क0त0 - 5/1/22

संयोगादि के उदाहरणों के उल्लेख के उपरान्त मम्मट ने टिप्पणी दी है कि "इत्थं संयोगादिभिरर्थान्तराभिधायकत्वे निवारितेऽप्यनेकार्थस्य शब्दस्य यत् क्वचिदर्थान्तर-प्रतिपादनम् तत्र नाभिधा नियमनात् तस्याः । न च लक्षणा मुख्यार्थबाधाद्यभावात् । अपितु अञ्जनं व्यञ्जनमेव व्यापारः ।"[1]

इसी बात को चिन्तामणि ने इस प्रकार स्पष्ट किया है –

व्यंजन व्यंजनजुक्त पद विज्ञ सुताको अर्थ ।
वाच्या वाच्या लाक्षणिक को कहि लक्ष्य समर्थ ।।[2]

इसका उदाहरण इस प्रकार है –
साखीं हैं सखियाँ सबै, अब हौं भई अचेत ।
मैं मनु दीन्हों आपनों वे इत पाउ न देत ।।[3]

किसी नायक के प्रति नायिका की उक्ति है, नायिका को बड़ा ही दुख है । वह चिन्ता के कारण बेहोश हुई जा रही है । उसने सखियों की गवाही में उस प्रिय को अपना मन अर्पित कर दिया है । पर वह निर्मम प्रिय अपना पाँव तक नहीं देता, आने का कष्ट भी नहीं करता अथवा सर्वथा आत्म समर्पण कर देने वाली उस बेचारी को चरण स्पर्श का भी अवसर नहीं देता । किन्तु यहाँ अपने प्रासंगिक अर्थ के अतिरिक्त 'मन' और 'पाउ' में जो परिमाणबोधक भाव निहित है वह भी कम मर्मस्पर्शी नहीं है । जो प्रियतम सखियों की गवाही में 'मन' लेनेवाला 'पाव' भी वापस न करे, उसके ठग होने में क्या सन्देह है, और इस प्रकार लुट जाने वाली बेहोश न हो तो क्या हो ? यह अर्थ अनेकार्थक-पद-व्यंग्य भी यहाँ कम रमणीय नहीं है । घनानन्द तो "छटांक" भी नहीं देता –

" तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला मन लेहु पै देहु छटांक नहीं "[4]

विप्रलब्धा नायिका की यह बेबसी कम कारुणिक नहीं है ।

1: का0 प्र0 - 2/19 तथा सूत्र 32 पृष्ठ 80

2: क0 क0 त0 - 5/1/19

3: वही 5/1/23

4: घनानन्द शतक

आर्थी व्यंजनाः–

आर्थी व्यंजना वहां होती है जहां वक्तृ, वोद्धव्य, काकु, वाक्य, वाच्य, अन्य की सन्निधि, या किन्हीं के वैशिष्ट्य से व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है । चिंतामणि ने आर्थी व्यंजना का लक्षण नहीं दिया है जिसमें वक्तृ वैशिष्ट्य दर्शनीय है । वतिष्यिमाण-सुरति-गोपना नायिका की उक्ति है जिसमें वह जल ले आने के व्याज से मध्यान्ह में नगर से बाहर नदी अथवा झरने के तट पर प्रियतम से मिलने जाना चाहती है और लौटने के बाद उसके रति चिन्हों को देखकर कोई समझ न ले इसलिए उन-उन चिन्हों के कारणान्तरों का उल्लेख करती है ।

उदाहरण इस प्रकार है –

ग्रीषम में वापी कूप सरवर सूखो सब, जल नदी झिरनाते आवतु नगर मैं
जहाँ जात आवत लगत कांट झारन के, हौं न जैहौ हौं ही पीवति हौं घार मैं
अति दूर हौ ते भरी गागरि लै आवति हौ छूटत पसीना कंपै अंग थर घार मैं
कहति हौं पुनि सासुननद झुक न मोपै, जाउंगी तौ आउंगी तौ भरी दुपहरि मैं [1]

शाब्दी व्यंजना में अर्थ का सहयोगः–

व्यंजना के लक्षणामूला और अभिधामूला दोनों शाब्दी भेदों के निरूपण के पश्चात् मम्मट का कथन है कि " उस व्यंजना व्यापार से युक्त शब्द व्यंजक कहलाता है क्योंकि वह व्यंजक शब्द दूसरे अर्थ के सहयोग से अपने मुख्य अर्थ का बोध करने के पश्चात् दूसरे अर्थ का भी व्यंजक होता है इसलिए उसके साथ सहकारी रूप से अर्थ भी व्यंजक होता है ।[2] दूसरे शब्दों में कहें तो शाब्दी व्यंजना में शब्द व्यंजक होता है और अर्थ शब्द उनमें सहयोग करता है । चिन्तामणि ने इस बात को इस प्रकार कहा है –

औ अर्थो व्यंजक बनै, शब्द संग तै होइ ।
व्यंग्य लक्षना मूल यह, तहाँ सुनो कवि कोइ ।।[3]

1: क० क० त० - 5/1/24

2: तद्युक्तो व्यंजकः शब्दः यत् सोऽर्थान्तर युक्तथा ।
अर्थोऽपि व्यंजकस्तत्र सहकारितया मतः ।
का० प्र० - 2/20, सूत्र - 33-34

3: क० क० त० - 5/1/20

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है शब्द-शक्ति विवेचन में चिन्तामणि ने मुख्यतः मम्मट का और कहीं-कहीं साहित्यदर्पण का आश्रय लिया है किन्तु यह कह देना अनुचित न होगा कि इन्होंने कुछ बातों को छोड़ दिया है और कुछ को स्पष्ट करने में सफल नहीं हुए हैं । अभिधा का उल्लेख नहीं किया है । लक्षणा के भेदोपभेद की चर्चा भी नहीं की है । अभिधामूला व्यंजना और लक्षणा मूला व्यंजना का स्वरूप भी स्पष्ट नहीं है । कुल मिलाकर इस प्रकरण में किसी मौलिकता के दर्शन नहीं होते उदाहरणों में 'भई अनूपम, चोप तनु' पर 'मुग्धा विकसितस्मित'[1] तथा 'ग्रीषम में वापी कूप' इत्यादि में 'अति पृथुल जल कुम्भ्'[2] इत्यादि की छाया देखी जा सकती है ।

1: का० पृ० - उदाहरण संख्या 69

2: का० पृ० - उदाहरण संख्या 13 पृष्ठ 83

× × ×

7: नायक नायिका भेद प्रकरण

नायक-नायिका भेद प्रकरण

नायक-नायिका भेद[1]

नायक भेदः-

नायक-नायिका भेद की चर्चा श्रृंगार रस के आलम्बन विभाव के अन्तर्गत की गई है। स्त्री और पुरुष के पारस्परिक रति संबन्धी विभिन्न परिस्थितियों, स्वभावों, प्रवृत्तियों एवं रुचियों को ध्यान में रखते हुए नायक-नायिका भेद का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

इस संबन्ध में यह भी उल्लेख्य है कि स्त्री पुरुष का रति-व्यापार मूलतः कामशास्त्र का विषय है और रतिभाव में आश्रयत्व एवं आलम्बनत्व बदलता रहता है। अतः नायिका के लिए नायक आलम्बन है और नायक के लिए नायिका।

भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के चौबीसवें एवं पच्चीसवें और चौंतिसवें अध्यायों में नायक-नायिका भेद का उल्लेख नाटकीय पात्रता की दृष्टि से किया है। उनका विभाजन श्रृंगार रस तक ही सीमित नहीं है।

दशरूपक में नाटकीय पात्रता के साथ काव्य शास्त्रीय विवेचन का महत्त्व पूर्ण योगदान है किन्तु उसके बाद संस्कृत ग्रन्थों के युग में ही केवल श्रृंगार रस के आधार पर नायक नायिका भेद चर्चित हुआ है। यही परम्परा हिन्दी में भी प्राप्त हुई है, फलस्वरूप चिंतामणि ने अपने ग्रन्थों में श्रृंगार रस के आलम्बन के रूप में ही उक्त प्रसंग की चर्चा की है।

चिंतामणि का नायक-नायिका विषयक प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ रसविलास है जो मूलतः धनंजय के दशरूपक पर आश्रित है। रसविलास के दूसरे तथा तीसरे

१ः चिन्तामणि ने रस विवेचन के क्रम में आलम्बन और आश्रय की दृष्टि से नायक-यनायिका-भेद का उल्लेख किया है हमने सुविधा की दृष्टि से इस अध्याय को पृथक कर लिया है वैसे चिंतामणि की व्यवस्था अधिक उचित है।

परिच्छेदों में इस विषय की चर्चा की गई है। यथास्थान भानु मिश्र की रस मंजरी और केशव की रसिक प्रिया का भी उपयोग किया गया है कहीं-कहीं तो चिन्तामणि का सारग्राहिणी प्रवृत्ति ने कई आचार्यों के लक्षणों के समन्वय द्वारा अपने लक्षणों की पूर्णता एवं सार्थकता प्रदान की है।

सर्वप्रथम नायक के गुणों की चर्चा करते हुए उसे विनम्र, मधुर, दानी व दक्ष, मृदुभाषी, कृतज्ञ, उदार, भागी, लोगों को आकृष्ट करने वाला (अनुरक्तलोक) वचनचतुर, कुलीन, तरुण, बुद्धिमान उत्साही, स्मृतिशाली, प्रज्ञावान, कलायुक्त, शूर, दृढ़, तेजस्वी, विद्वान और धार्मिक जैसे गुणों से सम्पन्न माना है[1]।

इनके अनुसार नायक के चार भेद हैं[2]:-

1: धीर ललित
2: धीर प्रशान्त
3: धीरोदात्त
4: धीरोध्दत

इन चारों के पृथक-पृथक लक्षण उपस्थित किये गये हैं। धीर ललित निश्चिन्त, कला में आसक्त, सुखी एवं मृदु माना गया है तो धीर प्रशान्त को ब्राह्मणादि सात्विक प्रात्रादि निष्ठ कहकर छोड़ दिया गया है। धीरोध्दात को महासत्व से युक्त अत्यन्त गम्भीर, क्षमावान एवं आत्मश्लाघा से रहित बताया गया है। धीरोध्दत नायक में दर्प, द्वेश, माया, कोप, उदंडता, अंहकार आदि दोषों का समावेश किया गया है।[3]

1: रसविलास - प्रथम परिच्छेद
तुलनीय :- दशरूपक 2/1,2

2: चारि भाँति सों आदि पद धीर सो दै करि जानि
ललित शान्त उत उदात्त अरु उध्दत त्यों पहिचानि -रसविलासः द्वितीय परिच्छेद
तुलनीयः- दशरूपक 2/3 का पूर्वार्ध्द

3: क - धीर ललित निश्चिन्त कला आसक्त सुखी मृदु जानि
ख - धीर शान्त ब्राहमण के बानी गुन समान पहिचानि
ग - महासत्व गम्भीर अति छमावन्त जो होइ।
अविकत्थन जो देखिए धीरोदात्ते सोइ।
घ - दर्प देष जुत जो महा माया कोप उदंड।
धीरोध्दत चल जानिए अंहकार जुत बंड ।। - रसविलास : द्वितीय परिच्छेद
तुलनीय :- दशरूपक 2/3, 2/4, 2/5

पुनः श्रृंगारी नायक का स्वतंत्र लक्षण प्रस्तुत किया गया है :-

जो विलास अरु कला शील संयुत सुन्दर पहिचान ।
सुभट निपट गति दृष्टि धीर विहसत श्रृंगारी आन ।।[1]

अर्थात् श्रृंगारी नायक वह है जो विलास कला प्रिय, शीलवान, सुन्दर, सौभाग्यपूर्ण, धैर्य एवं गतिशील दृष्टि वाला तथा प्रसन्न मुख होता है । इस श्रृंगारी नायक के स्वभावनुसार चार भेद किए गए हैं[2]:- 1- अनुकूल, 2-दक्षिण, 3- शठ, 4- धृष्ट । पुनः शठ के दो भेद किए गए हैं[3]- मानी और चतुर । पुनः प्रकृति के अनुसार नायक के तीन भेद किए गए हैं- उत्तम, मध्यम और अधम ।

सो पुनि उत्तम मध्यमो अधम भेद पहिचानि[4]

उत्तम नायक वह है जो नायिका के मान करने पर भी दुख नहीं मानता ।

जो प्यारी मानौ करै रहै न जो दुख मानि ।
सो उत्तम नायक कह्यौ चिंतामनि मन आनि ।।[5]

मध्यम नायक वह है जो मानिनी के मान करने पर कुछ कहता नहीं और मन के भावों को मात्र इंगित से ग्रहण करता है ।

जो प्यारी के कोप में कछु कहै नहि वैन ।
इंगित मन भावै गहै मध्यम नायक चैन[6] ।।5

1: रस विलास - द्वितीय परिच्छेद

2: सौ पुनि चारि प्रकार अनुकूलदक्ष शठ ढीठ ।
इहि विधि नायक भेद यह चिंतामनि यह ईठ ।।
रस विलास - द्वितीय परिच्छेद

3: मानी चतुर विचारिए ए दै शठ के भेद ।
या में कछु संसै नहीं जानि लीजिए वेद ।।
रस विलास - द्वितीय परिच्छेद

4: वही

5: वही

6: रस विलास - द्वितीय परिच्छेद - चिंतामणि

अधम नायक रति काल में कर्तव्य अकर्तव्य कस विवेक नहीं रखता तथा लज्जा, भय और दया से रहित क होता है ।

रति मैं कृत्याकृत्य को करै न जो पहिचानि ।
जो लज्जा भय दयातें रहित अधम सो मानि ।।[1]

मानिनी के मान करने पर स्वयं मान करने वाला मानी नायक वचन तथा चेष्टा से अपने भावों को व्यक्त करने वाला चतुर नायक कहा गया है ।[2]

अनन्तर प्रोषित, प्रोषित-उपपति और प्रोषित-वैशिक के मात्र उदाहरण दिए गए हैं । नायकाभास की भी चर्चा की गई है जो इंगित नहीं जानता और हास विलास की चेष्टाओं से अनभिज्ञ है उसे नायका भास कहना चाहिए ।

तदनन्तर नायक के सहायक नर्मसचिव, विट, चेट, विदूषक, पीठ मर्द आदि की परिभाषाएँ सोदाहरण प्रस्तुत की गई है[3]। इस प्रकार नायक भेद पूरा किया गया है ।

रस विलास का यह प्रकरण जिसमें पति उपपति और वैशिक की चर्चा की गई है, उत्तम, मध्यम और अधम भेदों का उल्लेख किया गया है तथा शठ के मानी और चतुर तथा चतुर के वचन व्यंग्य समागम और चेष्टा व्यंग्य समागम उप-भेद किए हैं वे सब शृंगार मंजरी पर ही आश्रित हैं । नायकाभास और नर्म सचिवों की चर्चा भी उसी ग्रन्थ पर आश्रित है अतः इसमें कोई विशेष मौलिकता नहीं है ।

शृंगार मंजरी चिंतामणि का मौलिक ग्रन्थ नहीं है किन्तु कवि ने जिस निष्ठा से उसका अनुवाद किया है उसे देखते हुए उसके भेदों का भी संक्षिप्त उल्लेख

1: रस विलास - द्वितीय परिच्छेद - चिन्तामणि

2: वही

3: वही

4: वही

5: वही

आवश्यक प्रतीत होता है ।

नायक के तीन भेद – पति, उपपति और वैशिक ।

पति के छ भेद – अनुकूल, दक्षिण, शठ, धृष्ट, मानी और चतुर । इनमें से केवल शठ के प्रच्छन्न और प्रकाश दो भेद किये गये हैं और चतुर के वचन एवं क्रिया रति की बात कही गयी है जिसमें वचन चतुर और क्रिया चतुर भी भेद किए जा सकते हैं –

वचन क्रिया रति चाह जो, प्रगटे चतुर सो जानि ।

शृंगार मंजरी 455 पृ0 134

उपपति और वैशिक :–

इनके भी उपर्युक्त छ भेद होते हैं ।

"उपपति अरु वैशिको छ प्रकार के होत हैं"[1] पुनः उत्तम, मध्यम और अधम भेदों को भी स्वीकार किया गया है किन्तु विस्तार भय से छोड़ दिया है। नायक के सहायक पीठमर्द, विट और चेट का केवल नामोल्लेख है । विस्तार भय के से लक्षण उदाहरण नहीं दिया गया है ।

कवि कुल कल्प तरु में नायक का लक्षण विश्वनाथ के आधार पर किया गया है जिसमें 'सुश्रकिः' पद के लिए 'नियुतचन' और उत्साही के लिए 'सकल धरम जुत' का सांकेतिक उल्लेख है । अतः लक्षण अधिक स्पष्ट नहीं है सर्वप्रथम धारोदात्त, धीरोद्धत, धीर प्रशान्त एवं धीर ललित चार भेद किए गए हैं । साहित्य-दर्पण पर आश्रित होते हुए भी इन लक्षणों में सभी तत्वों का समावेश नहीं हो सका है, हाँ धीर प्रशान्त और धीर ललित में कुछ अपनी ओर से जोड़कर मौलिकता लाने का प्रयास ह किया गया है पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं[2] तदनन्तर शृंगारी नायक के अनुकूल दक्षिण शठ और धृष्ट भेद किए गए हैं इनके भेदोपभेद की उपेक्षा कर दी गई है । धीरोदात्तादि भेद नायिकागत कथावस्तु पर आश्रित है और दूसरे प्रकार के शृंगार रस पर ।

1: शृंगार मंजरी – चिन्तामणि कृत

2: क – सुन्दर अति मन हरन गन सुखी कान्ह सो होइ ।
कला सक्त निहिचिन्त मृदु धीर ललित है सोइ ॥ क0क0त0 7/7

ख – विप्रसखा गोविन्द को धरम ज्ञान निविष्ट ।
इन्द्रिय विषयन ते विरत सो प्रधान अति शिष्ट ॥ क0क0त0 7/9

उल्लेख्य है कि कवि-कुल कल्प तरु और रस विलास एक दूसरे के पूरक से प्रतीत होते हैं । नायक भेद निरूपण में रस विलास में नायक के चौबीस गुणों की चर्चा की गई है तो कवि कुल कल्प तरु में उसे अत्यन्त संक्षेप में लिखा गया है । रस विलास में धीरोदात्तादि नायकों के लक्षण नहीं दिए गए हैं जिसकी पूर्ति कवि कुल कल्प तरु में की गई है । रस विलास में उत्तम, मध्यम और अधम भेद तथा नर्म सचिवादि की जो विवेचना की गई है उसकी कवि कुल कल्प तरु में उपेक्षा कर दी गई है । कुल मिलाकर यही कहना होगा कि नायक की परिकल्पना में कोई मौलिक उल्लेख नहीं किया गया है ।

चिन्तामणि की देन है कि उनके लक्षणों की स्पष्टता एवं सुबोधता तथा उनके उदाहरणों की शुद्धता एवं सार्थकता ।

नायिका भेदः—

रस विलास, श्रृंगार मंजरी तथा कवि कुल कल्प तरु में नायिका भेद का विस्तृत विवेचन है । इन तीनों ग्रन्थों में श्रृंगार मंजरी एक अनुवाद मात्र है । रस - विलास में रस मंजरी, दश रूपक तथा साहित्य-दर्पण को आधार बनाया गया है किन्तु कवि कुल कल्प तरु में श्रृंगार मंजरी के 50 से अधिक अंशों को समेट लिया गया है । प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक का विश्वास है कि कवि कुल कल्प तरु का नायिका भेद निरूपण चिन्तामणि की मौलिकता की दृष्टि से विचारणीय है क्यों कि उन्होंने अपनी नीरक्षीर-विवेकिनी बुद्धि के आधार पर उक्त ग्रन्थ में अनेक मौलिकताओं का समावेश किया है ।

अतः नायिका भेद के विवेचन को हम कवि कुल कल्प तरु के आधार पर प्रस्तुत करना उचित समझते हैं । साथ ही रस विलास और श्रृंगार मंजरी के अंशों का उपयोग करके कवि कुल कल्प तरु के उपेक्षित अंश की पूर्ति करना उचित मानते हैं । सुविधा की दृष्टि से चिंतामणि का नायिका भेद इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है[1]।

1: क - निश्चिन्तो मृदुरनिशं कला परो धीर ललितः स्यात् ।

ख - सामान्यगुणैर्भूयान्दिजादिको धीरशान्तः स्यात् ।

सा0द03/34

1: देखिए परिशिष्ट

शृंगार रस के आलम्बन की दृष्टि से नायिका के गुणों की चर्चा करते हुए चिंतामणि ने बतलाया है कि –

आलम्बन शृंगार को तिय नायका बखानि ।
कलनि प्रवीन विलासिनी सुन्दरता की खानि ॥[1]

यहाँ नायिका को शृंगार रस के आलम्बन के रूप में प्रस्तुत करके अनायास ही नायक को आश्रय के रूप में प्रस्तुत कर दिया गया है । नायिका में तीन मुख्य गुणों की स्थिति मानी गई है । सर्वप्रथम कलाओं में प्रवीणता का उल्लेख है । इस प्रसंग में 64 कलाओं में निपुणता का अर्थ भी लिया जा सकता है और काम की कला में प्रवीणता का संकेत भी माना जा सकता है । विलासिनी दूसरा गुण है जिसका काम चेष्टाओं से ६ सीधा सम्बन्ध है । तीसरा गुण सुन्दरता की खान है । सौन्दर्य एवं तज्जन्य आकर्षण से काम का उदय सहृदयों के लिए अपरिचित नहीं है । नायिका के इन लक्षणों का स्पष्टीकरण कवि के निम्नलिखित उदाहरण में देखा जा सकता है –

बदन में विधि कांति गोरी की न जानी जाति
गोरे गात बोरी सारी केसरी के रंग की
चिंतामनि कहै चारु चन्द्रिका सी हासी लखै
निसि नखतावली मुक्त पाँति गंग की
मानो ओस बुंदलाल बिम्ब पर बिलसतु
अधर की आभा मुकताहल के संग की
पग पर कोस रंग अंगन अनूप ओप
अँगन मै ठाढ़ी मानो अंगना अनंग की[3]

नायिका भेद :–

सर्व प्रथम जाति के आधार पर तीन भेद किए गए हैं – दिव्या, अदिव्या और दिव्यादिव्या –

दिव्य अदिव्य कहै सुकवि दिव्यादिव्य विचारि ।
त्रिविध नायका जगत में ग्रन्थन बध्द निहारि ॥[4]

इसकी स्वयं व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं कि –

दिव्य देव तिय बरनिये नारि अदिव्य बखानि ।
अमर नारि भुव अवतरी दिव्या दिव्य सुजानि ॥[5]

टिप्पड़ियाँ अगले पृष्ठ पर देखिए –

इस प्रकार देवांगना दिव्या नायिका है और मानुषी अदिव्या नायिका है तथा देवांगना भू लोक में अवतार लेने पर दिव्यादिव्या हो जाती है । उल्लेख्य है कि चिंतामणि का यह विभाजन नख शिख वर्णन की दृष्टि से किया गया है क्योंकि आगे उनका कथन है कि –

नखतें दिव्य तिया बरन शिखते बिबुध अदिव्य
नखतें शिखते वरनिये जो तिय दिव्यादिव्य[6]

स्पष्ट है कि देवांगनाओं की नख शिख शोभा वर्णनीय होती है और मानवी की शिख नख । भूमि पर अवतरित देव नारी के लिए दोनों प्रकार से वर्णन किया जा सकता है ।

भरत के नाट्य शास्त्र में केवल दिव्या नायिका का उल्लेख है किन्तु वह दिव्य लोक की नायिका न होकर इस लोक की नायिका है ।[7] कृष्ण कवि ने स्पष्ट रूप से शची आदि को दिव्या, जानकी, रुकमणी आदि को दिव्यादिव्या और शेष मानवी नायिका को अदिव्या बतलाया है ।[8] रस मंजरीकार भानु मिश्र ने उक्त भेदों को इसलिए अस्वीकार कर दिया है कि उसी के समानान्तर नायकों के भेद भी करने पड़ेंगे और फिर भेदों की सीमा नहीं रह जायगी[9] किन्तु वास्तव में काव्य नाटकादि में स्वीकृत इन भेदों का अपलाप नहीं करना चाहिए । चिंतामणि के 'ग्रन्थन बद निहारि' का सम्भवतः यही संकेत है।

1: क0 क0 त0 5/69
2: क0 क0 त0 5/
3: क0 क0 त0 6/70
4: वही 6/71
5: वही 6/72
6: वही 6/73
7: नाट्य शास्त्र भरतमुनि 24/7/8
8: मन्दार मरन्द चम्पू 8/46
9: जाति भेदेनभेद स्वीकारे नायकानामप्येवमानन्त्यं स्यात् -
रस मंजरी पृष्ठ 93 - भानु मिश्र

नायक से संबन्ध के आधार पर नायिकाओं के तीन भेद किए गए हैं - स्वकीया, परकीया और सामान्या । इन भेदों की स्वीकृति रुद्रट के समय से ही प्राप्त होती है चिन्तामणि ने सम्भवतः भानु मिश्र का अनुकरण किया है[1]

प्रथम सुकीया नायका पुनि परकीया जानि
पुनि सामान्या समुझिए यों कवि लसत बखानि [1]

स्वकीयाः-

जो अपने ही पुरुष में निश्चित रूप से अनुरक्त होती है, उसे स्वकीया नायिका कहते हैं । जो नायिका शीलशील, सरलता (भालापन) और लज्जा से युक्त होती है और जिसकी चित्त वृत्ति केवल प्रियतम में लीन होती है उसे स्वकीया कहते हैं ।

जो अपने ही पुरुष में प्रीतिवन्त निर धारि ।
कहत स्वकीया नायका सज्जन सुकवि विचारि ।।
सील सुधाई लाज जुत गुरुजन सुकवि विचारि ।
प्रीतम के चितवृत्ति सो कही स्वकीया नारि ।।[2]

स्वकीया के तीन प्रमुख भेद हैं:- मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा ।[3]

क - मुग्धाः-

जाके जोवन अंकुरित सो मुग्धा वर नारि ।
दुहूँ वयः क्रम सन्धि मैं तब वय सन्धि निहारि ।।[4]

वाल्यावस्था की समाप्ति और युवावस्था के आरम्भ में, वयः सन्धि काल में,

---

1: रस मंजरी - भानु मिश्र पृष्ठ 4
2: क0क0त0 6/74
3: वही 6/75,76
4: वही 6/77
5: वही 6/78

जिसमें यौवन अंकुरित हो जाता है उसे मुग्धा नायिका कहते हैं।

ये मुग्धा नायिकाएँ 6 प्रकार की होती हैं – 1: अविदित यौवना 2: अविदित कामा 3: विदित मनोभवा 4: नवोढ़ा 5: विश्रब्धा नवोढ़ा 6: कोमल कोपा।[1]

नवोढ़ा में विदित मनोभवा और विदित-यौवना का सम्मिश्रण है। अतः यद्यपि चिन्तामणि ने भेद निरूपण क्रम में केवल 6भेद गिनाए हैं किन्तु विदित कामा और विदित यौवना के उदाहरण पृथक पृथक होने से 7 भेद हो जाते हैं। लक्षण केवल नवोढ़ा और विश्रब्धा नवोढ़ा के दिए गए हैं जो नायिका रतिकाल में लज्जा और भय से पराधीन होती है उसे नवोढ़ा कहते हैं, किन्तु जब रतिकाल में पति पर कुछ विश्वास करने लगती है तो उसे ही विश्रब्धा नवोढ़ा की संज्ञा दी जाती है। नवपरिणीता का रतिकाल में अधिक लज्जाशील होना स्वाभाविक है किन्तु आनन्द की प्राप्ति पति पर कछु विश्वास करने से ही होती है।

मुग्धा अविदित जोवना अविदित कामा पेखि।
विदित मनोभव जोवना बहुरि नवोढ़ा लेखि।।
पुनि विश्रब्धा नवोढ गनि कोमल कोपा जानि।
चिन्तामनि कवि कहत है षड् विधि मुग्धा मानि[2]।।[1]

जो लज्जा भय पराधीन रति होति नवोढ़ा सोइ।
रति मै पतिहि पत्याइ कछु विश्रब्धा नवोढ़ा होइ[3]।।[2]

विश्रब्धा नवोढ़ा का एक सुन्दर उदाहरण देखिए जिसमें लज्जा, संकोच, रति आदि भावों को सुन्दर व्यंजना है–55

1: क0क0त0 6/81,82

2: क0क0त0 6/88,

3: क0क0त0 6/92

लाल की दीठि बचाइ के बाल कियो चहै दूरी प्रदीप की बाती ।
पीके हिए मुख चन्द बढ़यो सुतो पूछत ही कछु बात सुहाती ।।
लागत हीतल में पति को कर चन्द्र मुखी चित चौंकि सकाती ।
सोई है आइ कै पीतम साथ पै सुन्दरि हाथ छपाइ कै छाती ।।[1]

इनमें से अविदित यौवना, विदित यौवना, नवोढ़ा और विश्रब्धा नवोढ़ा का आधार रस मंजरी है ।[3] कोमल कोपा सम्भवतः दशरूपक की मृदुकोपा मुग्धा है ।[2] शेष भेदों पर भी दशरूपक और रस मंजरी का सम्मलित प्रभाव माना जा सकता है ।

2: मध्या:—

मध्या नायिका लज्जा और काम के भावों से समान रूप से प्रभावित होती है-

जातिय के हिय होतु है लाज मनोज समान ।
ताको मध्या कहत हैं सिगरे सुकवि सुजान ।।[3]

इस मध्या के चिंतामणि ने चार भेद स्वीकृत किए हैं— 1: आरूढ़ यौवना, 2: आरूढ़ मदना, 3: विचित्र सुरता 4: प्रगल्भावचना ।[4] विश्वनाथ ने मध्या-व्रीड़िता एक पाँचवा भेद भी माना है[5] किन्तु जाने क्यों चिंतामणि ने इसे अस्वीकार कर दिया है ।

3: प्रगल्भा:—

प्रगल्भा या प्रौढ़ा के संबन्ध में चिन्तामणि का कथन है कि केवल पति मात्र विषयक प्रीति रखने वाली, केलि कला में निपुण तथा मदन के वशीभूत होकर लज्जा का परित्याग करने वाली है वह नायिका प्रौढ़ा नायिका कहलाती है :—

1: क0क0त0 6/92

2: रस मंजरी - भानु मिश्र पृ0 7,8

3: दश रूपक 2/16

4: क0क0त0 6/95

5: क0क0त0 6/97

केलि कला में चतुर अति प्रीतम सों अति प्रीति
लाजत जै है मदन बस प्रौढ़ा की यह रीति[1]

डा0 सत्यदेव चौधरी ने "लाजत जै है मदन बस" ऐसा पाठ मानकर 'मदन के वशीभूत होकर लज्जा युक्तता'[2] ऐसा अर्थ स्वीकार कर लिया है किन्तु साहित्य-दर्पण आदि आकर ग्रन्थों के अनुरोध से इस अर्थ को केवल भ्रान्ति ही मानना चाहिए। लक्षण का पूर्वार्द्ध भानु मिश्र की रस मंजरी[3] से प्रभावित है और उत्तरार्द्ध विश्वनाथ के दरव्रीड़ा नामक भेद[4] की छाया से युक्त प्रतीत होता है।

प्रौढ़ा के भी चिन्तामणि ने 4 भेद माने हैं — 1: यौवन प्रगल्भा 2: मदनमत्ता 3: रति प्रीतिमती 4: रत्यानन्दपरवशा अथवा सुरति मोद परवशा। इन चारों के केवल उदाहरण दिए गए हैं लक्षण नहीं। इनमें से यौवनप्रगल्भा दशरूपक[5] की गाढ़ और साहित्य-दर्पण[6] की गाढ़ तारुण्या ही है। मदनमत्ता विश्वनाथ की स्मरान्धा का अनुवाद है[7]। शेष दो भेदों के लिए भानु मिश्र की रस मंजरी का प्रभाव दृष्टव्य है[8] क्योंकि भानु मिश्र की रतिप्रीति और आनन्द सम्मोह जैसी चेष्टाओं के आधार पर ही इन भेदों की कल्पना हुई होगी।

मान की दृष्टि से स्वकीया नायिका के जो तीन भेद किये गए हैं उस सम्बन्ध में यह ध्यातव्य है कि स्वकीया की मूलभूत विशेषता अपने पति में पूर्ण अनुराग है। मुग्धा नायिका पहले तो पति के अन्य नायिका सम्भोग जैसे अपराध की गन्ध भी नहीं पाती यदि पा भी जाय तो उसे विश्वास नहीं होता और यदि एक क्षण के लिए विश्वास भी आ जाय तो प्रिय के नर्म वचनों और व्याजोक्तियों को सत्य मान लेती है और मान

1: क0क0त0 6/102

2: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा0 सत्यदेव चौधरी पृष्ठ 418

3: रस मंजरी - भानु मिश्र पृष्ठ 22

4: सा0द0 3/60

5: दशरूपक 2/18

6: सा0द0 3/60

7: वही

8: रस मंजरी - भानु मिश्र पृष्ठ 22

नहीं करती । अतः मान का क्षेत्र केवल मध्या और प्रौढ़ा नायिका में ही होता है । पति में अनुरक्त नायिका पति के अन्य नायिकानुराग को देख कर मान क्यों नहीं करेगी । अतः मान की दृष्टि से मध्या और प्रौढ़ा स्वकीया नायिकाओं के तीन भेद बतलाए गए हैं:—धीरा, अधीरा और धीरा-धीरा ।

मध्या प्रौढ़ा मान मै कवि मनि त्रिविध बखानि ।
धीरा और अधीर तिय धीरा-धीरा मानि[1]

मध्या स्वकीया नायिका यदि अपने कोप को व्यंग्य वचन से प्रस्तुत करती है तो वह धीरा कहलाती है और यदि स्पष्ट रूप में अपने कोप वचन को निकालती जाती है तो उसे मध्या अधीरा कहते हैं । धीरा-धीरा मध्या नायिका की सहनशीलता इतनी कम हो जाती है कि बेचारी कोप वचन के साथ रो पड़ती है ।

व्यंग्य कोप प्रगटै जुतिय मध्या धीरा होइ ।
कोप वचन बोलत प्रगट मध्य अधीरा होइ ।।
वचन रुदित के संग कहि कोप प्रकासै नारि ।
मध्या धीर अधीर तिय कवि जन कहा विचारि ।।

विलासी नायक कहीं रात्री भर विहार करके प्रातःकाल अपनी पत्नि के पास आया है रात भर प्रतीक्षा करती हुई पत्नि प्रातःकाल नायक को देखकर कहती है कि रात भर कलंकी चन्द्रमा उदित रहा । तुम मेरा मन लेकर न जाने कहाँ चले गए थे । मैं किसी तरह मन्दिर के बीच बैठकर आत्म रक्षा करती रही । दीपक के प्रकाश में भी अन्धकार दिखाई पड़ता था । अब मेरे नेत्र रूपी चकोरों ने अमृत का पारण कर लिया है क्योंकि निष्कलंक चन्द्रमा जैसे प्यारे मोहन तुम अपनी अनुपम कलाओं के साथ प्रगट हुए हो ।

साँझते चंद कलंक उन्यो मन मेरौ लै साथ रहे तुम न्यारे
बैठि बची मन मन्दिर बीच लगै सब दीप प्रकास अंध्यारे
प्रातहिं पाइ सुधामय पारनो नैन चकोरन मोहन प्यारे
क्यों न अनूप कला प्रगटौ अकलंक कला निधि मोहन प्यारे[2]

1: क०क०त० 6/109 तथा 6/112

2: क०क०त० 6/110

यहाँ अकलंक में विपरीत लक्षणा से रति चिन्हों की ओर संकेत और अनूप कला तथा कला-निधि में काम कलाओं में निपुणता के संकेत से अन्य नायिका सम्भोग व्यंग्य है, साथ ही 'मैं तो रात भर आपकी प्रतीक्षा करती रही और आप रात कहीं और बिताकर प्रातःकाल मेरे पास आए हैं' इस प्रकार मान भी व्यंग्य है। ऐसे उदाहरण चिंतामणि के काव्य-प्रौढ़ि के साक्षी हैं।

प्रौढ़ा धीरा मान के समय किसी रूप में भी अपने क्रोध को प्रगट नहीं करती साथ ही वह पहले की अपेक्षा पति का अधिक आदर करती है किन्तु रतिभाव में उदासीनता दिखलाती है इस प्रकार उसका क्रोध संकेतों से प्रगट होता है। असामान्य आदर और रतिकाल की उदासीनता से उसका मान स्वतः स्पष्ट हो जाता है —

प्रौढ़ा धीरा नेकु नहिं कोपै करै प्रकाश।
पति को अति आदरु करै रति ते रहै उदास[1]।।[2]

इस प्रकार प्रौढ़ा धीरा की तीन स्थितियाँ बनती हैं यद्यपि लक्षण के रूप में चिंतामणि ने इनका उल्लेख नहीं किया है किन्तु उदाहरणों के शीर्षक के रूप में स्पष्ट रूप से तीन भेदों का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है —

1- सावहित्थाधीरा 2- सादराधीरा 3- रत्युदासाधीरा।

प्रौढ़ा अधीरा का लक्षण चिन्तामणि ने नहीं दिया है। भानु मिश्र के अनुसार प्रौढ़ा अधीरा रति से उदासीनता के साथ ही साथ नायक का तर्जन और ताड़न भी करती है।[2] शीर्षकहीन निम्नलिखित उदाहरण प्रायः इन्हीं तथ्यों को स्पष्ट करता है अतः अनुमान है कि प्रौढ़ा अधीरा का लक्षण लिपिकारों के प्रमाद से रह गया है। उदाहरण इस प्रकार है —

जावक रंजित भाल किये मन भावन भावती गेह सिधारे
दूरिते भौंह कमान चढ़ाइ कै सुन्दर नैन कटाक्ष ते डारे
आइ के वालम वाँह गही ढिग चन्द्र मुखी भुकि कै भ्रभकारे
चंपक माल सी कोमल वाल सुलाल चमेली की माल सो मारै[3]

1: क0क0त0 6/114
2: रसमंजरी - भानु मिश्र पृष्ठ 29
3: क0क0त0 6/118

प्रौढ़ा धीरा धीरा में दोनों प्रकार के धैर्य और अधैर्य के भाव विद्‌यमान रहते हैं। लक्षण इस प्रकार है –

प्रौढ़ा धीरा धीर तिय बालै धीर अधीर।
चिंतामनि कवि कहत है समुझै वुद्दि गभीर ।।[1]

ऐसी नायिका अपने आक्रोश पर नियंत्रण नहीं कर पाती और खुल कर कह बैठती है :–

"जापै रति मानि प्यारे आये हौ हमारे घर
एकौ घरी करौ वाकी प्रीति कौ मुलाहिजो"[2]

मान के आधार पर स्वकीया के उपर्युक्त भेद यद्‌यपि प्रौढ़ा और मध्या से सबद्द होने के कारण अवस्थाओं से भी जुड़ें हुए हैं किन्तु इनका संबन्ध मानव - मनोविज्ञान से कम नहीं है। स्वकीया की भाँति परकीया नायिका में भी इस प्रकार के मान की स्थिति बन सकती है किन्तु चिंतामणि ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया है।

जिस पुरुष के दो स्त्रियाँ होती हैं वहाँ पति का स्नेह जिस पर अधिक होता है वह जेष्ठा तथा जिस पर कम होता है वह कनिष्ठा मानी जाती है –

जहाँ होति है दै तिया तहीं रीति यह जानि
पुरुष अधिक घट प्यारते जैष्ठ कनिष्ठा जानि[3]

यहाँ पर 'दैतिया' को उपलक्षण मात्र मानना चाहिए क्योंकि दो से अधिक पत्नियों के होने पर स्नेह का तारतम्य बनता चला जायगा। उल्लेख्य है कि भानु मिश्र ने जेष्ठा और कनिष्ठा को धीरा अधीरा और धीरा धीरा से जोड़ा है[4]। हम जानते हैं कि धीरादि भेद मध्या और प्रौढ़ा नायिकाओं के हैं ऐसी स्थिति में मुग्धा नायिका मति के इस स्नेह तारतम्य में कोई स्थान नहीं पाती है किन्तु चिंतामणि ने

1: क0क0त0 6/119
2: वही 6/120
3: वही 6/121
4: रसमंजरी - भानु मिश्र पृष्ठ 43,44

इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं किया है अतः उनकी दृष्टि से मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा तीनों के जेष्ठा, कनिष्ठा भेद किए जा सकते हैं।

परकीयाः—

प्रच्छन्न रूप से पर पुरुष के साथ प्रेम करने वाली स्त्री परकीया कहलाती है। यह विवाहिता भी हो सकती है और अविवाहिता भीः—

प्रीति करै पर पुरुष सों परकीया सो नारि।
ऊढ़ा और अनूढ़ गति सो दै भाँति विचारि।।
ऊढ़ा होइ विवाहिता अविवाहिता अनूढ़।
परकीया दै भाँति की जानत जगत अगूढ़।।[1]

ऊढ़ा का परकीयात्व तो स्पष्ट ही है, अनूढ़ा का परकीयात्व इस अर्थ में हो सकता है कि जब तक वह किसी एक पुरुष की नहीं हुई तब तक पुरुष मात्र उसके लिए पर पुरुष है किन्तु जिससे प्रेम जुड़े उसी से विवाह भी हो जाय तो वह गान्धर्व-गृहीता स्वकीया होगी परकीया नहीं। चिन्तामणि ने केवल ऊढ़ा का उदाहरण दिया है अनूढ़ा का नहीं।

भानु मिश्र के अनुकरण पर परकीया के छ भेद हैंः— 1- सुरत गोपना, 2- चतुरा, 3- कुलटा, 4- लक्षिता, 5- अनुशयना और 6- मुदिता।

इनमें से लक्षण में मुदिता का उल्लेख नहीं है किन्तु उदाहरण प्रस्तुत किया गया है लक्षण इस प्रकार है —

सुरत गोपना चतुर कहि कुलटा बहुरि विचारि।
कहत लक्षिता सुकवि जन अनुसैना उर आनि।।[2]

सुरत गोपना का न तो लक्षण दिया गया है और न ही कोई भेद किया गया है केवल उदाहरण उपलब्ध है जो अत्यन्त सुन्दर है।

1: क0क0त0 6/123 तथा 124

2: क0क0त06/126

चतुरा नायिका के दो भेद किए गए हैं – वचन चतुरा और क्रिया चतुरा

वरनत सुकवि जु नायका दिविधा चतुर सिर मौर
वचन चतुर कहि एक पुनि क्रिया चतुर पुनि और[1]

लक्षिता नायिका वह है जिसका पर पुरुष प्रेम सब पर प्रकट हो जाता है:–

जहाँ प्रीति पर पुरुष की प्रगटित जग में होइ ।
ताहि लक्षिता कहत हैं चिंतामनि कवि लोइ ।।[2]

किन्तु उदाहरण के क्रम में जिस प्रकार की सन्दर्भ योजना की गई है उससे वह लक्षिता नहीं रहती, वरन् स्पष्ट परिज्ञाता हो जाती है । साथ ही धृष्टता से स्वयं पर-पुरुष प्रीति को स्वीकार कर लेती है :–

जानति नन्द जेठानी और सासु
चहुँ दिसि गैरे दवारि जगी हैं
जानै सो कोऊ हजार कहौ
हम नन्द कुमार के प्रेम पगी हैं[3]

इस प्रकार लोक लज्जा की उपेक्षा और कुल मर्यादा का त्याग प्रदर्शित करने के कारण लक्षिता की दृष्टि से उदाहरण दूषित हो गया है ।

कुलटा वह नायिका है जिसके मन में अनेक पुरुषों के साथ रति करने की अभिलाषा जगती रहती है –

वहु पुरुषन की केलि कौ जाके मन अभिलाख
कुलटा तासौं कहत हैं सब सज्जन कवि लाख[4]

ऐसी स्त्री निरन्तर काम वासना से पीड़ित रहती है और काम भावना के अतिरिक्त दूसरा कुछ उसे सुहाता नहीं – "जोवन के मद मत्त तिया तजि काम की कैलि सु और न भावै"[5]

1: क0क0त0 6/128
2: वही 6/131
3: वही 6/133
4: वही 6/134
5: क0क0त0 6/135

कहना न होगा कि कुलटा और सामान्या में केवल इतना ही अन्तर है कि कुलटा व्यक्ति विशेष की पत्नि भी कहलाती है जबकि सामान्या किसी की पत्नि नहीं होती

अनुशयाना के तीन भेद किए गए हैं:— 1: संकेतस्थलनाश दु:खिता 2: भावि-स्थानाभाव दु:खिता 3: संकेतस्थलगमनासमर्था । इन तीनों के क्रमशः उदाहरण प्रस्तुत किये गए हैं ।

मुदिता का जो उदाहरण दिया गया है उससे स्पष्ट है कि प्रिय से मिलने की आकस्मिक निर्विघ्न सुविधा ही मुदिता के मुदितात्व का कारण है —

> दै दिनकौ तथ तीरथ न्हान कौ लोग चल्यौ मिलि कै सिगरोइ
> सासु वहू सौं कहयौ यौ रहौ घर और रहै नहि राखिय कोइ
> सुन्दरि आनंद सौ उमगी यह चाहति ही जु भयो उत सोइ
> प्रेम सो पूरन दोऊ जने घर आपु रही की रहयौ ननदोइ[1]

भानु मिश्र ने यन्निन्न गुप्ता (वृत्त, वर्तिष्यमाण और वृत्त-वर्तिष्याण, सुरत-गोपना) की भी चर्चा की है[2] किन्तु चिन्तामणि ने इनकी चर्चा नहीं की है । यह भी उल्लेख्य है कि उक्त 6 भेद चिन्तामणि ने केवल ऊढ़ा परकीया के माने हैं अनूढ़ा परकीया में भी इन सारी स्थितियों को अस्वीकार नहीं किया जा सकता और वस्तुतः परपुरुष से संभोग के बिना परकीया हो ही कैसे सकती है, किन्तु चिन्तामणि ने अनूढ़ा परकीया को बहुत सम्हाल कर रखा है । उदाहरण से स्पष्ट है कि प्रसंग वयः सन्धि के क्षणों का है । मोहन के रूपदर्शन से उत्कंठित गोपी श्री कृष्ण को देखे बिना रह नहीं पाती और देखने पर चारों ओर कुचर्चा होती है । विचारी यदि हंसने लगती है तो भी लोग कलंक लगाते हैं पता नहीं यह कौन सी दगाबाज उम्र आ गई है :—

1: क0क0त0 6/148

2: रस मंजरी - भानु मिश्र पृष्ठ 56

3:

जामै कछु मनि सोचु सकौचन आछियै सो तौ कछू लरिकाई
आवत ही इन नैनन के रस मोहन के वसि को ललचाई
देखे बिना कल नेकु नहीं अरु देखौ तौ गोकुल गाँव चबाई
जामै हँसे हू कलंक लगै यह कौन धौ बैस विस्वासिन आई[1]

रीति काल के विलासी वातावरण में अनूढ़ा को इस प्रकार की संजीदिगी से से आगे न बढ़ना चिंतामणि की मर्यादा पूर्ण दृष्टि का परिचायक है । लगता है कि तुलसी ने जिस लोक-मर्यादा को स्थापित किया था वह चिंतामणि के समय तक पूर्णतः प्रभावहीन नहीं हुई थी । यहाँ चिन्तामणि की शालीन दृष्टि अवश्य प्रशंसनीय है ।

<u>सामान्याः—</u>

चिंतामणि ने सामान्या नायिका की स्वतंत्र रूप से चर्चा नहीं की है अवस्थानुसार नायिकाओं के भेद निरूपण के क्रम में (जिसका उल्लेख आगे किया जायगा) सामान्या नायिका के भी 8 उदाहरण दिये हैं ।

सृंगार मंजरी में तथा साहित्य-दर्पण में सामान्या नायिका के संबन्ध में विस्तृत विवेचन मिलता है । विचारणीय यह है कि जब चिंतामणि ने सृंगार मंजरी में सामान्या की विस्तृत चर्चा की तो कवि कुल कल्प तरु में उसकी सर्वथा उपेक्षा क्यों की गई । कहा जा सकता है कि सामान्या नायिका का समाज में गर्हित एवं हीन स्थान है और वस्तुतः वह किसी नायक विशेष की न होने के कारण नायिका कहलाने की अधिकारिणी भी नहीं है, किन्तु इन दोनों बातों पर आक्षेप किया जा सकता है। पहली बात यह है कि जब सारी दुःशीलता की चेष्टाएँ और अनुचित प्रेम व्यापार की चर्चा परकीया नायिका के माध्यम से प्रस्तुत की जा सकती है तथा पर नारी संभोग दुखिता के नायिकाओं के मान का विस्तृत उल्लेख हो सकता है, खंडिता अभिसारिका आदि का निरावृत वर्णन किया जा सकता है ऐसी स्थिति में सामान्या का वर्णन न करने से कौन सी शालीनता सुरक्षित रहती है समझ में नहीं आता । जो हो अनूढ़ा और सामान्या की विस्तार से चर्चा न करने में कवि की शलीनता ही बाधक रही होगी किन्तु यह प्रश्न आज भी अस्पष्ट एवं अनुत्तरित है और शास्त्रीय-दृष्टि से विवेचन को अधूरा छोड़ जाना एक स्खलन ही माना जायगा, इसमें संदेह नहीं । रहा प्रश्न इस बात का कि सामान्या नायिका है या नहीं इस संबन्ध में केवल इतना ही उल्लेख्य है

1: क०क०त० 6/143

कि सभी आचार्यों ने और स्वयं चिन्तामणि ने नायिका के स्थूल भेदों में सामान्या नायिका का उल्लेख किया है ।

अवस्था के अनुसार नायिकाओं के भेदः—

अवस्था के अनुसार नायिकाओं के निम्नलिखित भेद हैं :—

1- स्वाधीन पतिका 2- वासकसज्जा 3- विरहोत्कंठिता 4- विप्रलब्धा 5: खंडिता 6- कलहांतरिता 7- प्रोषितभर्तृका तथा 8- अभिसारिका ।

कहि स्वाधीनप्रिया वहुरि वासक सज्जा जानि ।
वहुरि विरह उत्कंठिता विप्रलब्धा पुनि मानि ।।
पुनि खंडिता बखानियै कलहंतरिता नाम ।
पुनि कहि प्रोषित भर्तृका अभिसारिका सुवाम ।।[1]

ये आठों भेद स्वकीया, परकीया और सामान्या इन तीनों घटित होते हैं ये जहाँ और जिस रूप में सम्भव हैं वहाँ उसी रूप में प्रकाशित होते हैं —

सो सब भेद तिहून के भेदन हू के होत ।
जे जैसे सम्भव तितै तैसे लहत उदोत ।।[2]

स्वाधीनपतिकाः—

सो स्वाधीनप्रिया कही जाके नाह अधीन ।
सुतौ सदा आनन्दमय वरनत सुकवि नवीन ।।[3]

अपने प्रियतम को अपने प्रेम से अधीन करके जो सदा प्रफुल्लित रहती है वह स्वाधीन पतिका नायिका है । चिंतामणि ने इनके उदाहरणों के क्रम में स्वकीया, परकीया और सामान्या का उल्लेख न करके मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा और सामान्या का उल्लेख किया है । स्वकीया में ही मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा भेद किए गए हैं । यद्यपि ये परकीया और सामान्या में भी हो सकते हैं किन्तु जाने क्यों शास्त्रकारों ने इनकी उपेक्षा कर दी है ।

1: क0क0त0 6/144 तथा 145

2: क0क0त0 6/146

3: वही 6/147

अस्तु, सामान्या स्वाधीन-पतिका के उदाहरण पर टिप्पणी करते हुए डा0 सत्यदेव चौधरी ने लिखा है कि " इन्होंने भानु मिश्र के अनुकरण में सामान्या नायिका के भी उदाहरण दिए हैं इनमें से सामान्या स्वाधीन पतिका का उदाहरण परस्पर विरोध सूचक है। वेश्यावृत्ति और स्वाधीन- पतित्व का योग असंगत है इस प्रकार खंडिया आदि अन्य भेद भी सामान्या के साथ सुघटित नहीं होते"[1] इसमें संदेह नहीं कि डा0 चौधरी के तर्क में बल है तथापि स्वाधीन-पतिका जैसी स्थिति वेश्याओं में नहीं हो सकती ऐसा कहना कठिन है। अनेक पुरुषों के साथ देह संबन्ध रखते हुए भी किसी या किन्हीं पुरुष या पुरुषों को वे अपने स्नेह से वशीभूत नहीं कर सकती यह कहने का आधार क्या है ? वेश्याओं पर फिदा होकर अपना सर्वस्व निछावर कर देने वाले और आजीवन उन्हीं के बने रहने वाले विलासियों की चर्चाएँ भी सुनी गई हैं। इसलिए वेश्याएँ भी स्वाधीन पतिका तथा घनिष्ठ प्रिय के अन्य वेश्या संबन्ध से खंडिता हो सकती हैं अन्ततः वे भी नारियाँ हैं और नारी सुलभ दुर्बलताएँ उन्हें भी प्रभावित करें तो कोई अनुचित नहीं है। जो भी हो सामान्या में इन आठ भेदों की स्थिति को हम सर्वथा अनुचित नहीं मान सकते।

<u>वासकसज्जाः-</u>

प्रिय के आगमन का समय जान कर जो अपने अंगों को सौन्दर्य मंडनों से खंडित करती है और भवन तथा सेज को सजाती है उसे वासकसज्जा कहते हैं -

> प्रिय को आगमन जानि कै अंग सिगारै वाम।
> सौध सैज सुन्दरि रचै वासक सज्जा नाम।।[2]

लक्षणानुरूप सभी नायिकाओं के उदाहरण प्रस्तुत किये गए हैं।

<u>विरहोत्कंठिताः-</u>

विरहोत्कंठिता वह नायिका है जो प्रियतम के आगमन के समय सज धज कर प्रतीक्षा करती हुई बैठी रहती हैः-

> नायक के आगमन समै सुन्दरि अँग सिंगार
> वै लावति है आभरन पहिरि मुदित वर नारि[3]

1: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा0 सत्यदेव चौधरी पृष्ठ - 42।
2: क0क0त0 6/153
3: वही 6/159

साहित्य-दर्पण में विरहोत्कंठिता नायक के न आने के कारण दुःखिनी होकर प्रतीक्षा में उत्कंठित रहती है। अतएव उन्होंने विरहोत्कंठिता के लिए "तदागमन दुखार्ता "[1] की शर्त रखी है। भानु मिश्र ने भी उत्का नायिका को पति के अनागम के हेतु की चिंता में रत दिखाया है[2] किन्तु चिन्तामणि ने आभूषण से सुसज्जित और आशापूर्ण प्रतीक्षा में वि ल नायिका को विरहोत्कंठिता की संज्ञा दी है।

विप्रलब्धाः—

चिन्तामणि की विप्रलब्धा नायिका वह है जो यह जानती है कि उसका प्रिय उसे संकेत स्थान में बुलाकर किसी अन्य नायिका के पास चला गया है। विश्वनाथ ने केवल न आने की बात कही है किन्तु चिंतामणि ने "जाय आन तिय पास" के द्वारा कारण को पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है। लक्षण इस प्रकार है —

जाहि बोलि संकेत पिय जाय आन तिय पास
ताहि विप्रलब्धा वधु कहि कवि करहिं प्रकास

उल्लेख्य है कि मुग्धा और मध्या विप्रलब्धा के उदाहरणों में क्रमशः प्रिय के केलि मन्दिर में छिप जाने या वहाँ न पाए जाने का उल्लेख है[3] और प्रिय के दर्शन न मिलने से नायिका अपने को ठगी सी अनुभव करती है। अन्य स्त्री के पास जाने के संकेत प्रौढ़ा परकीया और सामान्या के उदाहरणों में ही दृष्टिगत होते हैं।

खण्डिताः—

खंडिता नायिका की परिभाषा चिंतामणि ने इस प्रकार दी है :—

आन वधू रति चिन्ह धरि आयो जाको पीव।
प्रात धरै सो खंडिता यह रसिकन को जीव ।।[4]

1: रस मंजरी - भानु मिश्र पृ0 122-125

2: क0क0त0 6/166

3: वही 6/167

4: क0क0त0 6/172

विश्वनाथ ने अन्य स्त्री के संसर्ग चिन्हों से युक्त नायक को देखकर ईर्ष्या से कलुषित भाव वाली नायिका को खंडिता कहा है किन्तु चिंतामणि की परिभाषा में जो "प्रात धरै" का प्रयोग है वह भानु मिश्र की रस मंजरी पर आश्रित है ।

"अन्योय भोग चि ि तः प्रातः रागच्छतिपतियस्या सा खंडिता"[1]

कलहान्तरिताः—

रिसतें पिय अपमान करि पुनि पीछे पछताई ।
कलहंतरिता कहत हैं ता ही सौं कवि राई ।।[2]

साहित्य-दर्पणकार ने नायिका के प्रति प्रियतम की चाटुकारिता का उल्लेख किया है[3] किन्तु चिन्तामणि ने भानु मिश्र के अनुसार लक्षण में इस अंश को छोड़ दिया है ।[4]

प्रोषित पतिकाः—

प्रोषित पतिका या प्रोषितभर्तृका शब्द में प्रोषित शब्द की व्युत्पत्ति विषयक चर्चा सृंगार मंजरी में विस्तार पूर्वक की गई है और यह निर्णय किया गया है कि यद्यपि 'क्त' प्रत्यय भूतार्थ विषयक है तथापि उसमें तीनों काल का संग्रह जानना चाहिए इसलिए प्रवत्स्यत्भर्तृका, प्रवसत् भर्तृका तथा प्रोषित पतिका इस प्रकार इसके तीन भेद होते हैं ।[5] सन्त अकबर शाह के ही साक्ष्य पर उपर्युक्त भेदों की चर्चा करते हुए सामान्य लक्षण एवं भेद निरूपण निम्नांकित हैः—

प्रिय प्रवास हैतुक हिए ताप धरै जो होइ ।
कही सो प्रोषितभर्तृका समुभि लेउ सब कोइ ।।
तथा
प्रथम प्रवत्स्यतप्रिया पुनि प्रवसत पतिका जानि
पुनि प्रोषित पतिका कही तीनि भेद यों मानि[6][2]

रस मंजरीकार ने प्रोषित पतिका और प्रवस्यत पतिका दोनों को पृथक पृथक

1: रस मंजरी - भानु मिश्र पृष्ठ 102

2: क0क0त06/179

3: सा0द03/82

4: पतियवमत्य पश्चात्परितप्ा कलहान्तरिता
रसमंजरी- भानु मिश्र पृ0108

5: सृंगार मंजरी - हिन्दी अनुवाद
चिन्तामणि पृष्ठ 85 से 87 तक

6: क0क0त06/88 तथा 89 तथा
सृंगार मंजरी 288, 289

माना है क्यों कि प्रोषित पतिका का पति परदेश में है और प्रवस्यत पतिका का पति परदेश जाने वाला है रस मंजरी के टीकाकार[1] ने प्रवसत पतिका नाम की एक नायिका भी मानी है क्योंकि उसका पति परदेश के लिए चल पड़ा है किन्तु चिंतामणि ने प्रोषित भर्तृका के अन्तर्गत ही तीनों कालों का समाहार कर दिया है ।

प्रवत्स्यत्पतिकाः–

पिय के विदेश जाने के उद्यम को देखकर अत्यन्त व्याकुल चित्तवाली दुखिनी नायिका प्रवत्स्यत् पतिका है :–

प्रिय विदेश को गौन को उद्यम लखि दुख पाइ ।
होति प्रवत्स्यत प्रिया तिय व्याकुल चित्त बनाइ ।।[2]

प्रवसत्पतिकाः–

प्रियतम को परदेश के लिए प्रस्तुत होता हुआ स्वयं देखकर दुःखानुभव करती है उसे प्रवसत्पतिका कहते हैं:–

कढ़त पीउ परदेश को अपने आँखिन देखि
प्रवसत पतिका नाम कहि, नयो भेद यह लखि[3]

यह नया भेद वास्तव में सृंगार मंजरी से प्रभावित है न कि चिंतामणि की अपनी उद्भावना है ।

प्रोषित पतिकाः–

जाको पति परदेश को कह्यो सो दुखित नारि
प्रोषित पतिका होति है कह्यौ सुपंडित विचारि[4]

1: इत्यादि प्राचीन ग्रन्थ लेखनादग्रिभक्षणे देशान्तर निश्चित गमने ।
प्रेयसि प्रवत्स्यत्पतिकाऽपि नवमी नायिका भवि तुमहिसि
रस मंजरी - भानु मिश्र पृष्ठ 15।

2: क०क०त० 6/190

3: वही 6/198

4: वही 6/204

इस प्रकार उपर्युक्त तीनों भेदों के लक्षणों के उल्लेख के साथ ही सभी प्रकार के नायिकाओं के सुंदर दृष्टान्त दिए गए हैं ।

अभिसारिकाः—

अभिसारिका तीन रूप प्रदर्शित किए गए हैं — ज्योत्स्नाभिसारिका, तमोभिसारिका और दिवाभिसारिका । भानुमिश्र ने स्वकीयाभिसारिका की चर्चा की है किन्तु चिंतामणि ने स्वकीया और सामान्या को छोड़कर केवल परकीया अभिसारिका की चर्चा की है । जहाँ तक वेशभूषा का प्रश्न है रस मंजरी[1] में समयानुरूप वेशभूषा का उल्लेख किया गया है[2]

ज्योत्सनाभिसारिकाः—

जो धवल वेश धारण करके चाँदनी रात में अभिसार करती है वह समस्त रसिकों को आनन्द देने वाली ज्योत्स्नाभिसारिका है —

सुभ्र वेख धरि जोन्ह मै करै जो तिय अभिसार
सो ज्योत्स्ना अभिसारिका सकल रसिक रुचिसार[3]

तमोभिसारिकाः—

स्याम वेष धरि तम समै चलै जु पिय पै नारि
वह कहियतु अभिसारिका सज्जन लेहु विचारि[4]

दिवाभिसारिकाः—

व्याज प्रगट अभिसार जो द्यौस करै वरनारि
सो कहि दिवाभिसारिका सज्जन लेहु विचारि[5]

1: अस्याः (अभिसारिकायः) समयानुरूप वेष भूषण शंकाप्रज्ञानैपुण्यकपटसाहसादयः इति परकीयाः । स्वकीयास्तु प्रकृत एव क्रमः
रस मंजरी - भानु मिश्र पृष्ठ 140

2: क0क0त0 6/210

3: वही 6/212

4: वही 6/214

5: वही 6/217

गुण के अनुसार नायिकाओं के भेदः-

चिन्तामणि ने भानु मिश्र के अनुसार गुणानुकूल नायिकाओं के उत्तमा, मध्यमा और अधमा ये तीन भेद किए हैं। उत्तमा वह नायिका है जो पति के हित अहित करने पर भी सदा हित करती है। मध्यमा हित और अहित के अनुरूप व्यवहार करती है। हित करने वाले प्रियतम का भी अहित करने वाली अधमा नायिका कहलाती है -

उत्तम मध्यम नीच ए तीनि भेद करि जानि
इनके लक्षण उदाहरण कहत लेहु मन आनि[1]
पिय कृत हित अरु अहित मै करै हिता हित नारि।
कवि चिंतामनि कहत है सो मध्यमा विचारि।।
हितौ करत लाखिनाह कौ अहित करै जो नारि।
सो अधमा है नाइका सज्जन कहत बिचारि।।[2]

उल्लेख्य है कि चिंतामणि ने नायक नायिका भेद का निरूपण सृंगार रस के अन्तर्गत आलम्बन तथा आश्रय के रूप में किया है और नायिका भेद के प्रारम्भ में ही नख शिख वर्णन की दृष्टि से दिव्याअदिव्या और दिव्यादिव्या भेद किया है इसीलिए नायिका भेद की समाप्ति पर दिव्य नारी राधा के भूतलावतार को ध्यान में रख कर सौन्दर्य वर्णन शिख से नख तक वर्णन किया है। 33 छन्दों में समाप्त होने वाला शिख-नख वर्णन बैनी वर्णन से प्रारम्भ करके नख वर्णन में समाप्त होता है। इस प्रसंग में कुछ छन्द कृष्ण चरित्र से भी दिए प्रतीत होते हैं।

सृंगार मंजरी में नायक नायिका भेद निरूपणः-

सृंगार मंजरी के लक्षण निरूपण में चिंतामणि को विशेष कठिनाई हुई है, क्योंकि संस्कृत के गद्य बद्द सूत्र लक्षणों को पद्य बद्द करने में निरर्थक शब्द योजना अधिक करनी पड़ी है। उदाहरणार्थ मुदिता का लक्षण देखिए :-

---

1: क0क0त0 6/217

2: वही 6/218, 220 तुलनीय रस मंजरी - भानु मिश्र पृष्ठ 159 तथा 60

" इष्ट प्राप्त्या या हर्ष प्राप्नोति सा मुदिता" का अनुवाद इस प्रकार है—

प्रिय प्रापति में मुदित जो मुदिता कहिए सोइ
समुझि बड़े साहिब कहत समुझि लेउ सब कोइ2

यहाँ दूसरी पंक्ति लक्षण की दृष्टि से निरर्थक एवं पाद पूर्ति के लिए है किन्तु उदाहरणों के निर्माण में इनकी मौलिकता और कवित्व शक्ति देखने योग्य है। सृंगार मंजरी का नायक नायिका भेद निरूपण खंडन मंडन से युक्त अतएव अधिक विस्तृत है एवं गद्य एवं पद्य दोनों के उपयोग के कारण सुबोध एवं स्पष्ट है। (नायक नायिका भेद की संक्षिप्त रूप रेखा परिशिष्ट में द्रष्टव्य है।)

नायक नायिका विषयक सामग्री का पर्यालोचनः—

अब तक की परिचर्चा से यह स्पष्ट हो चुका है कि नायक नायिका भेद की दृष्टि से चिंतामणि के रस विलास एवं कवि कुल कल्प तरु दो ग्रन्थ प्रमुख महत्व के हैं सृंगार मंजरी का महत्व कवि कुल कल्प तरु पर प्रभाव की दृष्टि से है। रस-विलास में परोढ़ा नायिकाओं के अमिला, सुमिला, दुर्मिला आदि भेदों के अतिरिक्त शेष सामग्री मात्र संगृहीत है।

कवि कुल कल्प तरु में नायक-नायिका भेद को साहित्य-दर्पण की भाँति रस-प्रकरण में स्थान दिया गया है जो हिन्दी साहित्य की दृष्टि से अपने प्रकार का प्रथम प्रयास है। इस ग्रन्थ में भी साहित्य-दर्पण, दशरूपक, प्रताप रुद्रीय रस मंजरी और सृंगार मंजरी आदि का आश्रय लिया गया है। वस्तुतः रस विलास और कवि कुल कल्प तरु दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

डा0 सत्यदेव चौधरी ने कवि कुल कल्प तरु के प्रस्तुत प्रकरण पर सृंगार मंजरी के मूल भूत सिद्धान्तों का प्रभाव न देखकर सृंगार मंजरी को बाद की रचना माना है किन्तु सृंगार मंजरी के कवि कुल कल्प तरु में उल्लेख को ध्यान में रखते हुए उसकी पूर्ववर्ती स्थिति को स्वीकार न करने का कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता। अन्त में कहा जा सकता है कि यद्यपि इन्होंने अधिकांश लक्षणों को शाब्दिक अनुवाद के रूप में प्रस्तुत किया है तथापि स्वकीया, परकीया, सामान्या, अभिसारिका, रति-प्रीतिमती आदि के लक्षणों में मौलिक विशेषता लाने में सफल हुए हैं। पर्याप्त सतर्कता के साथ प्रस्तुत इन लक्षणों में निश्चय ही चिंतामणि का आचार्यत्व सफल हुआ है। जहाँ तक उदाहरणों का प्रश्न है उनमें मौलिक सन्दर्भों की उद्भावना तथा

कवि कर्म दोनों दृष्टियों से इन्हें सफलता मिली है। आकर ग्रन्थों में उद्धृत उदाहरणों के बदले स्व-निर्मित उदाहरणों की इतनी बड़ी संख्या कवि रूप को प्रतिष्ठित करने के लिए पर्याप्त है। अधिकांश उदाहरणों सवैया और घनाक्षरी में हैं। दोहे में भी उदाहरणों की योजना की गई है। कुछ उदाहरण तो कृष्ण चरित्र से लिए गए हैं। राम कथा संबन्धी उदाहरण सम्भवतः इन्होंने अपने रामायण काव्य से लिए होंगे किन्तु ग्रन्थ के अनुलब्ध होने कारण साधिकार कहना कठिन है।

0

पिछले पृष्ठ की टिप्पणीः—

1: संस्कृत सृंगार मंजरी - सन्त अकबर शाह पृष्ठ ।।

2: हिन्दी सृंगार मंजरी - चिन्तामणि - पृष्ठ 33

8ः रस प्रकरण

रस प्रकरण

रस सम्बन्धी कृतियों का सामान्य परिचय :-

रस एवं रसांग निरूपण सम्बन्धी चिन्तामणि के तीन ग्रन्थ प्राप्त होते हैं - 1- कवि कुल कल्प तरु, 2- रस विलास, 3- श्रृंगार मंजरी । इनमें से कवि कुल कल्प तरु निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ और प्रधान ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ में कुल 1135 छन्द हैं जिनमें से 530 छन्दों में रसविधायक सामग्री का विवेचन है । 305 छन्दों में मुख्य रूप से रस का उल्लेख है और 225 छन्दों में नायक नायिका भेद को स्थान मिला है । रस विलास रस रूपक एवं केशव की 'रसिक प्रिया' से प्रभावित और मध्यम कोटि का ग्रन्थ है उसमें सम्पूर्ण अंगों पर प्रकाश नहीं डाला गया है । श्रृंगार मंजरी शुद्ध रूप से नायक-नायिका भेद का ग्रन्थ है और उसके तीस छन्द कवि कुल कल्प तरु में यथावत् स्वीकृत हैं। अतः रस प्रकरण के लिये भी प्रधान रूप से कवि कुल कल्प तरु को ही अध्ययन का आधार बनाया गया है ।

कवि कुल कल्प तरु के पाँचवें प्रकरण में तीन भाग हैं । दूसरे भाग में ध्वनि का निरूपण करते हुए मम्मट के अनुसार असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि के अन्तर्गत रसादि (रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावशान्ति, भाव सन्धि, भाव शबलता) का निरूपण किया गया है और श्रृंगार रस की परिचर्चा के क्रम में नायक नायिका भेद का उल्लेख किया गया है जो विश्वनाथ के साहित्य-दर्पण से अनुप्राणित है ।

काव्याह्लाद का विवेचन करते हुए भारतीय मनीषा ने जिस सर्वोत्तम तत्त्व को प्राप्त किया है उसका नाम है रस । यह रस जब वाच्य न होकर व्यंग्य अथवा ध्वन्यार्थ के रूप में प्राप्त होता है तब उसकी विष्णुता असीम हो जाती है । अतः रस को ध्वनि के अन्तर्गत स्वीकार करना चिंतामणि की पैनी आलोचक दृष्टि का परिचायक है ।

रस का स्वरूप एवं निष्पत्तिः-

कवि कुल कल्प तरु में रस के स्वरूप एवं उसकी निष्पत्ति का तीन बार उल्लेख मिलता है जो क्रमशः निम्नांकित है ।

(क) मिलि विभाव अनुभाव अरु संचारिन मिलाइ ।
थिर थाई है भाव जो सो रस रूप गनाइ ॥[1]

(ख) रत्यादिक के हेतु जे काज और सहकारि ।
जग मैं तेई तकत मैं आन नाम निर्धारि ॥
विभावनादिक अलौकिक व्यापारानि सुचित्त ।
तै विभाव अनुभाव अरु संचारी धरि चित्त ॥
थाई सामाजिक हिय बसत बासना रूप ।
व्यक्त विभावादिकन मिलि रस है लसत अनूप[2] ॥

(ग) कछु विभाव अनुभाव कछु अधिक बहुत संचारि ।
व्यक्ति जु थाई भाव सो रस क्रम यह निरधारि[3] ॥

यहाँ मूलतः काव्य-प्रकाश का आश्रय लेकर 'क' और 'ख' दोनों में रस स्वरूप की चर्चा कीगई है । 'ख' अंश में तो काव्य-प्रकाश की निम्नांकित पंक्तियों का अनुवाद है —

" कारणन्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च ।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः[4]

तात्पर्य यह है कि लोक में जो कारण कार्य और सहकारी हैं वे ही विभावनादि अलौकिक व्यापार के माध्यम से काव्य में क्रमशः विभाव अनुभाव और संचारी भाव कहलाते हैं । सामाजिक के हृदय में वासना रूप से स्थित रत्यादि स्थायी भाव विभावादि के संयोग से व्यक्त[5] (चर्वित या आस्वादित) होने पर रस नाम से अभिहित होते हैं । इस

---

1 : का० क० त० 5/2/48

2 : वही 5/2/63,64,65

3 : वही 8/154

4 : का० प्र० 4/27,28 तथा सूत्र 43 पृष्ठ 95

5 : क - तैः विभावाद्यैः व्यक्तः व्यक्तिश्चर्वणेति पर्यायः × × × तथा च व्यक्ति विशिष्ट एव स्थायी रसः इति प्रदीपः   का० प्र० बाल बोधिनी पृ० 86

ख - व्यक्तः व्यंजनाख्यया वृत्या प्रति पादितः × × × व्यंजितः स्थायी रसः इत्यर्थः   वही पृष्ठ 86

प्रकार चर्वणा से युक्त स्थायी को रस कहा जाता है । (यद्यपि बाल बोधिनीकार प्रदीप के मत को ही सैद्धान्तिक रूप में स्वीकार करते हैं तथा उनका 'व्यक्त' का व्यंजना वृत्ति से प्राप्त अर्थ करना भी अनुपयुक्त नहीं है तथापि उचित तो यह होगा कि दोनों को सम्मिलित करके व्यंजना वृत्ति से प्राप्त एवं आस्वादित अर्थ लिया जाय)
'ग' अंश भी यद्यपि मम्मट से ही प्रभावित है तथापि चिन्तामणि ने विभावादि के आनुपातिक महत्त्व को बताने का प्रयास किया है । उनकी दृष्टि में रस यद्यपि असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य होता है फिर भी रस की व्यक्ति (अभिव्यंजना या चर्वणा) में कुछ अंश तक विभाव, कुछ अधिक अंश तक अनुभाव तथा बहुत अंश तक संचारी का महत्त्व होता है।

रस विलास में रस की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :-

मिलि विभाव अनुभाव अरु, सात्विक बिभिचारीनि
ल्यावत है जो स्वाद को, सो थाई रस चीन्हि[1]

यह परिभाषा दशरूपक की परिभाषा का अनुवाद है -

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः
आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायी भावो रसः स्मृतः[2]

इन दोनों ग्रन्थों की परिभाषाओं पर विचार करते हुए यह उल्लेखनीय है कि धनंजय और धनिक दोनों ही मीमांसक भट्ट लोल्लट के अनुगामी हैं । उनके मतानुसार विभावादि रस के हेतु हैं तथा उनमें परस्पर उत्पाद्य उत्पादक भाव सम्बन्ध है । अस्तु चिन्तामणि ने भी दशरूपक के आधार पर भरत के सूत्र में 'रसनिष्पत्तिः' का अर्थ 'उत्पत्ति' माना है और 'आनीयमानस्वाद्यत्वं' की तौल पर 'ल्यावत है जो स्वाद को' लिखकर विभावादि के द्वारा स्थायी भाव के आस्वाद्य बना दिए जाने का संकेत किया है ।

साहित्य शास्त्र में निष्णात विद्वान इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि नाट्य-रस की दृष्टि से दशरूपक के लक्षण का किसी सीमा तक महत्त्व भले ही आँका जाय किन्तु

1: रस विलास - 1/3

2: दशरूपक - 4/1

काव्य-रस की दृष्टि से इस सिद्धान्त को पूर्व पक्ष से अधिक महत्त्व नहीं है । 'कविकुल कल्प तरु' की परिभाषा ध्वनिवादी साहित्यशास्त्रियों की परिभाषा है जो रस को अलक्ष्यक्रम व्यंग्य के रूप में स्वीकार करते हैं वाच्य अथवा उत्पाद्य नहीं । यह भी उल्लेख्य है कि चिन्तामणि का 'व्यंग्य' शब्द मम्मट, विश्वनाथ आदि की भाँति अभिनव गुप्त के अभिव्यक्ति सिद्धान्त का अनुगमन करता है इसीलिए चिन्तामणि ने रस के वाचकत्व का निषेध करके व्यंजकत्व का उल्लेख किया है । निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए –

यह रस पुनि सु अलक्ष्य क्रम व्यंग्य आपु धुनि मानि
शृंगारादि विशेष पद वाचक कहत विचारि
वाचक पद रसु नहीं जो, सब साधारन नाम
चिन्तामनि कवि कहत है, समझो बुध अभिराम
इन शब्दन तें कहत हू वर्णन रस की होइ
याते रस सब ठौर में व्यंग्य कहत सब कोइ[1]

तात्पर्य यह है कि रस असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य धुनि रूप है । इससे शृंगारादि नाम केवल वाचक अथवा साधारण नाम हैं क्योंकि शृंगारादि शब्द के कहने से रस का वर्णन हो जाता है अतः शृंगारादि शब्दों के प्रयोग से शब्दार्थ मात्र की प्रतीति हो सकती है रसानुभूति की नहीं अतएव चिन्तामणि का कथन है कि सभी लोग रस को व्यंग्य ही कहते हैं ।

इस प्रसंग में आनन्दवर्धन का निम्नलिखित कथन दृष्टव्य है –

" न हि केवलं शृङ्गारादि शब्दमात्र भाजि विभावादि प्रतिपादन रहिते काव्ये मनागपि रसवत्त्वप्रतीतिरस्ति । यतश्च स्वाभिधानमन्तरेण केवलेभ्योऽपि विभावादिभ्यो विशिष्टेभ्यो रसादिनां प्रतीतिः । केवलाच्च स्वाभिधानादप्रतीतिः । तस्मादन्वयव्यतिरेकाभ्याम् । अभिधेय सामर्थ्याक्षिप्तत्वमेव रसादीनाम् । न त्वभिधेयत्वं कथंचित् ।[2]

अभिनवगुप्त ने भी लोचन में रस की चर्चा करते हुए उसे ध्वनि रूप ही सिद्ध किया है –

"यस्तु स्वप्नेऽपि न स्वशब्दवाच्यो न लौकिकव्यवहार पतितः किं तु शब्द समर्प्यमाण हृदयसंवादसुन्दरविभावानुभावसमुचित प्राग्विनिविष्ट रत्यादिवासनानुरागसुकुमारस्वसंविदानन्द चर्वणा व्यापाररसनीयरूपोरसः, स काव्यव्यापारैकगोचरो रसध्वनिरिति, स च ध्वनिरेवेति, स एव मुख्यतयात्मेति"।[3] अतःस्पष्ट है कि चिंतामणि भी रस ध्वनि वादी आचार्य

मम्मट ने इस प्रकार कहा है —

"न खलु विभावानुभावव्यभिचारिण एव रसः अपितु रसस्तैरित्यस्तिक्रमः स तु लाघवान्न लक्ष्यते ।"[1]

मम्मट के इस अंश पर टिप्पणी करते हुए बालबोधिनी टीका में कहा गया है रस और विभावादि के बीच में पौर्वापर्य क्रम तो है किन्तु वह लक्षित नहीं होता, क्योंकि रस के उद्बोधन से शीघ्र ही मन के आकृष्ट हो जाने से अत्यन्त सूक्ष्म काल में घटित होने वाले क्रम का आकलन नहीं हो पाता । इसलिए अलक्ष्य क्रम है । यह ठीक वैसे ही होता है जैसे कमल के सौ पत्तों को एक साथ रखकर छेदा जाए तो देखने में लगता है कि एक बार ही छेद हो गया किन्तु वास्तविकता यह है कि सौ पत्ते सौ बार में छिदते हैं —

"रसविभावादयोः पौर्वापर्यक्रमोऽस्तीति । स तु न लक्ष्यते । रसोद्बोधेन झटिति चित्ताकर्षणेन सूक्ष्मकालघटितस्य तस्य शतपत्रपत्रशतभेदन्यायेनानाकलनादित्यलक्ष्यक्रम इत्युक्तं न त्वक्रम इति ।"[2]

रस का आनन्द पुण्यात्मा की विशिष्ट उपलब्धिः —

रस महानन्द स्वरूप तथा उल्लासमय होता है । यह किसी भाग्यवान एवं पुण्यात्मा प्रमाता को ही प्राप्त होता है ।

महानन्द उल्लास वह सुकृती सेवक होइ ।
सज्जन सुखद जु ग्रन्थ में रस निरूपना सोइ ।।[3]

यह अंश विश्वनाथ से प्रभावित है । रस के स्वरूप निरूपण में विश्वनाथ ने उसे ("आनन्दमय"[4] कहा है तथा "कैश्चित् प्रमातृभिः" की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "कैश्चिदिति प्राक्तनपुण्यशालिभिः" । यदुक्तं— "पुण्यवन्तः प्रमिण्वन्ति योगिवद्रससंततिम्"[5] (पुण्यवान लोग ही योगियों की भाँति रसानन्द की प्राप्ति करते हैं)।

1: का० प्र० 4/28 की वृत्ति सूत्र 41

2: का० प्र० 4/26 की वृत्ति सूत्र 42 बाल बोधिनी टीका पृष्ठ 84

3: क० क० त० 5/2/62

4: सा० द० 3/2

5: सा० द० 3/3 की वृत्ति

साधारणीकरणः –

साधारणीकरण के संबन्ध में चिन्तामणि की निम्नांकित पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं–

गनि विभाव अनुभाव पुनि संचारी यह नाम ।
विभावनादि अलौकिक कै व्यापार अभिराम ।।
तिन तिहुँ की अवलोकि कै करि व्यापार बनाइ ।
विभावना अनुभावना संचारना बनाइ ।।
सब जन साधारन त्रिविध व्यापारन सो तीन ।
सुहृद हिय वर भावको व्यंजन धरम नवीन ।।
साधारन व्यापार बल सब साधारन होइ ।
नियत प्रमातहि में यदपि तहाँ अपरिमित होइ ।।
सदानन्द उल्लास वह सुकृती सेवत कोइ ।
सज्जन सुखद जु ग्रन्थमैं रस निरूपना सोइ ।।
साधारन व्यापार सो जग साधारन जानि ।
ते विभाव अनुभाव अरु, पुनि संचारि बखानि ।।[1]

तात्पर्य यह है कि विभाव अनुभाव और संचारी, विभावना, अनुभावना एवं संचारणा रूप व्यापार के बल से एक साधारणीकृत स्थिति को प्राप्त कर लेते हैं फलतः वे सहृदयों के हृद्गतभावों के व्यंजन में समर्थ हो जाते हैं । इस साधारणीकरण व्यापार से जो स्थायी भाव नियत प्रमाता (व्यक्तिविशेष से संबन्ध रखते हैं वे अपरिमित प्रमाता (देशकालादि विनिर्मुक्त जन सामान्य) से संबद्ध हो जाते हैं । इस कथन में मम्मट की निम्नांकित पंक्तियों का प्रभाव दृष्टव्य है । अभिनव गुप्त के मत का उल्लेख करते हुए मम्मट का कथन है कि –" लोके प्रमदादिभिः × × × कारणत्वादिपरिहारेण विभावनादि व्यापारवत्वादलौकिकविभावादि शब्दव्यवहार्यैः × × × साधारण्येन प्रतीतैरभिव्यक्तः सामाजिकानाम् वासनात्मकतया स्थितः स्थायी रत्यादिको नियतप्रमातृगतत्वेन स्थितोऽपि साधारणोपायबलात् तत्कालविगलितपरिमितप्रमातृभाववशोन्मिषि तवेद्यान्तरसम्पर्क शून्यपरिमिताभावेन प्रमाता सकलहृदयसंवादभाजा साधारण्येन स्वाकार इवाभिन्नोऽपि गोचरी कृतश्चर्व्यमाण-

---

1: क0 क0 त0 5/2/58, 59, 60, 61, 62, 65

तैरुप्राप्तः विभावदिभिर्विभावाधैः भानुकम्म्यमानेन चर्व्यमाणः अलौकिक चमत्कारी शृंगारादि को रसः ।[1]

<u>भाव एवं स्थायी भावः—</u>

चिंतामणि ने भाव का सामान्य लक्षण करने के उपरान्त उसी शीर्षक के अन्तर्गत स्थायी भाव का भी निरूपण किया है । उनका कथन है कि अनेक ग्रन्थकर्त्ताओं के मत से सामाजिक के अन्तःकरण में वासना रूप से स्थित मनोविकारों को भाव कहा गया है । काव्य में वर्णित रामादि के सुखदुःखादि अनुभव से उत्पन्न मन का विकार जब संचरण छोड़कर स्थिरता ग्रहण कर लेता है तो उसे स्थायी भाव कहते हैं ।

"मन विकार कहि भाव सो बरनं वासना रूप ।
विविध ग्रन्थ करता कहत ताको रूप अनूप ।।
काव्योदित रामादि सुख दुखादनुभव जोत ।
मन विकार संचारि तजि, यह थाई थिर बात ।[2]"

भावसामान्य तथा स्थायी भाव संबन्धी चिंतामणि की इस अवधारणा में प्रताप-रुद्रीय यशो भूषण की रत्नापण टीका की छाया दृष्टव्य है —

"काव्येनाऽभिनयेन वा निवेद्यमान रामादि सुखदुःखाद्यनुभव जनित वासनारूपः संचारराहित्यस्थायिः सामाजिक मनोविकारो भावः । तदुक्तं दशरूपके (4/4) सुखदुःखादि-भिर्भावैर्भावस्तद्भावभावनम्[3] ।"[2]

<u>स्थायीभावः—</u>

स्थायीभाव सामाजिक के हृदय में वासना रूप में विद्यमान रहता है तथा विभावादिक से व्यंजित होकर अथवा आस्वाद्य बनकर रस रूप में परिणत हो जाता है यह स्थायी भाव सजातीय अथवा विजातीय भावों से नष्ट नहीं होता और जब तक रस का आस्वाद विद्यमान होता है तब तक स्थायी भाव भी स्थिर रहता है । यह अन्य सभी भावों को चाहे वे विरुध्द हों या अविरुध्द, आत्मसात् कर लेता है जैसे समुद्र सभी वस्तुओं को आत्मसात् कर लेता है:—

1: का0 प्र0 4/26 की वृत्ति पृ0 108-109   2: क0 कु0 क0 5/2/50 तथा 52
3: प्र0 रु0 भू0 (रत्नापण) पृ0 227

"थाई मानसिक विकार बसत भावना रूप ।
व्यक्त विभावादिकन मिलि रस है लसत अनूप ।।[1]
जो नहिं पावत विकृति भी और विरुद्ध रूप ।
जब लगि रस तब लगि सुथिर थाई भाव अनूप ।।
पावै स्वादै आपनो रूपहि और अभेद ।
जो विरुद्ध हू भावनि रहि विच्छेदक भेद ।।
सो थाई है कहुसों, जब लगि है आस्वाद ।
तब लगि यह वह रहत है जो थाई अविवाद ।।[2]

चिंतामणि का उपर्युक्त विवेचन दशरूपक पर आधारित है —
विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः[3]
आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकरः

प्रतापरुद्रीय यशोभूषणं में[4] दशरूपक से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया गया है :—

सजातीय विजातीय रति तिरस्कृत मूर्तिमान ।
यावद्रसं वर्त्तमानः स्थायिभाव उदाहृतः ।[5][4]

किन्तु दशरूपक की वर्तमान प्रतियों में यह श्लोक प्राप्त नहीं है । सम्भव है धनिक की उपर्युक्त वृत्ति के आधार पर उक्त श्लोक प्रचलित हो गया हो अथवा दशरूपक की किसी प्राचीन प्रति में यह श्लोक रहा हो । रसगंगाधर भाग 1 पृष्ठ 86 पर भी उक्त श्लोक उपलब्ध है ।

1: क०क०त० 5/2/66
2: वही 5/2/51,53 तथा 54
3: दशरूपक 4/34 तथा धनिक की वृत्ति पृष्ठ 217
4: प्र० रु० भू० पृष्ठ 221
5: प्र० रु० भू० 221

अतः चिंतामणि का स्थायी भाव विवेचन स्पष्ट रूप से दशरूपक पर आधारित है। रसविलास[1] में भी दशरूपक का ही आश्रय लेकर स्थायी भाव का लक्षण निरूपित किया गया है किन्तु उसमें कोई उल्लेख्य नूतनता नहीं है।

<u>स्थायी भावों की संख्या:-</u>

चिंतामणि के अनुसार स्थायी भाव नौ हैं – रति, हास, शोक, भय, क्रोध, उत्साह, जुगुप्सा, विस्मय तथा शम अथवा तत्त्वबोध (तत्त्वज्ञान) –

> प्रथमहि रति अरु हास पुनि, बहुरि सोक भय(भय) क्रोध।
> पुनि उत्साह जुगुप्स पुनि विस्मय शम तत्त्वबोध ।।[2]

स्थायी भावों के सभी नाम तो परम्परागत ही हैं किन्तु शान्त रस के लिए दो स्थायी भावों का उल्लेख किया गया है पहला शम और दूसरा तत्त्वबोध। यद्यपि काव्य-प्रकाश में शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद माना गया है[3] किन्तु काव्य प्रकाश की ही टीका प्रदीप में निर्वेद को व्यभिचारी के रूप में स्वीकार करते हुए शान्तरस का स्थायी-भाव शम को माना गया है[4]। साहित्य दर्पण[5] आदि ग्रन्थों में भी शम को ही स्थायी भाव माना गया है अतः चिंतामणि ने शम को स्थायी भाव मान लिया है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वे अभिनव गुप्त द्वारा स्वीकृत 'तत्त्वज्ञान' को भी स्थायी भाव मानने के पक्ष में हैं –

"तेनात्मैव ज्ञानानन्दादिविशुद्ध धर्मयोगी परिकल्पित विषयोपभोग रहितोऽत्र स्थायी[6] (शान्त रस का स्थायी भाव है) आत्मज्ञान, जो परिकल्पित विषय भोग आदि की वासना से मुक्त शुद्ध आनन्दमय है।

1: जो विरुद्ध अविरुद्ध अरु भावहु ना विच्छेद।
निज भावै न तजै उदधि सो थाई यह भेद ।। रसविलास - ८/१

2: क० क० त० 5/2/55

3: निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः का० प्र० 4/35 सूत्र 47

4: तस्मात् शमोऽस्य स्थायी। निर्वेदादयस्तु व्यभिचारिणः का० प्र० बालबोधिनी टीका पृ।।8

5: सा० द० 3/175

6: हिन्दी अभिनव भारती पृष्ठ 623

विभावः—

लोक में जिन्हें स्थायी भाव का कारण माना जाता है वे ही काव्य आदि में वर्णित किए जाने पर विभाव कहलाते हैं । रस के अभिव्यंजन में साधक होने के कारण इन्हें निमित्त या हेतु कहा गया है । यह विभाव आश्रय में भावों को जागृत भी करते हैं और उद्दीप्त भी । इसलिए इनके आलम्बन और उद्दीपन दो भेद किए गए हैं । इसी तथ्य को चिन्तामणि ने विद्यानाथ से प्रभाव ग्रहण करके इस प्रकार परिभाषित किया है —

चिन्तामणिः—

"थाई हेतु जग मध्य जो कवित हेतु सु विभाव ।
आलम्बन उद्दीपनौ द्विविधा प्रसिद्ध गनाव ।।"[1]

विद्यानाथः—

"विभावः कथ्यते तत्र रसोत्पादन कारणम्"[2]

विभाव के भेदों का उल्लेख विश्वनाथ[3] के समान किया गया है और उन्हीं के अनुसरण पर आलम्बन विभाव के अन्तर्गत नायक नायिका भेद का सांगोपांग निरूपण किया गया है ।

रसविलास[4] में विभाव को स्थायी भाव का पोषक उपकरण - सम्यक पोषण - कर्ता माना गया है जो दश रूपक 'विभावेभाव पोषकृत'[5] का अनुवाद मात्र है ।

उद्दीपन विभाव की चर्चा में चिन्तामणि ने विद्यानाथ के संकेतों के आधार पर पूर्व पक्ष के रूप में चार भेदों का उल्लेख किया है ध्यातव्य है कि 'प्रतापरुद्र यशोभूषण में सृंगारतिलक के आधार पर आलम्बन के गुण, उसकी चेष्टा, उसके अलंकरण तथा

1: क0क0त0 5/2/67

2: प्र0रु0भू0 पृष्ठ 222

3: सा0द0 3/29 तथा परवर्ती कारिकायें

4: रस विलास 1/3

5: दश रूपक 4/2

तटस्थ, ये चार प्रकार के उद्दीपन माने जाते हैं जिनमें रूप यौवनादि गुण, यौवनोद्भूत हाव भावादि उसकी चेष्टाएँ तथा नूपर अंग हारादि उसके अलंकरण आलम्बनगत या अविच्छिन्न माने जाते हैं"[1]।

चिंतामणि का उल्लेख इस प्रकार है :-

आलम्बन गुन इंगितौ अलंकार ये तीनि ।
पुनि तटस्थ चौथे कह्यौ उद्दीपन ए वीन ।।
आलम्बन गुन रूप अरु जौनादिक चित आनि ।
वहुरि हाव भावादिखे चेष्टा ताकी जानि ।।[2]
नूपुर अंगद हार इन आदि अलंकृत देखि ।
मलयानिल चन्द्रादि ए सब तटस्थ अवलेखि ।।[3]

विश्वनाथ ने आलम्बन का चेष्टादिक और देशकालारूप से द्विविध विभाजन करके प्रथम वर्ग में रूप चेष्टाएँ तथा आभूषणादि को समेट लिया है तथा देशकाल में तटस्थ उद्दीपकों का उल्लेख किया है -

'आलम्बनस्य चेष्टाद्याः देशकालादयस्तथा'।

चेष्टाद्या इत्याद्यशब्दाद्रूपभूषणादयः। कालादीत्यादिशब्दाच्चन्द्रचन्दनकोकिलालापभ्रमरझंकारादयः[4]।

किन्तु चिन्तामणि की धारणा इस विषय में नितान्त भिन्न है एवं अपने युग की सीमा में मौलिक चिन्तन है । उन्होंने उचित तर्कों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि चन्द्रउदयादि जो तटस्थ उद्दीपन कहे गए हैं वे ही वास्तव में उद्दीपन कहे जा सकते हैं अपने विवेचन का आरम्भ वे इस प्रकार करते हैं -

---

1: देखिए हिन्दी साहित्य कोश द्वितीय संस्करण पृष्ठ 151 पर उद्दीपन विभाव

2: क0क0क0त0 - 7/41, 42

3: क0क0त0 - 7/43

4: सा0द0 3/132 का पूर्वार्द्ध तथा उसकी वृत्ति

'या पर यों' हम कहत हैं'

उद्‌दीपन जे भाव ये सुने कहूँ हम नाहिं ।

चन्द्रोद्‌यानादिक कहे समुझे नीके जाहिं ।।

आलम्वन के गुन सबै, आलम्वन के बीच ।

तै उद्‌दीपक को कहै कथन लगै यह नीच ।।

सौंदर्य्यादिक गुन रहित आलंबनै न होइ ।

आलम्वन गुन रहित जो बरनि सकै नहिं कोइ ।।

चेष्टा ताकी आपुही बरनैंगे अनुभाव ।

अब उद्‌दीपन कहत हैं कैसो बुदि प्रभाव ।।

आलम्वन की अलंकृत है आलम्वन मांह ।

सो उद्‌दीपन होत है जो वरनत कवि नाह ।।

रस उद्‌दीपन क्यों कहै रस प्रधानि वे जानि ।

जो आलम्वन मध्य है ते आलम्वन मानि ।।

जे तटस्थ उन कहे हैं चन्द्र बाग इन आदि ।

ते उद्‌दीपन कहि सकै, है यह बात अनादि ।।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों का तात्पर्य यह है कि जिन चार प्रकार के उद्‌दीपनों की चर्चा ढूंढ़ खोज ('बीन') कर की गई है उन्हें कवि ने अन्यत्र कहीं नहीं सुना है । हाँ, चन्द्र उद्‌यानादिक सरलता से उद्‌दीपन समझे जा सकते हैं । आलम्वन के गुण (रूप यौवनादि) आलम्वन से पृथक नहीं किये जा सकते । अतः उन्हें उद्‌दीपन कहना एक निम्न स्तरीय कथन है । सौन्दर्यादि गुणों से रहित आलम्वन की काव्य में भला क्या सत्ता हो सकती है ? जहाँ तक आलम्वन की चेष्टाओं का प्रश्न है उन्हें स्वयं ही (विद्‌यानाथ) अनुभाव के रूप में वर्णित करेंगे । अतः (जो अनुभाव है) उन्हें यहाँ उद्‌दीपन कहना बुद्दिदोष ही माना जायगा । आलम्वन के आभूषणादि आलम्वनगत ही

1: का०क०त० 7/44 से 7/51 तक

होती हैं इसलिए उन्हें रस का उद्दीपक न कहकर आलम्बनस्थ होने के कारण आलम्बन ही मानना चाहिए । हाँ, चन्द्रोद्यानादि तटस्थ उद्दीपनों को निश्चय ही उद्दीपन कहा जा सकता है और यह बात परम्परा सिद्ध है ।

इस विषय में डा0 सत्यदेव चौधरी ने विस्तृत विवेचन किया है तथा हाव भावादिक चेष्टाओं के अनुभाव में अन्तर्भाव को अस्वीकार किया है । उनका कथन है कि "चिन्तामणि की उपर्युक्त धारणा से हम पूर्ण सहमत नहीं हैं × × × आलम्बनगत चेष्टाओं का अनुभाव में अन्तर्भाव केवल श्रृंगार, बीर और रौद्र रसों में ही सम्भव है हैं करूण, भयानक आदि रसों में नहीं ।"[1] डा0 चौधरी के अनुसार "श्रृंगार, वीर और रौद्र रसीय आलम्बन विभाओं के दोनों पक्षों की वाह्यचेष्टायें समान रूप से परस्परोद्दीपक हैं पर इनमें अनुभावन व्यवहार - आन्तरिक भावों का स्पष्टीकरण - उद्दीपन पक्ष की अपेक्षा अधिक प्रबल है अतः 'प्राधान्येन व्यपदेशाः भवन्ति' के अनुसार इन्हें अनुभाव की ही संज्ञा मिलनी चाहिए, अन्यथा इन रसों में अनुभाव की परम्परागत सत्ता का नितान्त निषेध मानना पड़ेगा ।[2]

उनके मत से करूण एवं भयानक रस में आलम्बन विभाव की एक पक्ष की वाह्यचेष्टाएँ उद्दीपन विभाव कही जायेगी तो दूसरे पक्ष की अनुभाव । वस्तुतः आलम्बन का अर्थ रूप गुण चेष्टा आदि से सम्पन्न व्यक्तित्व करना ही युक्त युक्त होगा । किसी भी भाव का आलम्बन विभिन्न विशेषताओं से युक्त व्यक्ति होता है क्योंकि यह विशेषताएँ व्यक्तित्व के धर्म हैं । इनसे विहीन जड़ अथवा केवल अस्थि चर्ममय ढाँचे को आलम्बन नहीं बनाया जा सकता, अतः आलम्बन के गुण आलम्बन की चेष्टाएँ तथा आलम्बन के अलंकरण को स्वतंत्र रूप से उद्दीपन मानना युक्ति युक्त नहीं है ।

अनुभावः—

इति कारज अनुभाव गनि ये कटाच्छ दै आदि ।

1ः हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा0 सत्यदेव चौधरी, पृष्ठ 289

2ः हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा0 सत्यदेव चौधरी, पृष्ठ 289-290

मधुर अँग इहा कहै सुहृदै सुखद अनादि ।।
जे पुनि थाई भाव कौ प्रगट करै अनयास ।
ताहि कहत अनुभाव हैं सब कवि बुदि बिलास ।।[1]

लोक में जिन्हें कार्य कहते हैं तथा जो स्थायी भावों को अनायास प्रकट कर देते हैं उन्हें अनुभाव कहते हैं अतः कटाक्ष आदि रूप मधुरांग प्रदर्शन रूप कार्य को अनुभाव कहा जाता है । चिंतामणि अनुभाव के उपर्युक्त लक्षण के लिए विद्यानाथ एवं कुमार स्वामी के ऋणी हैं ।

कार्यभूतोऽनुभावः स्यात् कटाक्षादि शरी जः ।[1]
भ्रू विक्षेप कटाक्षादि विकारो हृदयस्थितम् ।।
भावंध्यनक्ति यः सोऽनुभाव इतीरितः ।[2]

स्पष्ट है कि चिन्तामणि ने प्रतापरुद्रय यशोभूषण तथा उसकी टीका का सम्मलित रूप में अनुवाद करके अनुभाव का लक्षण प्रस्तुत किया है किन्तु 'मधुर अँग इहाँ कहै सुहृदय सुखद अनादि' अँश अपनी ओर से जोड़ दिया है । जिससे प्रतीत होता है कि चिंतामणि की दृष्टि में मुख्य रूप से श्रृंगार रस के अनुभाव रहे होंगे ।

रसविलास में भावों की सूचना देने वाले विकारों को अनुभाव कहा गया है जो दश रूपक पर आश्रित है ।

(क) जोसंसूचक भाव के सो विकार अनुभाव[3]
(ख) अनुभावोविकारस्तु भाव संसूचनात्मकः[4]

<u>अनुभावों के प्रकारः-</u>

चिन्तामणि ने अनुभावों के प्रकार अथवा संख्या का कोई निर्देश नहीं दिया है । इस का कारण यह हो सकता है कि प्रत्येक रस में अनुभावों की पृथक- पृथक स्थिति होने

1: क०क०त० - 8/1,2
2: विद्यानाथ प्र०रू०भू० पृष्ठ 223
3: वही रत्नापण टीका कुमार स्वामी - पृष्ठ 223
4: रस विलास 5/1
5: दश रूपक 4/3 का पूर्वार्द्ध

के कारण इनकी संख्या निर्धारित करना सम्भव नहीं है । इन्होंने अनुभावों के कायिक आदि वर्गीकरण नहीं किए हैं हाँ उदाहरणों में कायिक और आहार्य का वर्णन दृष्टिगत होता है[1]।

सात्त्विकः—

अनुभाव निरूपण के अनन्तर चिंतामणि ने आठ सात्त्विक भावों का परिगणन निम्नलिखित रूप में किया है :—

स्वेद तंभ रोमांच कहिं पुनि सुर भंग बनाइ ।
बहुरि कंप वैवरनि गनि आँसू अवलीनाइ ।।
आठ सात्विक ये कहत सज्जन गन मन आनि ।
इनके देत उदाहरन एक कवित में मानि ।।[2]

रस विलास में भी इन्हीं आठ सात्विक भावों का परिगणन किया गया है ।[3]

यहाँ उल्लेख्य है कि कबि कुल कल्प तरु में न तो सात्विक के लक्षण किये गये हैं और न इनके अनुभाव के अन्तर्गत परिगणित किये जाने का ही कोई उल्लेख है । इन सात्विकों के लक्षण आदि भी नहीं दिए गये हैं । समास शैली से एक ही उदाहरण में आठों सात्विकों का समावेश भी कर दिया गया है ।[4]

संचारी भावः—

जे विशेष ते थाइ को अभिमुख रहै बनाइ ।
ते संचारी वरनिये कहत बड़े कवि राइ ।।
रहत सदा थिर भाव में प्रगट होत इहि भाँति ।
ज्यों कल्लोल समुद्र में यों संचारी जाति ।।[5]

1: मोहि देखि मुरकि मधुर मुसक्याइ चाइ ।
कीन्हों चित चपल कटाछन को चेरो हैं ।।
वाके छोर घुमर ललित पटु लहँगा की ।
मनहर भ्रमन में भ्रमत मन मेरो है ।। क0 क0 त0 8/4

2: क0 क0 त0 8/5,6

3: रस विलास - 1/4 तथा 5/1

4: संदर्भ अगले पृष्ठ पर देखें —

संचारी भाव वे कहलाते हैं जो स्थायी भावों के अभिमुख (अनुकूल) बने रहते हैं तथा जो स्थायी भाव में इस प्रकार प्रकट होते (और विलीन होते) रहते हैं जिस प्रकार समुद्र में तरंगें । उपर्युक्त संचारी भाव का लक्षण दश रूपक से अनुप्राणित है विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः[6] स्थायिन्युन्मग्ननिमग्नाः कल्लोला इववारिधौ ।

ध्यातव्य है कि धनंजय द्वारा प्रस्तुत लक्षण में से 'निमग्नाः' का समावेश चिंतामणि नहीं कर सके हैं । इसका कारण लक्षण में अनावश्यक एवं असमर्थ प्रयोगों की भरमार है । जैसे — 'कहत बड़े कवि राइ' अतः 'कल्लोला इव वारिधौ' का उपमान भी पूर्ण स्पष्ट नहीं है । एक और महत्त्वपूर्ण बात देखने योग्य है कि धनंजय की परिभाषा में वस्तुतः व्यभिचारी शब्द का समास मूलक पद कृत किया गया है । जब कि चिन्तामणि ने 'वि'- विशेष 'अभि'- अभिमुख का उल्लेख करते हुए भी चर का प्रयोग न करके 'रहे बनाइ' कह दिया है और व्यभिचारी भाव के स्थान पर संचारी नाम स्वीकार किया है । यहाँ शिथिलता स्पष्ट है किन्तु इतना होते हुए भी चिंतामणि के लक्षण में स्पष्टता एवं विषय निरूपण की क्षमता विद्यमान है ।

संचारी भावों का परिगणनः—

कविकुल कल्प तरु के परम्परा से प्राप्त 33 संचारी भावों में से केवल तीस का ही परिगणन किया गया है किन्तु लक्षणोदाहरण क्रम में विना किसी क्रम या व्यवस्था के ग्लानी शंका तथा व्याधि इन तीन संचारी भावों का लक्षण उदाहरण दोनों ही किया गया है । ईर्ष्या के स्थान पर असूया का तथा आवेग के स्थान पर आवेश का नामोल्लेख भी इनकी अपनी विशेषता है । संचारी भावों का परिगणन इस प्रकार है —

4: लोचननि झलक्यो प्रमोद जल कम्प स्वेद सलिल अचल तनु पुलक पसार्‌यो है ।
पीत रंग भयो मुख बैन निकरैन मैन इंगित हरन करि खेल यों उधार्‌यो है।।
देखत परसपर यहै गति भई उन देवता स्वरूप दोष आपनो विचार्‌यो है ।
वचन अगोचर जो परम आनन्द कन्द सोई वृषभान नंदिनी को यों निहार्‌यो है ।।
क०क०त० 8/7

5: क०क०त० 8/8,9

6: दश रूपक - 4/7 का उत्तरार्द्ध पृष्ठ - 189

सो निर्वेद विभ्रंम जंह जड़ता धीरज हर्ष ।
दैन्य उग्रता चिंतभासा ईर्षा है जु अमर्ष ।।
गौरव सुमिरन मरन मद सुप्न नीद अरु बोध ।
व्रीड़ा पस्मार मोह मत(ति) आलस वेगी बोध ।।
कहि वितर्क अवहित्थ पुनि, मिलि उन्माद विषाद ।
उत्कंठा अरु चपलता, तीस कहै निर्वाद ।।[1]

यहाँ निर्वाद शब्द का प्रयोग इस बात का संकेत देता है कि उपर्युक्त तीस संचारी भाव निर्विवाद रूप से मान्य हैं । फलतः ग्लानि शंका और व्याधि के संचारीत्व में मतभेद है किन्तु शोधार्थी को किसी ग्रन्थ में ऐसा उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ,अतः चिंतामणि के इस दृष्टिकोण का आधार स्पष्ट न हो सका ।

तीस अथवा 33 संचारी भाव सभी रसों में परिभ्रमण करते हैं । यही इनका स्वभाव है। जो संचारी रस में उचित प्रतीत होता है उसका वहाँ वर्णन किया जाता है—

ए सिगरे सब रसन में, इनको इहै सुभाउ ।
जो रस में नीको जु है, ताको इहाँ बनाउ ।।[2]

संचारी भावों के परिगणन तथा उनके रस संचरण की परिचर्चा के बाद निर्वेद के दो लक्षण प्रस्तुत किए गए हैं । पहले लक्षण में कहा गया है कि तत्त्व ज्ञान, दुःख इर्ष्या आदि निष्फलता (निस्सारता) के बोध से जो भाव संसार के प्रति उत्पन्न होता है उसे निर्वेद कहते हैं । दूसरे लक्षण में तत्त्व ज्ञान, विपत्ति, इर्ष्या, विरह आदिक तथा दूसरे के द्वारा किये गये अपने अपमान के अनुभव से निर्वेद उत्पन्न होता है ।

(क) तत्त्व ज्ञान दुख इरषादिक निः फलता ज्ञान ।
होत आनि संसार में, सो निर्वेद बखानि ।।[3]

1: क0क0त0 8/10, 11, 12

2: क0क0त0 8/13

(क)3: क0क0त0 8/14

(ख) तत्त्व ज्ञान विपतीरुधा विरहादिक अपमान ।
जहाँ कीजिबतु आन सो, तहँ निर्वेश बखानि ।।[1]

निर्वेद के द्वितीय लक्षण को दशरूपक तथा साहित्य-दर्पण दोनों में समान रूप से देखा जा सकता है ।

क - दशरूपकः-

तत्त्वज्ञानापदीर्ष्यादेर्निर्वेदः स्वावमाननम् ।
तत्र चिंताश्रुनिःश्वासवैवर्ण्योच्छ्वासदीनताः ।।[2]

साहित्यदर्पणः-

तत्त्वज्ञानापदीर्ष्यादेर्निर्वेदः स्वावमाननम् ।
दैन्यचिंताश्रुनिः श्वासवैवर्ण्योच्छ्वसितादिकृत्[3] ।।[2]

समीक्षाः-

यहाँ विचारणीय यह है कि चिन्तामणि ने साहित्य दर्पण और दश रूपक के लक्षणों के पूर्वार्द्ध मात्र का अनुवाद किया है । उत्तरार्द्ध में वर्णित अनुभाव जैसे चिंता, अश्रु, वैवर्ण्य, उच्छवास तथा दैन्य आदि का उल्लेख नहीं किया है । कारण चाहे जो हो इससे लक्षण में अपूर्णता आ गई है । यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि चिंता और दैन्य संचारी भावों में परिगणित हैं । ऐसी स्थिति में एक संचारी भाव का दूसरे संचारी भाव के लिए उत्पादक विभाव बन जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । यह तथ्य रामचन्द्र गुण चन्द्र द्वारा लिखित नाट्यदर्पण[4][3] में देखा जा सकता है ।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि निर्वेद को शान्त रस का स्थायी भ्र भाव भी माना गया है । इस विषय में मम्मट का कथन है कि - निर्वेदस्यामङ्गलप्रायस्य प्रथममनुपादेयत्वेऽप्युपादानं व्यभिचारित्वेऽपि स्थायिताऽभिधानार्थम्[5] ।[4] (इन तैंतीस

(ख) 1: क0क0त0 8/15
2: दश रूपक 4/9 पृष्ठ 190
3: सा0द0 - 3/142
4: नाट्य दर्पण - पृष्ठ 186
5: का0प्र0 4/31 सूत्र 46 की वृत्ति

व्यभिचारी भावों में सब से पहले कहा हुआ) निर्वेद प्रायः अमंगलरूप है, इसलिए उसका सबसे पहिले कथन उचित न होने पर भी (स्थायित्व अर्थात्) स्थायीभावकत्व के प्रतिपादन के लिए किया गया है ।

अभिनव भारती में अभिनव गुप्त ने भी इसी विचार को स्पष्ट किया है[1] किन्तु दश रूपककार ने निर्वेद के स्थायित्व का खंडन इस आधार पर किया है कि उसमें 'तादूप्य' अर्थात् विरुद वाअविरुद भावों से विछिन्न न होने का गुण नहीं है । फलतः इससे रस के स्थान पर वैरस्य उत्पन्न होगा । अतः निर्वेद को स्थायी मानना असंगत है ।

यहाँ नम्रतापूर्वक यह निवेदन उचित प्रतीत होता है कि काव्य-रसवादी आचार्यों ने निर्वेद की रस्यमानता को स्वीकार किया है इसलिए विश्वनाथ ने निर्वेद संचारी भाव के लिए केवल तत्त्व ज्ञान जन्य निर्वेद का दृष्टान्त दिया है । चिंतामणि ने इस प्रकार का कोई शास्त्रार्थ या विवेचन तो नहीं किया है किन्तु उनके द्वारा प्रस्तुत निर्वेद के दो लक्षण और उनके क्रमशः दिए गए दो उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि वे भी ऐसा ही मानते हैं । पहले उदाहरण में शुद्ध रूप से शान्त रस का परिपाक दृष्टिगोचर होता है और दूसरे में दश रूपक के तत्त्वज्ञानजन्य निर्वेद के उदाहरण का शैलीगत अनुशीलन ।

प्रथम उदाहरण इस प्रकार हैः—

मिहिर मरीचिन में मृग जल कैसो भ्रम,
सुखन में तोय के तरंगनु को ढंगु है ।
छोड़ि सदा शुद्ध ज्ञान आनव परम पद,
और कछु कहूं विसराम को न अंगु है ।
चिंतामणि कहै कहो कौन सो सनेह की जै,
सब ही सो धाट बाट हाट कैसो संगु है ।

1: अभिनव भारती - 269 - 90 पृष्ठ 334

नीको है तौ कह परनाम सब फीकौ होत,

तन धन जोवन कुसुम कैसो रंगु है ।[1]

यहाँ संसार की नश्वरता तथा संसार की सुन्दरता में परिणाम की असारता तत्व ज्ञान की देन है । अतः इसी उद्धरण के आधार पर निर्वेद की स्थायिता चिंतामणि को स्वीकृत है । इसमें कोई आपत्ति नहीं प्रतीत होती । दूसरा उदाहरण ईर्ष्यामान जन्य संचारी भाव का है जहाँ चिंता, अश्रु, निश्वास, वैवर्ण्य उच्छ्वास और दीनता आदि भावों को देखा जा सकता है । अतः लक्षण में अनुभावों के उल्लेख न करने की कमी उनके दृष्टान्त से पूरी हो जाती है :-

आजु कहा मनि रूठि सी बैठी हौ क्यों अति ऊँची उसासन लीजतु ।
मोसो कछु अपराध पर्यो कत अंचल लोचन के जलु भीजतु ।।
क्यों तुमसौ अपराध परे पिय क्यों तुम ऊपर रोसु है कीजतु ।
फेरु हमारे ही धौसन कौ मन मोहन जू तुम्हे दोसुन दीजतु ।।[2]

ग्लानिः-

चिंतामणि :-

रत्यादिक ते होतु कछु जो निर्बलिता जानि ।
वैवर्णादिक सो कछू बहुरि सो ग्लानि बखानि ।।[3]

धनंजय:-

रत्याद्यायासतृट्क्षुद्भिर्ग्लानिः प्राणतेह च ।
वैवर्ण्यकम्पानुत्साहक्षामाङ्गवचनक्रियाः ।।[4]

समीक्षाः-

संचारियों में परिगणन न करते हुए भी चिंतामणि ने ग्लानि के लक्षणोदाहरण

1: क0क0त0 8/17

2: वही 8/18

3: वही 8/20

4: दशरूपक 4/10

प्रस्तुत किए हैं । उन्होंने धनंजय से प्रभाव तो ग्रहण किया है किन्तु चिंता के कारणों और अनुभावों को रत्यादिक और वैवर्ण्यादिक कह कर समेट दिया । दृष्टान्त भी रतिजन्य ग्लानि का दिया है जो दशरूपक के समान है । यहाँ विद्यानाथ का भी प्रभाव दृष्टव्य है ।[1]

शंकाः–

चिंतामणिः–

> कौनौ के अवनीति कै दुवनि कुराई हेत ।
> जो मन में संकोच सो संका कहै सचेत ।।[2]

समीक्षाः–

दशरूपक तथा साहित्यदर्पण से प्रभाव ग्रहण करते हुए भी चिंतामणि ने शंका के लक्षण में कुछ स्वच्छन्दता से काम लिया है । इनका कथन है कि किसी की दुर्नीति अथवा दुखदायी क्रूरता के कारण जो मन में संकोच होता है वह शंका है । ध्यातव्य है कि यहाँ 'आत्मदोष' तथा 'स्वदुर्नय' का उल्लेख न करने से चिन्तामणि का लक्षण एकांगी हो गया है । इसी प्रकार अनर्थ की 'चिंता' के स्थान पर मन के संकोच की बात की गई है । अनुभावों का उल्लेख भी नहीं है । यह भी ध्यातव्य है कि ग्लानि की भाँति चिंता भी परिगणित 30 संचारियों से बाहर हैं । उदाहरण भी एक ऐसी बाला का दिया गया है जो संकोच और चिंता में इसलिए डूबी है कि उसके क्रूरा प्रेम को सबलोग जान गए हैं । अतः हर बात और हर हँसी उसे शंकित करती है । यह उदाहरण दश रूपक के रत्नावली से दिए गए उदाहरण के समानान्तर है और उसी से प्रभावित है । अतः इस लक्षण में यदि एक ओर एकांगिता का दोष है तो दूसरी ओर मौलिकता का दर्शन भी होता है ।

1: प्र0 रु0 भू0 विद्यानाथ पृष्ठ - 242

2: क0 क0 त0 - 8/22

3: सा0 द0 - 3/161

4: दश रूपक - 4/11

जाने विना हम जानति है यह जानि रहै मुँह नाइ लजानि ।[1]
कोऊ कहूँ कछु बात कहै समुझै सब आपनियै पै कहानी ।।
केहू हसै जो सखी जनतो गड़ितात सकोचन बाल अयानी ।
स्याम तिहारे सनेह रहै मृग लोचनी सोच संकोच समानी ।।

श्रमः—

चिंतामणि ने श्रम का लक्षण नहीं दिया है किन्तु उदाहरण में रतिजन्य खेद का वर्णन है जिसमें स्वेद, बिखरी अलकें आदि का उल्लेख करके चित्र को साँगोपाँग किया गया है । उदाहरण को देखते हुए दशरूपक अथवा साहित्य-दर्पण का प्रभाव माना जा सकता है । किन्तु लक्षण के अभाव में आधिकारिक ढंग से कुछ भी कह सकना कठिन है ।

ह्रिया सर्वस्यासौ हरति विदितास्मीति वदनं ।
दयोर्दृष्ट्वाऽऽलापं कलयति कथामात्मविषयाम् ।।
सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिकं ।
प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहितातङ्कविधुरा ।।[2]

धृतिः— (धैर्य)

चिन्तामणिः—

ज्ञान एक आदिकन तें जो संतोष धृत मानि ।
निज अदृष्ट परिपाक भो व्यग्र चित्त पहिचानि ।।[3]

धनंजयः—

संतोषो ज्ञानशक्त्यादेधृतिरव्यग्रभोगकृत् ।[4]

समीक्षाः—

दश रूपक का प्रभाव ग्रहण करते हुए भी चिंतामणि ने इसमें अपनी मौलिकता

1: क0क0त0 8/23
2: दशरूपक - डा0 भोजला शंकर व्यास पृष्ठ 193
3: क0क0त0 8/25
4: दशरूपक 4/12

दिखाने का प्रयास किया है और इसे भी तत्त्वज्ञानजन्य मानकर शान्त रस के संचारी भाव के रूप में प्रस्तुत किया है । प्रत्यक्ष में ऐसा अनुभव होता है कि चिन्तामणि का अनुवाद दोष पूर्ण है क्योंकि जहाँ धनंजय अपने कर्मों के भोग में 'अव्यग्रता' को मानते हैं वहाँ चिन्तामणि व्यग्र चित्त कह देते हैं किन्तु भो और व्यग्र के बीच में अवग्रह(ऽ) मान लेने पर दोष मिट जाता है अन्यथा लक्षण को दूषित मानना ही पड़ेगा । 'उ 'एक' के स्थान पर यदि 'शक्ति' पाठ मान लिया जाय तो अधिक उचित होगा ।

जड़ताः—

चिंतामणिः—

सकल आचरन ज्ञान कौ अक्षमता जित होइ ।
प्रिय अप्रिय देखै सुनै जड़ता कहियै सोइ ।।
अनिमिख लोचन देखिबो चुप रहिबो इत्यादि ।
होत काज वरनत रहत यों सब सुखद अनादि ।।[1]

धनंजय एवं विश्वनाथः—

अप्रतिपत्तिर्जडता स्यादिष्टानिष्टदर्शनश्रुतिभिः ।
अनिमिषनयननिरीक्षणतूष्णींभावादयस्तत्र ।।[2]

समीक्षाः—

चिंतामणि ने दो दोहों में जड़ता की व्याख्यात्मक परिभाषा की है । अप्रतिपत्ति की व्याख्या पूरे एक चरण में की गई है । ध्यातव्य है कि यह भाव सुख दुःखात्मक है क्योंकि दोनों में से किसी भी स्थिति में जड़ता हो जाती है । चिंतामणि का यह लक्षण निरूपण अत्यन्त स्पष्ट एवं सुन्दर है ।

हर्षः—

चिन्तामणिः—

इष्ट वस्तु पाए हरष मन प्रसाद जो होइ ।
आँसू स्वेद गद्गद् वचन वरनत है सब कोइ ।।[3]

1: क0 क0 त0 8/27,28
2: दशरूपक 4/13 और सा0द0 3/148
3: क0 क0 त0 8/30

विश्वनाथः—

हर्षस्त्विष्टावाप्तेर्मनः प्रसादोऽश्रुगद्गदादिकरः[1]

समीक्षाः—

चिन्तामणि का लक्षण विश्वनाथ के लक्षण का अनुवाद है किन्तु उदाहरण देने में बड़े चमत्कार से काम लिया है । दशरूपक की भाँति प्रिय के आगमन पर प्रसन्न युवती का चित्र प्रस्तुत किया गया है[2] किन्तु साहित्य-दर्पण के 'मुदशरीरे प्रबभूवनात्मनः'[3] को बड़ी सफलता से समेट लिया गया है । अतः लक्षण और उदाहरण देने में चिन्तामणि को सफलता मिली है । उदाहरण इस प्रकार है :—

यों मन बैठी विसूरती हौ मधु मै अब हौ न बचौगी अनंग सो ।
पीउ अचानक आइ गयौ सु परी पगयो सिगरो दुख अंग सों ।।
वाहिर भीतर पूरन ऐसो भयो घट मेरो अनंद उमंग सों ।
पूर उमंग भगीरथ के तप जैसे विरंचि कमंडल गंग सों ।।[4]

यहाँ आगत पतिका का एक समग्र चित्र खींचा गया है । प्रिय के आगमन पर सम्पूर्ण पीड़ाओं से भरे हुए हृदय में आनन्द की उमंग का भीतर वाहर परिपूर्ण हो जाना जहाँ अपने आप में हर्षातिरेक का द्योतक है वहीं भगीरथ के तप के गंगा से सफल हो जाने के उपमान द्वारा वियोगजन्य तप और प्रेम की पावनता भी व्यंग्य है ।

दैन्यः—

चिन्तामणिः—

जो दारिद विरहादि ते होइ मलिनता कोइ ।
चिंतामनि स्वासादि करि होत दीनता सोइ ।।[5]

1: सा0द0 3/165

2: दशरूपक 4/14 का उदाहरण पृष्ठ 196

3: सा0द0 3/165 का उदाहरण पृष्ठ 102

4: क0क0त0 8/31

5: क0क0त08/31 अ

विश्वनाथः–

दौर्गत्याद्यैरनौजस्यं दैन्यं मलिनतादिकृत्[1]

समीक्षाः–

साहित्यदर्पण का अनुसरण करते हुए भी चिंतामणि ने मौलिकता लाने का प्रयास किया है। फलतः 'दुर्गति' आदि के स्थान पर दारिद्र्य और विरह आदि को विभाव माना है जिसे भरत[2] के आधार पर प्रस्तुत किया है। मलिनता और श्वासादि अनुभाव की चर्चा भी उचित ही है किन्तु वे 'अनौजस्य' अर्थात् ओज के क्षीण हो जाने अथवा कान्ति के मन्द हो जाने को अपने लक्षण में नहीं ला सके हैं। दो उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। दोनों विरहजन्य दैन्य के हैं।

उग्रताः–

चिन्तामणिः–

कछु अपराध लखौ जहाँ रोष चंड जहँ होइ।
तर्जनादि कारण जहाँ होइ उग्रता सोइ।।[3]

विद्यानाथः–

दृष्टेपराधे चण्डत्व मुग्रता तर्जनादि कृत्।[4]

धनंजयः–

दुष्टेऽपराधदौर्मुख्यक्रौर्यैश्चण्डत्वमुग्रता।
तत्र स्वेदशिरःकम्पतर्जनाताडनादयः।।[5]

समीक्षाः–

विद्यानाथ के अनुवाद के रूप में प्रस्तुत उग्रता के इस लक्षण में दृष्टव्य यह

1: सा0द0 3/145

2: नाट्य शास्त्र 7/49 ग

3: क0क0त0 8/34

4: प्र0 रु0 भू0 पृष्ठ 257

5: दश रूपक 4/15

है कि जहाँ दश रूपक और साहित्यदर्पण में स्वेद, शिरः कम्प, तर्जन और ताड़न को कार्य (अनुभाव) माना गया है और विद्यानाथ ने भी 'गर्जनादिकृत्' कह कर कार्य (अनुभाव) ही स्वीकार किया है वहाँ चिंतामणि ने 'कारण' का प्रयोग किया है जो स्पष्ट ही विभाव का बोधक है । विचारणीय है कि अपराध को देखकर आश्रय के मन में क्रोध का उद्दीप्त होना तथा आलम्बन की तर्जना करना स्वाभाविक है किन्तु जैसे अपराध के दर्शन से चण्ड-रोष-जन्य उग्रता हो सकती है लेकिन यह बात उनके उदाहरणों से स्पष्ट नहीं है क्योंकि उनका उदाहरण दुष्टों के संहार करने वाले राम का लिया गया है ।[1] जो भी हो इन पंक्तियों से विचारणीय संकेत अवश्य प्राप्त हो गया है ।

<u>चिंताः</u>–

<u>चिंतामणिः</u>–

चिंता कहियत ध्यान है सून्यतादि जित होइ ।[2]
आँसू स्वास तापतित वरनत हैं सब कोइ ।।

<u>धनंजय और विश्वनाथः</u>–

ध्यानं चिन्तेहितानाप्तेः शून्यताश्वासतापकृत् ।[3]

<u>समीक्षाः</u>–

चिंतामणि की इस परिभाषा में प्रिय वस्तु की प्राप्ति न होना रूप विभाव का उल्लेख नहीं है । अतः लक्षण अपूर्ण है, हाँ अश्रु रूप अनुभाव का अतिरिक्त उल्लेख किया गया है फिर भी पूरे लक्षण को पढ़ने से सामान्यतः अर्थ बोध हो जाता है क्योंकि उक्त अनुभाव से युक्त ध्यान किसी इष्ट वस्तु के संबन्ध में ही हो सकता है । चिंता का उदाहरण विप्रलम्भ है जो बहुत ही सुन्दर है ।

1: राम सील जगता पहर सीतल सुखद अपार ।
रकसन के संहार को अनल भयो इक बार ।। क०क०त० 8/35

2: क०क०त० 8/36

3:क - दशरूपक 4/16 का पूर्वार्द्ध

3:ख - सा०द० 3/171

इस उदाहरण में दशरूपक की प्रथम पंक्ति की छाया स्पष्ट है :-

उदाहरणः-

गूँथति है मानौ मुकताहल को हार वह चारु नीर नैननि की धार यौं ढरति हैं।
अरुन अधार कहि काहे को दुखित करैं कौन हौत आजु ऊँची सासन भरति है ।।
अचल है रही केलि मंदिर में चिंतामनि सधान वदन चन्द चन्द्रिका परति है ।
बैठी कल आजु कर कमल कपोल धरि ध्यान तू कमल नैनी कौन को करति है ।।

दशरूपकः-

पक्ष्माग्रग्रथिताश्रुबिन्दुनिकरैर्मुक्ताफलस्पर्धिभिः ।
कुर्वन्त्या हरहासहारि हृदये हारावलीभूषणं ।।
बाले वालमृणालनालवलयालंकारकान्ते करे ।
विन्यस्याननमाततात्क्षि सुकृती कोऽयं त्वया स्मर्यते ।।[1]

त्रासः-

चिंतामणिः-

कछु उपाइ कम्पादिकर उपजत है जो चित्त ।
ताही सौं खंडित कहत त्रास जानिये मित्त ।।[2]

समीक्षाः-

चिंतामणि के अनुसार किन्हीं कारणों से जब कम्पादि उत्पन्न करने वाला भय चित्र में व्याप्त होकर उसे क्षुब्ध कर देता है तो वह त्रास कहलाता है । विद्यानाथ ने आकस्मिक भय का उल्लेख नहीं किया है । भरत और धनंजय आदि ने त्रास के विभावों का उल्लेख किया है । किन्तु विद्यानाथ की भाँति चिंतामणि इस विषय में मौन हैं । कुछ आचार्यों ने त्रास और भय को पृथक-पृथक माना है जो अत्यन्त उचित है क्यों कि त्रास आकस्मिक होता है और भय आगे पीछे सोचने पर । अतः आकस्मिक का उल्लेख न करने के कारण चिंतामणि के इस लक्षण में दोष आ गया है । त्रास के उदाहरण में बादल के गरजने तथा विजली के चमकने से मानवती नायिका के चौंकने का वर्णन करके साहित्य दर्पण में लक्षण का भी सुन्दर समायोजन कर लिया गया है ।[4]

ईर्ष्याः-
1: क0क0त0 8/37 तुलनीय दशरूपक सम्पादक डा0 भेला शंकर व्यास पृ0 197
चिन्तामणिः-
2: क0क0त0 8/38
3: पृ0रू0 भू0 पृष्ठ 260
4: निर्घातविद्युदुल्काद्यैस्त्रासः कम्पादिकारकः सा0द0 43/164

ईर्ष्याः—

चिन्तामणिः—

जो समृद्धि पर गुनन की उत्तम सही न जाय ।
भ्रूभंगादिक ईरषा बरनी बुद्धि बनाइ ।।[1]

विश्वनाथः—

असूयान्यगुणर्द्धीनामौद्धत्यादसहिष्णुता ।
दोषोद्घोषभ्रू विभेदावज्ञाक्रोधेङ्गितादिकृत् ।।[2]

समीक्षाः—

दशरूपककार[3] ने संचारियों का परिगणन करते हुए जिसे ईर्ष्या कहा है उसे ही लक्षणोदाहरण के क्रम में असूया बतलाया है । साहित्य दर्पण में उसे असूया ही कहा गया है । चिंतामणि ने उसे ईर्ष्या ही माना है किन्तु लक्षण निरूपण में साहित्यदर्पण के लक्षण का संक्षेप किया है । इसीलिए 'औदत्य' को छोड़ दिया है और अनुभावों की चर्चा में 'भ्रूभंगादिक' में 'आदि' शब्द के प्रयोग से अन्य अनुभावों का समाहार कर लिया है । हाँ, उत्तम के स्थान पर यदि उद्धत पाठ कर दें तो लक्षण अधिक उचित हो जायेगा ।

अमर्षः—

चिन्तामणिः—

अमरख अपमानादिते चित्त प्रज्वलित जानि ।
नैन राग सिरकम्प अरु तरजनादि कर मानि ।।[4]

विद्यानाथः—

अमर्षः सापराधेषु चेतः प्रज्वलनं मतम्[5]

1: स0क0त0 8/40

2: सा0द0 3/166

3: दशरूपक - 4/8 तथा पृष्ठ - 190 सम्पादक डा0 भोला शंकर व्यास

4: क0क0त0 8/42

5: प्र0रु0भू0 पृष्ठ 256

विश्वनाथः—

नेत्ररागशिरःकम्पभ्रूभंगोउत्तर्जनादिकृत्[1]

समीक्षाः—

अमर्ष का लक्षण चिंतामणि की सारग्राहिणी प्रवृत्ति का सुन्दर दृष्टान्त है। दो आचार्यों के मतों का समन्वय करके इस लक्षण को अधिक सुन्दर एवं स्पष्ट बनाने का प्रयास किया गया है। विद्यानाथ के 'सापराधेषु' के बदले 'अपमानादि' का प्रयोग यदि साहित्य दर्पण के अनुकूल है तो साहित्यदर्पण की 'अभिनिविष्टता' की उपेक्षा कर दी गई है।

गर्वः—

चिंतामणिः—

विद्या द्रव प्रभाव कुल रूप अंहकृत गर्व।
होत अन्ध अपमान कर जामैं चेष्टा सर्व।।[2]

विश्वनाथः—

गर्वोमदः प्रभाव श्रीविद्यासत्कुलतादिजः।
अवज्ञासविलासांगदर्शनाविनयादिकृत्।।[3]

समीक्षाः—

विश्वनाथ के आधार पर प्रस्तुत गर्व के लक्षण में चिन्तामणि ने 'मद' शब्द के स्थान पर 'अहंकृत' शब्द का प्रयोग करके अपने लक्षण को सार्थक- वैशिष्ट्य प्रदान किया है। इसी प्रकार उत्तरार्द्ध में अवज्ञा (अपमान) की सारी चेष्टाओं का उल्लेख करके भरत मुनि वर्णित सभी अनुभावों का समाहार कर लिया है। भरत मुनि ने दूसरों का अनादर, अविनय, प्रश्न पूछने पर उत्तर न देना, बात न करना उपेक्षा वृत्ति, उपहास, कठोर वचन कहना, पूज्यों का अनादर करना, अकारण उपालम्भ करना

1: सा०द० 3/156
2: क०क०त० 8/44
3: सा०द० 3/154

इत्यादि अनुभाव बतलाये हैं जिनका अत्यन्त सफल संक्षेप चिन्तामणि में देखा जा सकता है[1]।

स्मृतिः—

चिन्तामणिः—

सदृश ज्ञान चिंतादि भ्रू विलासादि जित होइ ।
सुमिरन पूरब अर्थ को स्मृति कहियत है सोइ ।।[2]

विश्वनाथः—

सदृशज्ञानचिन्ताद्यैर्भ्रूसमुन्नयनादिकृत् ।
स्मृतिः पूर्वानुभूतार्थ विषयज्ञानमुच्यते ।।[3]

समीक्षाः—

प्रस्तुत लक्षण विश्वनाथ के लक्षण का शब्दशः और अत्यन्त समर्थ अनुवाद है जो चिन्तामणि के प्रतिभा का परिचायक है ।

मरणः—

चिन्तामणिः—

प्रान त्याग कथित मरन, सुतौ प्रगट जब मांहि ।
संग्रामादिक छोड़ कै और वरन वै नाहि ।।
जो वह कबहु वर्नियै तौ ताकौ उद्गोत ।
सृंगारादि प्रबन्ध मैं मरनन वरनत जोग ।।[4]

समीक्षाः—

मरण के विषय में धनंजय[5] एवं विद्यानाथ[6] ने अनर्थ सूचक तथा वर्णन

1: नाट्य शास्त्र - 7/67 ग

2: क0क0त0 - 8/46

3: सा0द0 - 3/162

4: क0क0त0 - 8/49,50

5: दश रूपक - 4/31

6: प्र0रु0भू0 - पृष्ठ 269

न करने योग्य मात्र कहा है । विश्वनाथ ने वाण आदि के द्वारा प्राण त्याग को मरण कहा है, जिसमें देह पतन आदि अनुभाव हैं । अतः चिन्तामणि का 'प्राण त्याग कहियत मरन' यह विश्वनाथ से प्रभावित है (शराद्यैर्मरणं जीवत्यागोऽङ्ग पतनादिकृत)[1] 'सुतौ' प्रगट जग माहि को,, 'मरणं सु प्रसिद्धत्वात्' इस दशरूपक के कथन में देखा जा सकता है । आगे चिन्तामणि का कथन है कि संग्राम (आदिक वीर रस) को छोड़कर वह अन्य प्रकार का नहीं होता, अतः शृंगार आदि अन्य रसों में मरण का वर्णन नहीं करना चाहिए । वीर रस में यह संचारी भाव उद्दीपक बन जाता है । यहाँ ध्यातव्य यह है कि चिन्तामणि का विवेचन अविकल रूप से किसी एक ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता, अतः इसे उनका मौलिक चिंतन ही मानना चाहिए । हाँ, जिन संकेतों के आधार पर उन्होंने इस तथ्य को पल्लवित किया है उनका संधान इस प्रकार किया जा सकता है । धनिक ने संकेत दिया है कि शृंगार रस के आश्रय अथवा आलम्बन में केवल मरण की तैयारी भर का संकेत दिया जाना चाहिए जिससे प्रतीत होता है कि मरण का वर्णन नहीं करना चाहिए । अतः शृंगारादि में मरण-वर्णन का निषेध धनिक के संकेत पर प्राप्त हुआ है । जहाँ तक 'संग्रामादिक' का प्रश्न है उसमें दो संकेत एक साथ हैं । धनिक ने 'अन्यत्र कामाचारः' कह कर वीर चरित से ताड़का बध का दृष्टान्त दिया है और विश्वनाथ ने 'शराद्यैः' का प्रयोग ही किया है तथा काली दास कृत ताड़का बध का दृष्टान्त दिया है । अतः चिन्तामणि का विवेचन उक्त संकेतों का ही पल्लवन है तथापि प्रस्तुत निरूपण में चिन्तामणि की सूक्ष्म दृष्टि और विवेचन की गहराई के साथ मौलिकता का आभास उनके समर्थ आचार्यत्व का उद्-द्योतक है ।

<u>मद:—</u>

<u>चिन्तामणि:—</u>

> धन विद्या रूपोद्भव आसव जोवन जात ।
> उपजत है मद भावतिन कढ़ति अलस गत वात ।।[2]

1: साद० 1-3/155

2: क०क०त० 8/52

धनंजय:-

हर्षोत्कर्षो मदः पानात्स्खलदङ्गवचोगतिः[1]

निद्रा हासोऽत्र रुदितं ज्येष्ठमध्याधमादिषु

विश्वनाथः-

संमोहानन्दसंभेदो मदो मद्योपयोगजः

अमुना चोत्तमः शेते, मध्यो हसति गायति

अधमप्रकृतिश्चापि परुषं वक्ति रोदिति[2]

समीक्षा:-

भरत[3] से लेकर धनंजय एवं विश्वनाथ आदि ने मद की उत्पत्ति मद्य आदि के सेवन से मानी है। धनंजय ने उसमें हर्ष का उत्कर्ष माना है और अंग वचन तथा गति स्खलन की चर्चा की है। उत्तम, मध्यम और अधम भेद से क्रमशः निद्रा, हास और रुदन का संबन्ध जोड़ा है। चिंतामणि ने मद्य के अतिरिक्त धन, विद्या, रूप और यौवन का भी उल्लेख किया है, जो साहित्यिक दृष्टि से अधिक चमत्कारोत्पादक है किन्तु यहाँ एक विचारणीय प्रश्न यह है कि गर्व का लक्षण करते हुए विश्वनाथ ने प्रभाव, श्री, विद्या, कुलीनता आदि के अभिमान को गर्व कहा है और उन्होंने वहाँ मद शब्द का प्रयोग किया है[4] चिन्तामणि ने भी 'विद्याद्रव्य प्रभावकुल रूप, अहंकृत गर्व' कहकर उसी का समर्थन किया है। ऐसी दशा में जब आचार्य लोग मदपान के अतिरिक्त अन्य प्रकार के मद को गर्व में समेटते आये हैं तो यहाँ मद में धन, विद्या, रूप और यौवन का उल्लेख अतिव्याप्ति दोष से दूषित हो जाता है।

दूसरी बात यह है कि हर्षोत्कर्ष या सम्मोहानन्द सम्भेद जैसे शब्दों का अनुवाद न करने के कारण भेद के स्वरूप पर प्रकाश नहीं पड़ा है।

1: दशरूपक - 4/21

2: सा0द0 - 3/146 का उत्तरार्द्ध तथा 147

3: नाट्य शास्त्र - 38/46

4: सा0द0 - 3/154

तीसरी मौलिक बात यह है कि भरतादि स्वीकृत उत्तम, मध्यम और अधम भेदों का उल्लेख नहीं किया गया है और न अनेक प्रकार के अनुभावों का ही उल्लेख है ऐसी दशा में डा0 सत्यदेव चौधरी ने मद की परिभाषा में जिस प्रकार की मौलिकता देखने का प्रयास किया है उससे सहमत होना कठिन है ।[1]

स्वपन (सुप्त):–

चिन्तामणि:–

स्वप्न नीद अरु अर्थ को अनुभव जो कछु होइ ।
सुख दुःखादि हेतु यह स्वप्न कहावै सोइ ।।[2]

विश्वनाथ:–

स्वप्नो निद्रामुपेतस्य विषयानुभवस्तु यः ।
कोपावेगभयग्लानि सुखदुःखादि कारकः ।।[3]

समीक्षा :–

चिंतामणि का प्रस्तुत लक्षण विश्वनाथ का अनुवाद है जिसमें कोप, आवेग, भय और ग्लानि का उल्लेख नहीं किया गया है । उन्हें आदि शब्द में समेट लिया गया है। प्रथम चरण में यदि 'अरु' के स्थान पर 'में' होता तो लक्षण अधिक संगत होता ।

निद्रा:–

मन संमीलन नींद कहि स्रमादिकनि ते होइ
स्वासांदिक तँह देखिए सब इन्द्रिय लै होइ[4]

विश्वनाथ:–

चेतः संमीलनं निद्रा श्रमक्लमदादिजा ।
जृम्भाक्षिमीलनोच्छ्वासगात्रभंगादिकारणम् ।।[5]

1: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य – डा0 सत्यदेव चौधरी पृ0 287

2: क0क0त0 8/55

3: सा0द0 3/152

4: क0क0त0 8/58

5: सा0द0 3/157

विश्वनाथ :— चेतः समीलनं निद्रा श्रमालस्यक्लमादिजा
जृम्भाक्षिमीलनोच्छ्वासगात्रभंगादि कारणम्[1]

समीक्षा :—

प्रस्तुत लक्षण साहित्य-दर्पण का अनुवाद है । हाँ, विभाव और अनुभाव का संक्षिप्त वर्णन है । दशरूपक[1] का उल्लेख भी इसी से मिलता जुलता है । 'सब इन्द्रिय लय होइ' की बात अवश्य नूतन है, किन्तु इसकी व्याख्या में कहा जा सकता है कि मन के सम्मेलन अर्थात् बाह्य विषयों से निवृत्ति का ए परिणाम ही है समस्त इन्द्रियों द्वारा विषय ग्रहण के व्यापार का विराम । अतः उक्त कथन फलितार्थ मात्र है । वैसे नाट्य-दर्पण का प्रभाव भी द्रष्टव्य है क्यों कि उनके अनुसार निद्रा उस समय होती है जबकि इन्द्रियाँ अपने विषयों का ग्रहण नहीं कर पातीं ।[2]

विबोध :—

चिन्तामणि :—

> निद्रा को अवसान जो सो विबोध मन आनि
> दृग मरदन अगराइ अरु जृम्भादिक इत जानि[3]

> निद्रापगमहेतुभ्यो विबोधश्चेतनागमः ।
> जृम्भाङ्गभङ्गनयनमीलनाङ्गावलोककृत ।।[4]

समीक्षा :—

यहाँ आचार्य चिन्तामणि ने साहित्य दर्पण का अनुवाद मात्र किया है । इसमें कोई मौलिकता नहीं है ।

लज्जा (व्रीड़ा) :—

चिन्तामणि :—

> हानि ढिठाई की जुहै सो लज्जा मनि आनि
> मुग्ध नावलि आदिक कछु होति तहाँ है वानि[5]

1: दशरूपक — 4/33
2: नाट्य-दर्पण — 3/138
3: क0क0त0 — 8/60
4: सा0 द0 — 3/156
5: क0क0त0 — 8/62

विश्वनाथः—

धाष्ट्याभावो व्रीड़ा वदनानमनादिकृतदुराचारात्[1]

समीक्षाः—

उल्लेख्य है कि विश्वनाथ ने धनंजय[2] का संक्षेप किया है और चिन्तामणि ने विश्वनाथ का अनुवाद, किन्तु 'दुराचारात्' का उल्लेख न होने के कारण उनके अनूदित लक्षण की अपूर्णता स्वतः सिद्ध है। वैसे लक्षण जिस रूप में है वह सरल और स्पष्ट है।

अपस्मारः—

चिन्तामणिः—

जो गृहादि आवेसमय दुःखादिक तै होत।
अपस्मार भूपाततित फेन सोत आदिकात।।[3]

धनंजयः—

आवेशो ग्रहदुःखाद्यैरपस्मारो यथा विधिः (धि)
भूपातकम्पप्रस्वेदलालाफेनोद्गमादयः[4]

समीक्षाः—

चिन्तामणि ने दशरूपक के लक्षण का अनुवाद मात्र किया है तथा उदाहरण नहीं दिया है।

मोहः—

चिन्तामणिः—

मोह कहत हैं ताहि को जहाँ ज्ञानमिटिजात
विमल(विकल?) दुःख चिंतानि तै जह अति विहुलगात[5]

1: सा0द0 - 3/165 उत्तरार्द्ध
2: दशरूपक - 4/25
3: क0क0त0 - 8/64
4: दशरूपक - 4/25
5: क0क0त0 - 8/68

धनंजयः—

मोहो विचित्तता भीतिदुःखावेशानुचिन्तनैः ।

तत्राज्ञानभ्रमाघात घूर्णनादर्शनादयः ।।[1]

समीक्षाः—

यहाँ चिन्तामणि ने धनंजय कृत लक्षण का भावानुवाद किया है । उल्लेख्य नवीनता नहीं है ।

मतिः—

चिन्तामणिः—

नीति पक्ष अनुसार दै आदि अरथ निरधार ।

मति तातें कछु हास्य रस अरु संतोष अपार ।।[2]

विश्वनाथः—

नीति मार्गानुसृत्यादेरर्थ निर्धारणंमतिः ।

स्मेरताधृति सन्तोषौ बहुमानश्च तद्भवाः ।।[3]

समीक्षाः—

चिन्तामणि ने लक्षण में साहित्य दर्पण का अनुवाद किया है किन्तु 'स्मेरता' का अनुवाद 'हास्य रस' अशुद्ध एवं खटकने वाला है क्यों कि इसका अनुवाद मुस्कुराहट होना चाहिए । धृति एवं बहुमान (सम्मान) का लक्षण में समावेश नहीं हो सका है ।

आलस्यः—

चिन्तामणिः—

(क) निद्रादिक ते होत है उत आलस अंगराइ ।

नैन अधखुले भाँति यह, बरनत सब कवि राइ ।।

(ख) काज माँह उद्योग जो मन्द सुआलस जानि ।

1: दशरूपक - 4/26

2: क0क0त0 - 8/67

3: सा0द0 - 3/163

यहु आलस लक्षन गए विद्यानाथ बखानि ।।[1]

धनंजयः—

गर्वोऽभिजनलावण्यबलैश्चर्यादिभिर्मदः ।
कमप्यिधर्षणावज्ञा सविलासाङ्गवीक्षणम् ।।[2]

विश्वनाथः—

आलस्यं श्रमगर्भाद्यैर्जाड्यं जृम्भासितादिकृत्[3]

समीक्षाः—

धनंजय और विश्वनाथ ने श्रम एवं गर्भादि-जन्य जड़ता को आलस्य कहा है किन्तु चिन्तामणि ने निद्रादिक से आलस्य की उत्पत्ति मानी है जिसमें अगड़ाई लेना, नेत्रों का अधखुला होना आदि अनुभाव कहे गए हैं । यहाँ निद्रा का अर्थ यदि वास्तव में निद्रा लें तो फिर यह लक्षण निद्रा संचारी भाव में अति व्याप्त हो जायगा और यदि निद्रावसान का अर्थ लें तो विबोध में अतिव्याप्त हो जायगा । ऐसी स्थिति में निद्रा के पूर्व रूप में ही यहाँ निद्रा का प्रयोग मानना होगा । इसी बात की पुष्टि अँगड़ाई लेने और अधखुले नेत्र होने जैसे अनुभावों से होती है अतः यह लक्षण भ्रान्ति जनक है । इतना ही नहीं लक्षण और चिन्तामणि के उदाहरण से स्पष्ट है कि कवि ने इस संचारी को रतिश्रान्ता नायिका में देखा है । दूसरे शब्दों में कामिनीत्व में देखा है मातृत्व में नहीं क्यों कि गर्भ आदि का न लक्षण में उल्लेख है न उदाहरण में संकेत । विद्यानाथ के आधार पर किसी कार्य के प्रति उद्योग में मन्दता को आलस्य कहा गया है किन्तु यह आलस्य एक स्वतंत्र मानसिक स्थिति हो सकती है // संचारी भाव नहीं क्यों कि संचारी किसी भाव में संचरण करने पर ही सार्थक बनता है ।

आवेगः—

चिन्तामणिः—

इष्टानिष्टादिकन तें संभ्रम अतिमक होइ ।
ताही सौं आवेस कवि वरनतग्रंथन लोइ ।।[4]

1: क0क0त0 8/70 तथा 72
2: दशरूपक 4/19
3: सा0द0 3/155
4: क0क0त0 8/74

विश्वनाथः—

आवेगः संभ्रमस्तत्र - - - - - - - - -इष्टादृहर्षाः
सुचोऽनिष्टा 2-श्चान्ये यथा यथम् ।[1]

समीक्षाः—

चिन्तामणि का प्रस्तुत लक्षण अत्यन्त संक्षिप्त और अपूर्ण है, क्यों कि आवेग संभ्रम (घबराहट) से होता है । अतः इष्ट अनिष्ट चर्चा के साथ ही हर्ष, शोक, भय आदि का उल्लेख न करने से लक्षण अधूरा रह गया है ।

रसविलास में तो 'संभ्रम आगे जो कहत सो आवेग बखान'[2] कहा गया है । जो अतिशय संक्षिप्त तथा अतिशय अस्पष्ट है ।

वितर्कः—

चिन्तामणिः—

जो विचारि संदेह तें सो वितर्क यह जानि ।
सिर अंगुनतनि है जहाँ चिंतामनि मन आनि ।।[3]

विश्वनाथ एवं धनंजयः—

तर्कोविचारा संदेहाद्भ्रूशिरोंगुलिनर्तकः[4,5]

समीक्षाः—

उपर्युक्त संस्कृत लक्षणों का सटीक अनुवाद प्रस्तुत किया गया है ।

अवहित्थाः—

चिन्तामणिः—

संगोपनआकार को सो अवहित्थ बखानि[6]
प्रस्तुति तजि कछु और को कवि को कथन सयानि

विश्वनाथः—

भयगौरवलज्जादेर्हर्षाद्याकारगुप्तिरवहित्था ।
व्यापारान्तरसक्त्यन्यथावभाषण विलोकनादिकरी ।।[7]

1: सा०द० 3/143 से 145 पूर्वार्द्ध
2: रसविलास 7/29
3: क०क०त० 8/77
4: सा०द० 3/171
5: दशरूपक - 4/29
6: क०क०त० - 8/78
7: सा०द० - 3/158

समीक्षाः—

विश्वनाथ के लक्षण के आधार पर अत्यन्त संक्षेप में अवहित्था का लक्षण प्रस्तुत किया गया है। भय,गौरव, लज्जा आदि किसी प्रकार के भाव का प्रभाव मुख पर न आने देना अवहित्था है और इसीलिए प्रस्तुत अर्थात् प्रसंग प्राप्त का परित्याग करके अन्य का कथन अथवा आचरण अपेक्षित है। चिन्तामणि का यह लक्षण संक्षिप्त एवं व्याख्या सापेक्ष होते हुए भी उचित है।

उन्माद :—

चिन्तामणिः—

मन के भ्रम उन्माद कहि काम भयादिक जात।
विन कारन रोदन हसन कार्य अनर्थक बात ।।[1]

विश्वनाथः—

चित्तसंमोह उन्मादः कामशोकभयादिभिः।
अस्थान हासरुदितगीतप्रलपनादिकृत्[2]

समीक्षाः—

चिंतामणि ने विश्वनाथ के लक्षण का स्पष्ट एवं सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत किया गया है।

व्याधिः—

चिंतामणिः—

व्याधिवियोगादिकनितैकृशतादिक निरधारि
कम्प ताप भूपातइत आदिक यो जु निहारि।[3]

समीक्षाः—

व्याधि को प्रायः आचार्यों ने शारीरिक अवस्था के रूप में अधिक महत्त्वपूर्ण दिया था किन्तु नाट्यदर्पण[4] प्रतापरुद्र यशोभूषण[5] आदि में इसको अंगमनःक्लेश या मनस्ताप कहा गया है। इसी को ध्यान में रखते हुए चिन्तामणि ने धातुजन्य विकार रूप शारीरिक स्वास्थ्य की चर्चा न करके वियोगादिक से उत्पन्न कृशता आदि का उल्लेख किया

1: का०क०त० 8/82
2: सा०द० 3/160
3: क०क०त० 8/80 नाट्य दर्पण 3/135
4: प्र०रु०भू० विद्यानाथ 4/~~13~~48
5: सा०द० 3/164

है, हाँ अनुभावों का उल्लेख किया है जो प्रशंसनीय है ।

विषाद:—

चिन्तामणि:—

जहाँ उपाय अभावते होइ चित्त को भंग ।

सो विषाद लक्षण सुउत बदनताप के संग ।।[1]

विश्वनाथ:—

उपायाभावजन्मा तु विषादः सत्वसंक्षयः

निःश्वासोच्छ्वासहृत्ताप सहायान्वेषणादिकृत्[2]

समीक्षा:—

चिन्तामणि ने विश्वनाथ के लक्षण का उचित अनुवाद किया है । सत्व का मंद पड़ जाना और चित्त का भंग अर्थात् दिल का टूट जाना एक ही बात है । हाँ अनुभावों के उल्लेख में केवल ताप की चर्चा की गई है ।

उत्कंठा (औत्सुक्य):—

चिन्तामणि:—

अभिलषित तारथ लाभ मैं नहि विलम्ब सहि जाइ ।

उत्कंठा जामै कछु, आकुलता अधिकाइ ।।[3]

धनंजय और विश्वनाथ:—

(क) कालाक्षमत्वमौत्सुक्यं रम्येच्छारतिसम्भ्रमैः[4]

(ख) इष्टानवाप्तेरौत्सुक्यं कालक्षेपासहिष्णुता[5]

1: क0क0त0 8/84

2: सा0द0 3/167

3: क0क0त08/86

4: दशरूपक 4/32

5: सा0द0 3/160

समीक्षाः—

उपर्युक्त उद्धरणों की पृष्ठभूमि में चिन्तामणि ने उत्कंठा का लक्षण प्रस्तुत किया है। लक्षण की शब्द योजना विश्वनाथ के अधिक निकट है तो उदाहरण में रतिमूलक औत्सुक्य धनंजय के संकेत पर है । उदाहरण इस प्रकार हैः—

दुलहिन के बिछिया बजत, धार मै इत उत जात ।
ज्यों ज्यों होइ विलम्ब अति त्यों त्यों अति अकुलात ।।[1]

चपलताः—

चिन्तामणिः—

रागादिक तें होतु है थिरता कछू जहाँन ।
स्वच्छन्दा रचनादि को है चापल्य निदान ।।[2]

धनंजय औ एवं विश्वनाथः—

मात्सर्यद्वेषरागादेश्चापल्यं त्वनवस्थितिः ।
तत्र भर्त्सनपारुष्यस्वच्छन्दाचरणादयः ।।[3]

समीक्षाः—

उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर चपलता का संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट लक्षण प्रस्तुत किया गया है । ध्यातव्य है कि श्रृंगार रसानुकूल राग को प्रधानता दी गई है और इसलिए अनुभावों में 'स्वच्छन्दाचरण को महत्त्व मिला है ।

1: क0क0त0 8/87

2: क0क0त0 8/88

3: दशरूपक - 4/33 तथा सा0द0 4/169

नायिकाओं के यौवनालंकार अथवा सृंगार चेष्टा एः—

व्यभिचारी भावों की चर्चा के अनन्तर चिन्तामणि ने सृंगार रसाभिव्यंजक 28 सजल अलंकारों की परिचर्चा की है । इस प्रसंग के लिए इन्होंने धनंजय, विश्वनाथ एवं विद्यानाथ को अपना आधार बनाया है । धनंजय ने सलज अलंकारों की 20 संख्या निर्धारित की है जिनका वर्गीकरण इस प्रकार है :—

क — अंगज :—

भाव, हाव तथा हैला =3

ख — अयत्नज :—

शोभा, कान्ति, माधुर्य प्रगलभता औदार्य और धैर्य =7

ग — स्वभावज :—

लीला, विलास, विछित्ति, विभ्रम, किलकिंचित् , मोट्टाइत, कुट्टमित, विलोक, ललित, विहृत[1] =10

विश्वनाथ ने अंगज और अयत्नज को तो ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है किन्तु स्वभावज अलंकारों में आठ नए अलंकारों का परिगणन किया है । वे इस प्रकार हैं :—

मद, तपन, मौग्ध्य, विक्षेप, कुतुहल, हृसित, चकित और केलि[2]

विद्यानाथ ने देहज अलंकारों — भाव, हाव और हेला को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है । अयत्नज सात अलंकारों में से केवल माधुर्य और धैर्य दो को स्वीकार किया है । शेष पाँच — शोभा, कान्ति, दीप्ति, प्रगल्भता और औदार्य को छोड़ दिया है । स्वभावज अलंकारों में धनंजय के दस अलंकारों को यथावस्थित ग्रहण कर लिया है और इस प्रकार सृंगार प्रकाश को प्रकाशित करने वाली 18 चेष्टाओं का परिगणन किया है ।

1: दशरूपक 2/30,31;32,33 का पूर्वार्द्ध

2: साहित्यदर्पण 3/91,92

चिंतामणि ने भी प्रकरण के आरम्भ में प्रतापरुद्रीयम के अनुकरण पर 18 चेष्टाओं का परिगणन किया है —

भाव हाव माधुर्य वहु हेला धर्म बखानि ।
लीला और विलास कहि पुनि विछित्ति जो मानि ।।
विभ्रम किलकिंचित कह्यो गुट्टाइत पुनि आनि ।
वहुरि ~~कमु~~ कुट्टामित वर्णिये पुनि विलोक बखानि ।।
ललित कुतूहल चकित गन समुझि विहृत अरु हास ।
चेष्टा अष्टा दस गनी या सृंगार- प्रकाश ।।[1]

इसके अनन्तर चिंतामणि ने प्रतापरुद्रीयम्, साहित्य-दर्पण और दशरूपक का उल्लेख करते हुए प्रत्येक ग्रन्थों में वर्णित भेदोपभेदों का उल्लेख किया है[2] और प्रतापरुद्रीय के 18 भेदों के ही लक्षण उदाहरण देने का का निश्चय किया है[3]। यह भी उल्लेखनीय है कि इन्होंने इन 18 भेदों के लक्षण निरूपण में भी और कहीं-कहीं उदाहरणों पर भी प्रतापरुद्रीयम को आधार बनाया है किन्तु आवश्यकतानुसार विश्वनाथ का भी आश्रय लिया है ।

इस प्रकरण में चूँकि चिंतामणि ने स्वयं प्रतापरुद्रीयम् को आधार बनाने की बात कही है और दशरूपक तथा साहित्य-दर्पण का भी उल्लेख किया है अतः प्रत्येक पंक्ति के तुलनात्मक विवेचन को महत्व देना आवश्यक प्रतीत नहीं हुआ किन्तु यह उल्लेख्य है कि शोभा, कान्ति एवं दीप्ति के लक्षण किए गए हैं तथा प्रगल्भता, औदार्य, तपन, विक्षेप, मद, मुग्धता एवं केलि पर साहित्य-दर्पण की छाया है । माधुर्य के लक्षण में विद्यानाथ तथा विश्वनाथ दोनों का सहारा लिया है यथाः—

विनाविभूषन मधुरता सो माधुर्य बखानि ।
सकल अवस्था में सदा लसै छविन की खानि ।।[4]

1: क0 क0 त0 9/1 से 3 तक
2: वही 9/4 से 12 तक
3: वही 9/13
4: वही 9/19

यहाँ प्रथम अंश प्रतापरुद्रीय यशोभूषण का अनुवाद है :-

अभूषणोऽपिरम्यत्वं माधुर्यमिति कथ्यते[1]

और द्वितीय पंक्ति साहित्य-दर्पण का अनुवाद है :-

सर्वावस्थाविशेषेषु माधुर्यं रमणीयता ।[2]

यहाँ उल्लेखनीय है कि दोनों लक्षणों के सम्मिश्रण से चिंतामणि का लक्षण अधिक समर्थ हो गया है किन्तु उदाहरण को क्रम में उनकी दृष्टि केवल विद्यानाथ पर रही है इसलिए "विना विभूषन मधुरता" का ही उदाहरण दिया गया है -

ओठ मनौ रवि विम्ब पक्यौ मनौ दामिनि दीपति अंग निहारै ।
बार बड़े बड़े नैन लसै मनौ अम्बुज पातनि भौर सुधारै ।।
पून्यौं निसा के कहा नखतावलि मै मन मैं यौ विचार विचारै ।
ये अकलंक मयंक मुखी तेरे अंग विना ही सिंगार सिंगारै ।।[3]

उदाहरणों मैं भी साहित्यदर्पण की छाया इस प्रकार देखी जा सकती है । प्रगल्भता का उदाहरण देते हुए चिन्तामणि ने लिखा है :-

आलिंगित अरु नाह को आलिंगन को देत ।
चुम्बन चुम्बत जो लिया पियहि दास करि लेत ।।[4]

और साहित्य-दर्पण का श्लोक इस प्रकार है -

समाश्लिष्टाः समाश्लेषैश्चुम्बिताश्चुम्बनैरपि
दष्टाश्च दशनैः कान्तं दासी कुर्वन्ति योषितः।।[5]

1: प्र0 रु0 भू0 पृष्ठ - 263

2: सा0 द0 3/97

3: क0 क0 त0 9/20

4: क0 क0 त0 9/54

तुलनीय -

5: सा0 द0 3/97 का उदाहरण पृष्ठ 84

अठ्ठारह भेदों के उल्लेख के उपरान्त छन्द 57 से 63 तक 'तिको-उदाहरन' कहकर तपन विक्षेप मुग्धता और केलि इन चार का संग्रह किया गया है स्पष्ट है कि सब मिलाकर केवल 22 नायिकालंकारों का उल्लेख कवि कुल कल्प तरु में प्राप्त होता है । शेष छः अलंकारों के संबन्ध में वे मौन हैं ।

हम पहले चर्चा कर चुके है कि चिंतामणि हाव, भाव आदिक चेष्टाओं को उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत चर्चा करके उन्हें अनुभाव का अपर पर्याय मान लिया था और विद्यानाथ का खण्डन करके एक मौलिक धारणा प्रस्तुत की है ।

चेष्टा ताकी आप ही वरनैगें अनुभाव[1]

अतः यहाँ पुनः जिन अँगज नायिका अलंकारों का उल्लेख किया गया है उन्हें परम्परा का अनुपालन मात्र मानना चाहिए अन्यथा उनका अनुभाव में अन्तर भाव चिंतामणि स्वीकार ही कर चुके हैं ।

दूसरी विशेषता यह है कि साहित्य-दर्पण-कार ने तीन अंगज और सात अयत्नज इन दस अलंकारों को पुरुषों में भी सम्भव माना है यह बात अलग है कि इनकी जैसी सुन्दरता और विचित्रता नायिका में रहने पर दिखाई देती है वैसी नायक में रहने पर नहीं ।[2]

"पूर्वेभावादयोदैयन्ता दशनायकानामपि भवन्ति किन्तु सर्वेप्यमी नायिकाश्रिताएवविच्छित्ति विशेषंपुष्णन्ति"

चिन्तामणि इस संबन्ध में सर्वथा मौन हैं इतना ही नहीं वे केवल इन्हें सृंगार को प्रकाशित करने वाली चेष्टाएँ मात्र मानते हैं हाँ रीतिकालीन परिवेश के कारण उदाहरण केवल नायिकाओं के दिए गए हैं । इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि साहित्य-दर्पण के अनुसार नायिकाश्रित भी होते है इसकी चिन्तामणि ने उपेक्षा करदी है ।

1: क0क0त0 7/47

2: सा0द0 3/93 की टिप्पणी पृष्ठ 83

<u>चिन्तामणि का रस निरूपणः—</u>

विभाव, अनुभाव, संचारी भाव एवं स्थायी भाव आदि रसांगों की चर्चा के उपरान्त रस-निरूपण की चर्चा स्वतः प्राप्त हो जाती है । रसों में भी प्राथमिकता की दृष्टि से चिन्तामणि ने सृंगार रस का अत्यन्त विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया है अतः सर्वप्रथम सृंगार रस का विवेचन प्रस्तुत है ।

सृंगार रस का स्थायिभाव रति है । यह सभी आचार्यों को मान्य है । इस रति की परिभाषा करते हुए उन्होंने इसे 'मन की अनुपम लगन' कहा है । इस प्रकार कहा जा सकता है कि जहाँ नायक नायिका के पारस्परिक आकर्षण एवं अनुपम मानसिक लगाव रूप रति स्थायी भाव हो उसे सृंगार रस कहते हैं ।

जामे थाई रति सु तौ मन की लगन अनूप ।
चिंतामनि कवि कहत हैं सो सृंगार सरूप ।।[1]

इस सृंगार के आलम्बन नायक और नायिका हैं ।

(क) आलम्वन शृंगार को तिय नायका बखानि ।
कलनि प्रवीन विलासिनी सुन्दरता की खानि ।।[2]

(ख) होत जाहि अलम्बि रस सो आलम्वन जानि ।
तै द्वय नायक नायिका चिंतामनि अनुमान ।।[3]

यद्यपि सृंगार के रस-राजत्व की चर्चा के विषय में चिंतामणि मौन हैं तथापि उन्होंने जिस प्रकार विस्तार से नायिका भेद की चर्चा की है और नख-शिख-वर्णन किया है तथा नायक भेदोंपरान्त सृंगार रस के आलम्वन के रूप में कृष्ण का नख-शिख वर्णन 18 सवैयों में किया है[4] उससे स्पष्ट है कि उन्होंने सृंगार रस को ही सर्वाधिक

1: क0क0त0 - 9/1

2: क0क0त0 - 5/69

3: रस विलास- 1/5

4: क0क0त0 - 7/19 से 36 तक

महत्व दिया है । सुविधा की दृष्टि से हमने शोध प्रबन्ध में नायक-नायिका भेद की स्वतंत्र अध्याय में परिचर्चा की है जो वस्तुतः सृंगार रस के आलम्बन का ही विवेचन है अतः यहाँ इस विषय में संक्षिप्त उल्लेख से ही सन्तोष किया है ।

उद्दीपन के रूप में कवि कुल कल्प तरु में अतिशय संक्षेप में चन्द्रमा बादल आदि ललित वस्तुओं का उल्लेख किया गया है ।[1] तदनन्तर आलम्बनगत रूप, गुण, चेष्टा आदिक के आलम्बनत्व का निषेध करके केवल तटस्थ उद्दीपनों को ही उद्दीपन माना गया है हाँ, उदाहरणों के निरूपण में वसन्त आदि का वर्णन किया गया है । रस विलास में उद्दीपन विभाव के लिए एक पूरा परिच्छेद दिया गया है । रम्य देश, रम्य समय और रम्यवेश[2] आदि का विस्तृत वर्णन है । रम्यदेश के अन्तर्गत सरिता, वापी, तड़ाग, नगर, महल, देवालय, बन एवं बाग क आदि का वर्णन है:-

रम्य देश सरिता सुभग वापी तथा तड़ाग ।
सुन्दर जगह अगार त्यों देवालय बन बाग ।।[3]

इन सब के विस्तार से उदाहरण दिए गए हैं । रम्य-समय के अन्तर्गत षड्ऋतु, वारहमासा, प्रभात, मध्याह्न, संध्या, चन्द्रोदय आदि का वर्णन है -

रम्य समय षड्ऋतु बरनि त्योंही वारह मास ।
प्रात मध्य सन्ध्यादिनों चन्द्रोदय सो प्रकाश [4]

इस प्रसंग में समय की प्रकृति तथा फल फूल आदि ऋतु में उत्पन्न होने वाले पदार्थों का वर्णन किया है । रम्यवेश के अन्तर्गत 16 सृंगार का विशेष उल्लेख है ।

जैसे जाहिर जगत में सोलह ये सृगार
रम्य वेश इह आदि है और बहुत विचारि[5]

1: क0क0त0 7/38

2: रस विलास 4/2

3: वही 4/3

4: वही 4/4

5: वही 4/6

कटाक्ष आदि अनुभावों का उल्लेख यथा स्थान किया ही जा चुका है ।[1] आठ सात्विक भावों के उदाहरण के रूप में जो एक छन्द प्रस्तुत किया गया है उसमें भी नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के वृषभाननन्दिनी राधा की ओर देखने का वर्णन है ।

जहाँ तक संचारी भावों का प्रश्न है उसमें धैर्य, उग्रता, मरण, मति और अमर्ष को छोड़कर संचारी भावों के शेष उदाहरण सृंगार रस के अनुकूल हैं । अतः सृंगार रस में अधिकाधिक संचारी भावों के उपयोग का संकेत अनायास ही प्राप्त हो जाता है ।

इस प्रकार विभादि सामग्री से संवलित रति स्थायी भावक सृंगार के दो भेदों की चर्चा चिन्तामणि ने की है । एक संयोग तथा दूसरा वियोग[2]। जहाँ दम्पति अत्यन्त प्रेम से विलास में संलग्न होते हैं तथा अनेक प्रकार से विहार करते हैं उसे संयोग कहते हैं ।

चुम्बन, आलिंगन आदि प्रदान करते हुए जहाँ अनेक प्रकार से द दम्पति भोग करते हैं वह संयोग सृंगार कहलाता है –

जहाँ दम्पती प्रीति सों, विलसत रचत विहार ।
चिंतामनि कवि कहत हैं, सो संयोग सृंगार ।।
चुम्बन आलिंगनहि दै, आदि विविध विधि भोग ।
चिंतामनि सृंगार मैं सो एकै संयोग ।।[3]

संयोग सृंगार का एक सुन्दर उदाहरण देखिए –

चैत की चांदनी कैधौं चंद अवलोकनितै छीरनिधिछीर के पूरन पूर उमगे ।
चिंतामिनि कहै मन आनन्द मगन है कै विहरति दंपति परम प्रेम सो पगे ।।
अधखुली अखियाँ सुरति सुख रस बस मानौं और अधखुले कमलन में खगे ।
प्यारी के सकल तन श्रम जल विन्दु सोहैं कनक लता मैं मुकताफल मानौ लगे [4]।

1: क0क0त0 9/1
2: वही 10/2
3: वही 10/3, तथा 10/8
4: वही 10/7

उपर्युक्त उदाहरण में परमानन्द में मग्न रति स्थायी भाव से अनुप्राणित दम्पति के विहार का वर्णन है । चाँदनी आदि उद्दीपन, अधखुली आँखें, चंचल नेत्र रतिश्रान्ति-जन्य स्वेद-विन्दु आदि का उल्लेख जहाँ एक ओर अनुभावों एवं भावों का संकेत देते हैं वहीं आलस्य, विबोध तथा श्रमहर्ष आदि संचारी भावों की सुन्दर छटा प्रदर्शित करते हैं ।

विप्रलम्भ सृंगारः-

जहाँ स्त्री और पुरुष परस्पर मिल नहीं पाते, उस संयोग के अभाव के क्षण को विप्रलम्भ सृंगार कहते हैं :-

जहाँ मिलै नहिं नारि अरु पुरुष सु बरन वियोग
विप्रलम्भ यह नाम कहि वरनत सब कवि लोग[1]

इस विप्रलम्भ के पूर्वराग (पूर्वानुराग) मान, प्रवास और करुण रूप में चार भेद किए गए हैं जिनका क्रमशः विवेचन इस प्रकार है ।

पूर्वानुरागः-

मिलन से पूर्व जो अनुराग होता है उसे पूर्वानुराग कहते हैं । इसमें श्रेष्ठ कविगण अनेक दशाओं का वर्णन करते हैं -

होइ मिलन तै प्रथम ही सो पूरब अनुराग
या मै बरनत करत सब सत कवि दशा विभाग[2]

चिन्तामणि ने इस पूर्वानुराग के प्रसंग में ही विद्यानाथ के आधार पर बारह काम दशाओं का उल्लेख किया है । तदनन्तर विश्वनाथ आदि के आधार पर प्रसिद्ध दश दशाओं की चर्चा की है । यहाँ ध्यातव्य है कि बारह या दस प्रकार की काम दशायें वस्तुतः सभी प्रकार की विप्रलम्भ-दशाओं में प्राप्त होती हैं । ये केवल पूर्वराग से संबद्ध हैं ऐसा मानना उचित नहीं है ।

1: क0क0त0 10/9
2: वही 10/12

बारह काम दशाएँ:—

1: चक्षुः प्रीति 2- मनः संग 3- संकल्प 4- प्रलाप 5- जागरण 6- कृसता 7- अरति 8- लज्जात्याग 9- संज्वर 10- उन्माद 11- मूर्छा 12- मरण

इनका परिगणन चिन्तामणि ने इस प्रकार किया है :—

प्रेम प्रीति अखियाँन की पुनि मन संगम जानि ।
पुनि संकलम बखानिये फुन प्रलाप उर आनि ।।
वहुरि जागरन वरनिये कृसता और विचारि ।
अरीति लाज को छोड़िवो पुनि संज्वर निरधारि ।।
पुनि उन्माद बखानिये मूर्छा और बखानि ।
मरन अन्त की दशा ए बारह भाँति सुजानि ।।[1]

अनन्तर परम्परा से प्रसिद्ध दस काम दशाओं का भी उल्लेख किया है — अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण ।

इनका संग्रह इस प्रकार किया गया है :—

प्रथम वरन अभिलाष पुनि, चिंता चित में आनि ।
वहुरि बखानौ गुन कथन वहुरौ सुमृति बखानि ।।
पुनि उद्वेग प्रलाप गनि पुनि उन्मादौ मानि ।
व्याधि और जड़ता कही मरन अन्त में जानि ।।
कहूँ ग्रन्थ कर्ता कहे ए ग्रन्थन दस भेद ।
इनके लखन उदाहरन वरनत सुनौ अखेक ।।[2]

अतएव चिन्तामणि ने इन उपर्युक्त 22 दशाओं के यथा सम्भव लक्षण विद्यानाथ तथा विश्वनाथ के आधार पर दिये हैं । उदाहरण इनके अपने हैं । आनन्दपूर्वक दर्शन को चक्षुः प्रीति कहते हैं । मन का लगना ही मनःसंग है । प्रिय के प्रति

1: क0क0त0 10/14,15 तथा 16 तुलनीय - पृ0रू0भू0 27।
2: क0क0त0 10/17,18 तथा 19 तुलनीय - सा0द0 3/190

जो मनोरथ है वही संकल्प है । प्रिय के संबन्ध की बातें प्रलाप कहलाती हैं । तन के ताप को संज्वर, ज्ञान के अभाव को मूर्छा और प्राण के अभाव को मरण कहते हैं किन्तु मरण वर्णन योग्य नहीं होता[1]। जागरण, कृशता अरति और लज्जा - त्याग के लक्षण उपलब्ध प्रति में नहीं हैं ये सम्भवतः लिपिकार के प्रमाद से नष्ट हो गए हैं । उन्माद और मरण के उदाहरण इस क्रम नहीं दिए गए हैं क्योंकि उनका प्रकारान्तर से उल्लेख दस दशाओं में हो गया है ।

जहाँ तक दस दसाओं का सम्बन्ध है उनका पुनः परिगणन किया गया है[2] और तदनन्तर कुछ दशाओं के सांकेतिक लक्षण दे दिए गए हैं । मरण के वर्णन का निषेध कर दिया गया है ।[3] तदनन्तर रीति काल के रंगीनी से भरे हुए विप्रलम्भ के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं । स्मृति में नायक द्वारा नायिका की और नायिका द्वारा नायक की स्मृति के दृष्टान्त दिए गए हैं । मरण के निषेध पर विश्वनाथ का प्रभाव दृष्टव्य है ।

कबहूँ मरन न वरनिये जीवन कवहू होइ ।
तौ पुनि वाको ध्याइयौ यों कवि शिक्षा कोइ ।।[4]

तुलनार्थ –

रस विच्छेद हेतुत्वान्मरणं नैव वर्ण्यते ।
जात प्रायं तु तद्वाच्यं चेतः सा कांक्षितं तथा ।।
वर्ण्यऽपि यदि प्रत्युज्जीवनं स्याददूरतः ।

मानः–

विश्वनाथ ने मान को कोप का ही दूसरा नाम बतलाया है और उसके प्रणय तथा ईर्ष्या भेद से दो रूप बतलाये हैं ।[5] इसी को अनूदित करते हुए चिंतामणि ने लिखा है कि :–

1: क०क०त० 10/20,21 तथा 22
2: वही 10/37,38
3: वही 10/41
4: क०क०त० 10/55
तुलनीय –
5: सा०द० 3/193-194

दम्पति की रिसि परस्पर मान बखान्यो जाइ ।
प्रनय ईर्ष्या भेद सौं, द्वै विधि ताहि गनाइ ।।[1]

रस मंजरीकार ने "प्रियापराध सूचिका चेष्टा मानः"[2] ऐसा लक्षण किया है जो ईर्ष्यामान के लिए ही अधिक उपयुक्त है । अतएव चिंतामणि ने इस लक्षण की उपेक्षा करदी है । हाँ, ईर्ष्यामान के तीन भेदों की चर्चा रस मंजरी के आधार पर ही की गई है । इसका उल्लेख हम आगे करेंगे ।

<u>प्रणयमानः-</u>

प्रेम की गति विचित्र है उसमें सरलता के बदले बांकपन का विशेष महत्त्व है अतएव एक ही शय्या पर शयन करते हुए भी तथा दम्पति के हृदय में परस्पर भर पूर प्रेम होते हुए भी जब विना कारण के एक दूसरे पर कोप प्रदर्शित किया जाता है तो उसे प्रणय मान कहते हैं :-

होत प्रणय की कुटिल गति बिन कीन्हें जो रोस
दम्पति को इक सेज में प्रणय मान बिन दोस[3]

यहाँ 'द्वयों' के लिए दम्पति शब्द का प्रयोग किया गया है और 'इक सेज में' इन्होंने अपनी ओर से जोड़ लिया है जो सम्भवतः "एकस्मिन् शयने राङ्मुखतया"[4] जैसे उदाहरण के आधार पर प्रस्तुत किया गया है । भानु दत्त के प्रणय-मान का उल्लेख नहीं किया है क्यों कि बिना कारण के कोप एक प्रकार की चुहलबाजी है जिसे वास्तव में कोप न कहकर प्रेम की एक रसता दूर करने के लिए कोप का अभिनय कहना अधिक संगत होगा किन्तु ऐसे प्रसंगों की रस्यमानता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

1: मानः कोपः स तु द्वेधाप्रणयेर्ष्यासमुद्भवः
सा0द0 3/198

2: क0क0त0 10/56

3: रस मंजरी - भानु दत्त पृष्ठ 83

4: क0क0त0 10/59

तुलनीय - सा0द0 - 3/198 का उत्तरार्द्ध तथा 119 का पूर्वार्द्ध

दूसरी बात यह है कि प्रणय मान समाप्त होकर संयोग की गाढ़ता का परिपोषक हो जाता है । इसलिए चिन्तामणि ने विश्वनाथ के आश्रय से प्रणय मान का विवेचन किया है ।

इर्ष्यामानः-

इर्ष्यामान का लक्षण कारण है है अपने पति के विषय में परनारी संबन्ध का ज्ञान । इसलिए वह केवल स्त्रियों में ही देखा जाता है :-

प्रण्यमानगत दुहुन को इर्ष्यामान जु होइ
सु तौ वरनिये तियन में यों वरनत सब कोइ[1]

विश्वनाथ ने पति के अन्य नारी से संबन्ध को देखने, अनुमान करने तथा सुनने से इर्ष्या की उत्पत्ति मानी है और अनुमान के भी तीन आधार बतलाए हैं -
1- स्वप्न में नायिका के संबन्ध की बातें बड़बड़ाना 2- नायक में उसके संभोग चिन्हों को देखना 3- तथा नायक के मुख से अचानक अन्य नायिका का नाम निकल जाना :-

पत्युरन्यप्रियासंगे दृष्टेऽथानुमिते सुते ।
इर्ष्यामानो भवेत्स्त्रीणां तत्र त्वनुमितिस्त्रिधा
उत्स्वप्नायितभोगीकगोत्रस्खलनसंभवा ।[2]

किन्तु चिन्तामणि ने केवल दृष्ट कारण का ही उल्लेख किया है :-

औरतिया के दोख तें रोख करै जो नारि ।[3]

ऐसा क्यों है समझ में नहीं आता ? क्यों कि इससे विश्लेषण बड़ा स्थूल हो जाता है ।

अनन्तर उन्होंने रस मंजरी के आधार पर मान की के तीन भेद किये हैं -

---

1: क0क0त0 10/60
2: सा0द0 3/199 तथा 200
3: क0क0त0 10/61

लघु, मध्यम, गुर भेद ये मान सु त्रिविधि विचारि[1]

उल्लेख्य है कि ~~रस मंजरी~~ मंजरीकार के तीनों प्रकार के मानों के कारणों का भी उल्लेख किया है –

अपरस्त्रीदर्शनादिजन्मालघुः, गोत्रस्खलनादिजन्मा मध्यमः, अपरस्त्रीसंगजन्मा गुरुः।[2]

किन्तु चिंतामणि ने इन कारणों का लक्षण में उल्लेख नहीं किया है। हाँ, उदाहरणों के क्रम में अवश्य इन विशेषताओं का संकेत मिल जाता है। इस मान के मोचन के उपायों का दो प्रकार से उल्लेख है –

क - लघुमान कौतुक से दूर हो जाता है, ~~तथा~~ मध्यमान शपथ लेने से शान्त हो जाता है तथा गुरुमान पैरों पर गिरने से छूटता है और ऐसी दशा में नायिका की भौंहों में फिर बल नहीं पड़ता –

कौतुक छूटत मान लघु मध्यम कीन्हें सौंह
गुरु छूटत पाइन परे फेर चढ़त नहिं भौंह[3]

ख - विश्वनाथ के आधार पर मोचन के छ उपायों का लक्षणोदाहरण प्रस्तुत किया गया है। चिंतामणि का कथन है कि –

मान हरन के करन को बरने छयौ उपाइ।
छोड़त इनते रौस तिय ऐसे सदा सुभाइ।।[4]

वे छ उपाय निम्नलिखित हैं :–

साम, भेद, अरु दान कहि त्यौं ही प्रपति बखान
बहुरि उपेक्षा कहत हैं फिरि रस अन्तर मानि[5]

1: क0क0त0 10/61 का उत्तरार्द्ध

2: रस मंजरी - भानु मिश्र पृष्ठ 84

3: क0क0त0 10/62

4: वही 10/67

5: वही 10/68 तुलनीय सा0द0 3/201

इन छः उपायों का विश्लेषण इस प्रकार है — मधुर वचन का नाम 'साम' है, सखी को फोड़ लेना 'भेद' है, आभूषण आदि को किसी बहाने से देने का नाम 'दान' है, पैरों पर गिरना 'प्रनति' है, सामआदिक उपायों के असफल हो जाने पर उपाय छोड़ कर बैठ रह जाना 'उपेक्षा' है एवं त्रास, हर्ष आदि के द्वारा कोप दूर हो जाने का नाम 'रसान्तर' है —

मधुर वचन सो साम कहि भेद सखी की बात
दान ब्याज भूखादि को प्रनति चरन को पात
सामादिक की छीनता होत उपेक्षा चित्त
त्रास हरख इन आदि दै कहि रस अन्तरमित्त[1]

इन उपायों के सुन्दर उदाहरण दिए गए हैं जिनसे सन्दर्भ विल्कुल स्पष्ट हो गए हैं। नमूने के तौर पर रसान्तर का यह उदाहरण देखिए —

मान कियो वृषभान कुमारिन मान्यौ गुवारिन भौर मनाई।
और उपाइ थके सिगरै मन मोहन यों तब बातै चलाई।।
पीछे तिहारै कहा है तिया ? कहि जो बतियाँ मन में भरमाई।
यों भिभकी, उनको लपकी, हसिकै नदनन्दन कंठ लगाई।।[2]

करुणः—

करुण विप्रलम्भ के विवेचन का आधार साहित्य - दर्पण है। साहित्य - दर्पण में लिखा है कि —

यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये
विमनायते यदैकस्तदा भवेत्करुणविप्रलम्भाख्यः
यथा कादम्बर्यां पुण्डरीक महाश्वेता वृत्तान्ते।[3]

इसी के अनुवाद स्वरूप चिंतामणि का कथन है कि —

1: क0क0त0 10/69,70 तुलनीय - सा0द0 3/202,203
2: वही 10/77
3: सा0द0 3/209 तथा उसकी वृत्ति

जहाँ पुरुष तिय जुगल मै मृत्यु एक की होइ
पुनि जीवन की आस मैं करुना तम गन सोइ
जो वरनौ कादम्वरी पुण्डरीक वृत्तन्त
सो करुणातम गनत है सब पंडित बलवन्त[1]

यहाँ विश्वनाथ ने कादम्बरी के पुण्डरीक वृतान्त में करुण विप्रलम्भ मानना चाहिए या करुण रस, इस सम्बन्ध में सूक्ष्म विवेचन भी किया है किन्तु चिन्तामणि ने यहाँ मौन धारण कर लिया है तथा अपनी ओर कोई अन्य उदाहरण नहीं दिया है।

प्रवासः—

प्रवास कहते हैं परदेश के वास को । यहाँ परदेश का अर्थ लाक्षणिक रूप से इतना ही लिया जाना चाहिए कि प्रिय कुछ निश्चित अवधि के लिए आश्रय से दूर है । इसलिए आश्रय की विरहाकुल स्थिति में प्रवास विप्रलम्भ होता है ।

चिन्तामणि ने यहाँ विश्वनाथ सम्मत प्रवास की चर्चा नहीं की है तथापि प्रोषित पतिका नायिकाओं की जीवनचर्या का जो उल्लेख किया है[2] उसी से प्रभावित होकर चिंतामणि ने अत्यन्त संक्षेप में यह कह दिया है कि —

तन मन होत तियान को ताप निवास पुकास[3]

यह भी उल्लेखनीय है कि इन्होंने वर्तमान प्रवास की चर्चा नहीं की है । केवल भूत और भविष्यत प्रवास का ही उल्लेख किया है किन्तु ऐसा क्यों है ? यह समझ में नहीं आता क्यों कि जब प्रोषित पतिकाओं के भेद निरूपण के क्रम में प्रवसत पतिका का विवेचन किया गया है फिर प्रवास की दशा में उसका उल्लेख न करना एक स्खलन ही माना जायगा ।

अस्तु, इन्होंने भूत और भविष्यत् प्रवास का उल्लेख करके मम्मट के अनुसार प्रवास के पाँच कारणों की सोदाहरण चर्चा की है —

1: क०क०त० 10/78
2: सा०द० 3/204,5,6
3: क०क०त० 10/80 पूर्वार्द्ध
4: वही 10/80 उत्तरार्द्ध

होन हार अरु भयो जो द्वै विधि वरन प्रवास
ताको देत उदाहरन सज्जन सुनौ प्रकास[1]

विप्रलम्भ हेतु निरूपणः—

प्रथम हेतु अभिलाख पुनि विरहा ईरषा मानि
पुनि प्रवास अरु साप पुनि विप्रलंभ के जानि[2]

'अभिलाष' कहते हैं सम्भोग से पूर्ववर्ती अनुराग को। 'विरह' कहते हैं गुरुजन आदिक की परतंत्रता के कारण मिलन के अभाव को। 'ईर्ष्या' और प्रवास' का विवेचन पहले हो चुका है। 'शाप' का लक्षण स्वतः स्पष्ट है इसलिए चिंतामणि ने केवल विरह का लक्षण दिया है जब कि मम्मट ने किसी का लक्षण नहीं दिया है, केवल उदाहरणों में ही लक्षण का संकेत दे गए हैं। चिन्तामणि का लक्षण विरह का लक्षण इस प्रकार है :—

गुरजनादि परतंत्र जँह निकटहु मिलन न होइ।
दंपति को बुधजन कहत विरह कहावत सोइ।।[3]

उदाहरण शाप हेतुक को छोड़कर अन्य सब के दिये गए हैं। प्रवास हेतुक का यह ललित उदाहरण अवलोकनीय है —

मोहि तोहि चातिक कहा जलधर जीवन देत
पीउ पीउ रटि रटि मेरे निठुर कहा सुधिलेत[4]

1: क0क0त0 10/81

2: वही 10/83

तुलनीय—

अपरस्तु अभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशापहेतुक इति
पंचविधः।

का0प्र0 4/सूत्र 29 की वृत्ति

3: क0क0त0 10/85

4: वही 10/88

"शाप हेतुक का मेघदूत में[1]" में मम्मट द्वारा उद्धृत मेघदूत के :– "त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्"[2] की ओर संकेत किया गया है ।

कादम्बरी तथा मेघदूत के उल्लेख के प्रसंग में अपने उदाहरण न देकर चिंतामणि ने प्रकारान्तर से उन कवियों के गौरव को स्वीकार किया है ।

हास्य -रसः–

चिंतामणि ने कहा है कि विकृत, आकृतिवचन एवं वेश भूषा आदि के कारण जो भाव उत्पन्न होता है उसे हास्य कहते हैं । ऐसा सब लोगों का मत है –

विकृत आकृति वचन जो, और वेश कछु होइ ।
तातें उपजत हास्य जो, बरनत हैं सब कोइ ।।[3]

स्थायी भावः–

साहित्यदर्पण का अनुवाद करते हुए चिंतामणि ने लिखा है –

वचनादिक वैकृत निरखि होत जुचित्त विकास ।
विश्वे पावहं देखिकै कहत सुकवि जन हास ।।
हास्य तु थाई भावजित सुतौ हास रस जान[4][2]

यह अंश साहित्य- दर्पण की निम्नलिखित स्थायी भाव की परिभाषा का अनुवाद है –

1: क0क0त0 10/88 के बाद की गद्य वृत्ति
2: मेघदूत - उत्तरमेघश्लोक 42 का0 प्र0 चतुर्थ * उल्लास उदाहरण सं0 36
3: क0क0त0- 9/89 तुलनीय - सा0द0- 3/214 तथा दशरूपक 4/75
4: क0क0त0 9/90,91
तुलनीय – सा0द0 3/176 ी का उत्तरार्द्ध

वागादिवैकृतैश्चेतोविकासो हासइष्यते ।[1]

आलम्बनः-

साहित्य-दर्पण में लिखा है कि जिस विकृत आकार वाणी एवं चेष्टा को देखकर लोग हँस पड़ते हैं उसे यहाँ आलम्बन माना गया है -

विकृताकारवाक्चेष्टं यमलोक्य हसेज्जनेः ।
तदत्रालम्बनम् × × × × ।।[2]

चिन्तामणि ने इस प्रकार का परिगणन न करके अपने लक्षण में हास्योत्पादक प्रत्येक कारण को आलम्बन के रूप में ग्रहण करके आलम्बन के आधार को व्यापकता प्रदान की है ।

जाते उपजत है सुतो आलम्बन पहिचानि[3]

आश्रय का उल्लेख चिंतामणि ने नहीं किया है । इसका मुख्य कारण सम्भवतः यह है कि प्रधान रूप से हास्य रस का आश्रय सहृदय अथवा सामाजिक होता है वैसे काव्य अथवा नाट्य का कोई पात्र भी आश्रय हो सकता है ।

उद्दीपनः-

विश्वनाथ ने हास्य रस के आलम्बन की चेष्टाओं को ही उद्दीपन के रूप में स्वीकार किया है[4]।

× × तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ।[5]

इसी के अनुवाद रूप में चिंतामणि का कथन है कि -

1: सा०द० 3/215 का पूर्वार्द्ध

2: क०क०त० 9/92

3: सा०द० 3/215

4: वही 3/216

5: क.क.त. 9/92

चेष्टा ताकि कहत बुध दीपन इत को होइ ।[1]

यहाँ चेष्टा शब्द का उल्लेख अस्पष्ट एवं भ्रामक है, क्योंकि विकृत वाणी और विकृत आकार ही तो चेष्टाएँ ही हैं किन्तु उनसे रस के उत्पन्न होने की बात कही गयी है फिर उन्हें ही उद्दीपन कहना उचित प्रतीत नहीं होता ।

अनुभावः—

विश्वनाथ ने अक्षिसंकोच और वदन के विकास को इसके अनुभाव के रूप में बताया है ।

अनुभावोऽक्षिसंकोचवदनस्मेरतादयः ।[2]

किन्तु चिन्तामणि ने अनुभाव का उल्लेख नहीं किया है । इस दृष्टि से इनका विवेचन अपूर्ण हो गया है ।

संचारी भावः—

विश्वनाथ के आधार पर अवहित्था, श्रम आदि संचारियों का उल्लेख चिंतामणि ने किया है —

अवहित्थाश्रम आदि पुनि संचारी सो होइ ।[3]

विश्वनाथ का कथन है कि "निद्रालस्यावहित्थाद्या अत्रस्युर्व्यभिचारिणः ।[4]

विश्वनाथ ने निद्रा और आलस्य का भी उल्लेख किया है और उसके बाद आदि शब्द का प्रयोग किया है । चिंतामणि ने विश्वनाथ के अवहित्था और दशरूपक

1: क0क0त0 9/95

~~2: सा0द0 3/216~~

~~3: दशरूपक - 4/74~~

4: सा0द0/ 3/216

के श्रम[1] का उल्लेख करके 'आदि' शब्द का प्रयोग किया है । वस्तुतः दोनों ही संचारियों के नामोल्लेख मात्र को महत्व देते हैं । अन्तिम परिगणन नहीं करते । अतः निद्रा और आलस्य को छोड़ देने के बाद भी लक्षण अपूर्ण नहीं है ।

वर्ण और देवताः--

विश्वनाथ के लक्षण का शब्दानुवाद करते हुए चिन्तामणि ने हास्य रस का वर्ण श्वेत और देवता प्रमथ (शिवगण) को स्वीकार किया है ।

सेत वरन यह प्रमथ पति दैव तहाँ सबखानि[2]

हास्य रस के भेदः--

प्रकृति की दृष्टि से इसे उत्तम, मध्यम और अधम इन तीन कोटियों में विभाजित करके भाव के तारतम्य को आधार मानकर हास्य रस के छ भेद भरत मुनि ने किए हैं । उत्तम -- 1ःस्मित 2ःहसित, मध्यम -- 3ःविहसित -- 4ःउपहसित अधम -- 5ःअपहसित 6ःअति हसित ।

स्मितमथ हसितं विहसितमुपहसितं चापहसितमतिहसितम् ।
द्वौद्वौ भेदौ स्यातामुत्तममध्यमाधमप्रकृतौ ।[3]

भरत ने इन छः भेदों की सम्यक व्याख्या की है और प्रत्येक की विशेषताएँ और उनके पारस्पारिक अन्तर को भी स्पष्ट किया है उसी का संक्षिप्त विवेचन दशरूपक और साहित्य दर्पण में प्राप्त होता है । चिन्तामणि ने भी इन्हीं छ भेदों की चर्चा और उत्तम, मध्यम, अधम के आधार पर वर्गीकरण किया है, हाँ नामकरण में भिन्नता है । पाँच नाम तो वे ही हैं किन्तु अवहसित के स्थान पर इन्होंने उद्धसित का प्रयोग किया है । परिगणन इस प्रकार है --

---

1ः दशरूपक - 4/74

2ः क0क0त09/98 तुलनीय -- श्वेतः प्रमथदैवता

3ः नाट्यशास्त्र - 6/53 - भरत

हास स्मित अरु हसित पुनि, कहिए और विचारि ।
और वरनिये उद्दसित अरु अपहसित निहारि ।।
पुनि अति हसित छ विधि सु ये द्वै द्वै भिन्न गनाइ ।
उत्तम मध्यम अधम जन गत ये समुझि बनाइ ।।[1]

ध्यातव्य है कि 'छविधि' कहते हुए भी उपर्युक्त पंक्तियों में स्मित, हसित, उद्दसित, अपहसित और अति हसित इन पाँचों का ही उल्लेख है । सम्भवतः 'और विचारि' तथा 'और वरनिए' जैसे शब्द समूहों के स्थान पर अवहसित का उल्लेख रहा होगा जो बाद में पाठ भ्रष्ट होने के कारण समाप्त हो गया होगा । उपर्युक्त छ भेदों के लक्षण भी साहित्य-दर्पण से ही प्रभावित हैं । चिंतामणि का कथन है कि स्मित में नेत्र विकसित हो जाते हैं कि और हसित में कुछ-कुछ दाँत दिखाई पड़ते हैं । इन सब के साथ मधुर और सुन्दर स्वर हो तो विहसित होता है । उद्दसित में सिर में कंप होता है । यदि आँखों में पानी आ जाय तो उसे अपहसित कहते हैं । अति हसित में हँसते-हँसते आदमी धरती पर लोट-पोट हो जाता है ।

स्मित कहि विकसित दृगन कछु - कछु लख परै जु दंत ।
कहत हसित उत्तम न के द्वै वरनत बुधवन्त ।।
मधुर स्वर विहसित सिरः कंप उद्दसित जानि ।
मध्यम नर गन हास के ये द्वै भेद बखानि ।।
आँसुन जुत कहि अपहसित बहुरि अति हसित जानि ।+
तन परसै पुहमी तलै ये अधमन के मानि ।।[2]

उल्लेख्य है कि स्मित के लक्षण में "स्पन्दिताधरम्" की उपेक्षा कर दी गई है और अतिहसित के लक्षण में विक्षिप्तांगम् के स्थान पर 'तन परसै पुहमी तलै' का उल्लेख किया गया है । इस प्रकार यहाँ केवल अनुवाद न करके मौलिकता लाने

1: क0क0त0 9/93,94 तुलनीय सा0द03/217

2: वही 9/95 – 97 तक तुलनीय सा0द03/218,219

का प्रयास किया गया है क्योंकि 'विक्षिप्तांगम्' का अर्थ जहाँ चिंतामणि की दृष्टि में हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाना अधिक उचित है ।

हास्य रस का उदाहरण निम्नलिखित है –

आरसी देख जसोमति जूसों कहै तुतरात यों बात कन्हैया ।
वैठेते वैठेते उठेते उठै अरु कूदेते कूदै चलेते चलैया ।।
बोलेतें बोलै हसेतें हसै मुख जैसो करौं त्यों ही आपु करैया ।
दूसरो को तू दुलार कियो यह को है जु मोहि खिझावत मैया ।।[1]

यहाँ दर्पण में अपने प्रतिविम्ब ह को देखकर अपनी ही चेष्टाओं को दूसरे बालक की चेष्टा मान कर खीजते हुए कन्हैया के उपालम्भ से माता यशोदा को जो प्रसन्नता हुई होगी उसे उत्तम प्रकृति गत स्मित के रूप में दर्शित करने का प्रयास किया गया है ।

करुण रसः–

चिंतामणि की दृष्टि से इष्ट वस्तु के नाश और अनिष्ट वस्तु के आगम से जो दुःख उत्पन्न होता है उसको शोक कहते हैं । यह शोक जहाँ स्थायी के रूप में विद्यमान होता है वहाँ करुण रस होता है –

इष्ट नाश कि अनिष्ट की आगमते जो होइ ।
दुख शोक थाई जहाँ भाव करुण कहि सोइ ।।[2]

आलम्वनः–

करुण रस का आलम्वन शोच्य अर्थात् विनष्ट वन्धु आदि सोचनीय व्यक्ति होते हैं कवि कुल कल्प तरु में पाठ है –'आलम्वनिग सोक इत'[3] जिसे सम्भवतः 'आलम्वन' गनि सोच्य इत' होना चाहिए क्योंकि साहित्य-दर्पण में ' सोच्य मालम्बनम् मतम्'[4] ही दिया हुआ है ।

1: क0क0त0 9/99
2: वही 9/100 तुलनीय सा0द0 3/222 का पूर्वार्द्ध तथा 3/223 का पूर्वार्द्ध
3: क0क0त0 9/101
4: सा0द0 3/223 का पूर्वार्द्ध

उद्‌दीपनः—

विनष्ट प्रिय व्यक्ति के दाहादि कार्य उद्‌दीपन हैं — " ताकी दाह क्रियादि"
उद्‌दीपन ×××।।[1]

आश्रय के विषय में कोई उल्लेख नहीं है ।

अनुभावः—

विश्वनाथ ने दैव निन्दा, भूमिपतन, क्रन्दन, वैवर्ण्य, उच्छ्‌वास, निःश्वास, स्तम्भ एवं प्रलाप इन आठ अनुभावों का उल्लेख किया है,[2] किन्तु चिंतामणि ने रोदन और भूपात का नामशः परिगणन करने के उपरान्त शेष को आदि शब्द में समेट लिया है ।

अनुभावगनि रोदन भू पातादि[3] यह संक्षेप जहाँ लक्षण को संश्लिष्ट बनाता है वहीं इससे स्पष्टता में बाधा भी आयी है ।

संचारी भावः—

विश्वनाथ ने विस्तार से संचारियों का परिगणन किया है उनके अनुसार निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, व्यभिचारी हैं,[4] किन्तु चिंतामणि ने सारा बोझ आदि शब्द पर डाल दिया है । अ उनका कथन है- कि निर्वेदादिक

निर्वेदादिक होत हैं जामैं वहु विधि विचारि ।
ते सब अपनी बुद्धि वल लीजै विबुध विचारि ।।[5]

यहाँ भी आचार्य की दृष्टि संक्षेप की ओर रही है किन्तु संचारियों की ऊहा का भार विद्‌वानों पर छोड़ देने के कारण लक्षण सामान्य पाठकों के लिए

1: क०क०त० 9/101 तुलनीय - सा०द० 3/223 का उत्तरार्द्ध

2: सा०द० 3/224

3: क०क०त० ~~3/~~9/101

4: सा०द० 3/225

5: क०क०त० 9/102

सुबोध नहीं बन सका है ।

वर्ण और देवताः—

साहित्यदर्पणकार के अनुसार ही चिन्तामणि ने इसे कपोत वर्ण का रस माना है, इसके देवता यमराज हैं —

यहु कबीर रंग रसु कहो जमदैवत जँह आँनि[1]

किन्तु यहाँ 'कबीर' को कपोत का अपभ्रंश न मान कर 'कर्बुर' का अपभ्रंश मानना अधिक उचित होगा ।

चिन्तामणि ने करुण रस के तीन उदाहरण प्रस्तुत किए हैं । तीनों में दशरथ की मृत्यु की चर्चा है । मृत-पिता आलम्बन हैं, भरत के द्वारा पिता की मृत्यु का समाचार सुनना उद्दीपन है । इस समाचार को सुनते ही शोक स्थायी भाव उद्दीप्त हो जाता है । राम का दुखी होना, अचेत होकर भूमि पर गिरना शरीर का पीला पड़ना जैसे अनुभावों का वर्णन है । राम के दुःख को देखकर भाइयों का विकल हो जाना और राम को धैर्य बधाना तथा उसे सुनते ही राम का संसार को सूना देखना और मुख का विवर्ण हो जाना सर्वांग पूर्ण रस सामग्री से संवलित करुण का परिपाक कर रहा है । दूसरे छन्द में जानकी सहित तीनों भाइयों का रोना जहाँ हृदयस्थ शोक को प्रगट कर रहा है । वहीं राम के द्वारा ~~आ~~ ~~आत्म भर्त्सना~~ से करुण रस का प्रवाह उमड़ पड़ा है, कहना न होगा कि तीनों छन्दों के इस प्रसंग में करुण रस का सुन्दर परिपाक हुआ है जिसमें विभावादि सामग्री की पूर्ण समायोजना दृष्टिगत होती है । प्रसंगतः केवल एक छन्द का उल्लेख पर्याप्त होगा —

ऐसी भाँति राम सब नीति को प्रचार पूछ्यो भरत सुनायो रोइ पिता को मरन है
विह्वल अंगन ते अचेतह्वै गिरे हैं भूमि भइन को गन देखि भयो असरन है
तेरे ही वियोग तें तिहारे पिता प्रान तजे,तुमको धरा को अब धीरज ~~धरन~~ है
यह सुनते ही राम सूनो सब जग लख्यो वाही समै ह्वै गयो वदन विवरन है[2]

1: क0क0त0 9/103 तुलनीय सा0द03/222

2: क0क0त0 9/104

रौद्र रसः-

रौद्र रस के स्थायी भाव निरूपण में चिंतामणि ने विद्यानाथ का आश्रय लेकर लिखा है कि -

अरि विरचित अपराधतें चित्त प्रज्वलन क्रोध ।
सो थाई जित रौद्र सों वरनत निरमल बोध[1] ।।[2]

विद्यानाथ का कथन है कि -

शत्रुकृतापकारेण मनः प्रज्वलनम् क्रोधः[2] [3]

यों तो क्रोध की उद्दप्ति किसी के भी अपराध से हो सकती है किन्तु शत्रु के अपराध से उत्पन्न क्रोध अन्य कारणों से उत्पन्न क्रोध की अपेक्षा अधिक तीव्र और प्रबल होता है इससे आश्रय की हानि भी होती है और अपमान भी होता है । इसलिए प्रतिशोध की भावना चित्त में ज्वाला उत्पन्न करती है इसी को क्रोध कहते हैं यही क्रोध रौद्र रस का स्थायी भाव कहलाता है ।

आलम्बनः-

विश्वनाथ का अनुसरण करते हुए 'आलम्बनमरितत्र'[3] का अनुवाद चिंतामणि ने इस प्रकार किया है 'आलम्बन अरिवरनिए'[4]

उद्दीपनः-

शत्रु की चेष्टा अथवा उसके आचरण को ही विश्वनाथ के अनुरूप चिंतामणि ने उद्दीपन स्वीकार किया है[5]-

× × × × × × उद्दीपन मन आनि ।
ताके जे आचार सब कुध जन लखत बखानि ।।[5]

1: क0क0त0 9/107

2: प्र0रु0भू0 - विद्यानाथ पृष्ठ 23।

3: क0क0त0 9/108
तुलनीय-

4: सा0द03/227

5: क0क0त09/108 तुलनीय- तच्चेष्टो-द्दीपनं मतम् - सा0द03/227

उल्लेख्य है कि विश्वनाथ ने एक श्लोक में उन चेष्टाओं का परिगणन भी किया है[1] किन्तु चिंतामणि ने उन्हें छोड़ दिया है । आश्रय का उल्लेख यहाँ भी नहीं है ।

अनुभावः—

चिन्तामणि ने रौद्र रस के अनुभावों में भृकुटि भंग, नेत्रों का लाल होना और ओठ काटना इन तीनों का उल्लेख करके इत्यादि कह दिया है[2] जबकि विश्वनाथ ने भृकुटि भंग, अधार दंश, ताल ठोंकना, तर्जन, डींग मारना, शस्त्र घुमाना, आक्षेप, उग्रता, आवेग, रोमाँच, स्वेद, वेपथु, मद, इन तेरह अनुभावों का परिगणन किया है[3] कहा जा सकता है कि 'दृग अरुण' का उल्लेख चिंतामणि का अपना है जो विश्वनाथ में नहीं है । किन्तु विश्वनाथ ने युद्धवीर से रौद्र रस का भेद दिखाते हुए रक्तास्य नेत्रता (आँख और मुख का लाल होना बतलाया है)[4] अतः यह उन्हीं से प्रभावित है ।

संचारीः—

अत्यन्त संक्षेप में चिन्तामणि ने लिखा है कि 'व्यभिचारी उग्रादि'[5] जबकि विश्वनाथ ने मोह, मद, अमर्ष आदि को बतलाया है ।[6]

वर्ण और देवताः—

रौद्र रस वर्ण रक्त और रुद्रदेव हैं ।

रक्तरंग रुद्रादि पति रौद्र बखानो जाय[7]

साहित्यदर्पण में भी 'रक्तो रुद्राधिदैवतः'[8] कहा गया है ।

उदाहरणः—

लंका पर आक्रमण करने के लिए क्रोधाविष्ट वानर सेना के रौद्र रूप का सुन्दर वर्णन देखिए —

अति अपार आकास धूरि पूरन सम ग्ग करि ।

1: सा0द0 3/288

2: भृकुटि भंग दृग अरुन अरु, अधार दंस इत्यादि। अरुवरनत अनुभाव × × × × × × × × ।।

3: सा0द0 3/229, 230

4: क0क0त09/109

5: रक्तास्यनेत्रता चात्र भेदिनी-युद्धवीरतः सा0द0 3/231 का उत्तरार्द्ध ।

6: सा0द0 3/231 का पूर्वार्द्ध

अह निशि वासर वंद चलिय उद्दाम दरप धारि ।।
दिज्जिय पूरन विपति रोकि रावन के देसहि ।
चलौं उजारौं लंक छोरि मारौ लंकेसहि ।।
चिंतामनि बल गन करत सब बल उदभट सभर भद ।
अति प्रवल विपुल कपि बल जलधि पहुच्यौ दछिन जलधि तट ।।[9]

वीर रस:-वीर रसः-

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है । विद्यानाथ के आधार पर चिन्तामणि ने लोकोत्तर कार्य में कार्यपर्यन्त स्थिर रहने वाले यत्न को उत्साह कहा है —

जो लोकोत्तर काज में विथिर प्रजन्त उत्साह ।
सो जामे थाई सुरसु वीर कहत कवि नाह ।।[10]

वास्तव में उत्साह की लोकोत्तरता लोक कल्याणकारी कार्यों में ही प्रगट होती है और ऐसे ही प्रसंगों में प्रदर्शित उत्साह को वीर रस का स्थायी भाव मानना चाहिए ।

आलम्बनः-

विश्वनाथ के अनुकरण पर चिंतामणि ने विजेतव्य को वीर रस का आलम्बन माना है —

जेतव्यालम्बन वरन - - - - - ।[11]

विचारणीय यह है कि विश्वनाथ ने 'विजेतव्य आदि' कहा है । इसलिए वीर रस के अन्य भेदों में तदनुरूप आलम्वन को उप कल्पित करने का अवसर प्राप्त हो जाता है । किन्तु चिन्तामणि ने 'आदि' शब्द का प्रयोग न करके

7: क0क0त0 9/110

8: सा0द0 3/227

9: क0क0त0 9/113

10: क0क0त0 103 तुलनीय - लोकोत्तरेषु कार्येषु स्थेयान प्रयत्न उत्साहः । प्र0रु0भू0 पृष्ठ - 113

11: क0क0त0 9/114 तुलनीय-सा0द03/233

असंगति उत्पन्न कर दी है । हम जानते हैं कि दानवीर, दयावीर और धर्मवीर जैसे भेदों को जब चिन्तामणि ने स्वीकार किया है तो इनकी दृष्टि में भी 'विजेतव्य' के अतिरिक्त आलम्बन रहे होंगे । अतः लक्षण अपूर्ण ही कहा जायगा । दान, दया और धर्म की रक्षा में आश्रय के लोकोत्तर कर्म की अनेक कथायें प्राप्त होती हैं। अतः चिन्तामणि अपने लक्षण में विषय को स्पष्ट नहीं कर सके हैं ।

आश्रयः—

चिन्तामणि ने आश्रय का उल्लेख नहीं किया है किन्तु आगे चलकर साहित्य-दर्पण के साक्ष्य पर इसे उत्तम नायक विषयक माना है अतः उत्तम पात्र आश्रय है[1]।

उद्दीपनः—

विश्वनाथ से ही प्रेरणा लेकर चिंतामणि ने वीर रस की उद्दीपक सामग्री के विषय में कहा है कि — आलम्बन का इंगित ही उद्दीपन होता है —

× × × ताको इंगित कोइ ।
उद्दीपन × × × × × ॥[2]

यहाँ इंगित का अर्थ चेष्टा है । साहित्य-दर्पण में चेष्टा शब्द का ही प्रयोग किया गया है । स्पष्ट है कि 'विजेतव्य आदि' की 'चेष्टा आदि' से वीर रस की उद्दीप्ति होती है । यहाँ भी 'आदि' शब्द का प्रयोग न करके चिन्तामणि ने अपने लक्षण को भ्रान्त बना दिया है अथवा दूसरे शब्दों में कहें तो लक्षण को केवल युद्ध वीर तक सीमित कर लिया है ।

1: उत्तम नायक विषय जहँ होइ सुकवि मन आनि ।
क0क0त0 9/116
तुलनीय - उत्तम प्रकृतिर्वीरः सा0द0 3/232
2: क0क0त0 9/114 तुलनीय - सा0द0 3/233

अनुभावः–

'नायक कौ आचरन जो सो गनिए अनुभाव'[1]

उपर्युक्त लक्षण भी विश्वनाथ से ही प्रभावित है । किन्तु चिन्तामणि ने विश्वनाथ के 'सहायान्वेषणादि' की व्याख्या कर दी है क्योंकि प्रसंगानुकूल नायक के आचरण में सभी अनुभाव समाहित हो जाते हैं अतः नायक की समस्त चेष्टाएँ जो वीर रस के आवेश को प्रमाणित करें, अनुभाव कहलायेगी ।

संचारीः–

चिंतामणि ने वीर रस की पुष्टि करने वाले संचारियों में केवल धृति का उल्लेख करके 'आदि' शब्द से काम चला लिया है –

× × × धृत्यादि पुनि संचारी इत होइ[2]

यहाँ 'आदि' शब्द के अन्तर्गत साहित्यदर्पणोक्त धृति, मति, गर्व, स्मृति, वितर्क, रोमांच जैसे संचारियों का परिगणन समझना चाहिए परन्तु चिंतामणि ने इनका उल्लेख न करके जहाँ लक्षण को संक्षिप्त बनाया है वहाँ अस्पष्टता भी आ गई है ।

वर्ण और देवताः–

विश्वनाथ के आधार पर वीर रस का वर्ण स्वर्ण के समान और देवता इन्द्र है । ऐसा उल्लेख कवि कुल कल्प तरु में प्राप्त होता है –

इन्द्र देवता कनक सम बरन सु याको जान[3]

वीर रस के भेदः–

साहित्यदर्पण तथा कवि कुल कल्प तरु में वीर रस के चार भेदों को स्वीकार किया गया है – दान वीर, धर्म वीर, युद्ध वीर और दया वीर ।

दान धर्म कै युद्ध कै दया सु आदि गनाव[4]

उदाहरणः–

वीर रस के सभी उदाहरण राम कथा से लिये गये हैं जिनमें युद्ध वीर, दान वीर और दया वीर के उदाहरण हैं । युद्ध वीर में राक्षसों से युद्ध करते

संदर्भ अगले पृष्ठ पर देखें –

हुए राम के उत्साह का सुन्दर परिपाक है तो दान वीर में लंका का राज्य विभीषण को देने की घटना का उल्लेख है । दया वीर में युद्ध भूमि में मृत वानर भालुओं को जीवन दान देने का सुन्दर उल्लेख है । सभी उदाहरण सुन्दर हैं।[5]

भयानक रसः—

भयानक रस का स्थायी भाव भय है । विश्वनाथ के आधार पर चिन्तामणि का कथन है कि किसी रौद्र की शक्ति से उत्पन्न चित्त को व्याकुल कर देने वाला भाव भय कहलाता है और जहाँ यह भय स्थायी रूप से विद्यमान होता है उसे भयानक रस कहते हैं —

रौद्र शक्ति भव चित्त की विक्लवता भय जानि ।
सो जामै थाई सुरस भयानकहि पहिचानि ।।[6]

आलम्बनः—

जिससे यह भय उत्पन्न होता है वही इस रस का आलम्बन है —

जाके उपजत हैं सुयेते आलम्बन जानि[7]

स्पष्ट है कि भय जिससे उत्पन्न होता है ऐसे सिंह आदि को ही यहाँ आलम्बन मानना चाहिए किन्तु चिन्तामणि के लक्षण से ऐसा अर्थ प्रतीत होता है कि जिसमें यह भय पैदा होता है वह आलम्बन है (जबकि वस्तुतः वह आश्रय है) अतः लक्षण दोष पूर्ण हो जाता है । वस्तुतः साहित्यदर्पण के 'अस्मात्' का अनुवाद 'जाके' के स्थान पर जाते या जासों होना चाहिए । यह भ्रान्ति लिपिकारों के

1: क0क0त09/115 तुलनीय - सा0द0 3/233
2: क0क0त0-9/114 तुलनीय- सा0 द0 3/234
3: क0क0त010/116 तुलनीय सा0द0 3/232
4: वही 10/115 वही 3/234
5: वही 10/118 से 128 तक
6: क0क0त0 9/129 तुलनीय- रौद्रशक्त्यातुजनितचित्तवैक्लव्यद भयम् । सा0द0 3/ 128 तथा भयानकोभयस्थायिभावः-वही 3/235
7: क0क0त09/130 तुलनीय- सा0द0 3/236

प्रमाद से ही उत्पन्न हुई है ऐसा मानना अधिक संगत होगा। यहाँ आश्रय का उल्लेख नहीं है जबकि साहित्य दर्पण में स्त्री और नीच प्रकृति के लोगों को आश्रय माना गया है।[1]

उद्दीपनः–

उद्दीपन के संबन्ध में विश्वनाथ के समानान्तर चिंतामणि का कथन है कि–

ताके इंगित जे जे कछु उद्दीपन ये मानि।[2]

वस्तुतः आलम्बन की भयंकर चेष्टाएँ जैसे सिंह आदि का गरजना, आक्रमण के लिए झपटना आदि उद्दीपन विभाव कहैं। किन्तु चिंतामणि ने 'जे कछु' कह कर लक्षण को सांकेतिक बना दिया है जिसमें स्पष्टता का अभाव है।

अनुभावः–

विश्वनाथ ने अनुभावों की एक पूरे श्लोक में लम्बी सूची प्रस्तुत की है जिसमें वैवर्ण्य, गद् गद् स्वर, प्रलय (मूर्छा), स्वेद, रोमांच, कंप, इधर-उधर देखना, आदि का परिगणन है[3] किन्तु चिन्तामणि ने केवल वैवर्ण्य का उल्लेख करके आदि शब्द का आश्रय लिया है जिससे लक्षण संक्षिप्त हो गया है पर उसी अनुपात में दुरुह भी। चिन्तामणि का कथन इस प्रकार है –

वैवरनादिक वर्नियै जाके इत अनुभाव[4]

संचारी भावः–

भयानक रस के संचारियों में शंका तथा भय का उल्लेख करके 'आदि' शब्द के प्रयोग से काम चला लिया गया है –

शंकाभीतादिक कहे ते संचारि गनाव[5]

यहाँ भी हविश्वनाथ ने पूरे एक श्लोक में जुगुप्सा, आवेग, मोह, त्रास, ग्लानि, दीनता, शंका, अपस्मार, संभ्रम तथा मरण का उल्लेख किया है।[6]

1: स्त्री नीचप्रकृतिः सा0द0 3/235
2: क0क0त0 9/130 तुलनीय - चेष्टा घोरतरास्तस्य भवेद्उद्दीपनम् - सा0द0 3/236
3: सा0द0 - 3/237
4: क0क0त0 9/131 का पूर्वार्द्ध
5: वही 9/131 का उत्तरार्द्ध
6: सा0द0 3/238

<u>वर्ण और देवताः–</u>

भयानक रस के देवता एवं वर्ण का उल्लेख विश्वनाथ के आधार पर इस प्रकार है –

काल बरन याको बरन काल देवता मानि ।[1]

अर्थात् इसका वर्ण काला और देवता काल हैं ।

<u>उदाहरणः–</u>

इस रस के उदाहरण में चिंतामणि ने एक दोहा दिया है इससे पता लगता है कि चिंतामणि की इस रस में अभिरुचि नहीं रही होगी ।

<u>वीभत्स रसः–</u>

<u>स्थायी भावः–</u>

वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है । विश्वनाथ का अनुवाद करते हुए चिंतामणि का कथन है कि –

देखे कुत्सिम बात के घिनि जुगुप्सा जानि ।
सो है थाई भाव जित सो वीभत्स बखानि ।।[2]

विश्वनाथ का कथन है कि –

दोषेक्षणादिभिर्गर्हा जुगुप्सा विषयोद्भवा

तथा

जुगुप्सा स्थायि भावस्तु वीभत्सः कथ्यते रसः ।[3]

तात्पर्य यह है कि दोषादि के दर्शन के कारण किसी वस्तु के प्रति उत्पन्न घृणा को जुगुप्सा कहते हैं । विचारणीय है कि विश्वनाथ ने घृणा जनक वस्तु के दोषदर्शन से जुगुप्सा का उदय माना है किन्तु चिंतामणि ने उसे कुत्सित वस्तु कहा

1: क0क0त0 10/132 तुलनीय - सा0द0 3/235

2: वही 10/134

3: सा0द0 3/239

है । वस्तुतः इन दोनों में कोई मौलिक भेद नहीं है ।

आलम्बनः—

विश्वनाथ के ही अनुकरण पर चिंतामणि ने भी वीभत्स रस के आलम्बन के रूप में रुधिर, मान्स, दुर्गन्धि तथा मज्जा आदि को वीभत्स रस का आलम्बन स्वीकार किया है :—

रुधिर माँस दुर्गन्धि अरु आलम्बन मज्जादि[1]

आश्रयः—

आश्रय का उल्लेख चिंतामणि ने नहीं किया है ।

उद्दीपनः—

विश्वनाथ के सादृश्य पर 'कृमि आदि' को उद्दीपन माना गया है — 'उद्दीपनकृमि आदि'[2] यहाँ चिंतामणि ने आलम्बन और उद्दीपन के निरूपण में कुशल अनुवाद प्रस्तुत किया है ।

अनुभावः—

चिंतामणि ने इस रस के अनुभावों का उल्लेख नहीं किया है जब कि विश्वनाथ ने थूकना, मुहूँ फेर लेना, आँख मीचना आदि इसके अनुभाव बतलाए हैं[3]

व्यभिचारीः—

अपस्मार, आवेग, और मोह आदि को विश्वनाथ की भाँति चिंतामणि ने व्यभिचारी माना है ।

अपस्मार आवेग अरु तीन सं अभिचारि ।[4]

विश्वनाथ ने उक्त तीन संचारियों के अतिरिक्त व्याधि और मरण का उल्लेख किया है । चिन्तामणि ने आदि शब्द का प्रयोग करके काम चला लिया है । इनका उल्लेख नहीं किया है ।

वर्ण और देवताः—

इसका वर्ण नील और देवता महा काल को माना गया है ।

महाकाल पति नील रंग - - - - - ।[5]

1: क0क0त0 9/135 तुलनीय- सा0द0 3/240 3:सा0द0 3/241
2: वही 9/135 वही 3/240 4:क0क0त0 9/135
5:वही 9/135 तु0 सा0द0 3/2[illegible]

उदाहरणः-

राम रावण युद्द के प्रसंग में वीभत्स रस का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया गया है ।[1]

अद्भुत रसः-

अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है । इसका लक्षण विद्यानाथ के आधार पर चिंतामणि ने इस प्रकार किया है ।

निरखि अलौकिक वस्तु जो होतु चित्त विस्तार
सो विस्मय थाई जितै सो अद्भुत रस सार[2]

अपूर्वार्थ का अनुवाद अलऔकिक वस्तु किया गया है । अतः सिद्द है कि अलौकिक वस्तु के दर्शन से चित्त को जो विस्तार प्राप्त होता है । वह अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय रूप विस्मय तत्त्व है । विश्वनाथ ने अद्भुत रस के प्रकरण में तो लौक की सीमा को अतिक्रान्त करने वाले विभिन्न पदार्थों से उत्पन्न चित्त को विस्मय कहा है[3] जो प्रायः विद्यानाथ एवं चिन्तामणि से मिलता जुलता है किन्तु विशेष रूप से लक्ष्य करने की बात यह है कि चिंतामणि ने अद्भुत को रस का सार कहा है । इस 'रसेसारः' शब्द को धर्मदत्त के ग्रन्थ से विश्वनाथ ने उध्दृत किया है[4] जिसमें उन्होंने प्रत्येक रस में अद्भुत अथवा चमत्कार स्वरूप विस्मय तत्त्व की अनिवार्यता स्वीकार की है ।

अतः चिन्तामणि का उद्देश्य वास्तव में अद्भुत तत्त्व का सभी रसों में होना ही सिद्द करना है । चित्त विस्तार का तात्पर्य प्रसन्नता के कारण चित्त

1: क0क0त0 9/137

2: वही 9/138

तुलनीय -

अपूर्वार्थ संदर्शनाच्चित्त विस्तारो विस्मयः

प्र0रू0भू0 165

3: सा0द03/169,170

4: रसे सारः चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते

सा0द0 3/3 की वृत्ति में उध्दृत ।

का वैशद्य प्राप्त करना ही है ।

आलम्बनः–

अलौकिक वस्तु की महत्ता का उल्लेख करते हुए चिंतामणि का कथन है कि–

बात आलौकिक जो कछू सो आलम्बन जानि

तथा –

आलम्बन गनि वस्तु जो वरन अलौकिक सोइ[1]

तात्पर्य यह कि जो वस्तु संसार की सामान्य वस्तुओं से विलक्षण होती है उसी से विस्मय की उत्पत्ति होती है । इस बात को विश्वनाथ ने – वस्तुलोकातिगमालम्बनम्[2] के रूप में व्यक्त किया है ।

उद्दीपनः–

अलौकिक वस्तु की महिमा और उसके गुणों को विश्वनाथ की भाँति चिंतामणि ने अद्भुत रस की उद्दीपन सामग्री के रूप में स्वीकार किया है –

महिमा जाके गुनन की सो उद्दीपन मानि ।

तथा –

उद्दीपनता गुगनन की महिमा जो कछु होइ[3]

इससे स्पष्ट है कि अलौकिक वस्तु के गुणों की महिमा ही अद्भुत रस का उद्दीपन हैः–

गुणनाम् तस्यमहिमा भवेद्दुदीपनं पुनः[4]

यहाँ यह संकेत आवश्यक है कि गुणों की महिमा का उल्लेख विश्वनाथ

1: क0क0त0 9/139 तथा 140 का पूर्वार्द्ध

2: सा0द0 3/243

3: वही 9/39 तथा 140 का उत्तरार्द्ध

4: सा0द0 3/243

और चिंतामणि दोनों ने किया है किन्तु उसके विवरण-विश्लेषण के संबन्ध में दोनों मौन हैं ।

आश्रयः-

आश्रय का उल्लेख यहाँ भी नहीं है ।

अनुभावः-

विश्वनाथ ने स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, गद्‌गद् स्वर, संभ्रम और नेत्र विकास आदि अनुभावों का उल्लेख किया है[1] किन्तु चिंतामणि ने संक्षिप्तता को महत्व देते हुए केवल नेत्र विकास की चर्चा करके 'आदि' शब्द से काम चला लिया है :-

नेत्र विकासादिक जहाँ बरनत हैं अनुभाव[2]

संचारी भावः-

विश्वनाथ ने हर्ष, वितर्क, आवेग और संभ्रम इन चार संचारियों का उल्लेख करके आदि शब्द का प्रयोग किया है-

वितर्कावेगसंभ्रान्तिहर्षाद्यव्यभिचारिणः[3]

किन्तु चिंतामणि ने हर्ष और वितर्क का उल्लेख करके छोड़ दिया है -

हर्ष-वितर्कादिक इतै संचारी समुभाव[4]

वर्ण और दैवताः-

चिंतामणि ने अद्‌भुत रस का वर्ण पीत तथा दैवता मन्मथ को माना है -

पीत बरन सो बरनिये मन्मथ दैवत मानि[5]

पीत वर्ण तो विश्वनाथ ने भी स्वीकार किया है किन्तु उन्होंने गन्धर्व को दैवता माना है[6] किन्तु चिंतामणि ने मन्मथ का उल्लेख किया है । "स्वयं अनंग

1: सा0द0 3/244
2: क0क0त0 9/141 का पूर्वार्द्ध
3: सा0द0 3/245
4: क0क0त0 9/141 का उत्तरार्द्ध
5: वही 9/142 का पूर्वार्द्ध
6: सा0द0 2/242 तथा 243

रहकर पूरी सृष्टि में व्याप्त रहने वाला और कुसुम सायकों से जगत को बेधने की सक्षमता रखने वाला उद्भुत कर्मा काम देव भी अधिदेवता होने में समर्थ है किन्तु × × × × काम देव को अधिष्ठाता मानने में दो आपत्तियाँ हैं एक तो यह कि काम देव सृंगार रस से संबद्ध है, ऐसी दशा में अद्भुत तत्त्व का विस्तार केवल सृंगार तक सीमित हो जायगा। दूसरा यह कि काम देव में प्रभावगत वैचित्र्य नहीं है"।[1]

उदाहरणः–

राम और कृष्ण के लोकोत्तर चरित्रों के आधार पर दो उदाहरण प्रस्तुत किये गए हैं। पहले में तो रामकथा के अनेक प्रसंग हैं किन्तु दूसरे में गोवर्द्धनोद्धारण की कथा है[2]।

शान्तरसः–

शान्तरस के स्थायी भाव शम के विवेचन में चिंतामणि विद्यानाथ से प्रभावित हैं :–

शम कहियत वैराग्य ते, निर्विकार मन होइ।
सो थाई जित शान्त रस, बरनत हैं सब कोइ॥[3]

और विद्यानाथ का कथन हैः–

शमोवैराग्यादिनानिर्विकारचित्तत्वम्[4]

स्पष्ट है कि चिन्तामणि ने सम्पूर्ण लक्षण का अविकल अनुवाद किया है।

1: हिन्दी काव्य में विस्मय तत्त्व एवं अद्भुत रस – डा0 शिवादत्त द्विवेदी – पृ0 388

2: क0क0त0 9/143 तथा 144

3: वही 9/145

4: प्र0रु0भू0 पृष्ठ 168

आलम्बनः-

चिंतामणि का कथन है कि :-

आलम्बन संसार के निश्चित सत्व बखानि ।
है परमारथ अरथ जो सो आलम्बन जानि ।।[1]

विश्वनाथ ने 'अनित्यत्व' आदि के कारण सम्पूर्ण असारता का ज्ञान अथवा परमात्मा के स्वरूप को इस रस में आलम्बन माना है ।[2] चिंतामणि ने सम्भवतः अनुवाद तो विश्वनाथ का ही किया है किन्तु प्रथम पंक्ति में निश्चित सत्व अंश में भ्रान्ति प्रतीत होती है क्योंकि संसार के निश्चित प्राणियों का आलम्बनत्व शान्तरस की दृष्टि से संगत नहीं प्रतीत होता । सम्भवतः लिपिकरों के प्रमाद से 'निःसारत्व' के स्थान पर निश्चित सारत्व लिखा दिया गया है क्योंकि निःसारत्व से अर्थ की संगति बैठ जाती है और छन्द भी दुष्ट नहीं होता । परमात्म स्वरूप के लिए 'परमारथअरथ' भी बहुत उचित अनुवाद नहीं है ।

अतः आलम्बन के स्वरूप के सम्बन्ध में मदभेद न होते हुए भी शान्तरस के आलम्बन के संबन्ध में प्राप्त दोहा स्पष्ट नहीं है ।

उद्दीपनः-

उद्दीपन के संबन्ध में चिंतामणि ने विश्वनाथ का अविकल अनुवाद किया है । दोनों के लक्षण निम्नलिखित हैं :-

क - पुण्याश्रम हरिक्षेत्रतीर्थरम्यवनादयः ।
महापुरुषसङ्गाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः ।।[3]

ख - पुन्याश्रम हरिक्षेत्र अरु तीरथ रम्य वनादि ।
ताके उद्दीपन गनत महा पुरुष संगादि ।।[4]

1: क0क0त0 9/147

2: सा0द0 3/246 तथा 247 का पूर्वार्द्ध

3: सा0द0 3/247

4: क0क0त0 9/148

क्या ही अच्छा होता यदि चिंतामणि ने इसी प्रकार सटीक और सफल अनुवाद किया होता ?

आश्रयः—

आश्रय के संबन्ध में यों तो कोई उल्लेख नहीं है किन्तु —

'सकल साधुसेवत लसत यह अति विमल आदि[1]' जैसे पंक्तियों के आधार पर संतों को इस रस का भी आश्रय मानना चाहिए ।

अनुभावः—

चिन्तामणि ने शान्त रस में रोमांच नामक अनुभाव का उल्लेख विश्वनाथ के अनुवाद के रूप में किया है —

पुलकादिक अनुभाव गनि - - - - - ।[2]

यद्यपि यहाँ अश्रु, गद्‌गद् वचन आदि अनेक अनुभावों का उल्लेख किया जा सकता था लेकिन उन सब का समाहार आदि में कर लिया गया है ।

संचारी भावः—

इस रस के संचारी का उल्लेख भी चिन्तामणि ने अतिशय संक्षिप्त किया है —

- - - - - - - - - - संचारी हर्षादि ।[3]

जबकि विश्वनाथ ने निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, प्राणियों पर दया आदि का संचारी के रूप में उल्लेख किया है । चिन्तामणि की संक्षेप वृत्ति से स्पष्टता में कमी आ गई है ।

वर्ण और देवताः—

विश्वनाथ के ही आधार पर इस का वर्ण कुन्द अथवा इन्दु के समान धवल माना गया है तथा भगवान नारायण को अधिदेवता के रूप में स्वीकार किया है —

1: क0क0त0 9/149

2: वही 9/149 तुलनीय - सा0द0 3/248

3: वही 9/149

कुन्द इन्दु सम धवल यह श्री नारायण आप ।
या रस के अधिदैवता जे मेटत सब ताप ।।[1]

यहाँ चरण की पूर्ति के लिए 'जे मेटत सब ताप' अंश चिन्तामणि का अपना है जिससे नारायण का प्रभाव द्योतित किया गया है ।

उदाहरणः—

उदाहरण में ब्रह्मज्ञान के आनन्द पारावार में निमग्न एवं सांसारिक प्रपंचों से मुक्त किसी संत की शान्ति दशा का सुन्दर निरूपण है ।

नव रसों के निरूपण के उपरान्त चिन्तामणि ने भाव, रसाभास, भावाभास, भाव शान्ति, भावोदय, भाव सन्धि और भाव शवलता का भी संक्षिप्त और किसी सीमा तक अस्त व्यस्त उल्लेख किया है ।[2]

भावः—

भाव के विषय में मम्मट का कथन है कि :—

रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाऽञ्जितः ।।
भाव प्रोक्तः ।
आदिशब्दान्मुनिगुरुनृपपुत्रादिविषया[3]

इसी आधार पर चिन्तामणि की उक्ति इस प्रकार है :—

देवपुत्र गुरु आदि जे, तिनमैं जो रति भाव ।
कै संचारी व्यक्ति सो शुद्ध भाव समुझाव ।।[4]

यहाँ उल्लेख्य है कि विश्वनाथ ने पुत्र विषयक रति को वात्सल्य रस स्वीकार

1: क0क0त0 9/146 तुलनीय - सा0द0 3/246

2: क0क0त0 9/157

3: का0प्र0 4/35 तथा उसकी वृत्ति

4: क0क0त0 9/158

किया है और रूप गोस्वामी ने देव विषयक रति को भक्ति रस, किन्तु चिंतामणि ने इन्हें स्वतंत्र रस के रूप में न स्वीकार करके भाव ही माना है। सम्भवतः चिन्तामणि रसों की संख्या का विस्तार नहीं चाहते थे क्योंकि देव विषयक रति के जो दो उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं और जिनमें क्रमशः 'भवानी के पायन में मन बाँधने की'[1] तथा 'कोटि काम सुन्दर कुँवर कान्ह के कालिन्दी के कूल में कदम्ब तरु के तरे विराजने'[2] की शोभा का उल्लेख किया गया है। येह दोनो ही पद भक्ति भाव के उत्तम उदाहरण हैं। पुत्र विषयक रति भाव का उदाहरण अतिशय सुकुमार है। अतः उसको उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते।

कुल ही ललित जरकसी जग मगै अरु।
झालर में झलकत मुक्ता सो है सुढार ।।
केसर के रंग रंगी झीनी सी झगुलिया में
झलकत अंग कुवलय दल सुकुमार
हँसत बदन दतिया द्वै देखि चिंतामनि
जनम सुफल करि मानै दसुरथ दार
गोद लैके रामजु को आनद मगन मन
मैया ललकि कै बलइया लैति बार बार[3]

गुरु विषयक रति का उदाहरण नहीं दिया गया है।

रसाभास तथा भावाभासः–

रस एवं भाव यदि अनौचित्य प्रवृत्त हो तो उन्हें क्रमशः रसाभास और भावाभास कहते हैं :–

अनुचित विषयक रसु जु है सोई रस आभास।
अनुचित विषयक भाव जो सो पुनि भावा भास ।।[4]

1: क0क0त0 9/159
2: वही 9/160
3: वही 9/161
4: वही 9/162 तुलनीय सा0द0 3/262

इनके अनुकूल उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं ।[1]

भाव, शान्ति और भावोदय के संबन्ध में चिन्तामणि का कथन है कि :-

उपसम पावै भाव जो भाव शान्त सो जानि ।
भावउदै आदिक सुतौ उदयादिक पहिचानि ।।[2]

भाव सन्धि और भावाभास शबललता के लक्षण नहीं दिए गए हैं, हाँ उदाहरण दिए गए हैं और वे बड़े ही मनोरम हैं ।

उपसंहार :-

चिंतामणि के रस प्रकरण की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने रस संबन्धी समस्त विषयों एवं रस के विभिन्न अंगों का सुव्यवस्थित विवेचन किया है । आधार ग्रन्थों के रूप में काव्य प्रकाश, साहित्य-दर्पण, प्रताप रुद्रीय यशोभूषण, रस मंजरी, दशरूपक, कुवलयानन्द आदि ग्रन्थों से आवश्यकतानुरूप सामग्री संकलित की गई है। अपनी रुचि और योजना के अनुरूप जब एक ही लक्षण में चिंतामणि कई आचार्यों के मतों का मिश्रण कर लेते हैं तो उनकी प्रखर आलोचक बुद्धि का पता लगता है । भाव, स्थायी भाव, उद्दीपन विभाव, अनुभाव आदि के स्वरूप निर्धारण में मुख्यतः विद्यानाथ का आश्रय लिया गया है । उद्दीपन विभाव में केवल तटस्थ उद्दीपन को ही स्वीकार करना और अन्य उद्दीपनों को आलम्बन धर्मिता के कारण आलम्बन मानना चिन्तामणि की मौलिक दृष्टि का परिचायक है । रस को मम्मट के समान ध्वनि का एक प्रभेद मानते हुए इन्होंने स्पष्ट शब्दों में उसे व्यंग्य घोषित किया है । 33 संचारी भावों के क्रम को दशरूपक के आधार पर लिया गया है तो उनका स्वरूप निर्धारण धनंजय, विश्वनाथ, और विद्यानाथ के सम्मिलित प्रभाव का परिणाम है । पूर्वराग के प्रसंग में विद्यानाथ द्वारा प्रस्तुत 12 काम दशाओं के साथ ही विश्वनाथ द्वारा प्रस्तुत दस काम दशाओं को निरूपित किया गया है ।

1: क0क0त0 9/163 तथा 164

2: वही 9/165

विद्यानाथ का आश्रय लेते हुए भी इन्होंने नायक नायिका भेद को स्वतंत्र प्रकरण के रूप में न मानकर विश्वनाथ के अनुसार श्रृंगार रस के अन्तर्गत ही स्थान दिया है ।

इस प्रकार यद्यपि यह प्रकरण भी आकर ग्रन्थों के सार संचयन का परिणाम है तथापि सत्वज अलंकारों को अनुमान के अन्तर्गत स्वीकार करना, अनुभाव के विद्यानाथ सम्मत चार भेदों में से तीन अस्वीकार कर देना, मरण और मद नामक संचारियों के नवीन लक्षण प्रस्तुत करना आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जो चिंतामणि की मौलिक प्रतिभा को सिद्ध करने में पर्याप्त सहायक हैं । यद्यपि इतनी विशाल सामग्री के संचय और समायोजन में इनसे भूलें भी हुई हैं जिनकी यथा स्थान समीक्षा करने का भी हमने प्रयास किया है किन्तु सब मिलाकर इस प्रकरण में चिन्तामणि का प्रयास सफल और स्तुत्य है और रीतिकालीन परवर्ती आचार्यों के लिए अनुकरणीय बन गया है ।

=x*x=

७ः पिंगल प्रकरण

पिंगल- प्रकरण

भारतीय साहित्य शास्त्र में छन्द का अपना एक महत्त्व पूर्ण स्थान है । छन्द को वेदांगों में स्थान दिया गया है और उसे वेद का 'चरण' माना गया है इससे स्पष्ट है कि छन्द वह आधार है जिस पर वाड्मय की मूर्ति प्रतिष्ठित होती है । अतः भारतीय शास्त्र चिन्तन में छन्द की एक सुदीर्घ और समृध्द परम्परा प्राप्त होती है ।

चिन्तामणि ने भी अपने आचार्यत्व की सांगोपांगता के लिए पिंगल पर एक स्वतंत्र ग्रन्थ की रचना की है । छन्द विषयक अध्ययन प्रारम्भ करते ही छन्द के स्वरूप और महत्त्व जैसे विषयों का उल्लेख आवश्यक हो जाता है किन्तु चिन्तामणि ने पिंगल में इस विषय का कोई संकेत नहीं दिया है । हाँ, कवि कुल कल्प तरू में ऐसी एक दो पंक्तियाँ प्राप्त होती है जिनसे छन्द के स्वरूप और महत्व का संकेत मिल जाता है :छन्द का स्वरूप और उसका महत्त्व :-

चिंतामणि का कथन है कि -

"भाषा छन्द निवध्द सुनि सुकवि होत सानन्द"।

इसमें अत्यन्त सांकेतिक रूप से छन्द के साँचे में ढली हुई भाषिक संरचना को काव्य कहा गया है और उस काव्य को सुनकर श्रोताओं को आनन्द की प्राप्ति होती है उस कथन के द्वारा उसके आह्लादकत्व धर्म को उजागर करने का प्रयास किया गया है । यदि हम इसे अधिक स्पष्ट कर देना चाहें तो कह सकते हैं कि -

"छन्द यति गति से नियमित लय के वे साँचे हैं जिनमें विशिष्ट भाषिक-संरचना आकार पाती है जैसे किसी साँचे का निर्माण किसी विशिष्ट धातु से होता है उसी प्रकार लय से छन्द रूपी साँचा मिर्मित होता है । यह छन्द का एक मात्र संवेदनीय सूक्ष्म पक्ष है किन्तु जब उसमें भाषिक संरचना ढल जाती है तो छन्द का स्थूल रूप भी उजागर हो जाता है ।"[1]

जहाँ तक छन्द की आह्लादन क्षमता का प्रश्न है उसे आचार्यों ने छन्द शब्द की व्युत्पत्ति में ही ढूढ़ा है क्योंकि छन्द शब्द की व्युत्पत्ति - "चदि आह्लादने "धातु

1: क0क0त0 1/5

से करने पर छन्द की आह्लादनीयता स्वतः प्रगट हो जाती है। यहाँ यह भी उल्लेख्य है कि भारतीय चिन्तन काव्य का चरम लक्ष्य आनन्द को मानता है ऐसी दशा में काव्य का एक महत्तव पूर्ण तत्व उस आनन्द की उपलब्धि में सहायक हो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

वस्तुस्थिति यह है कि छन्द में आह्लादन की क्षमता है। इस क्षमता के मूल में उसकी लयात्मकता ही सन्निहित है। लयानुस्यूत शब्दावली अपेक्षाकृत अधिक सुरम्य, आकर्षक और आह्लादक बन जाती है। श्री चन्द्र प्रकाश सक्सेना ने छन्द की इस विशिष्टता का उल्लेख करते हुए कहा है – " लयबद्ध शब्दावली आत्मा को चमत्कृत कर उल्लास की ऐसी लोल लहर में व्यक्तित्व को डुबो देती है, जहाँ जीवन की विषमता भी आत्म विस्मृति में तिरोहित हो जाती है, मन दिव्यानन्द की अनुभूति करके गद्‌गद्‌ हो उठता है।"[13] कहना न होगा कि इस रमणीयता और आह्लादकता के कारण ही छन्द अत्याधिक स्मरणीय और संप्रेषणीय बन जाता है।

छन्द की आह्लादन क्षमता से जो आत्म-विस्मृति मिलती है इसमें जीवन की विषमता ही नहीं मिटती, मन के विकार भी नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार आत्मा का उन्नयन होता है और मानव संस्कृति विकसित होती है। इस संबन्ध में डा० शुक्ल का यह कथन स्मरणीय है कि × × × भाव का अरुण छन्द के आलोक में विश्वास बन जाता है और व्यक्ति के जीवन की परिधि विस्तृत होकर सृष्टि व्यापी अनन्त मानस को संस्पर्श कर लेती है" यही तो मानव संस्कृति का उद्‌देश्य है"[2] छन्द के द्‌वारा आत्मोन्नयन और संस्कृति के विकास की बात को स्वीकार करते हुए श्री सक्सेना ने कहा- " छन्द की आह्लादन क्षमता आत्मा को जिस उन्मुक्त अवस्था में ले जाती है, वहाँ मन के विकार भी लुप्त हो जाते हैं। राग रंजित हृदय सांसारिक वासना से विरहित होकर एक पावन माधुर्य में डूब जाता है। प्रदन्त लय माधुरी मानव के

पिछले पृष्ठ की टिप्पणीः–

2ः तुलसी का छन्द विधान : ऐतिहासिक, शास्त्रीय तथा कला परक अध्ययन – लेखक – श्री चन्द्र प्रकाश सक्सेना (टंकित प्रति पृष्ठ 42)

इस पृष्ठ की टिप्पणीः–

1ः तुलसी का छन्द विधान : ऐतिहासिक, शास्त्रीय तथा कला परक अध्ययन – लेखक – श्री चन्द्र प्रकाश सक्सेना (टंकित प्रति पृष्ठ 18)

चित्त को सांसारिक परिधि से बाहर निकाल कर अनन्त और दिव्य आनन्द में डुबो देती है और चित्त परिष्कृत होकर जागतिक राग द्वेष से मुक्ति पा जाता है । चित्त की यही पूताअथा संस्कृति का लक्ष्य है और छन्द इस लक्ष्य की उपलब्धि का एक सशक्त साधन है । छन्द हमारा आत्मोन्नयन करके हमें सुसंस्कृत बनाता है या यों कहिए कि छन्द मानव संस्कृति के विकास में सहायक सिद्ध होता है ।"[1]

जहाँ तक छन्दों के महत्त्व का प्रश्न है प्राचीन परम्परा पद्य को अनिवार्यतः छन्द से जोड़ती रही है, इसीलिए विश्वनाथ के कथन का अनुवाद करते हुए चिंतामणि ने भी छन्दों बद्ध रचना को पद्य की संज्ञा दी है ।[2]

यह निर्विवाद रूप से स्वीकार्य है कि पद्य बद्ध भावाभिव्यक्ति अर्थात् काव्य बिना छन्द के साकार नहीं हो सकता । "छन्दोबद्धं पदं पद्यं" में छन्द की अनिवार्यता उद्घोषित हुई है । इजर्टनस्मिथ ने भी छन्द को काव्याभिव्यंजना की आवेगमयी आभ्यन्तर अनिवार्यता कहा है ।[3]

छन्द विषयक उक्त दृष्टिकोण कदाचित् उन लोगों को अटपटा लगे जो 'छन्द मुक्त काव्य' का ऊपरी या सतही अर्थ लगाते हैं अथवा जो 'छन्द मुक्त काव्य' में व्याप्त लय पर दृष्टिपात नहीं करते । वस्तुतः छन्द मुक्त काव्य छन्द से नहीं, उसकी अन्त्यानुप्रासिकता से मुक्त हुआ है । किसी छन्द मुक्त कविता में छन्द की लयात्मक एक रूपता का साक्षात्कार किया जा सकता है और तब निश्चय ही छन्द मुक्त काव्य को छन्द से विरहित समझने का भ्रम दूर हो जायगा । यह बात अलग है कि छन्द मुक्त काव्य में लय की समरूपता का निर्वाह न्यूनाधिक हो । इसका सही निर्णय तो इस काव्य विधा की लय धाराओं में गहराई से उतरने पर ही हो सकेगा, पर यह कहने का मोह त्याज्य नहीं है कि यदि कोई कवि कविता के लय धर्म से दूर जाकर काव्य रचना कर रहा है तो निश्चय ही उसमें गद्य का संस्कार अधिक है। लय रहत कविता बलात् कविता के वर्ग में रखी जाय तब तो बात पृथक है पर

पिछले पृष्ठ की टिप्पणीः--

2ः आधुनिक हिन्दी काव्य छन्द योजना - लेखक डा० पुत्तू लाल शुक्ल पृष्ठ

वास्तविक रूप में कविता नहीं है । इस गद्य मात्र के संस्कार से युक्त साहित्यकार की महत्त्वाकांक्षा का परिणाम या उसकी हठधर्मिता का परिचय कहा जाय, तो कदाचित अतियुक्ति न होगी । आज नवीनता के मोह के कारण छन्द मुक्त काव्य का प्रचलाधिक्य दृष्टिगत हुआ है, उसमें बहुत सी ऐसी कविताएँ भी मिल जाती हैं जिनको मुक्त छन्द की शैली का आवरण मात्र दिया गया है, वस्तुतः वे शुध्द गीत हैं, वे लय की एकरूपता से युक्त भी हैं और अन्त्यानुप्रास के सौन्दर्य से मंडित भी । यों तो हिन्दी के रीति ग्रन्थकारों में चिन्तामणि को प्रथम शास्त्रकार माना गया है किन्तु छन्द शास्त्रीय लक्षण ग्रन्थों में चिन्तामणि कृत पिंगल से पूर्व का ग्रन्थ छन्दोहृदय प्रकाश उपलब्ध हुआ है जिसके रचयिता मुरली धर कवि भूषण थे । इस ग्रन्थ की समाप्ति सवंत् 1756 वि0 में हुई । चिन्तामणि कृत "पिंगल" का रचना काल सम्वत् 1756 है । अतः स्पष्ट है कि चिन्तामणि का पिंगल परवर्ती है । किन्तु स्मरणीय है कि चिन्तामणि का कविता काल सं0 1700 के आस-पास बताया जाता है । इस आधार पर तो वह और मुरली धर कवि भूषण समकालीन ठहरते हैं । वस्तुस्थिति यह है कि मुरलीधर कवि भूषण चिन्तामणि के छोटे भाई थे ।

चिन्तामणि ने मूलतः पिंगल की रचना के लिए प्राकृतपैंगलम् को ही आधार बनाया है । प्राकृतपैंगलम् छन्द शास्त्रीय जगत का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है । डा0 शिवनन्दन प्रसाद के अनुसार मात्रिक छन्दों की दृष्टि से इसका वही स्थान है जो वर्णवृत्त के प्रसंग में पिंगल कृत छन्दःशास्त्र का है ।[1] यह प्राकृत भाषा में लिखा गया है इसकी रचना चौदहवीं शताब्दी के आस-पास हुई ऐसा मान्य है लक्ष्य छन्दों में ही लक्षणोल्लेख की परम्परा का अनुसरण इस ग्रन्थ में भी हुआ है उदाहरण अलग से दिए गए हैं, इसमें नवीन मात्रिक छन्दों का उल्लेख हुआ है । दोहा जेस लोकप्रिय छन्द का प्रथम शास्त्रीय विवेचन प्राकृतपैंगलम् के रचयिता ने ही किया है ।

पिछले पृष्ठ की टिप्पणी :—

1: तुलसी का छन्द विधानः ऐतिहासिक, शास्त्रीय तथा कलापरक अध्ययन — लेखक श्री चन्द्र प्रकाश सक्सेना (टंकित प्रति पृष्ठ — 21)

2: छन्द निवध्द सुपद्य कहि — क0क0त0 1/5

तुलनीय — छन्दो वध्दम् पद्यम — सा0 द0 6/314

चिन्तामणि कृत पिंगल :-

आचार्य चिन्तामणि ने मकरन्दशाह की आज्ञा से पिंगल ग्रन्थ की रचना की[1]। आरम्भ में चिंतामणि ने गुरु-लघु-विचार, गण-परिचय, भाषा प्रस्तार-मात्रा उदिष्ट, वर्ण मेरु, मात्रा-मेरु, वर्ण पताका, मात्रा पताका, वर्णमर्कटी तथा मात्रा मर्कटी का विवेचन किया है। तत्पश्चात् मात्रिक और वर्णिक छन्दों को लक्षण और उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया है। छन्दों का अधिकांश लक्षण-निरूपण प्राकृत पैंगलम् पर आधृत है।

मात्रिक छन्दों में जिन संख्यावाची शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे निम्नलिखित हैं –

पाँच मात्रा	= आयुध
चार मात्रा	= तुरँग
दो गुरु	= कर्ण
चार लघु	= विप्र
तीन गुरु	= मंत्री[2]

चिंतामणि ने शंकर को अष्ट गणों (यगण, मगण, भगण आदि) का देवता माना है।

पृष्ठ 4 व 5 की टिप्पणी :-

3:

4:

इस पृष्ठ की टिप्पणी :-

1: चिन्तामणि कवि को हुकुम किन्हो साहि मकरन्द।
करौ लच्छि लच्छिन सहित भाषा पिंगल छन्द।।
– चि0पि0 पृष्ठ 2

2: चि0पि0 पृष्ठ 18 से 22 तक छन्द 18 से 22 तक

(क) मात्रिक छन्दः- .

1: गाथा (आर्या):-

इसके प्रथम और तृतीय चरण में बारह-बारह, द्वितीय में अट्ठारह तथा चतुर्थ चरणमेंपन्द्रह मात्राएँ होती हैं। यति बारह मात्राओं के पश्चात आती है।[1] इसकी लय के निर्धारण में आचार्य चिन्तामणि ने पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुकरण मात्र किया है। पिंगल से लेकर प्राकृत पैंगलम् तक में यही कहा गया है कि इसके पूर्वार्द्ध में सात चतुष्क के बाद एक गुरू आता है, पूर्वार्द्ध का षष्ठ चौकल जगण(।ऽ।) या सर्व लघु (।।।।) होता है, उत्तरार्द्ध में 'लघु' मात्र रह जाता है।[2] चिंतामणि ने भी यही माना है।[3] प्रस्तुत लेखक द्वितीय दल या उत्तरार्द्ध को और अधिक स्पष्टता प्रदान करते हुए यह कहना चाहता है कि उत्तरार्द्ध में छठे चौकल की जो पूर्वार्द्ध में जगण या चार लघुओं में रूपायित होता है, तीन मात्राएँ कम हो जाती हैं, यथा -

साहि नृपति तुव कीरति। इहि विधि जग मद्धि सेत अधिकानी।।
द्विज के कहत कछु निसि : तुहू कहत कौकिला जानी।। -(चि0 पि0 58)

आचार्य चिन्तामणि ने कमला, लीला आदि गाथा भेद भी बताये हैं। कमला में 27 गुरू कहे हैं।[4] स्वतः स्पष्ट है कि 27 गुरू के साथ 3 लघु आयेंगे। अगले प्रत्येक गाथा भेद में एक-एक गुरू कम होता जायेगा और उसके स्थान दो लघु लेते जायेंगे

1: प्रथम तीसरै रवि कला दूजै ठारह जानि।
चौथे पद पन्द्रह रचौ यो गाथा पहिचानि।।56।। पृ0 8 (चि0 पि0)

2: पिंगल 4/14-17, वृ0 र0 2/1-2, हैम0 छन्दोऽनुशासन 4/1-2, प्रा0 पैं0 1/54

3: सात चतुःकल गुरू सहित छठै जगन पुनि आनि।
के दिजवर उत्तर अधर छठै लघै पहिचानि।।57।। पृ0 8 (चि0 पि0)

4: एहै सताइंस गुरू जासु। 62 पृ0 9 (चि0 पि0)

2-उग्गाहा(उद्गाहा):-

गाथा के उत्तरार्द्ध को पूर्वार्द्ध के समान कर लेने पर 'उग्गाहा' छन्द रूपायित होता है। इस प्रकार उत्तरार्द्ध की इक्कीसवीं मात्रा के उपरान्त गुरु-लघु या तीन लघु रखकर अथवा इससे पूर्व लघु-गुरु या तीन लघु रखकर तीन मात्राओं की कमी को पूरा कर लिया जाता है। आचार्य प्रवर ने इस विधि से मात्रा सम्पूर्ति का संकेत किया है।[1] प्राकृत पैंगलम् में भी यह छन्द उल्लिखित है।[2]

3- विग्गाहा(विगाथा):-

पूर्व दल को उत्तर दल के स्थान पर तथा उत्तर दल को पूर्वदल के स्थान पर रखने से 'विग्गाहा' छन्द बनता है।[3] आचार्य चिन्तामणि ने निम्नलिखित उदाहरण दिया है:-

तड़ित सुधारा धार मैं/चमक तिहै कहै यौं कहै बलकै। ।2,15
अरि सोनित सों रातीं/ तुव करु धारा धारें तड़ित झलकैं ।।12,18
—(चि0 पि0 68)

उक्त उदाहरण में रेखांकित अक्षरों का ह्रस्वोच्चारण करना होगा।

4- गाहिनी :-

गाथा के चौथे चरण को 20 मात्रावादी कर देने पर गाहिनी छन्द बन जाता है।[4] स्मरणीय है कि गाथा के चौथे चरण में 15 मात्राएँ होती हैं। अतः गाहिनी के लिए 5 मात्राएँ और बढ़ाई जाती हैं। आचार्य चिन्तामणि के गाहिनी-उदाहरण से यह प्रकट होता है, कि गाथा-चरण की इक्कीसवीं लघु मात्रा के बाद यह पाँच बढ़ती है। यथा,

साहि नृपति की कीरति। सेतु सुअति दिसि वहूनि इमि घर से। ।2,18
लेजु अगिनि की आचनि। उफना लै छीर निधि छार सम दरसौ ।।2,20
— (चि0 पि0 70)

उदाहरण और लक्षणोल्लेख से यह स्वतः प्रकट हो जाता है कि गाहिनी में भी यति 12 मात्राओं के पश्चात् आती है।

1: (अ) गाथा उत्तर अधार सम पूर वगाहू जानि।
प्रथम अरध सम उत्तरौ, उग्गाहा पहिचानि ।।64 पृष्ठ (चि0 पि0)

2: प्रा0 पै0 1/68

5- सिंधनी :-

यह गाहिनी का उल्टा होता है[1] अर्थात् गाहिनी के प्रथम दल में ~~प्रथम दल~~ ~~में~~ 30 मात्राएँ होती है इसके दूसरे दल में, गाहिनी के द्वितीय दल में 32 मात्राएँ होती हैं, इसे प्रथम दल में । यथा,

हिम करू हिम अरू हीर का । हर गिर हर हास हर वृषभ हर, हारे । 12,20
साहि नृपति इमि सुन्दर । सेत सुजसु चहू दिसा निमाह पसारो ॥ 12,18
(चि0 पि0)

रेखांकित अक्षरों का ह्रस्वोच्चारण अपेक्षित है ।

6: छंधा :-

इस छंद में दो चरण होते हैं । प्रत्येक चरण में चार चौकलों से निर्मित 32 मात्राएँ होती हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण छन्द 64 मात्राओं का होता है ।[1]

7: रसिक :-

इस छन्द में 6 चरण होते हैं । प्रत्येक चरण में 11 लघु होते हैं ।यथा,

पर दल दलि मलि पिरत । 11 लघु
धाकनि धुक अगिर गिरत । ,,
सवल सदलिहि मद भरत । ,,
उमड़ि विहद नद भरत । ,,
नृप गज वर मग चलत । ,,
दल-दल जिमि थल हलत ।[2] ,,
– (चि0 पि0 75)

पिछले पृष्ठ की टिप्पणी :-

3: (अ) पूरव उत्तर अरध जो गाहा के विपरीत ।
ताहि विगाहा कहत हैं, छन्द शुद्धि अमीत ।।67 (चि0 पि0 पृ0 9)
(आ) प्राकृत पैंगलम् ।/66

4: (अ) गाथा को चौथो चरन बीस मत जो होइ ।
तो गाहिनि × × × ×'' – 69 (चि0 पि0 पृ0 10)
(आ) प्रा0 पै0 ।/70

8- दोहा :-

इस छन्द के पहले और तीसरे चरण में 13-13 तथा दूसरे और चौथे चरण में 11 मात्राएँ होती हैं।[1] यथा,

यंदुल हत नृपसाहि की, समता की कत कोटि। 13,11 मात्राएँ
गहैं रहत सत कोटि वह, यह बकसत सत कोटि ।।77।। 13-11 मात्राएँ
--(चि० पि० 11)

पूर्व परम्परा के अनुसार आचार्य चिन्तामणि ने भी इसके भ्रमर भ्रमरादि तेइस भेद कहे हैं।[2] प्रथम दोहा भेद भ्रमर में 22 गुरु 4 लघु होते हैं। इसकी अक्षर संख्या 26 है। भ्रमर के पश्चात् प्रत्येक अगले दोहा-भेद में एक गुरु कम होता जाता है। दो लघु और बढ़ते जाते हैं। एक-एक अक्षर भी बढ़ता जाता है।[2]

9- रोला :-

रोला के चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में चौबीस मात्राएँ होती हैं और अन्त में गुरु होता है।[3] आचार्य चिन्तामणि ने रोला की यति के विषय में यद्यपि कोई उल्लेख नहीं किया है तथापि उनके रोला उदाहरण में चौदह मात्राओं के बाद मध्य-यति का विधान हुआ है। यथा,

जाकौं प्रबल प्रताप तिष्य। लागै रवि हू कौं।
जाकी छवि नहिं गने कोट। ससि की छवि हू कौं।।
इच्छा पूरन करै याहि। जो ताकै आवै।
अन्तरजामी साहि सकल। संतापनि रावै ।।106।। (चि० पि० 15)

पिछले पृष्ठ की टिप्पणी:-

1:-(अ) चौकल आवै चरन में, बत्तिस मत्ता जानि।
सब में है चौसठ कला, सो कैधा पहिचानि।।
(आ) प्रा० पैं० 1/73

2- ग्यार लघु जह चरन में सो रसिका उर आनि।
यामें होत छः चरन पुनि पिंगल करति बखानि ।।64।। (चि० पि० पृष्ठ 10)

1: तेरह कल पहिलै चरन, दूजे ग्यारह जानि।
याही विधि उत्तर अरध, यों दोहा पहिचानि ।।76।। (चि० पि० पृ० 11)

इस पृष्ठ की अन्य टिप्पणियाँ अगले पृष्ठ पर देखें।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आचार्य ने 14-10 की मध्ययति का आदर्श माना है ।

10:- गंधान:-

इस चरण के प्रथम चरण में 17 तथा द्वितीय चरण में 18 वर्ण होते हैं । अन्त में गुरु होता है । शेष दोनों चरणों में भी यही क्रम रहता है । ~~अन्त में गुरु होता है । शेष दोनों चरणों में भी यहीक्रम रहता है ।~~[1] लक्षण के अनुसार गंधान एक अर्द्ध सम वर्णिक छन्द सिद्ध होता है पर आचार्य द्वारा प्रदत्त उदाहरण में विषम-सम चरणों में अन्त्यानुप्रास साम्य है । उल्लेख्य है कि अर्द्ध सम छन्दों में सम-सम का तुक साम्य होता है । अतः अर्द्ध सम छन्दों की अन्त्यानुप्रासिकता में यह एक अपवाद है । उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है :-

सुजस समुद अरि मह मरदन देखिये । 17 वर्ण
जगत विदत जो बहु विधि वरनन वेदिये । 18 वर्ण
करत परम रमनीय चरित जो राम को । 17 वर्ण
साहि नृपति गुन धाम, लसै धामा निधि धाम को ।।108)18 वर्ण
— (चि0 पि0 पृष्ठ 15)

पिछले पृष्ठ की टिप्पणियाँ:-

2: भ्रमर भ्रामरौ सरभ कहि, सैनक मंदक भानि ।
मर्कट करमनरौ कह्यो अरु मराल पहिचानि ।।78।।
मदकरि वहुरि वयोधरौ चल वानर पुनि जानि ।
त्रिकलकारु मक्षा कहि सारदूल पहिचानि ।।99।।
अहिवर बाघ विडाल कहि सुनु कंदवरौ षेख ।
सर्प नाम तेईसहै, दोहा छन्द विसेषि ।।80।।
छवीस आषर भ्रमर कहि गुरु वाईं लधु चारि ।
गुरु टूटे लधु बढ़े, सो सोवा मनिहार ।।8।।(चि0 पि0 पृ0 ।।)

इस पृष्ठ की टिप्पणी:-

3: (अ) चौबिस चौबिस मत्त जिंह चरन चरन गुरु अंत ।
पिंगल मत रोला कहत तासौं कवि बुधिवंत ।।(105) -(चि0 पि0 105)
(आ) प्रा0 पै0 1/91

1: (अ) प्रथम चरन सत्रह वरन दूजे ठारह जानि ।
बाहू दल गंधान इमि गुरुता अंत बखानि ।।107।। (चि0 पि0 पृ0 15)
(आ) प्रा0 पै0 1/94

चौपैया:-

लक्षण स्पष्ट नहीं है । उदाहरण भी दुष्ट है ।

घत्ता:-

इसके प्रत्येक चरण में सात चौकलों के बाद त्रिकल आता है ।[1] इस प्रकार इसके प्रत्येक चरण में 31 मात्राएँ होती हैं । यह द्विपदी छन्द है । यथा,

श्री साहि नृपति के तेज तरसि के एक निलिय आवास अग ।
पक्कै अरि चंड अपक्कै दंडिय अपक्कै छंडि अपरि पग ।।12।(चि0 पि0 पृ016)

यद्यपि आचार्य ने घत्ता की यति के विषय में कोई पृथक् संकेत नहीं दिया है किन्तु उनके उदाहरण से यह प्रकट होता है कि उन्होंने 10,8 मात्राओं के पश्चात् दो मध्य यतियों का आदर्श सम्मुख रखा है । यह दोनो मध्य यतियाँ परस्पर तुक के साथ आई हैं ।

घत्तानन्द:-

घतानन्द घत्ता का ही विकसित रूप है । घत्ता की भाँति इसमें भी 31-31 मात्राओं के दो चरण होते हैं किन्तु, घतानन्द के प्रत्येक चरण में यति 11,7,13 मात्राओं पर होती है ।[2] आचार्य चिन्तामणि का घत्तानन्द छन्द का उदाहरण निम्नलिखित है -

आइ साहि के द्वार । यह निरधार । द्वार द्वार माँगै न पुनि ।
पावै मुक्ता हार । लक्ष अपार । भिक्षुक आवै नाम सुनि ।।14।।
— चि0 पिं0 पृ0 16

आचार्य ने अपने उदाहरण में मध्ययतियों के साथ पादान्तर्गत तुक की नियोजना भी की है । ग्यारहवीं और सातवीं मात्रा पर रुकती हुई साँस और जिह्वा विश्राम के साथ तुक-निहित ध्वनि-साम्य का आनन्द भी प्राप्त कर सकती है ।

1: (अ) सप्त चतुःकल प्रथम धरि, त्रिकल अन्त जो होइ ।
या विधि जामे चरन है, घत्ता कहिये सोइ ।।
(आ) प्रा0 पै0 1/99

2: (अ) रुद्र समद पर विरति जहं, या घाता में होय ।
छन्द सुघत्ता नन्द यह कहत सकल कवि लोय ।। 13 ।। (चि0 पिं0 पृ0 16)
(आ) प्रा0 पै0 1/84

रड्डा:—

इस छन्द में 9 चरण होते हैं। इसके विषम पदों में (पहला, तीसरा तथा पाँचवां) में 15-15 मात्राएँ होती हैं। द्वितीय में 12 और चतुर्थ में ग्यारह मात्राएँ होती हैं। शेष चार चरणो में दोहा छन्द होता है।[1] इस प्रकार छठे और आठवें चरण में 13-13 तथा सातवें और नवें चरण में 11-11 मात्राओं का होता है। यथा,

कौन विषहर मुष कर डारइ। को नग में सिंह दसना।	15,12
कौन अंग में आनि लवा रह।	15
को करै समुद सबन। को गिरवौ बिचारै।	11,15
को दौरै अस परय गन। वन मै गज ढिग जाइ।	13,11
कौन भिरै रन सामु है। साहि नृपति सौं आइ ॥ 16 ॥	13,11

— चि0 पिं0 पृ0 16

पध्दरि:—

इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होतो हैं अन्त में जगण होता है, जगण के प्रथम लघु के स्थान पर गुरू आ सकता है।[2] उदाहरणार्थ —

उध्दत प्रताप नृप साहि एक। अरि चद्त तियन जुत गिरि अनेक ॥
भरि मोह नैन नीरनि गँभीर। डरि दुग्ग करत दुग्गभ अधीर ॥ 18 ॥

— चि0 पिं0 पृ0 17

अरिल्ल:—

चार चरण के इस छन्द में प्रत्येक चरण 16 मात्राओं का होता है। अन्त में दो लघु तथा यमक अनिवार्य है।[3] यथा,

---

1: (अ) पन्द्रह मत्ता विषम पद, समर विरूध्द वषानि।
पंच चरन दोहा बहुरि, नव पद रोडा आनि ॥ 15 ॥ - चि0 पिं0 पृ0 16
(आ) प्रा0 पैं0 1/13

2: (अ) चारि चतु:कल चरन में जगन अन्त गुरू आनि।
पद पद में सोरह कला, छन्द पध्दरी जानि ॥ 17 ॥ - चि0 पिं0 पृ0 19
(आ) प्रा0 पैं0 1/125

3: (अ) सोरह मत्ता चरन मैं बिवि लघु जमक जु अंत।
कहत अरिल्ला छन्द यह, सकलसुकवि बुधिवंत ॥ 19 ॥ - चि0 पिं0 पृ0 17
(आ) प्रा0 पैं0 1/127

पादाकुलक :-

इस छन्द में चार चरण होते हैं । प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं। अन्त में गुरु मात्रा होनी चाहिए । [1]यथा,

साहि ओज निज अनिल जगायो ।
दुरजन गन ईंधन करि यायो ।।
धूम अराति नगर अकुलायो ।
अरि नारि न द्दग वारि पहायो ॥22॥ चि0पि0 पृ0 17

चौबोला :-

इसके प्रत्येक दल के पहले चरण में 16 तथा दूसरे में 14 मात्राएँ होती हैं, यथा -

पुल्लक दंब अंड वर अम्बर । मेघा घटा धुनि द्विध्व करी ।
इन्द्र वधू निभरी सचरी नव । कन्दल वृंदल भूमि हरी ।। - चि0पि0 25 पृष्ठ 18

चौबोला-लक्षण को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक अर्द्ध सम छन्द है । शायद यह चौबोला ही 30 मात्रापादी सम चतुष्पदी तांटक छन्द में विकसित हुआ है । आज छन्द शास्त्र में जो छन्द चौबोला नाम से प्रसिद्ध है, उसके प्रत्येक चरण में 15 मात्राएँ होती है और अन्त में लघु गुरु आता है ।

1: (अ) सो मत्ता चरन मैं एक अन्त गुरु होय ।
पादाकुल कुस नाम यह, छन्द कहत सब कोय ॥21॥ - चि0पि0 पृ0 17
(आ) प्रा0 पै0 1/129

2: (अ) सोरह मत्ता प्रथम दै दूजे चौदह जानि ।
याही विधि उत्तर अरधा, यौ चौबोल वखानि ॥23॥ - चि0पि0 पृ0 17
(आ) प्रा0पै0 1/131

छप्पय:-

इसके प्रथम चार चरणों में 11-13 की यति से चौबीस-चौबीस मात्राएँ और अन्तिम दो चरणों में 15-13 की यति से 28 मात्राएँ होती हैं ।[1] यथा,

पल पल प्रति उग्ग बइतरुन निसि दिवस विराजइ ।
द्विज पति लक्षित वढ़ाय सदा सुख रासिन साजइ ।।
सुभ समाज मिट्टै न रुनदिस अव्व करै पुनि ।
करैन मुद्रित कुमुद सकल संताप हरय गुनि ।।
कहि चिंतामनि कबहू कहूँ चलतु न राह अराति डरी ।
मस नंद साह मकरन्द नृपतपन कहा तुवते जसरी ।।26।।-चि0 पि0 पृ0 18

अभिराम:-

इसमें 6 चरण होते हैं । प्रथम चार चरणों में यति 10 मात्राओं के पश्चात् आती है ।[2] यथा -

सज्जिय वल बज्जिय । निसान लज्जिय अमान धान ।	10-14
गज्जिय गज तज्जिय । जमाति भज्जिय अरात गन ।	10-14
टुट्टि अवन फुट्टिय । गिरिंद लट्टिय अरिंद पुर ।	10-14
लुप्पिय नभ झंपिय । दिनेस कंपिय सुरेस सुर ।	10-14

नृप साहि वीर करभग्ग गहिदिव्व हनिय दुजन अनिय ।
रिपु है दल पैदल हनि सकल छप्पय दल हथ्थन हटिय ।।28।।
- चि0 पि0 पृ0 18

यह छप्पय का ही विशिष्ट रूप है ।

1: (अ) ग्यारह तेरह पर विरति, चौपद छप्पय माहि ।
पन्द्रह तेरह चरन जुग, वरनत पंनग नाह ।।25।। - चि0 पि0 पृ0 18
(आ) प्रा0 पै0 1/105

2: रस वसु दस पर विरति जहँ धारि चरन विश्राम ।
सो छप्पय संसार में लहत नाम अभिराम ।।27।। - चि0 पि0 पृ0 18

छप्पय भेदः—

अजय, विजय आदि छप्पय के 71 भेद हैं,[1] प्रथम भेद अजय में 70 गुरु होते हैं। प्रत्येक अगले प्रभेद में एक गुरु कम होता जाता है।[2] दो लघु बढ़ते जाते हैं।

पद्मावतीः—

इस छन्द में चार चरण होते हैं, प्रत्येक चरण चार चौकलों का योग होता है। अन्त में सगण आता है।[3] यथा,

> बुधि बल आगर गुन गन सागर नागर नागर जन मन निहरै।
> परताप प्रभाकर सुभ सोभाकर जगत झपाकर धर्म धरै।।
> अति सित कीरति करि सेवत हरसुबरन झरकर जलधर बरसे।
> रिपु जल निधि मंथन, कारन मन्दिर पुहिमि पुरन्दर साहि लसे।।34।।
>
> — चि० पि० पृ० 20

आचार्य चिन्तामणि ने पद्मावती के यति-विधान का उल्लेख नहीं किया है। प्रायः 10-8-14 पर यति मानी गयी है।

1: अजय विजय बलवंत वीर वेताल भयंकर।
मरकट हरि हर ब्रह्म इन्द्र चन्दन रस संकर।
मदन मच्छ तारंक सेस सारंग मनोहर।
सिंह स्वान सादूल कूर्म कोकिल घर कुंजर।
कहि नवल कवल अरु कुंद पुनि वारन तँह विसलव वस।
पुनि भनत अजंगम करम सरस रस सारस सरह ॥29॥
मेरु मस्त जम सिद्दि बुद्दि अलि अल धवलौ मनि।
मलय ध्वज अरु कनक कुम्र जन बहु रौगनि।
मेधागमंग भीर गरुड़ ससि सूर वखानिय।
मल्लक अरु नवरंग मनोरथ गगन जु मानिय।
कहि रतननि झरननि हार पुनि भरत तपन कुसुमौ अवर।
कहि दीप संधक स्वच्छन्द भनि छप्पय छन्द इमि नाम धर ॥30॥ — चि० पि० पृ० 19

2: वरन बियासी अजय भनि गुरु सत्तर रवि रेष।
येक येक गुरु के घटै, पावत नाभ विसेष ॥31॥ — चि० पि० पृ० 19

3: (अ) कना द्विज सभगन जहाँ आठौं चौकल आँनि।
अन्त हो स गन्वे तहाँ, पद्मावति सो मानि ।।33।। — चि० पि० पृ० 20

(आ) प्रा० पै० 1/144

कुण्डलिया:-

दोहा के पश्चात् छप्पय के आदि के चार चरण रखकर कुण्डलिया छन्द बनता है।[1] स्मरणीय है कि छप्पय के आदि चार चरण रोला के होते हैं। अतः कुण्डलिया में दोहा के बाद रोला के चार चरण आते हैं। यथा,

वारन लाइ षग्ग ही साहि नृपति धरि चैन ।
ते षंडषल पुंज है, संग रहत जे सेन ।।
संग रहत जे सैन साहि जे सनमुष आए ।
तँह के तक भरि माँस, भूत भैरव अघ वाए ।
तँह के तक भरि माँस, कियौ भोजन सब स्यारन ।
कोटि कोटि तज हय रे प्रगट नर हम पर वारन ।।36।।

— चि0 पि0 पृ0 20

अमृतध्वनि:-

यह छन्द अमृतध्वनि से इस बात में भिन्न है कि इसके अन्तिम चार चरणों में आठ-आठ मात्राओं पर यति होती है[2]। आचार्य चिन्तामणि ने इस छन्द का निम्नलिखित उदाहरण दिया है :-

गहि कर भार महाबली, भुज बल भार समत्थ ।
सत्रुन हनि दिगविजय किय, पत्थिथिर रण पत्थ ।।
पत्थि थिर रन पत्थ थल थल सत्थ थर बल ।
षंडुड डुग्ग डग, मुंड डुरिय सुचंड डिब्ब शल ।।
षंडु डडुडग्ग डग चुंड डुरिय उदंड डडामर ।
अग्ग गय अरि वग्गगनि हनि षग्ग गहिकर ।।

उदाहरण से यह ज्ञात होता है कि इसमें यति नियम का पूर्ण निवाह नहीं हुआ है।

1: दोहा छप्पय आदि के चार चरन निरधार ।
कुण्डलिया इह रीति सों, पद पद जमक निहारि ।।35।। - चि0 पि0 पृ0 20

2: आठ आठ कल पर जहाँ षट पद पद [illegible] विश्राम ।
कुण्डलिया वन प्रास ते अमृत ध्वनि यह नाम ।। - चि0 पि0 पृ0 21

<u>झूलना:–</u>

इसमें प्रत्येक चरण 37 मात्राओं का होता है । 10-10-17 मात्राओं पर यति होती है ।[1] यथा,

साहि नृप सैल जह कढ़त सज ही बढ़त लाष हय हत्थ नर दल अतूलैं ।
जलद जिमि गज्जि बहु दुंदभी वज्जि या चरि अदरि आवतजि सहज कूलै ॥
उम्मेदान धूरि दिसि विदिसि घुंधरिय सब भाँन असमान मैं अैन भूलै ।
झूलना चढ़े से अचलझूलत सकल झूलना तुलित ह्वै धरनि झूलैं ॥ 40 ॥

— चि0 पि0 पृ0 2।

उल्लेख्य है कि झूलना में 10-10-10-7 मात्राओं पर भी यति मानी जाती है । आचार्य चिन्तामणि के उक्त उदाहरण में यह यति- विधान उपलब्ध है, पर लक्षणोल्लेख में इसका संकेत नहीं है ।

<u>गगनंगन:–</u>

चार चरण होते हैं । प्रत्येक चरणमें20 वर्ण या पच्चीस मात्राएँ होती हैं। अन्त में रगण अनिवार्य है ।[2] यथा,

मंडन विपति विहंडन । किति भरिय <u>ब्रह्मंड है</u> ।
साहि सवलरिय दंडन । अति उदंड भुज <u>दंड है</u> ।
हनि अरितम वे तुंडन । तेज चंड कर <u>चंड है</u> ।
कुल महि मंडल मंडन । बल मंडन परि<u>चंड हैं</u> ॥ 42॥

— चि0 पिं0 पृ0 22

1: (अ) दस दस सत्रह कलनि पर होत जहाँ विश्राम ।
श्रवन सुखद गनि छन्द यह लहत झूलना नाम ॥ 39 ॥

— चि0 पिं0 पृ0 2।

2: छकल आदि अँत है रगन, बारह पर विश्राम ।
बीस बरन पच्चीस कल, कहि गगनंगन नाम ॥ 41 ॥

— चि0 पिं0 पृ0 2।

<u>द्विपदी</u> :-

द्विपदी में दो चरण होते हैं । प्रत्येक चरण में 29 मात्राएँ होती हैं जिनमें चार छकल और पंचक का योग होता है और अन्त में गुरु आता है । बारह मात्राओं के बाद यति आती है ।[1] यथा,

साहि महीपति तुव जस, गावत नितहि सर सुती सेस हैं ।
मैं जानत याही तै जग मह धवलै वरन विसेष है ॥ 45 ॥

— चि० पि० पृ० 22

<u>खंजा</u> :-

यह भी द्विपदी छन्द है जिसमें सर्व लघु से निर्मित नौ चौकलों के पश्चात् एक रगण आता है । इस प्रकार इसमें 41 मात्राएँ होती हैं ।[1] यह विशुध्द मात्रिक छन्द नहीं है । इसकी प्रकृति वर्णवृत्त के समीप है । यथा,

जगत मह विदित सुर असुर नर मुनि सकल, कहत हर, सुतहि इक,
रदन सतत वाहि जू ।
सुकवि मन भनत नित लसत अवगुन अधिप दुरद मुष कहत तुअ
धवल लस साहि जू ॥ 46 ॥

— चि० पि० पृ० 22

उदाहरण 'खंजा' के दितीय चरण में एक मात्रा कम है ।

---

(1) आदि छकल धरि चारकल पाँच अन्त गुरु होइ ।
बारह पर विश्राम जहं, दुपदी कहिये सोइ ॥ 44 ॥

— चि० पि० पृ० 22

(2) अ- द्विजवर अँत हर गनया, विधि पगु जुग होइ ।
कवि चिन्तामनि कहत हैं, षंजा कहियै सोइ ॥ 45 ॥

— चि० पि० पृ० 22

आ- प्रा० पै० 1/159

शिखाः—

यह विषम द्विपदी चरण है । प्रथम चरण में 6 सर्वलघु चौकलों के पश्चात् एक जगण आता है । दूसरे चरण में सात सर्वलघु चौकलों के बाद एक जगण होता है ।[1] यथा,

सिरह पर ससि धरत ससि बदन अरधतन सिव सुभद जाहि ।
कहत मनि सत तह खर नृपति लहउ प्रतिदिन विजय नरपति साहि ।।
— चि0 पि0 पृ0 22

चुलिआलाः—

दोहा के दलान्त में पाँच मात्राएँ जोड़ देने पर चुलियाला छन्द बनता है ।[2] यथा,

स्याम बरन अति दीहवतन, उमड़ि सलिल मद बरसत आवत ।
बिरही जन मारन मनौ, मार महीपति वारन धावत ।।50।।
— चि0 पि0 पृ0 23

मालाः—

इस छन्द के प्रथम चरण में 9 सर्वलघु चौकलों के पश्चात् एक रगण आता है, अन्त में वर्ण होता है । दूसरा चरण गाथा का दूसरा चरण होता है ।[3] यथा,

लसत अति उमड़ि घन घन पटल घुमड़ि कर मढ़ि अनम तड़ित असि,
अरि मनमथ जोधा है धायो ।
विरहिनु हृदय विदारन बूंद विसिज वर सये ।।53।।
— चि0 पि0 पृ0 23

1: (अ) षट द्विज वर धरि अन्त पुनि जगन प्रथम दल होइ ।
दूजे दल द्विज सात पर, जहँ शिख्या है सोइ ।। 48 ।। — चि0 पि0 पृ0 22
(आ) प्रा0 पै0 1/162
2: (अ) दोहा दल के अन्त जहाँ पंच कल होय ।
कहि मनि पिंगल नागमत, कहि चुरि आला सोय ।।49 ।। - चि0 पि0 पृ0 23
(आ) प्रा0 पै0 1/67
3: नव द्विज वर गन रगन पुनि, अन्त करन निरधारि ।
अरध बहुरि गाथा अरध, माला छन्द विचारि ।। - चि0 पि0 पृ0 23

सोरठाः—

यह दोहा का उल्टा है। इसके पहले और तीसरे चरण में ।।-।। तथा दूसरे और चौथे चरण में ।3-।3 मात्राएँ होती हैं।[1] यथा,

पिय सौं रूसन हाय, हितू और कौ आपनो।
मनो मदन उपजाय, करत ताप तन को घनो ॥54॥
— चि0 पि0 पृ0 23

हाकलिः—

सगण, भगण तथा सर्वलघु चौकल के पश्चात् एक गुरु रख देने पर हाकलि निर्मित होता है।[2] उदाहरण इस प्रकार है —

तिष्य तरनि सित करन सखी। व्याल सुमालति माल लखी।
पिय विरह विधि उलटि गयो। सहचर उलटौ पलक भयो ॥56॥

परिभाषा और उदाहरण में अन्तर दृष्टिगत होता है। वस्तुतः परिभाषा में हाकलि को गणात्मक वर्णवृत्त बना दिया गया है किन्तु उदाहरण में उसे मात्रिक ही रखा गया है। उदाहरण के आधार पर हाकलि समप्रवाही अष्टक और दो त्रिकलों का योग है।

1: (अ) प्रथम दूसरो तीसरो चौथो चरन जु होय।
दोहा के पद प्रासते, होतु सोरठा सोय ॥53॥ - चि0 पि0 पृ0 23
(आ) प्रा0 पै0 ।/।70

2: (अ) सभ द्विज वर गन परत जँह चरन अन्त गुरु होय।
यह पद में चौदह कला, हाकलि कहिये सोय ।।
(आ) प्रा0 पै0 ।/।77

मधुभारः—

इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में सगण जगण के योग से आठ मात्राएँ होती हैं।[1] यथा,

जय माल नन्द,
महिमा विलंद।
जस वल्लि कंद,
जिमि राम चंद ॥58॥ - चि० पि० पृ० 24

यह छन्द वर्णिक हो सकता है, मात्रिक नहीं।

आभीरः—

चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में ग्यारह मात्राएँ होती हैं। अन्त में जगण होता है[2]। यथा,

कवि कुल मानस हंस। नृपति सीस अवतंस।
जय जय जित रन धीर। साहि सुमुद्द गभीर ॥59॥ — चि० पि० 24

दुर्मिलाः—

यह चतुष्पादीय छन्द है। इसमें 10, 8, 14 के योग से 32 मात्राएँ होती हैं।[3] उदाहरण निम्नलिखित हैः—

लगि जिनके धक्कनि, धुक्कत पव यह वत धारनि जलधि छलकैं।
अति द्विध्व सदा मद वहु विक्रम हद गरद करत गढ़ जे पलकैं॥
जिन मलिन कियौ विधु सुंडवाफ जर वाफ फूल फंपिय फलकैं।
ते वारन वक्सत साहि कविनु जिन कारन और साहि ललकैं ॥62॥
— त्रि० पि० पृ० 25

1: (अ) सगन जगन पदु वसु कला यह मधु भार विचारि ॥57॥—चि० पि० पृ० 24
(आ) प्रा० पै० 1/175
2: जगन अंत सिव मत्त जंह, सो आभार निहारि।
3: (अ) वस चौकल पद दस जुवस, चौदह पर विश्राम।
था विधा वत्तीस मत्त यो, छन्द दुमल्ला जान॥
(आ) प्रा० पै० 1/196

रुचिराः–

यह द्विपदी छन्द है । प्रत्येक चरण में 7 चौकल और एक गुरु के योग से 30 मात्राएँ होती हैं[1] । यथा,

साहि सु दल सिंगार तुलित इन सोव अनल मन क्यौ अकसै ।
सुभग सुरंग कुरंग गमन नित, चपल तुरंग सदा बकसै ॥96॥

— चि0 पि0 पृ0 25

सिंहावलोकनः–

इसमें चार चरण होते हैं । प्रत्येक चरण में चार चौकलों के योग से 16 मात्राएँ होती हैं । पहले चरण को छोड़कर अन्य प्रत्येक चरण के प्रारंभ में पूर्व चरण के अन्त का शब्द प्रयुक्त होता है ।[2] यथा,

प्रफुल्लित वन छवि नहि कहत वनै ।
वन कोकिल कूजत कुंज घनै ।।
घन मधु सहचर संपति जु लषी ।
लषिकर तुद रपु कंटरपु सषी ।।

1: (अ) सात चतुः कल होइ जह, बहुरि अन्त गुरु होय ।
साढि मत्त के चरन दै, रुचिरा कहिये सोय ।।
(आ) प्रा0 पै0 5/34

2: (अ) चारि चतुः कल द्विज की रस अंवास निश्चित होइ ।
अंत आदि मैं चरन सम, सिंह विलोकन सोइ ।।
(आ) प्रा0 पै0 1/184

प्लंगमः–

यह चार चरणों का छन्द है । प्रत्येक चरण में 21 मात्राएँ होती हैं । 11-10 पर यति होती और अन्त में गुरु आता है ।[1] यथा,

सो जग माहि नारि दु महा जस को लहै ।
नैकु करक्कुस बोल, कविसुर को सहै ।।
सजन जानि संवाद, सुवास सुसंग कौ ।
कोइ सहै न अयान, सदर्प्प लवंग कौ ।।71।। – चि0 पि0 पृ0 26

लीलावती–

इस चतुष्पादीय छन्द के प्रत्येक चरण में 32 मात्राएँ होती हैं, गुरु-लघु का कोई नियम नहीं होता ।[2] यथा,

अति बल उदग्ग नृप साहि अग्ग जब समर मग्ग कर बग्ग करैं ।
कवि कहि चिंतामनि निपट विकट अरि, कट काटि सब धारनि धरैं ।।
रण हनत हत्थि तन रुधिर गिरत जनु गिरि गैरुजुत झर निझरैं ।
जिमि अचल निते अजगर उदंड रमि खंडित सुंडा दंड धरै ।।72।।
– चि0 पि0 पृ0 26

1: (अ) हार सुपिउ गुरु पंचकल चौकल जग निरधारि ।
विरति रुद्र प्लवंग मै इक इस मत्त विचारि ।।70।।
– चि0 पि0 पृ0 26

2: (अ) गुरु लघु अक्षर नियम नहि पगन मत्त बत्तीस ।
लीलावति बिनु बृतिनि इमि छन्द कहत कुनि ईस ।।
(आ) प्रा0 पै0 1/189

हीर :–

यह चार चरणों का छन्द है। प्रत्येक चरण में तीन भद्कलों के बाद एक रगण के योग से 23 मात्राएँ होती हैं।[1] यथा,

सोहत रण मग्ग प्रबल पग्ग गहत साहि है।
पडित बल चंड औरन चंड चरित जाहि है।।
आइ सुहिर बाह मिरत, धाइ गिरत भूमि है।
झुंड कटित रुंड अटित, मुंड परित भूमि है ॥74॥ –चि०पि० पृ०26

चलहरण :–

यह तुतम्बादीय छन्द हैं। वसु अर्थात् भगण चौकल और दिज ट अर्थात् सर्वलघु चौकल के प्रयोग से बत्तीस मात्राएँ इसके प्रत्येक चरण में होती हैं। अन्त में गुरु होता है।[2] उदाहरणार्थ –

लगि प्रबल धरनि,धर थकन धुकित जिनि दहि कज्जल गिरि टकि उछले।
मनि इकिक धरन्त जब पग, धरत धरनि भग, तब फनपति फन कलकले
जनु असित चरन मद चल धरगत अहि, तल अहि बास कलमल मले।
ते बकसत नित नृप साहि दिरद के सकल निधित चल दल निकले ॥77॥
– चि०पि० पृष्ठ 27

प्राण पिंगलम् 10 + 8 + 14 के योग से 32 मात्राएँ कही गयी हैं।[3] यद्यपि आचार्य चिन्तामणि इस गण विधान का अपने लक्षणोल्लेख नहीं किया है तथापि उनके उदाहरण छन्द में यह विद्यमान है।

1: (अ) तीन टकन अंत रगन होत जहाँ प्रति पाइ।
पिंगल के मत होत है छन्द सु हीर गनाइ ॥73॥–चि०पि० पृष्ठ 26
(आ) प्रा०पैं० 1/200

2: वसु चौकल लघु सबकहूँ गुरु अंत जह होइ।
चिन्तामनि पिंगल भनै, कहत चलहना सोइ ॥75॥ - चि०पि० पृ० 27

हरिगीत :-

इस छन्द में चार चरण होते हैं । प्रत्येक चरण में पंचक + जष्टक + 3पंचक + गुरु के योग से 28 मात्राएँ होती हैं[1]। उदाहरणार्थ,

जावंत नृपति किरीट रंजित विमल चरन सरोज है ।
सों साजु विश्व गुमान गंजन दान भूपति भोज है ।।
चौंचक भूतल सक्क साहि समत्थ सबल प्रताप है ।
जाको जगत सित चन्दु कुन्द समान सुजस अमान है ॥ 78॥ चि0पि0पृ27

त्रिभंगी :-

इस छन्द में चार चरण होते हैं । प्रत्येक चरण में 32 मात्राएँ होती हैं । चरण में प्रयुक्त चौकली में कोई जगण नहीं होता ।10-8-14 पर यति होती है ।[2] उदाहरणार्थ,

जब लगि धूम सम धनपति संपति नारायन पद पवन रहौ ।
जब लगि नषत मन दै पावन तन फन पति फन गन पुहिमि गहौ ॥
जब लगि विधाता हर कालावर मेरु पुरन्दर चन्द करौ ।
जब लगि जलधि जल साहि धरणि तल तब लगि अविचल राज करौ॥82॥
चि0पि0 पृ0 28

मदनहर :-

यह चतुष्पदी छन्द है । प्रतिपद में 40 मात्राएँ होती हैं ।अन्त में गुरु होता है ।10-8-14-8 का यति विधान होता है, यथा -

देखत चढ़ि महल निपुर नागरि जहँ साहि नृपति
सहजहि निकसै हरषनि हुलसै ।
देउझकि झरोखा चन्द मुखी ललची इस तनु भावनि
विलसै सुभ गोरि हँसै ।
तह पेषि उन्हें इमि कौन नलिनि जवि छाइ जल जनहि,
मेन परै धीरजहिं धरै ।
तह रूप निरषि करि सुंदर नृप को सब सुन्दरि कुल कानि टरै,
मन मदन हरै ॥83॥ -चि0पि0पृ083

(अ) प्रथम पंकल छकरापुनि तीनि पंचकल देहु ।
गुरु अंतह हरि गीत मों जानि संजगी लेलुह।।79।।-चि0पि0पृष्ठ 28

(आ) प्रा0पै0 1/19।

मरहठाः—

इस चतुष्पादीय छन्द के प्रतिपाद में 29 मात्राएँ होती हैं। जिसका गण-विधान 'छकल + 5 चौकल + गुरु लघु' होता है।[3] यथा —

श्री साहि नृप पति तुव सुनि दुंदभि अरि तरुनि भजति अकुलाइ।
अति रुप विसेषी रविहु न देषी परी सघन वन जाइ।।
अति थाक डरत वंस वंग हन हिमालंव मग धास मार।
दहसति मल्लर हु लंघा दार हु, संका समदहु पार ॥85॥

— चि० पि० पृ० 29

चूड़ामणिः—

इसके प्रथम दो चरणों में दोहा के दो दल होते हैं और शेष दो दलों में उग्गाह छन्द होता है।[4] उदाहरण स्वरूपः—

धान वरसै सम बिन भये, लषि चपला चहू ओर।
जातिक दंवक दंब मैं, भ्रमत और सब ठोर।।
भ्रमत भौर सव ठोरनि देषि नदी पूरहि हिय तरसै।
अचकित आवत धारौ लागै दान धोर धान वरसै।।87।।— चि० पि० पृ० 29

1: (अ) दस वसु वसु रस विरति जँह चौकल जगन विहीन।
छन्द त्रभंगी अंत महि, सगन गनत परवीन ॥80॥ — चि० पि० पृ० 28
(आ) प्रा० पै० 1/194

2: (अ) वसु चौकल षटकल तहाँ वरन एक गुरु अन्त।
दस वसु अरु दस चारु वस, मदन हरा जतिवन्त ॥82॥ — चि० पि० पृ० 28
(आ) प्रा० पै० 1/205

3: (अ) छकल चतुर्कल पंच पुनि गुरु लघु अंतह होइ।
दस वसं रुद्रिन विरति जहँ, कहि मरहठ्ठा सोइ ॥84॥ — चि० पि० पृ० 29
(आ) प्रा० पै० 1/208

4: पूरब दल दोहा सकल, उत्तर दल उग्गाह।
सो चूड़ामणि जानियै, वरनत पंनग नाह ॥86॥ — चि० पि० पृ० 29

मोहिनीः–

इसके प्रथम और तीसरे चरण में बारह-बारह तथा दूसरे और चौथे चरण में सात-सात मात्राएँ होती हैं ।[1] उदाहरणार्थः–

पिय सें कहहु सदेस बटोही वीर ।
चलह कि तज नारिन/तमहु न बीर ।।89।।

– चि0 पि0 पृ0 30

प्रथम दल दो चरणों में विभाज्य नहीं है । अतः यह नियमापवाद है ।

सुगतिः–

इसके प्रत्येक चरण में आठ मात्राएँ होती हैं ।[2] यथा,

साहि नृप वर ।
साजि दल वर ।
सेन सग घन ।

प्राप्त हस्तलिपि प्रति में चौथा चरण अस्पष्ट है ।

छबिः–

इसके प्रत्येक चरण में आठ मात्राएँ होती हैं अन्त में जगण होता है ।[3] प्राप्त हस्तलिपि में उदाहरण दुष्ट है ।

ललितपदः–

इसके प्रथम और तृतीय चरण में 16-16 तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में 12-12 मात्राएँ होती हैं ।[4] यथा –

1: बारह मत्ता प्रथम पद, सात दूसरै जानि ।
याहि विधि उत्तर दलौ, छन्द मोहिनीमान ।।88।। – चि0 पि0 पृ0 29

2 तथा 3: सात मत्त जँह चरन मैं, सुगति छन्द उर आनि ।
आठ मत्त छवि अन्त पद, जगन जहाँ पहिचानि ।।91।। –चि0 पि0 पृ0 30

4: दस दस पर विश्राम जँह होत मत्त चालीस ।
प्रगटत उद्दत छन्द यह सुभग कहत फनि ईस ।।96।। – चि0 पि0 पृ0 30

रहो पिय तुम चलन कहत हौ,
सुनत रही दुख भरि हौ ।
कहा चलौ जिनि प्रान पियारे,
अब हौ मानवु करि हौ ॥ 95॥ चि0पि0 पृ0 3

उध्दतः —

इसके प्रत्येक चरण में 10-10 मात्राओं के विश्राम के साथ चालीस मात्राएँ होती हैं ।[1] उदाहरणार्थ :—

जह चलत मद मत्त गज राज झुंक्क तन गरेनु लुक्कत सब चकित सामंत ।
धन अज्जिनी मान धन लज्जि सनमान जग अंड अररान बिललान दिग दंत ॥
दल उलित सब देस सट पटित अति से सर जंघु धरि दिन्स अरु तेजहु बसंत ।
सब रहे दिपाल उर चकित है चाहि सुनि, साहिसर जाहि सुग सेन सामंत॥ 97॥
चि0पि0 पृ0 3।

कामः — दो वर्ण होते हैं 'ग-ग' का क्रम रहत है ।

वर्णिक छन्द

1: श्रीः — एक गुरु होता है ।[2]

पी । ही ॥ सी । ती ॥ 100 - चि0पि0 पृ0 3।

2: कामः — दो वर्ण होते हैं । 'ग-ग' का क्रम रहता है ।[3]

3: मधुः — यह दो वर्णों का छन्द है । दोनों वर्ण लघु होते हैं ।[4] यथा —

रति । पति ॥ सति । पति ॥ — चि0पि0 पृ0 3।

4: महीः — दो वर्ण होते हैं । प्रथम लघु, द्वितीय गुरु होता है।[5] यथा —

साहि । भूप ॥ काम । रुप ॥ — चि0पि0 पृष्ठ 3।

5:— सारुः — दो वर्ण होते हैं । प्रथम गुरु, द्वितीय लघु होता है ।[6] यथा —

साहि । भूप ॥ काम । रुप ॥ — चि0पि0 पृ0 3।

6:- तालीः — तीन वर्णों का वृत्त है । प्रत्येक चरण में ग ग ग का क्रम होता है ।[7] यथा —

प्यारे हौ । मेरे जो ॥ धोली यौं । कारी क्यौं ॥ — चि0पि0 पृ0 3।

7: ससीः — 'ल ग ग' क्रम से प्रत्येक चरण तीन अक्षर होते हैं ।[8] यथा —

तुम्हैं सौ । सुहाई ॥ भले हो । कन्हाई ॥ — चि0पि0 पृ0 3।

8: प्रियाः — तीन वर्ण 'ग ल ग' (515) के क्रम से प्रत्येक चरण में होते हैं।[9]

1: दस-दस पर विश्राम जँह, होत मत्त चालीस
प्रगटत उध्दत छन्द सुभग कहत फनिईश । 96 चि0पि0 30

उदाहरणार्थः—

मोहियै । लागि रे ॥ प्रेम सो । पागि रै ॥ — चि० पि० पृ० ३।

9- रमणः— प्रत्येक चरण में 'ल ल ग' के क्रम से तीन वर्ण होते हैं ।[9] यथा,

अनल्यो । सजनी ॥ विधु की । रजनी ॥ — चि० पि० पृ० ३४

१०-पंचालः—

प्रत्येक चरण में 'ग ग ल' के क्रम से तीन अक्षर होते हैं ।[10] यथा,

जो सर्ज । संसार ॥ सो ब्रह्म । विस्तार ॥

— चि० पि० पृ० ३।

११- मृगेन्द्रः—

प्रत्येक चरण में 'ल ग ल' के क्रम से तीन अक्षर होते हैं ।[11] यथा,

वियोगि । अतंक ॥ विलोकि । ससंक ॥

— चि० पि० पृ० ३।

१ः दस दस पर विश्राम जँह होत मत्त चालीस ।
प्रगटत उद्दत छन्द यह सुभग कहत कवि ईस ॥96॥

— चि० पि० पृ० ३०

१ से ११ तकः—

श्री एक गद्विग काम पद द्रिल मधु लग महि जानि ।
गल सारूम प्रस्तार तै आठ छन्द पुनि आनि ॥9४॥
ताली ससी प्रिया रमन पुनि पंचालै बखानि ।
पुनि मृगेन्द्र मंदरकमल आठ छंदयौ मानि ॥99॥

— चि० पि० पृ० ३।

मन्दिरः—

इसके प्रत्येक चरण में तीन अक्षर ग० ल० ल० के क्रम से होते हैं । यथा,

बोलति । कोकिल ॥ पंडित । मोदिल ॥10॥

— चि० पि० पृ० 32

13- कमलः—

इसके प्रत्येक चरण में तीन लघु होते हैं । तीन अक्षर होते हैं ।[2] यथा,

तरुनि । सरद ॥ विरह । जरद ॥11॥

— चि० पि० पृ० 32

14-तिनाः—

इस छन्द के प्रत्येक चरण में चार गुरु अक्षर होते हैं ।[3] उदाहरणार्थ,

जो उद्‌दंडै । चंडै भंडै ॥ चीडी चंडै । जुट्टै भंडै ॥13॥

— चि० पि० पृ० 32

15- जोन्हीः—

'गुरु लघु गुरु लघु' के क्रम से चार अक्षर होते हैं ।[4] यथा,

जोन्ह छर । के समान ॥ या समैतु । हू समान ॥14॥

— चि० पि० 32

16- निगधात्रीः—

'लघु गुरु लघु गुरु' के क्रम से चार चरण होते हैं ।[5] यथा,

करौ चितै । न चंचलै ॥ गहौ गली । छूंग चलै ॥15॥

17- सम्मोहा :—

इसके प्रत्येक चरण में पांच गुरु होते हैं ।[6] यथा,

विद्या सोठाई । भूपै जो भाई ॥ नीका सोनारी । पीकी जो प्यारी ॥16॥

18-हारीः—

इस वृत्त के प्रत्येक चरण में 'तगण और कर्ण' के योग से पांच वर्ण होते हैं ।[7] यथा,

आनन्द धामै । ध्यावै जु रामै ॥ ताही सराहै । आनैन चाहै ॥18॥

19-हंसः—

इस छन्द के प्रत्येक चरण में 'भगण और कर्ण' के योग से पाँच वर्ण होते

हैं।[8] यथा,

मोहि कन्हाई । देहु दिखाई ॥ तोहि निहारो । प्राननि वारो ॥19॥

20-जमकः—

इस छन्द के प्रत्येक चरण में पाँच लघु होते हैं ।[9] यथा,

ससिसिधार । डमरू कर ॥ कहत हर । लहत वर ॥20॥

21- सेषाः—

इस छन्द के प्रत्येक चरण में दो मगण होते हैं ।[1] यथा,

नंदै दै आनंदै । गोपी ही जो फंदै ॥ कैसे जो संधारै ।सोतारै संसारै॥22॥

— चि0 पि0 पृ0 33

22- तिलकाः—

छः अक्षरों के इस छन्द में दो भगण होते हैं ।[2] यथा,

दिन कै रजनी । लखिहै सजनी॥ डरु है नहियाँ।गहौ बहियाँ॥23॥

— चि0 पि0 पृ0 33

23- चउरू विजोहाः—

इस छन्द का प्रत्येक चरण में 'दो रगणो' का योग होता है।[3] यथा,

खानि है धातु की । और भू मै महा ।।

उप्पजै सब्ब ही । ठौर हीरा कहा ॥24॥

24- चउरसः—

इसमें एक सर्व लघु चौकल तथा एक कर्ण प्रत्येक चरण में होता है । इस प्रकार 6 वर्ण होते हैं ।[4] यथा,

सरद जुन्हाई । रजिनि सुहाई । अव कित माई।मिलहि कन्हाई॥25॥

— चि0 पि0 पृ0 33

25- संखनारीः—

इस छन्द के प्रत्येक चरण में छः अक्षर होते हैं ।इन छः अक्षरों में दो यगण होते हैं । यथा,

वजै किंकिनी कै । अहो लाज लागै ।। रहो नेक प्यारे । अबैं लोग जागै॥27॥

26- स्यमाः—

लक्षण अस्पष्ट है ।

27- मदनकः—

इस वृत्त के प्रत्येक चरण में 'दो नगण' से निर्मित छः वर्ण होते हैं।[6] यथा,

सुमन ललितैं । ललनि बसित ॥ तरुनि लसति । रहसित पति ॥29॥

28 - मालती :-

इस छन्द के प्रत्येक चरण में दो जगण से निर्मित छः वर्ण होते हैं ।[1]

उदाहरणार्थ,

पिपेजु मिलेन । सरोज तु नैन। । सुदेषि विचारि। सखीरिस टारि॥ 3। ॥

चि0 पि0 पृ0 33

29 - समानी :-

इसका प्रत्येक चरण सात वर्ण का होता है । 'ग ल ग ल ग ल ग' इसका लक्षण है ।[2] यथा,

स्याम संग सुन्दरी चारु का तियौ धरी ।

चंचला मनो हिली नील नीरदै मिली ॥33॥ - चि0 पि0 पृ0 34

30 - समास :-

इस छन्द में चार लघुओं के पश्चात एक भगण आता है ।[3] यथा -

सघन घुमंडिय । घननभ मेडिय ॥

समय विचारहु । अवरिस टारहु ॥34॥ - चि0 पि0 पृ0 34

31 - करहंची :-

इस छन्द के प्रत्येक चरण में चार लघुओं के बाद एक जगण आता है । इस प्रकार सात अक्षर होते हैं ।[4] यथा -

करत अति केलि । ललित द्रुम वेलि ।

लषत नव संत । चलत कित कंत ॥36॥

- चि0 पि0 पृष्ठ 34

32 - उरिषा :-

दो मगण एक गुरु के योग से यह छन्द बनाता है । सात वर्ण होते हैं ।[5]

उदाहरणार्थ,

यामे को राधे धीरे । वाकी प्रेमे की पीरे ।।

योही बोले को माने । जाके व्यापी सो जाने ।।

- चि0 पि0 पृ0 34

संदर्भ अगले पृष्ठ पर देखिए -

विद्युत्मालाः - इस छन्द के प्रत्येक चरण में आठ गुरु होते हैं।[1] यथा,

बोलो ना मानो है मैंदै। चक्की ज्यौं नीदैं सोचदै।।

मछी ज्यौं पानी सौं हीनी। यौं राधा प्यारी तैं कीनी।। 39 ।।

— चि0 पि0 34

34-मल्लिकाः - इस छन्द के प्रत्येक चरण में 'ग ल ग ल ग ल ग ल, क्रम से आठ वर्ण होते हैं।[2] यथा,

चैत रैनि चंद चारु। पीव नंद को कुमारु ।।

या समै करै सुमानु । कौन सो सखी सयानु ।। 40 ।।

— चि0 पि0 पृ0 34

35- प्रमानीः-- 'ल ग ल ग ल ग ल ग' क्रम से प्रत्येक चरण में आठ अक्षर होते हैं, यथा,

सरोज रूप नैन हैं । अभी समान बैन है ।।

कला विलास आगरी । लखी नवीन नागरी ।। 42 ।।

— चि0 पि0 35

36- तुंग :- इस छन्द में आठ अक्षर दो नगण तथा दो गुरु के क्रम से आते हैं।[4] यथा,

उमड़ि घुमड़ि धाये । गगन धन सुहाये ।।

विरहि दलनि मारे । मदन दुरिद कारे ।। 35 ।।

चि0 पि0 पृ0 43

37- कमलः- इस छन्द के प्रत्येक चरण में चार लघु, जगण तथा एक गुरु से निर्मित होता है । इस प्रकार आठ वर्ण होते है ।[5] यथा,

समद गज गामिनी । तरुनि अभि रामिनी ।।

दसन दुति दामिनी । जनु मदन कामिनी ।। 45 ।।

— चि0 पि0 35

से तकः- तिनबिनाहि चारि गुरु गजधारी पहिचानि ।
ल गुरनिगन्त्री पंच गुर संमोहा उर आनि ।।। 2 ।। -चि0 पि0 पृ0 32

से तकः- तगन करन हारी कहै भगन कर्ण कहि हंस ।
नगनसपिय मिलि जमकहि, कहि फनि सरि अवतंस।।- चि0 पि0 पृ0 32

से तकः- सैषाद्रिमितिलका विक्सिरद्वि बिजोहा जानि ।
चरन द्विज वर कर्न नह सोच डरै सब मानि ।। 2 ।।।-चि0 पि0 पृ0 33

38-मानक्रीडः— 'भगण, कर्ण तथा सगण' के योग से इसमें आठ अक्षार होते हैं।[6] यथा,

मेघा घान ध्वान करै । भुम्मि जलधार मरै ।।

दीरिव नदी पूर बढ़ै । कौन कह कंत कढ़ै ।।47।।

— चि0 पि0 35

39- अनुष्टुप्ः— इस छन्द में आठ अक्षार होते हैं । चारो चरणों में पाँचवा अक्षार तथा छठा गुरु होता है । दूसरे तथा चौथे चरण में सातवाँ लघु होता है ।[1] यथा,

पदवी करनी हीनी ।

न कछि करि कै व दी ।।

काहू के काज की नाही ।

जौ विना जल की नदी ।।49।। — चि0 पि0 पृ0 36

40- महालक्ष्मीः— नौ वर्णों के इस छन्द में प्रत्येक चरण तीन वर्णों का योग होता है।[2] यथा,

गैल मेरी न रोको लला ।

मैं तिहारी लखी है कला ।।

है बिलौकै जु कोऊ कहूँ ।

बोलि आवै न हाँ ओन हूँ ।।51।। — चि0 पि0 पृ0 36

से तकः- विभिय सभ नारी क दित गन कहि मथान ।
मदन दिज वर सुपिय मिलि, पिंगल करत वखान ।।26।।-चि0 पि0 पृ0 33
जगन जहाँ जुग वरन में, सो मालती वखानि।
कहत सुपिंगल कै मतै, कवि चिंतामनि जानि ।।30।।-चि0 पि0 पृ0 33
सात वरन गुरु लघु जमहि सो समानका मानि ।
दिज वर भगनजु चरनमह, वहै सवास वखानि ।।32।।-चि0 पि0 पृ0 33
चरन वीचि दिज वर जगन करहंची सो मानि ।
सात वरन दीरघ जहाँ, सो सीरषा वखानि ।।35।।-चि0 पि0 पृ0 34
विद्युमाला आठ गुर, गुरु लघु क्रम तै आठ ।
जाहि मल्लिका नाम कहि, कहत सुकवि जनु पाठ।।38।।
लघु गुरु क्रम वसु वर्न मिलि, होत प्रमानी छन्द ।
द्विनक न कर नहिं तुंग यह, सुनत लहिय आनन्द ।।41।।
भगन कर्न पुनि सगन मिलि, सुनियत मान क्रीड़ ।
सुभ मत पिंगल कहत है, फन्नग सिर आ पीड ।।
लघु पंचम चारिहु चरन छठ गुरु अक्षिर आठ ।
दूजै चौथे सात यै, लकरि अनुष्टुप पाठ ।।48।।- चि0 पि0 पृ0 35

41: सारंगिक :- चार लघु, कर्ण तथा सगण के योग से यह वृत्त निर्मित होता है। इस क्रम से इसके प्रत्येक चरणमें 9 वर्ण होते हैं ।[3] यथा,

निरखि जुन्हैया रजनी । समुझि सयानी सजनी ।।
न हठहु ऐसे पिय सो । उठहु लगावहु हिय सो ।।- चि0 पि0 पृ0 52

उदाहरण के चौथे चरण में कर्ण के दूसरे गुरु के स्थान पर दो लघु प्रयुक्त हुए हैं ।

42: पाइत्त :- 'म भ स' के योग से पाइत्ताछन्द बनता है । इस प्रकार इसके प्रत्येक चरण में 9 वर्ण होते हैं ।[1]

43: रतिपद:- 'न न स' का योग रति पद है । यह नौ वर्णों का छन्द है ।[2]

44: बिम्ब:-

बिम्ब की निर्मिति 'न स य' के योग से होती है । इसका चरण भी नौ वर्णों का होता है ।[3]

45: तोमर :-

तोमर 9 वर्णों का छन्दहै । इसमें 'स ज ज' होता है।[4]

46: रूपमाला:-

प्रत्येक चरण 9 वर्णों का होता है । चार कर्ण और एक गुरु के योग से यह छन्द बनता है ।[5]

47: संयुक्ता:-

इस वृत्त में 'स ज ज गुरु' का क्रम रहता है । यह दस वर्णों का वृत्त है ।[6]

48: चंपकमाला:-

इसमे दस वर्ण होते हैं । प्रत्येक चरण में 'भ म ज' तथा गुरु का योग होता है ।[7]

49: सारवती:-

यह भी दस वर्णों का छन्द है । इसमें तीन भगण तथा एक गुरु का योग होता है ।[8]

2,3:- महालक्ष्मी होय जँह, रगन तीन पद माह ।
द्विज पति कर्न हस गन भनि सारंगिक यह नाह ।।50।। - चि0 पि0 पृ0 35

शेष टिप्पणी अगले पृष्ठ पर देखिए-

50: सुषमा:—

इसके प्रत्येक चरण में दस वर्ण होते हैं। यह 'त य म तथा गुरु' का योग है।

51: अमृत गति:—

अमृतगति भी दस वर्णों का छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में 'न ज न तथा गुरु' का क्रम होता है।

52: दोधक:—

तीन भगण और दो गुरु के योग से दोधक छन्द निर्मित होता है। इस प्रकार इसके प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण होते हैं।[1]

53: सुमुषी (सुमुखी):—

इस छन्द के प्रत्येक चरण में दो लघुओं के पश्चात् तीन सगण आते हैं और प्रत्येक चरण 11 वर्णों का छन्द होता है।[2]

54: शालिनी:—

यह 11 वर्णों का छन्द है। प्रत्येक चरण 'म त त तथा दो गुरुओं' का योग होता है।[3]

55: मदनक:—

इसमें दो द्विज गणों के पश्चात् एक लघु सगण आता है। इस प्रकार प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण होते हैं।[4]

---

1 से 3 तक:- 'म भ स गननि पइत्ति भनि, द्विज जुगु गुरु जुत होय।
सो रतिपद भ स यगन ते, कहत बिम्ब सब कोय ॥53॥-चि0 पि0 26

4 तथा 5:- सगन जगन जुगय चरन मै तोमर ताहि बखानि।
चारि करन गुरु एक पुनि रूपामाली ताहि बखानि ॥57॥-चि0 पि0 पृ37

6 से 8 तक:- सगन जगन जुग एक गुरु संजुत कासों जानि।
भम सग बंपक माल कहि त्रिभग सारवति मानि ॥60॥-चि0 पि0 पृ0 37

इस पृष्ठ की टिप्पणी अगले पृष्ठ पर देखिए —

56: सेनिका:–

इस छन्द में गुरु लघु क्रम से ग्यारह वर्ण होते हैं। अन्त में गुरु आता है। 'ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ।ऽ'

57: मालती:–

तीन भगण तथा दो गुरुओं से युक्त एकादश अक्षर वाला छन्द मालती है।

58: इन्द्रवज्रा:–

'त त ज दो गुरु' इसका लक्षण है। इस क्रम के अनुसार इसमें ग्यारह वर्ण होते हैं।

59: उपेन्द्रवज्रा:–

इन्द्र वज्रा के प्रथम अक्षर को लघु कर देने से उपेन्द्रवज्रा छन्द बन जाता है।[1]

60: उपजाति:–

इन्द्र वज्रा और उपेन्द्रवज्रा का मिश्रण उपजाति है।[2]

61: रथोद्धता:–

इसका लक्षण है 'र न र ल गु'। इस प्रकार इसमें भी ग्यारह वर्ण होते हैं।[3]

62: स्वागता:–

ग्यारह वर्णों के इस छन्द का लक्षण है 'र न भ दो गुरु।'[4]

63: भुजंगप्रयात:–

चार यगणों के योग से भुजंग प्रयात छन्द निर्मित होता है। इस क्रम पर आधृत इसके प्रत्येक चरण में 12 वर्ण होते हैं।[5]

1: तीनि भगन बिवि गुरु जहाँ चारिउ चरन न सोय।
चिन्तामनि पिंगल मतै दोधक वृत सु होय ॥67॥ – चि0 पि0 पृ0 38

2: दो लघु तीन्यो सगन जँह, चरन चरन में देखि।
सो कछु जन मन हारिनी, सु मुधीया विधि लेखि ॥70॥ – चि0 पि0 पृ0 39

4 व 5: द्विज दै अरु दीजै सगन मदनक छन्द सु होय।
गुरु लघु क्रम ग्यारह वरन छन्द सेनिको सोय ॥74॥ – चि0 पि0 पृ0 39

इस पृष्ठ की टिप्पणी:–

1 तथा 2: प्रथम इन्द्रवज्रा जु लघु कहि उपेन्द्र वज्राहि।
मिश्रित चरन दुहून के कहि उपजाति सुताहि ॥80॥–चि0 पि0 पृ0 40

3 से 5 तक: रनर ध्वज सु रथोद्धता, रनभ करन पद जात।
कहियस्वागता य ग न पद, चारि भुजंग प्रयात ॥83॥–चि0 पि0 पृ0 40

64: लक्ष्मीधारः—

बारह अक्षर के इस छन्द में चार रगण होते हैं ।[6]

65: तोटकः—

चार सगणों से तोटक बनता है । इसमें भी 12 अक्षर होते हैं ।[7]

66: सारंगः—

इसमें 12 वर्ण होते हैं । इसका चरण चार तगण के योग से निर्मित होता है ।[8]

67: मौक्तिक दामः—

मौक्तिक दाम में 4 जगण होते है ।[1] अतः यह 12 अक्षरों का छन्द है ।

68: मोदकः—

इसमें 4 भगण होते हैं । यह भी 12 वर्णों का छन्द है ।[2]

69: तरलनयनः—

यह छन्द भी 12 वर्णों का है । इसका चरण चार नगणों का योग होता है ।[3]

70: सुन्दरीः—

सुन्दरी छन्द में बारह अक्षर ' न भ भ र ' के क्रम से होते हैं ।[4]

71: प्रमताक्षरः—

इसमें 12 वर्ण होते हैं । इसका लक्षण है । 'स ज स स' ।[5]

72: मायाः—

पाँच गुरु, सगण, भगण तथा दो गुरु के योग से माया छन्द बनता है । यह तेरह वर्णों का छन्द है ।[6]

6से 8 तकः चार रगन जु चरन में सो लक्ष्मीधार मानि ।
चार सतोटक चारि तह सो सारंग बखानि ॥86॥ — चि0 पि0 पृ0 4।

1से 3 तकः चार जु मुत्तिय दाम कहि, चारि भ मौदक नाम ।
चार नगन पद में परे, तरल नयन पहिचान ॥90॥ — चि0 पि0 पृ0 42

4से 6 तकः न भ भर चरन ह सुन्दरी सज सस चरन जु होइ ।
सो प्रमताक्षिर पंच गस, भग गह माया सोइ ॥94॥ — चि0 पि0 पृ0 42

73: तारकः–

तोटक में एक गुरु और जोड़ देने पर तारक छन्द बन जाता है ।[7]

74: कंदुः–

भुजंग प्रयात में एक लघु जोड़ देने पर कंदु छन्द बन जाता है ।[8]

75: पंकावलिः–

'भ न भ भ' के क्रम से इसका प्रत्येक चरण निर्मित होता है । यह बारह वर्णों का छन्द है ।[1]

76: पुष्पिताग्रः–

इसके विषम चरणों में 'न न र य' का तथा ~~तथा~~ सम चरणों में 'न ज न र ऽ' का ~~तथा~~ गण क्रम होता है ।

77:वसन्ततिलकाः–

यह चौदह वर्णों का छन्द है । प्रत्येक चरण में 'त भ ज ज दो गुरु के क्रम से' 14 वर्ण होते हैं ।[3]

78: चक्रः–

लक्षण अस्पष्ट है ।

79: चामरः–

गुरु लघु क्रम से 15 वर्ण होते हैं ।[4]

80: सालिनीः–

यह छन्द 'न न म य य' के योग से निर्मित होता है । इस प्रकार इसमें 15 वर्ण होते हैं ।[5]

---

7 तथा 8: सो इक तोटक माँह जो गुरु बदिजात ।
कन्दु होत लघु एक जह, बदत भुजंग प्रयात ।।97।। - चि0 पि0 पृ0 43

1:एक गछ लघु भजुगलपद पंकावलि सोमानि ।
पिंगल के मत ते यहाँ, धरत सुकवि मन आनि ।।30।। - चि0 पि0 पृ0 30।

2:द्विज सज कर नह विषम पद, रचिय जासु निरधारि ।
द्विज भर यह सम रचहु, पुंहुपत अग्र विचारि ।।

3:कहि वसंत तिलका त भ ज बबि करनहि कर अंत ।305। - चि0 पि0 पृ0 44

4 तथा 5: गुरु लघु क्रम पन्द्रह बरन, चामर कहिये सोय ।
छः लघु करन जुगर गन गुरु, छन्द सालिनी होय ।।8।। -चि0 पि0 पृ044

81: भ्रमरावली:-

इस छन्द के प्रत्येक चरण में 15 वर्ण होते हैं जिनमें 5 सगणों का योग होता है ।[6]

82: कल हंस:-

'स ज ज भ र' का योग कल हंस है । यह 15 अक्षर का छन्द है ।

83: रभस:-

इसमें 14 लघु होते हैं और अन्त में गुरु होता है । इस प्रकार 15 वर्ण होते हैं ।[7]

84: निशिपाल:-

इस छन्द में 'भ ज स न र' का क्रम होता है । इस प्रकार से 15 अक्षर होते हैं ।[1]

85: नाराच:-

इस छन्द में लघु गुरु क्रम से 16 वर्ण होते हैं ।[2]

86: नील:-

इसमें पाँच भगण के पश्चात् एक गुरु आता है ।[3]

87: चंचला:-

इस छन्द में गुरु लघु क्रम से 16 वर्ण होते हैं ।[4]

88: पृथ्वी:-

इस छन्द का लक्षण है ' ज स ज स य ल0 गु0 '। इस प्रकार इसमें 17 वर्ण होते हैं ।[5]

89: मालाधार:-

इस छन्द में 'न स ज स य ल0 गु0' के क्रम से 17 वर्ण होते हैं ।[6]

90: शिखरिणी:-

शिखरिणी 'में' य म न स भ ल0 गु0' के क्रम से 17 वर्ण होते हैं ।[7]

91: मन्दाक्रान्ता:-

'म भ न त त गु0 गु0' का क्रम मन्दाक्रान्ता का लक्षण है । इस प्रकार इसमें 17 वर्ण होते हैं ।[8]

92: हरिणीः—

'न स म र स ल० गु०' का क्रम इस छन्द का लक्षण है। इसमें 17 वर्ण होते हैं।[1]

93: मंजीराः—

इस छन्द में 'म म म म स म' का क्रम होता है। यह 18 वर्णों का है।[2] ~~इसमें~~

94: चर्चरीः—

यह छन्द भी 18 वर्णों का है। इसमें 'र स ज ज भ र' का योग क्रम होता है।[3]

95: क्रीड़ाः—

18 वर्णों का यह छन्द छः यगणों से मिलकर बनता है।[4]

96: शार्दूल विक्रीड़ितः—

इस छन्द में 'म स ज स त त गुरु' होता है। यह 19 वर्णों का छन्द है।[5]

97: चन्दः—

यह 19 वर्णों का छन्द है। इसमें केवल ग्यारहवाँ वर्ण गुरु होता है। शेष सभी वर्ण लघु होते है। इस प्रकार 'न न न ज न न ल०' का क्रम होता है।[6]

98: धवलः—

6 नगण के बाद अन्त में गुरु आता है। 19 वर्ण होते हैं।[7]

पिछले पृ० की टिप्पणीः-

6 से 7 तकः पाँच सगन भ्रमरावली, सज जुग भर कल हंस।
चौदह लघु गुरु अन्त सों, रमैस छन्द अब तंस ॥11॥ - चि० पि० पृ० 45

इस पृ० कीः—

1 तथा 2: गन गन गन रच रन धरहु निसि पालिका बखानि।
लघु गुरु क्रम सोरह वरन, पद नाराच सुजानि ॥15॥- चि० पि० पृ० 46

3 से 5 तकः पंचम गुरु पद नील कहि, गल क्रम सोरह वर्न।
कहै चंचला जस जस, जध्वज पृथ्वी सुधुनि कर्न ॥18॥-चि० पि० पृ० 46

6 तथाः- 7

द्विज वर ज भजत अन्त गुरु मालाधर सो जानि।
ल गुरु पंच लघु पंच तस सुतो सिखरिनी मानि ॥
चि० पि० पृ० 47

99: शंभुः—

इस छन्द में 19 वर्ण होते हैं। लक्षण है—'स त य म म म गु0'।[8]

100:-गीतिकाः—

इसके चरण में 20 अक्षार होते हैं। लक्षण है— 'स ज ज भ र स ल0 गु0।'[1]

101: स्रग्धराः—

'म र भ न य य य' के क्रम से 21 वर्ण होते हैं।[2]

102: गंडकः—

इस छन्द में गुरु लघु क्रम 20 वर्ण होते हैं।[3]

103: नरिंदः—

इसका लक्षण है—'भ र न न ज ज य'। इस प्रकार 21 वर्ण होते हैं।[4]

104: हंसीः—

हंसी में 'म म त न न न स गु0' के क्रम से 22 वर्ण होते हैं।[5]

8: मगन भगन पुनि नगन तवि अन्त जु करन बखानि।
चिन्तामणि कवि कहत हैं मन्दाक्रान्ति सुजानि ॥25॥ — चि0 पि0 पृ0 48

1: नगन सगन पुनि मगन रद रगन सगन लग अन्त।
पिंगल मत हरिनी कहत, चिन्तामनि बुधवन्त ॥27॥ — चि0 पि0 पृ0 48

2 से 4 तकः
छः गभ मसभ भंजारस ज ज भर चचरि छन्द।
चरन मध्य छय गन परै, सो कहि क्रीड़ा चन्द ॥29॥- चि0 पि0 पृ0 48

5: भगन सगन पुनि जगन जँह सगन लगन जँह होइ।
सारदूल विक्रीडतहं एक अन्त गुरु होइ ॥33॥ — चि0 पि0 पृ0 49

6 तथा 7:
और सबै लघु ग्यारहौं, गुरु अक्षार उन्नीस।
छन्द छगन और अन्त गुरु, धवल कहत कन ईस ॥35॥ - चि0 पि0 पृ0 49

8: स त य भ गुरु पनि सात धारि, चरन चरन जँह होइ।
संभु छन्द तासौं कहत, सकल सयाने लोइ ॥ — चि0 पि0 पृ0 50

इस पृष्ठ की टिप्पणीः—

1 तथा 2: सज जभर सघुज गीतिका चरनह अक्षार बीस।
म र भ न यत्रय स्रग्धरा छन्द कहत फनि ईस ॥40॥ - चि0 पि0 पृ0 50

3: गुरु लघु क्रम अक्षार जहाँ होत चरन मँह बीस।
होत गुडिका नाम यह छन्द कहत फनि ईस ॥42॥- चि0 पि0 पृ0 42?

105: मदिरा :-

इस में 7 भगण होते हैं। अतः यह 21 वर्णों का छन्द है।[6]

106: सुन्दरी:-

7 भगण के बाद एक गुरु बन जाता है। यह बाईस वर्णों का छन्द है।[7]

107: चकोर:-

7 भगण के पश्चात् लघु गुरु आने से चकोर छन्द बनता है। इसमें 23 वर्ण होते हैं।[8]

108: मत्तगयंद:-

इसमें 7 भगण और इनके बाद दो गुरु आते हैं। इसमें 23 वर्ण होते हैं।[9]

109: किरीट:-

इसमें 8 भगण होते हैं। यह 24 वर्णों का छन्द है।[10]

---

4 तथा 5:-

मर द्विज वर नभ भ ग ग पद, सो नरेन्द्र पहिचानि ।
आठ गरवि लघु बिव गुरु, सो हंसी उन मानि ।।45।।

चि0 पि0 पृ0 51

6,7 तथा 8:-

सात भगन मदिरा कहै, गुरु मिल सुन्दरि जानि ।
सात भगन गुरु लघु मिले, सो चकोर उन आनि ।। 48 ।।

चि0 पि0 पृ0 52

9 तथा 10:-

सात भगन गुरु जुगल जुत सो कहि मत्त गयन्द ।
आठ भगन जामै परै सो किरीट कहि छन्द ।।51।।

— चि0 पि0 पृ0 53

11०: दुमिलः-

दुमिल 8 सगणों से मिल कर बनता है। यह 24 वर्णों का छन्द है।[1]

111: महा भुजंग प्रयातः-

इसमें आठ यगण होते हैं। यह भी चौबीस वर्णों का छन्द है।[2]

112: शालूरः-

कर्ण, 6 द्विज तथा एक सगण का योग शालूर छन्द है। इसमें 27 वर्ण होते हैं। इस प्रकार इसका लक्षण हुआ - 'त न न न न न न न न ल गु०'[3]

113: धनाक्षरीः-

इसमें 31 वर्ण होते हैं। 16 वर्णों के पश्चात् यति आती है। अन्त में गुरु होता है।[4]

114: रूपधनाक्षरीः-

इसमें 32 वर्ण होते हैं। धनाक्षरी के अन्त में लघु होता है। 16 वर्णों के बाद मध्य यति आती है।[5]

---

1 तथा 2: आठ सगन दुमिल कहै सुकवि सुबुद्धि अधिकात।
आठ यगन पद मैं परै महा भुजंग प्रयात ॥54॥
— चि० पि० पृ० 53

3: कर्न द्विज षष्टु सगन, मिलि, होत छन्द सालूर।
वरनत पिंगल नाग यह सुष समुद्र कौ पूर ॥57॥
— चि० पि० पृ०54

4: सोरह पन्द्रह वरन पर होत जहाँ विश्राम।
इकतिस अक्षर अन्त गुरु, लहत धनक्षार नाम ॥59॥
— चि० पि० पृ० 54

5: सोरह सोरह पर जहाँ, विरति अन्त लघु होइ।
सौ रूपक धनाक्षरी, बत्तीस बत्तीस जोंइ ॥61॥
— चि० पि० पृ०54

समीक्षाः-

चिन्तामणि ने 'पिंगल' में विवेच्य छन्दों का लक्षणोल्लेख भी किया है और उदाहरण भी दिये हैं। लक्षणोल्लेख लक्ष्य छन्द में नहीं है। इस कार्य के लिए सर्वत्र 'दोहा' छन्द का ही प्रयोग किया गया है। कदाचित् दोहा छन्द लक्षण-निरूपण के लिए सर्वथा उपयुक्त छन्द है।

चिन्तामणि द्वारा दोहा छन्द में लक्षण- निरूपण की दो विशिष्टताएँ प्रतीत होती है। प्रथम यह कि प्रायः दोहा के प्रथम दल में हर छन्द का लक्षण दे दिया गया है। दूसरे दल की पूर्ति भर्ती के शब्दों से हुई है। यथा,

दस दस सत्रह कलनि पर होत जहाँ विश्राम।
श्रवन सुखद गनि छन्द यह, लहत भूलना नाम ॥39॥

— चि0 पि0 पृ0 21

उपर्युक्त दोहे के दूसरे दल में नाम निर्देश के अतिरिक्त समस्त शब्द भर्ती भर्ती के हैं। इस विशिष्टता को दोष न कहकर आचार्य कवि की परवशता कहना अधिक संगत है। वस्तुतः छन्द को अपूर्ण रखना भी शोभनीय नहीं था, अतः अतिरिक्त शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक है। प्रशंसनीय बात यह है कि इन अतिरिक्त शब्दों ने लक्षण- निरूपण में यदि कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं की है तो इनसे निरर्थकता का समावेश भी नहीं हुआ है। कहीं- कहीं इस विशिष्टता का अपवाद भी मिल जाता है :-

तेरह कल पहिले चरन, दूजे ग्यारह जानि।
याही विधि उत्तर अरध, यों दोहा पहिचानि ॥76॥

— चि0 पि0 पृ0 76

दोहा के माध्यम से लक्षण- निरूपण की दूसरी विशेषता है संक्षिप्तता। इस विशेषता का साक्षात्कार वहाँ होता है जहाँ एक ही दोहे में दो या दो से अधिक छन्दों का लक्षण- निरूपण हुआ है। यथा,

चारि जु मुत्तिय दाम कहि, चारि भ मोदक नाम।
चारि नगन पद में परे, तरल नयन पहिचान ॥90॥

— चि0 पि0 पृ0 42

यहाँ तक दोहा छन्द के माध्यम से लक्षण- निरूपण की विशेषताओं का उल्लेख किया गया है । अब कुछ सामान्य विशेषताओं का परिचय भी वांछनीय है, जो निम्नांकित है :-

1: आचार्य चिन्तामणि ने 'प्राकृत पैंगलम्' के आधार पर ही छन्दों के लक्षणों का उल्लेख किया है । कहीं-कहीं तो प्राकृत-पैंगलम् का अनुवाद ही कर दिया गया है । यथा,

> दोहा दल के अन्त में, जहाँ पाँचकल होय ।
> कह मुनि पिंगल नाम मत, कहि चुलआली सोय ॥ 49 ॥
>
> — चि० पि० पृ० 23

> चुलि आला जइ देह किमु दोहा उप्पर मत्तह पंचइ ।
> पअ पअ उप्पर सँठरहु सुद्ध कुसुम गण अन्तह दिज्जइ ॥
>
> — प्रा० पै० 1/167

2: कहीं-कहीं चिन्तामणि ने 'प्राकृत पैंगलम्' के अनुकरण की प्रवृत्ति को छोड़ दिया है । इसका तात्पर्य भिन्न लक्षण-निरूपण नहीं, अपितु उसमें संक्षिप्तता, सरलता और सुबोधत्व का ग्रहण है । तात्पर्य यह है कि प्राकृत पैंगलमकार ने एक छन्द के लक्षणोल्लेख में एक पूरे छन्द का प्रयोग किया है किन्तु चिन्तामणि ने एक छन्द के सहारे कई छन्दों के लक्षणों को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है ।

आचार्य चिन्तामणि ने संक्षिप्तता लाने के लिए संख्यावाची शब्दों का प्रयोग भी किया है । इससे यत्र-तत्र दुरूहता और अस्पष्टता आ गयी है ।

3: लक्षण निरूपण की एक विशेषता यह है कि वर्णिक छन्दों के लक्षण निरूपण में भी मात्रिक छन्दों के लक्षणोल्लेख की प्रवृत्ति का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । वर्णिक, उसमें भी विशेष रूप से गणात्मक वर्ण वृत्तों के लिए आठ गण तथा लघु-गुरु का ही निर्देश होता है । आचार्य चिन्तामणि ने दो गुरुओं के लिए कर्ण, चार लघुओं के लिए द्विज आदि का प्रयोग किया है । वस्तुतः यह मात्रिक गण हैं । गणात्मक वर्णवृत्तों के लक्षण-प्रतिपादन दो गुरु और चार लघु कहने की परम्परा है, पर चिन्तामणि ने वर्णिक गणों में इनका नाम न पाकर मात्रिक गणों के नाम का आवश्यकतानुसार प्रयोग कर दिया है । छन्द-विवेचन में मात्रिक .

छन्दों के लक्षण-निरूपण में वर्णिक गणों को ग्रहण किया जाता है ।

छन्दःशास्त्र के क्षेत्र में चिन्तामणि का यह कृत्य यद्यपि अधिकांशतः प्राकृत पैंगलम् का अनुकरण है तथापि इसकी अपनी उपयोगिता और महत्ता है, जिसे विस्मृत नहीं किया जा सकता है । चिन्तामणि ने प्राकृत भाषा में उल्लिखित नियमों और लक्षणों को हिन्दी में प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया है, उसे छन्द विषय ज्ञान को सरल और संप्रेष्य बनाने का सफल प्रयत्न कह सकते हैं । वस्तुतः चिन्तामणि छन्द के हिन्दी लक्षणकारों की उस परम्परा के प्रतिनिधि और सूत्रधार हैं, जिसने संस्कृत और प्राकृत भाषा से अपरिचित व्यक्तियों के छन्द के ज्ञानार्जन का मार्ग प्रशस्त किया है ।

××0**×

10: उपलब्धियाँ

चिन्तामणि की, उपलब्धियां एवं सीमायें :–

विषय के समापन के पूर्व चिन्तामणि के उपलब्धियों का सिंहावलोकन एवं उनकी सीमाओं का आकलन आवश्यक प्रतीत होता है । हमने अध्यन की सुविधा के लिए उनके कवि कर्म एवं आचार्यत्व दोनों को पृथक-पृथक विवेचित करने का प्रयास किया है अतएव यहा भी दोनों पक्षों के मौलिक उपलब्धियों पर पृथक-पृथक विचार करने का प्रयास किया जायगा ।

कवि कर्म की उपलब्धियां एवं सीमायें :–

रीतिकालीन परिवेश एवं आचार्यत्व से गहरी संबद्धि के कारण चिंतामणि की अधिकांश रचनाए शृंगार रस की हैं । जिनमें रूप वर्णन और पूर्वराग आदि से लेकर सुर एवं सुरतान्त दशा का चित्रण किया गया है । कथ्य की दृष्टि से रीतिकाल के सभी कवियों ने प्रायः इन्हीं प्रसंगों को लिया है । अतः ये सन्दर्भ बारम्बार आवृत्ति के कारण अपनी मौलिकता खो बैठे हैं किन्तु इन्हीं विषयों को लेकर जब कोई आचार्य कवि किन्हीं मौलिक परिस्थितियों या दशाओं का उल्लेख करता है, कल्पना के सहारे नई परिस्थिया और विरुद्ध धर्मी समायोजना की चमत्कारपूर्ण सृष्टि करता है तो जाने पहचाने प्रसंगों में भी एक चमत्कार पूर्ण नवीनता पाठक को आकृष्ट करने लगती है । कहीं शब्दों के सन्निवेश की मनोहरिता, कहीं उक्ति की भंगिमा, कहीं अर्थ का गाम्भीर्य, कहीं रस पेशलता सब मिलकर कवि की महिमा की प्रतिष्ठा में सहायक होते हैं । इन विशेषताओं के उदाहरण हम चिन्तामणि की समीक्षा के प्रसंग में दे आये हैं । अतः यहाँ उनकी पुनरावृत्ति न करते हुये केवल इतना ही कहना आवश्यक समझते हैं कि कवि कर्म की दृष्टि से चिंतामणि की रचनाएं सर्वत्र विलक्षणता और नूतनता के आकर्षण से परिपूर्ण नहीं हैं जहा उनकी मानसिक वृत्तियां रमी हैं, वहां उन्होंने निःसन्देह उत्तमोत्तम काव्य की सृष्टि उन्होंने की है किन्तु उनकी रचनाओं का बहुत बड़ा अंश प्रेरित कवि कर्म के रूप में है जहा पूर्व निर्धारित परिस्थितियां और भाव दशाओं को केवल छन्दोबद्ध किया गया है ऐसे स्थलों में उनकी मौलिकता का अन्वेषण करना संगत नहीं प्रतीत होता ।

शास्त्रीयता की सीमा और सायास कवि कर्म के अतिरिक्त काव्य का एक

वह क्षेत्र भी है जहा कवि,की कल्पना उन्मुक्त रूप से वस्तु-विधान , प्रसंग योजना आदि के लिए स्वतंत्र होती है । चिंतामणि ने सौभाग्य से इस दिशा में भी उल्लेखनीय प्रयास किया है उनका कृष्ण चरित्र पौराणिक इतिवृत्त के सहारे पल्लवित होकर भी कल्पना की माधुरी से मंडित प्रथम सात सर्गों में नायक के लोकोत्तर व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के उपरान्त नायिका राधा के जन्म की कथा से लेकर श्रीकृष्ण के मिलन और दाम्पत्य रति आदि का जो सुरम्य वर्णन कवि ने किया है वह अपने आप में अत्यन्त मौलिक है ।

दूसरी दृष्टि से देखें तो चिंतामणि ने जहां रीतिकाल से प्रभावित होकर शृंगार प्रधान सूक्ति मुक्तकों की रचना में सफलता पाई है वहीं दूसरी ओर प्रबन्ध काव्यों का भी यथोचित निर्वाह किया है । उनके कृष्ण चरित्र और रामायण (अनुपलब्ध) के आधार पर यह भी कहना संगत प्रतीत होता है कि उन्होंने रीति काल में आकंठ डूबकर भी भक्ति काल के सगुण धारा के दोनों शाखाओं का सार्थक प्रतिनिधित्व किया है । इनकी रचनाओं में पांडित्य प्रदर्शन की अपेक्षा सर्वजन सुलभता क्लिष्ठ कल्पनाओं की तुलना में स्वाभाविकता अलंकार बहुलता की अपेक्षा सादगी का जो सौन्दर्य दिखाई पड़ता है वह इन्हें अपने पूर्ववर्ती केशव की अपेक्षा जन प्रिय बनाने में समर्थ हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हृदय ग्राही उर्वर कल्पना की न्यूनता के कारण इनकी रचनाएं रीतियुग के मतिराम देव बिहारी आदि की रचनाओं की भांति लोगों की जिह्वा पर नहीं नाचतीं और न तुलसी और सूर की भांति लोगों की आराधना का साधन बन सकी है किन्तु इसमें उतना दोष चिंतामणि का नहीं है जितना उनकी रचनाओं के अंधकार में पड़े रहने का । खेद का विषय है कि अभी तक चिंतामणि की कोई ग्रन्थावली प्रकाशित नहीं है । मैं किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा का भाव न रखते हुये भी यह कहने में संकोच न करूंगा कि ह चिंतामणि की अधिसंख्य रचनाएं सहृदयों के हृदय आवर्जन करने में पूर्ण समर्थ हैं । उनमें विस्तार भी है और घनत्व भी । इसलिए उन्हें एक सफल कवि कहना अनुचित न होगा ।

आचार्यत्व की उपलब्धियां एवं सीमाः—

इससे पूर्व कि हम चिन्तामणि की आचार्यत्व विषयक मौलिक उपलब्धियों

की चर्चा करें यह आवश्यक प्रतीत होता है कि मौलिकता की अवधारणा को स्पष्ट कर लें। वस्तुतः मौलिक उसे कहा जाना चाहिए जो सर्वथा नवीन हो किन्तु यह बात सैद्धान्तिक रूप से सुनने में जितनी अच्छी लगती है व्यावहारिक रूप में उसे उतना उचित नहीं ठहराया जा सकता। टी० एस० इलियट के अनुसार मौलिकता परम्परा सापेक्ष है। परम्परा से विच्छिन्न मौलिकता का मूल्य सर्वथा नगण्य है।[1] इसी तथ्य को डा० नगेन्द्र ने इस प्रकार व्यक्त किया है --

यद्यपि मौलिकता चिंतन का सर्वाधिक स्पृहणीय गुण है फिर भी विद्या के साधक को अन्य लोगों की भांति मौलिकता के लोभ को संचय करने का प्रयत्न करना चाहिए उसे कभी न भूलना चाहिये कि मौलिकता की सिद्धि परम्परा की श्रद्धापूर्ण स्वीकृत के द्वारा ही सम्भव है।[2]

वस्तुस्थिति यह है कि कोई भी कलाकार अपने पूर्ववर्ती साहित्य की परम्परा को जब अपने युग के सांचे में ढालने का प्रयास करता है तो उसके अनुपयुक्त अंश को हटाकर उसमें नवीन उपयुक्त अंश को जोड़ने का प्रयास करता है यही मौलिकता की परम्परा सापेक्षता है।

जहां तक रीति काल का प्रश्न है सामान्यतः उनकी काव्य शास्त्र की मौलिकता सामान्य स्तर की है। इनकी प्रतिभा का सम्यक प्रसार शृंगाररस के अन्तर्गत नायक-नायिका भेद में दृष्टिगोचर होता है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि रीतिकालीन आचार्यों ने संस्कृत काव्यशास्त्रीय परम्परा का गतानुगतिक अनुकरण किया है क्यों कि उन्होंने काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में यथा सम्भव जटिलता को सरल करने का प्रयास किया और अस्पष्टता एवं संक्षिप्तता को स्पष्ट सरल एवं व्यापक बनाने में योग दिया। इतना ही नहीं कहीं-कहीं लक्षणों में भी नवीनता लाने का प्रयास किया गया है तथा नामकरण को भी अधिक सार्थक बनाने का प्रयत्न किया गया है।

1: टी० एस० इलियटस सेलेक्ट एसेज पृष्ठ 14

2: हिन्दी अलंकार - प्राक्कथन, डा० नगेन्द्र पृष्ठ - 6

जहाँ तक चिंतामणि का प्रश्न है इन्होंने भी साहित्य-शास्त्रीय ग्रन्थों के प्रणयन में कोई क्रान्तिकारी उद्भावना नहीं की है। इनका सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना के समय किसी एक ग्रन्थ का अनुवाद न करके अनेक ग्रन्थों से सामग्री ली है और इस प्रकार इनकी सारग्राहिणी वृत्ति ने रीतिकालीन परम्परा से हटकर स्वतंत्र चिंतन प्रधान रचना प्रस्तुत की है। यद्यपि गद्य का आश्रय न लेने के कारण लक्षणों में सर्वत्र स्पष्टता के दर्शन नहीं होते और तार्किक आलोचना का अभाव हो जाता है फिर भी पद्य का गद्य की भांति प्रयोग करते हुए चिंतामणि ने शास्त्रीय तार्किक शैली का उपयोग किया है।

दूसरी बात यह है कि अनेक ग्रन्थों से सामग्री का चयन करने से इनकी रचनाओं में आधुनिक शोध के तत्त्व दृष्टिगत होते हैं। वर्तमान शोध का उद्देश्य या तो ज्ञान के किसी नवीन क्षेत्र का उद्घाटन है या उपलब्ध ज्ञान की नई व्याख्या है। चिंतामणि ने अपने युग की सीमाओं में आवध्द रहते हुए भी शोध के दूसरे पक्ष को महत्व दिया है। शृंगार मंजरी में तो संस्कृत गद्य का ब्रजभाषा गद्य में ही रूपान्तर किया गया है। इस प्रकार चिन्तामणि पहले आचार्य हैं, जिन्होंने आलोचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन विधि का अनजाने ही प्रयोग करके रीति काल की परम्परा में वास्तवक मौलिकता को स्थान दिया है।

हम सुविधा के लिए यदि शास्त्रीय चिंतन पर एक विहंगम दृष्टि डालें तो यह कहा जा सकता है कि चिंतामणि ने पग-पग पर कुछ न कुछ नवीनता या मौलिकता लाने का प्रयास किया है। काव्य की परिभाषा में ही उन्होंने एक ओर काव्य के स्थान पर 'बत कहाऊ' का प्रयोग किया तो दूसरी ओर अलंकृत रचना को काव्य का महत्त्व पूर्ण अंग मान लिया वस्तुतः किसी सरस रचना में अलंकारों की उपेक्षा सम्भव नहीं है किन्तु इस प्रकार उन्होंने विश्वनाथ और मम्मट सब को पीछे छोड़ दिया और अपने लक्षण को यथा सम्भव निर्दुष्ट बनाने का प्रयास किया।

काव्य-पुरुष की कल्पना यद्यपि उन्होंने प्रताप रुद्र यशोभूषण के प्रभाव से की है किन्तु जहां विद्यानाथ ने व्यंग्य को काव्य की आत्मा माना है वहाँ चिन्तामणि ने रसध्वनि। रीति और वृत्ति का अन्तर भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है उन्होंने रीति और वृत्ति को क्रमशः मानव स्वभाव और मानव वृत्ति से जोड़ा है। स्वभाव और मानव प्रायः वहिरंग होता है और मानव वृत्तियाँ आन्तरिक।

गुण प्रकरण' में आवश्यक के संग्रह और अनावश्यक के त्याग द्वारा चिंतामणि ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है । माधुरीगुण की चर्चा में 'यह ई तत्त्व कवित्त' का लक्षण में उल्लेख इस बात का साक्षी है कि ये माधुर्य गुण को काव्य का सर्वस्व मानते हैं । संस्कृत साहित्य में गुणों के उत्कर्षापकर्ष की चर्चा नहीं मिलती उन्होंने प्रसाद गुण को सभी रचनाओं और सभी गुणों में प्रधान मानते हुए भी माधुर्य को जो महत्त्व दिया है वह रीति काल का मौलिक चिंतन है काव्य प्रकाश का आधार लेकर भी इन्होंने वामन के अनुकूल गुणों के लक्षण दिये हैं और छन्द की सीमा में रहते हुए भी शास्त्रीय खण्डन मंडन का उपयोग किया है । उदारता में अर्थ चारुत्व और अर्थव्यक्ति में सालंकारता का निरूपण ओज के वैचित्र्य में अलंकारों के सान्निवेश गुण के क्षेत्र में चिंतामणि की मौलिक देन है ।

अलंकार के निरूपण में इन्होंने मम्मट, विद्यानाथ, विश्वनाथ एवं अप्पय दीक्षित का आधार लिया है और अपने ग्रन्थ की प्रामाणिकता के लिए इन लोगों का यथास्थान उल्लेख भी किया है । ऐसी दशा में अलंकार निरूपण में उनकी चिंतनशीलता और सारग्राहिणी प्रवृत्ति का सुन्दर परिचय मिलता है । ये जहाँ एक ओर काव्य में अलंकार का होना आवश्यक मानते हैं जो ध्वनिवादी आचार्यों के विपरीत है तो दूसरी ओर शब्दालंकारों को शब्द चित्र और ध्वनि ही अर्थालंकारों को अर्थ चित्र कहने का साहस करते हैं । इस रूप में ये अलंकारवादियों और धर्मवादियों के बीच पुल का काम करते हैं । अलंकारों की व्यवस्था यदि विद्यानाथ से लेते हैं तो लक्षण मम्मट से प्रभावित है यद्यपि इन्होंने प्रायः सभी प्रमुख अलंकारों में कुछ न कुछ नयापन लाने का प्रयास किया है किन्तु उल्लेख अलंकारों में मम्मट की आलोचना चिंतामणि की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है । इसी प्रकार अप्रस्तुत प्रशंसा में भी मम्मट का आश्रय लेते हुये उन्होंने सामान्य प्रस्ताव में सामान्य कथन न कहकर सदृश के प्रस्ताव में सदृश कथन की बात कही है जिससे विशेष के कथन में विशेष एवं सामान्य के ~~सका है~~ । के कथन में सामान्य दोनों का समावेश हो सका है । पर्यायोक्ति अलंकार के विवेचन में तो मम्मट अप्पय दीक्षित और विद्यानाथ सब का समाहार कर लिया है । काव्यलिंग का श्लेष मूलक भेद । सम्भवतः इनकी निजी विशेषता है । परिसंख्यालंकार का स्वतंत्र लक्षण देने का प्रयास भी कि किया है ।

दोषों के प्रकार निरूपण में पदगत पदांशगत कहकर चिंतामणि ने शब्द गत दोष की चर्चा की है और पदांश की उपेक्षा कर दी है। यह चिंतामणि का परिष्कार इसलिए उचित है कि संस्कृत की भांति ब्रजभाषा में प्रकृति प्रत्यय निरूपण और दोषों का सूक्ष्म उल्लेख सम्भव नहीं है। रसदोष के सबंध में जिन दोषों को मम्मट ने प्रबन्धगत मान कर बद्ध उदाहरण न देकर नाटकों से गद्य वाक्य लिये थे। उनके चिंतामणि ने सुन्दर पद्यबद्ध उदाहरण दिये हैं।

हिन्दी में शब्द-शक्ति की चर्चा सर्व प्रथम चिंतामणि ने की है। केशव जैसे आचार्य ने भी शब्द शक्ति पर कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। इन्होंने व्यंजना पर विशेष बल दिया।

ध्वनि के भेदों में इन्होंने चौवालीस भेद स्वीकार किये हैं। उदाहरणों के विवेचन में गद्य का आश्रय लेकर सुन्दर व्याख्या की गई है। रस ध्वनि को ध्वनि के भेदों के बीच न रखकर स्वतंत्र महत्त्व दिया है जिससे इन्हें रसध्वनिवादी आचार्यों के बीच प्रतिष्ठा मिली है।

नायकों के भेद निरूपण में धीर प्रशान्त और धीर ललित के लक्षणों में विशेषता लाने का प्रयास किया है। नायिकाओं का नख-शिख वर्णन की दृष्टि से दिव्या, अदिव्या और दिव्यादिव्या का विभाग कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। भरत ने दिव्या का तो उल्लेख किया है किन्तु वह दिव्य लोक की नायिका न होकर इसी लोक की नायिका है। मध्या नायिका के भेदोपभेद निरूपण में चिंतामणि ने विश्वनाथ के मध्या व्रीड़िता-की उपेक्षा कर दी है। भानु मिश्र ने वृत्त, वर्तिष्यमाण और वृत्तवर्तिष्यमाण सुरत गोपना की चर्चा इन्होंने नहीं की है और उसके सभी भेदों को केवल ए ऊढापरकीया में माना है। अनूढा परकीया को उन्होंने बहुत सम्हाल कर रखा है। रीति काल के विलासी वातावरण में अनूढा परकीया के भेदोपभेद की चर्चा न करना चिन्तामणि की मर्यादापूर्ण दृष्टि का परिचायक है। रस विलास में परोढा नायिका के अमिला, सुमिला और दुमिला जैसे भेद नितान्त मौलिक हैं। कवि कुल कल्प तरु में स्वकीया, परकीया, सामान्या अभिसारिका आदि के लक्षणों में पर्याप्त सफलता मिली है।

शृंगार मंजरी एवं रस विलास दोनों में स्वकीया, परकीया सामान्या के समानान्तर नायकों के पतिउपपति और वैशिक रूप में भेद किये गये हैं इसी

प्रकार वात्स्यायन के काम सूत्र से प्रभावित शंखिनी, पद्मिनी, चित्रिणी और हस्तिनी नायिका भेदों को भी स्वीकार लिया गया है । रसविलास के अनुसार नायक के सामान्तर नायकाभास की भी चर्चा की गई है ।

रस के स्वरूप और उसकी निष्पत्ति के संबन्ध में चिन्तामणि ने विभाव अनुभाव और संचारी भाव के सानुपातिक महत्त्व को बतलाने का नूतन प्रयास किया है । दशरूपक के आधार पर निर्मित रसविलास निष्पत्तिः का अर्थ उत्पत्तिः माना है किन्तु कविकुल कल्पतरू में रस को असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य मान कर निष्पत्ति को अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया है । प्राचीन आचार्यों ने आलम्बन के गुण उसकी चेष्टायें, उसके अलंकरण तथा तटस्थ ये चार प्रकार माने हैं किन्तु चिंतामणि ने विस्तृत विवेचन के आधार पर सिद्ध कर दिया है कि आलम्बन के गुण रूप यौवनादि आलम्बन से पृथक नहीं किये जा सकते, भला सौन्दर्य रहित आलम्बन की काव्य में क्या सत्ता होगी । आलम्बन की चेष्टाओं को अनुभाव रूप में माना गया है फिर उन्हें उद्दीपन कहना बुद्धि दोष ही माना जायगा । आभूषणादि आलम्बनादिगत होकर ही सार्थक हैं । अतः केवल तटस्थ उद्दीपनों को ही उद्दीपन मानना चाहिये । यह अपने युग की सीमा में चिंतामणि का एक मौलिक चिंतन स्वीकार किया जाना चाहिये ।

संचारी भावों में 30 संचारी भावों को निर्विवाद रूप में संचारी मानना यह सूचित करता है कि ग्लानि, शंका और व्याधि के संचारीत्व में मतभेद है किन्तु ऐसा उल्लेख अन्य किसी ग्रन्थ में हमें प्राप्त नहीं है, हो सकता है कि यह चिंतामणि का स्वयं का मौलिक चिंतन हो ।

मरण संचारी के संबन्ध में चिंतामणि का विचार है कि वीर रस के अतिरिक्त शृंगारादि अन्य रसों में इसका वर्णन नहीं करना चाहिये इस विचार की स्थापना चिंतामणि की मौलिकता का पर्याप्त प्रमाण है । विप्रलम्भ शृंगार में विप्रलम्भ की प्रसिद्ध दश काम दशाओं के अतिरिक्त अन्य बारह काम दशाओं का उल्लेख करके उन्होंने विषय को यथा सम्भव व्यापकता प्रदान की है । इसी प्रकार नायिकाओं के यौवनालंकारों की चर्चा में उन्होंने अनेक आचार्यों के मतों का संकलन किया है और उनकी 28 संख्या स्वीकार करली है किन्तु यहीं जब वे इन सारी चेष्टाओं को अनुभाव मान कर विद्यानाथ का खण्डन कर देते हैं तो उनकी मौलिकता स्वतः स्पष्ट हो जाती है ।

इस प्रकार रस प्रकरण में चिंतामणि ने अनेक आकर ग्रन्थों से अपनी रुचि के अनुसार सामग्री का चयन किया है कहीं-कहीं जब एक ही लक्षण में कई आचार्यों के मतों का सार संकलन कर देते हैं तब इनकी प्रखर आलोचक बुद्धि निखर सामने आ जाती है । संक्षेप में कहें तो सत्वज अलकारों को अनुभाव उद्दीपनों में केवल तटस्थ उद्दीपन को ही उद्दीपन मानना मरण और मद संचारियों के नये लक्षण प्रस्तुत करना इनकी मौलिक प्रतिभा का द्योतक है ।

छन्दःशास्त्र की परिचर्चा में इनके लक्षणों की संक्षिप्तता, सरलता और स सुबोधता दर्शनीय है । प्राकृत पैंगलम का आधार रखते हुये भी कहीं-कहीं स्वतंत्र लक्षण देने का प्रयास किया गया है । संस्कृत और हिन्दी छन्द परम्परा के बीच 'प्राकृत पैंगलम्' को एक संयोजक कड़ी बनाकर इन्होंने छन्दःशास्त्र के जिस विकासात्मक स्वरूप से हिन्दी पाठकों को परिचित कराया है वह अपने आप में इनका एक अत्यन्त मौलिक योग दान है ।

इनकी मौलिकता को एक आचार्य कवि के रूप में भी आंका जा सकता है । जहा इनका आचार्यत्व कवि कर्म का नियामक तत्त्व बन गया है और जहा इनका कवित्व आचार्यत्व के आलोक में निखर पा सका है । इस दृष्टि से हम चिंतामणि के उदाहरण रूप से प्रस्तुत मुक्तक काव्य को भी ले सकते हैं और उनके कृष्ण-चरित्र जैसे प्रबन्ध काव्य को भी स्वनिर्मित उदाहरणों की जो परम्परा संस्कृत में पंडित जगन्नाथ से चली आ थी वह हिन्दी में एक रूढ़ि बन गई थी । इस पक्ष की उपलब्धि को लोगों ने महत्त्व इसलिये अधिक नहीं दिया कि सभी आचार्यों ने उदाहरण निरूपण में अपने कवित्व प्रतिभा का उपयोग किया है किन्तु कृष्णचरित्र जिस प्रकार इन्होंने शृंगार रस की विभिन्न दशाओं अनुभावों आदि का चित्रण किया, नखशिख, रूप-शोभा का जैसा असामान्य निरूपण किया है उससे यह पता लगता है कि चिंतामणि समस्त साहित्य शास्त्र को आत्मसात करने में पूर्ण समर्थ थे और इसलिये उनका स्वैर चिन्तन भी शास्त्र की परिधि से बाहर नहीं गया ।

जहा तक उनकी सीमाओं का संबन्ध है हम यथा स्थान उनकी त्रुटियों का या जानबूझकर किये गये परिवर्तनों का उल्लेख कर आये हैं यहा इतना ही कह देना पर्याप्त है कि विशाल साहित्य शास्त्रीय चिंतन में प्रसंगतः छोटी मोटी भूलों का कोई

बहुत बड़ा महत्त्व नहीं है । आलोचना के लिये यदि उस युग में गद्य का निर्बाध प्रयोग होता तो सम्भवतः इस प्रकार की छोटी-छोटी भूलें सुधार ली जा सकतीं । छन्दों की सीमा में बहुत कुछ अनकहा रह जाय तो आश्चर्य ही क्या है ? अतः निर्विवाद रूप से यह स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है कि जहा शास्त्रीय सामग्री के निर्वाह में चिंतामणि ने अपने आचार्यत्व को प्रतिपादित किया वहीं कवि कर्म की दृष्टि से भी रीतिकालीन साहित्य में इनका उल्लेखनीय स्थान है ये हिन्दी के प्रथम विविधांग निरूपक आचार्य हैं जिनका स्वीकृत आदर्शों पर चलकर अनेक आचार्यों ने अपना गौरवपूर्व स्थान बना लिया है ।

चिंतामणि के काव्य का मूल स्वर शृंगार है तथा शृंगार के सम्यक परिपाक में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है । कलात्मकता की दृष्टि से इनका काव्य परवर्ती कवियों के समान नहीं है तथा इनकी अभिव्यक्ति की सादगी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नही है अतः डा० नगेन्द्र के मत से सहमत होते हुये हम यह कहना चाहेंगे कि - यद्यपि न तो इनमें देव का सा आवेग आ पाया है और न वैसी चित्रमयता ही । कल्पना की ऊंची उड़ान भी ये नहीं भर पाये हैं । केवल मतिराम के समान सीधी सादी शब्दावली में अपनी सच्ची अनुभूति को व्यक्त कर गये हैं । यही कारण है कि इनके काव्य में विहारी किसी नक्कासी के स्थान पर ऐसी स्वाभाविकता देखने को मिलती है, जिससे इनकी रचनाओं को मतिराम के समक्ष कहने में संकोच नहीं होता ।

भाषा शैली की दृष्टि से भी इनकी रचनाए अत्यन्त परिष्कृत कही जा सकती हैं । पूर्वी प्रदेश के निवासी होते हुये भी इन्होंने व्रजभाषा का अत्यन्त स्वच्छ प्रयोग किया है । केशव के पश्चात् सम्भवतः ये ही प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने भाषा को नियमानुसार व्यवहृत किया है । इतर शब्दावली का भी सही प्रयोग इनके काव्य में मिलता है । भावात्मक शब्द ही नहीं ध्वन्यात्मक शब्दों का भी उत्कृष्ट रूप इनकी रचनाओं में सामान्य है । कुल मिलाकर चिंतामणि का काव्य उपादेय है ।